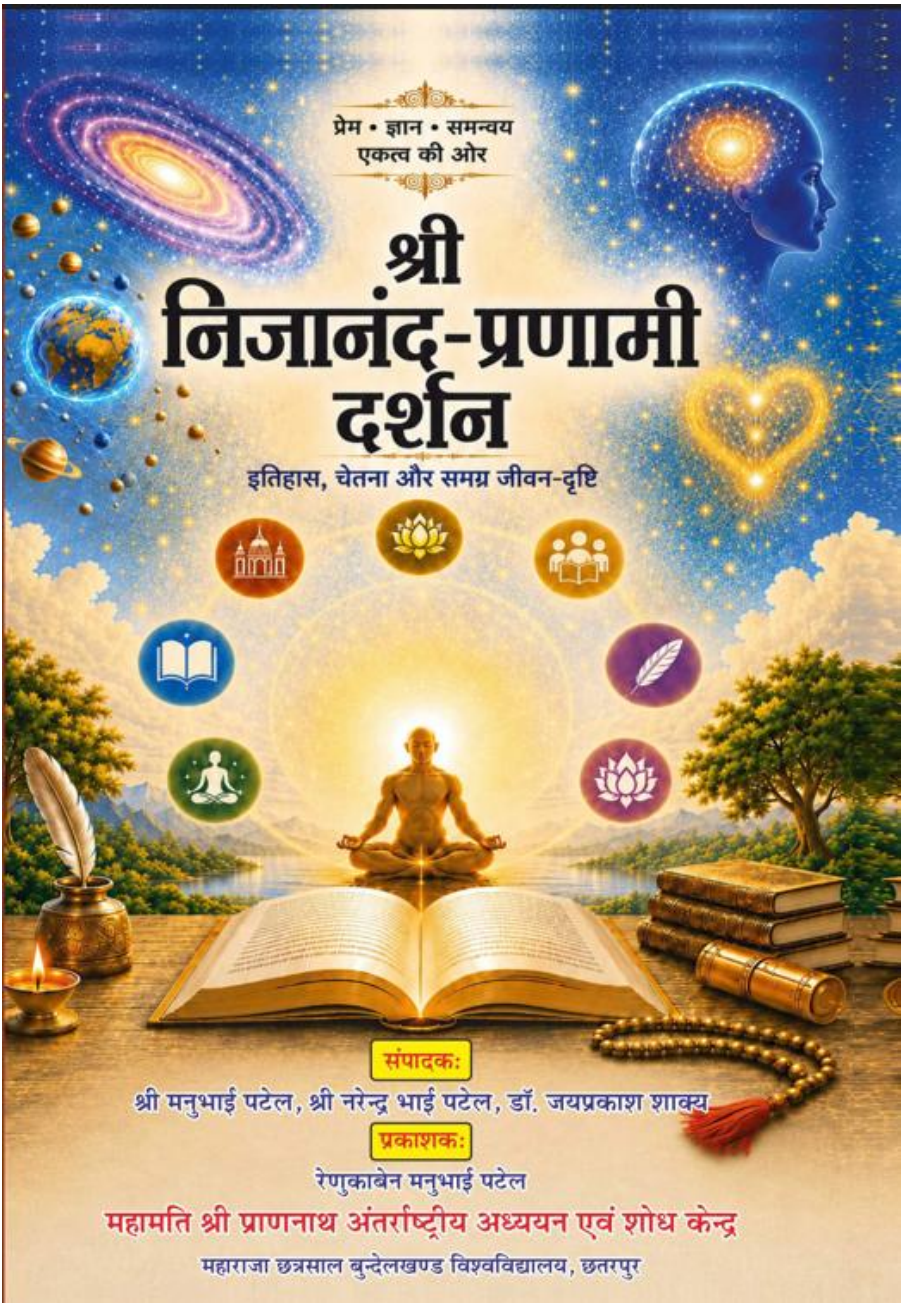
प्रेम • ज्ञान • समन्वय
एकत्व की ओर
श्री
निजानंद-प्रणामी
दर्शन
इतिहास, चेतना और समग्र जीवन-दृष्टि
संपादकः
श्री मनुभाई पटेल, श्री नरेन्द्र भाई पटेल, डॉ. जयप्रकाश शाक्य
प्रकाशकः
रेणुकाबेन मनुभाई पटेल
महामति श्री प्राणनाथ अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केन्द्र
महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर

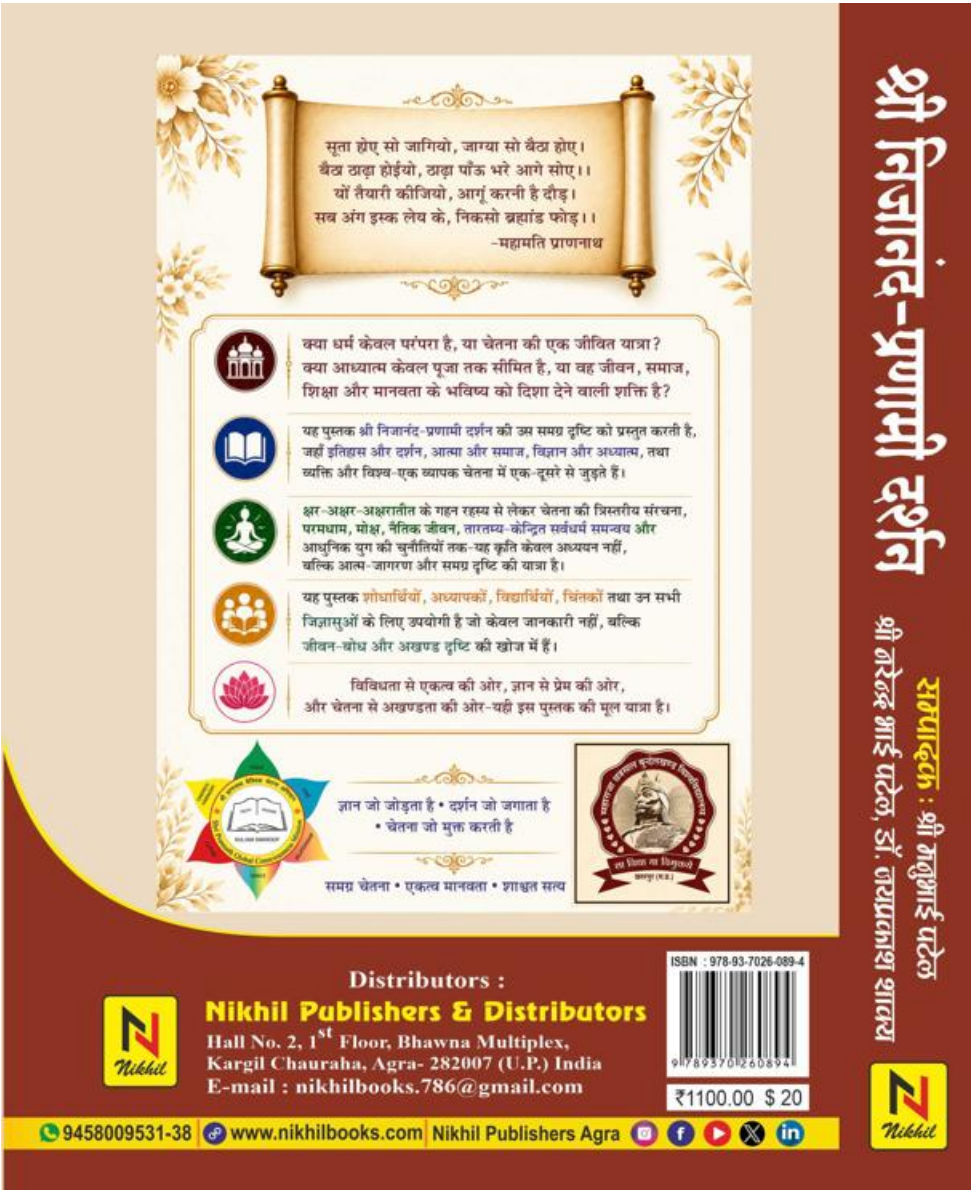

सूता होए सो जागियो, जाग्या सो बैठा होए।
बैठा ठाढ़ा होईयो, ठाढ़ा पाँऊ भरे आगे सोए।।
यों तैयारी कीजियो, आगूं करनी है दौड़।
सब अंग इस्क लेय के, निकसो ब्रह्मांड फोड़।।
-महामति प्राणनाथ

क्या धर्म केवल परंपरा है, या चेतना की एक जीवित यात्रा? क्या आध्यात्म केवल पूजा तक सीमित है, या वह जीवन, समाज, शिक्षा और मानवता के भविष्य को दिशा देने वाली शक्ति है?

यह पुस्तक श्री निजानंद-प्रणामी दर्शन की उस समग्र दृष्टि को प्रस्तुत करती है, जहाँ इतिहास और दर्शन, आत्मा और समाज, विज्ञान और अध्यात्म, तथा व्यक्ति और विश्व-एक व्यापक चेतना में एक-दूसरे से जुड़ते हैं।

क्षर-अक्षर-अक्षरातीत के गहन रहस्य से लेकर चेतना की त्रिस्तरीय संरचना, परमधाम, मोक्ष, नैतिक जीवन, तारतम्य-केन्द्रित सर्वधर्म समन्वय और आधुनिक युग की चुनौतियों तक-यह कृति केवल अध्ययन नहीं, बल्कि आत्म-जागरण और समग्र दृष्टि की यात्रा है।

यह पुस्तक शोधार्थियों, अध्यापकों, विद्यार्थियों, चिंतकों तथा उन सभी जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी है जो केवल जानकारी नहीं, बल्कि जीवन-बोध और अखण्ड दृष्टि की खोज में हैं।

विविधता से एकत्व की ओर, ज्ञान से प्रेम की ओर, और चेतना से अखण्डता की ओर-यही इस पुस्तक की मूल यात्रा है।

ज्ञान जो जोड़ता है • दर्शन जो जगाता है
• चेतना जो मुक्त करती है

समग्र चेतना • एकत्व मानवता • शाश्वत सत्य

Distributors :
Nikhil Publishers & Distributors
Hall No. 2, 1st Floor, Bhawna Multiplex,
Kargil Chauraha, Agra- 282007 (U.P.) India
E-mail : nikhilbooks.786@gmail.com

ISBN : 978-93-7026-089-4
₹1100.00 $ 20

9458009531-38 | www.nikhilbooks.com | Nikhil Publishers Agra

श्री निजानंद-प्रणामी दर्शन

सम्पादक : श्री मनुभाई पटेल
श्री नरेन्द्र भाई पटेल, डॉ. जयप्रकाश शाक्य

श्री निजानंद स्वामी धणी श्री देवचन्द्रजी
(1581–1655)

श्री देवचन्द्रजी परम सत्य, परमधाम और आत्म–बोध की अखंड खोज के अग्रदूत थे। उन्होंने अनेक धार्मिक एवं योगिक परंपराओं का गहन अनुभव कर यह प्रतिपादित किया कि प्रेम और ब्रह्मज्ञान से प्रकाशित चेतना ही जीवन की पूर्णता है। उनके द्वारा प्रकट निजानंद दर्शन समग्र चेतना, समन्वय और जागनी–सेवा का अद्वितीय मार्ग प्रस्तुत करता है।

महामति प्राणनाथजी
(1618–1694)

महामति प्राणनाथजी श्री निजानंद–प्रणामी दर्शन के प्रमुख प्रवर्तक, तारतम वाणी के अवतरणकर्ता और आत्म – जागरण के युगदृष्टा थे। उनका जीवन सत्य – खोज, सतगुरु – भक्ति, करुणा, सामाजिक समरसता और सर्वधर्म समन्वय से आगे सर्वजीवन समन्वय की जीवंत यात्रा है। उन्होंने प्रेम, ज्ञान और सेवा के आधार पर मानवता को क्षर–अक्षर–अक्षरातीत के गहन बोध की ओर उन्मुख किया। उनका संदेश– "सुख शीतल करूँ संसार" – आज भी चेतना, एकता और लोककल्याण का अमर आह्वान है।

श्री कुलजम स्वरूप तारतम वाणी का संग्रहीत महाग्रंथ है, जिसमें परंपरा अनुसार 14 ग्रंथ, 527 प्रकरण और 18,758 चौपाइयाँ संकलित हैं। यह आत्म–बोध, ब्रह्म–बोध, परमधाम–लीला, प्रेम–साधना, धर्म–समन्वय और अंतिम जागरण का समग्र आध्यात्मिक मानचित्र प्रस्तुत करता है।

श्री गुमट जी मंदिर पद्मावतीपुरी, धाम पन्ना (म.प्र.) स्थित प्राचीन बुन्देली स्थापत्य का अद्वितीय प्रतीक है, जहाँ महामति प्राणनाथजी की परब्रह्मयोग उपस्थिति, श्री पंजा साहब और सर्वधर्म एकता का दिव्य संदेश आज भी श्रद्धालुओं को आकर्षित करता है।

श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन:

इतिहास, चेतना और समग्र जीवन-दृष्टि

2026

यह ग्रंथ विद्यार्थियों, शोधार्थियों एवं अध्येताओं के लिए
संदर्भोपयोगी अध्ययन-सामग्री के रूप में प्रस्तुत है।

संपादक
श्री मनुभाई पटेल
श्री नरेन्द्र भाई पटेल
डॉ. जयप्रकाश शाक्य

प्रकाशक
रेणुकाबेन मनुभाई पटेल
महामति श्री प्राणनाथ अंतरराष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर (मध्य प्रदेश) एवं
श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, श्री निजानंद आश्रम, वड़ोदरा

राष्ट्र, मानवता और चेतना के समन्वित
उत्कर्ष हेतु प्रयासरत वर्तमान भारत को
समर्पित।

प्रकाशक: रेणुकाबेन मनुभाई पटेल "महामति श्री प्राणनाथ अंतरराष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र", महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर (मध्य प्रदेश) एवं श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, श्री निजानंद आश्रम, वड़ोदरा आजवा निमेटा चोकड़ी, N.H. 8 बायपास, पो. सयाजीपुरा, वड़ोदरा ३९०००१९ गुजरात;
संपर्क: फोन: +91-9898000168, +91-7874151371,
+1-973-760-9238
Email: jagni7@yahoo.com, manulpdc@yahoo.com
Websites: Nijanand.Org; Sundersath.Com; Chhatrasal.Com

पुस्तक: श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन: इतिहास, चेतना और समग्र जीवन-दृष्टि
प्रथम संस्करण: 2026
लेखक और संपादक: श्री मनुभाई पटेल, श्री नरेन्द्र भाई पटेल, डॉ. जयप्रकाश शाक्य
COPYRIGHT © 2026 श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, श्री निजानंद आश्रम, वडोदरा
All Rights Reserved: Shri Prannath Global Consciousness Mission,
Shri Nijanand Ashram, Vadodara
मूल्य: 500/- रुपये
ISBN# 978-0-9794292-7-9

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

(म.प्र. शासन राज्य विश्वविद्यालय)

प्रो. राकेश कुशवाह

कुलगुरु

आवास- भवन क्र.3, सेक्टर 1, पेप्टेक टाउन
झाँसी रोड, जिला- छतरपुर-471001 (म.प्र.)
मो. : 9425339542
E-mail : rakeshkushwah15@gmail.com
Website : mcbu.ac.in

पत्रांक : 23/2026

दिनांक 26/06/2026

शुभकामना संदेश

आज का भारत ज्ञान, अनुसंधान, नवाचार और सांस्कृतिक चेतना के समन्वित विकास की दिशा में तीव्र गति से अग्रसर है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 ने विश्वविद्यालयों के समक्ष यह महत्त्वपूर्ण दायित्व रखा है कि वे केवल सूचना और व्यवसायिक दक्षता तक सीमित न रहें, बल्कि ऐसे शिक्षण-अध्ययन वातावरण का निर्माण करें जो विद्यार्थियों में समग्र व्यक्तित्व, आलोचनात्मक चिंतन, सांस्कृतिक चेतना, मानवीय मूल्यों और आत्मबोध का विकास कर सके। विश्वविद्यालय केवल डिग्री प्रदान करने वाले संस्थान नहीं हैं; वे राष्ट्र के बौद्धिक, सांस्कृतिक और नैतिक भविष्य के निर्माण के केंद्र भी हैं।

महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर, भारतीय ज्ञान परंपरा, स्थानीय सांस्कृतिक विरासत और समकालीन शिक्षा के बीच सार्थक संवाद स्थापित करने के लिए निरंतर प्रतिबद्ध है। इसी व्यापक दृष्टि के अंतर्गत विश्वविद्यालय द्वारा "रेणुकाबेन मनुभाई पटेल महामति श्री प्राणनाथ अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र" की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है, जिसका उद्देश्य केवल परंपरागत ज्ञान का संरक्षण नहीं, बल्कि उसे शोध, विमर्श, शिक्षण और समकालीन संदर्भों से जोड़कर नई पीढ़ी तक पहुँचाना है।

मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि "श्री निजानन्द (प्रणामी) दर्शन : इतिहास, चेतना और समग्र जीवन-दृष्टि" शीर्षक यह ग्रंथ इसी उद्देश्य की एक सार्थक और महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक केवल किसी सम्प्रदाय या परंपरा का परिचय मात्र नहीं देती, बल्कि इतिहास, दर्शन, चेतना-अध्ययन, समाज-दर्शन, नैतिकता, शिक्षा, मानवता, आध्यात्मिकता तथा समकालीन वैश्विक प्रश्नों के मध्य एक समन्वित सेतु निर्मित करने का प्रयास करती है।

इस ग्रंथ की विषय-संरचना अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। इसमें एक ओर श्री निजानन्द (प्रणामी) परंपरा का ऐतिहासिक विकास, सतगुरु श्री देवचन्द्रजी, महामति प्राणनाथ तथा महाराजा छत्रसाल के जीवन एवं योगदान का विवेचन है, तो दूसरी ओर चेतना, आत्मा, माया, परमधाम, मोक्ष और मानव जीवन के गहन दार्शनिक प्रश्नों पर भी विचार किया गया है। साथ ही नैतिकता, समाज-दर्शन, समरसता, सर्वधर्म समन्वय तथा समकालीन वैश्विक चुनौतियों से जुड़े विमर्शों को भी इसमें समाहित किया गया है।

विशेष रूप से यह उल्लेखनीय है कि पुस्तक का अंतिम भाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित Vice Chancellors' Conclave-2025 में प्रस्तुत शोध-पत्रों को समाहित करता है, जो शिक्षा, डिजिटल युग, मानव चेतना, प्रकृति, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय चेतना जैसे समकालीन विषयों को इस ज्ञानधारा के आलोक में देखने का प्रयास करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के प्रश्नों के समाधान में भी सार्थक योगदान देने की क्षमता रखती है।

मेरा विश्वास है कि यह ग्रंथ विद्यार्थियों, शोधार्थियों, अध्यापकों तथा जिज्ञासु पाठकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ-सामग्री सिद्ध होगा। यह केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं बनेगा, बल्कि अध्ययनकर्ताओं को चिंतन, आत्ममंथन और समग्र दृष्टि के विकास की दिशा में भी प्रेरित करेगा।

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

(म.प्र. शासन राज्य विश्वविद्यालय)

प्रो. राकेश कुशवाह

कुलगुरु

आवास- भवन क्र.3, सेक्टर 1, पेप्टेक टाउन
झाँसी रोड, जिला- छतरपुर-471001 (म.प्र.)
मो. : 9425339542
E-mail : rakeshkushwah15@gmail.com
Website : mcbu.ac.in

पत्रांक :

दिनांक .....

इस अभिनव शैक्षिक एवं शोधपरक पहल के प्रारम्भ, संकल्पना और उसे सार्थक दिशा प्रदान करने में निमित बने डॉ. जयप्रकाश शाक्य, सभी संपादकों, विद्वानों, सहयोगियों तथा संस्थाओं को मैं हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह पहल भविष्य में अन्य विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों के लिए भी प्रेरणास्रोत सिद्ध होगी।

ज्ञान, चेतना और मानवता के समन्वित उत्कर्ष की यह यात्रा सतत आगे बढ़ती रहे – इसी मंगलकामना के साथ ।

प्रो. राकेश कुशवाह
कुलगुरु
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय
छतरपुर (मध्य प्रदेश)

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)
(म.प्र. शासन राज्य विश्वविद्यालय)

प्रो. राकेश कुशवाह
कुलगुरु

आवास- भवन क्र.3, सेक्टर 1, पेटेंक टाउन
झाँसी रोड, जिला- छतरपुर-471001 (म.प्र.)
मो. : 9425339542
E-mail : rakeshkushwah15@gmail.com
Website : mcbu.ac.in

क्रमांक : 23/2026 दिनांक 26/06/2026

शुभकामना संदेश

आज का भारत ज्ञान, अनुसंधान, नवाचार और सांस्कृतिक चेतना के समन्वित विकास की दिशा में तीव्र गति से अग्रसर है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 ने विश्वविद्यालयों के समक्ष यह महत्त्वपूर्ण दायित्व रखा है कि वे केवल सूचना और व्यवसायिक दक्षता तक सीमित न रहें, बल्कि ऐसे शिक्षण–अध्ययन वातावरण का निर्माण करें जो विद्यार्थियों में समग्र व्यक्तित्व, आलोचनात्मक चिंतन, सांस्कृतिक चेतना, मानवीय मूल्यों और आत्मबोध का विकास कर सके। विश्वविद्यालय केवल डिग्री प्रदान करने वाले संस्थान नहीं हैं; वे राष्ट्र के बौद्धिक, सांस्कृतिक और नैतिक भविष्य के निर्माण के केंद्र भी हैं।

महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर, भारतीय ज्ञान परंपरा, स्थानीय सांस्कृतिक विरासत और समकालीन शिक्षा के बीच सार्थक संवाद स्थापित करने के लिए निरंतर प्रतिबद्ध है। इसी व्यापक दृष्टि के अंतर्गत विश्वविद्यालय द्वारा "रेणुकाबेन मनुभाई पटेल महामति श्री प्राणनाथ अंतरराष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र" की स्थापना का प्रयास किया जा रहा है, जिसका उद्देश्य केवल परंपरागत ज्ञान का संरक्षण नहीं, बल्कि उसे शोध, विमर्श, शिक्षण और समकालीन संदर्भों से जोड़कर नई पीढ़ी तक पहुँचाना है।

मुझे यह देखकर प्रसन्नता है कि "श्री निजानन्द (प्रणामी) दर्शन : इतिहास, चेतना और समग्र जीवन-दृष्टि" शीर्षक यह ग्रंथ इसी उद्देश्य की एक सार्थक और महत्त्वपूर्ण कड़ी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक केवल किसी सम्प्रदाय या परंपरा का परिचय मात्र नहीं देती, बल्कि इतिहास, दर्शन, चेतना-अध्ययन, समाज-दर्शन, नैतिकता, शिक्षा, मानवता, आध्यात्मिकता तथा समकालीन वैश्विक प्रश्नों के मध्य एक समन्वित सेतु निर्मित करने का प्रयास करती है।

इस ग्रंथ की विषय-संरचना अत्यंत व्यापक और बहुआयामी है। इसमें एक ओर श्री निजानन्द (प्रणामी) परंपरा का ऐतिहासिक विकास, सतगुरु श्री देवचन्द्रजी, महामति प्राणनाथ तथा महाराजा छत्रसाल के जीवन एवं योगदान का विवेचन है, तो दूसरी ओर चेतना, आत्मा, माया, परमधाम, मोक्ष और मानव जीवन के गहन दार्शनिक प्रश्नों पर भी विचार किया गया है। साथ ही नैतिकता, समाज-दर्शन, समरसता, सर्वधर्म समन्वय तथा समकालीन वैश्विक चुनौतियों से जुड़े विमर्शों को भी इसमें समाहित किया गया है।

विशेष रूप से यह उल्लेखनीय है कि पुस्तक का अंतिम भाग विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित Vice Chancellors' Conclave–2025 में प्रस्तुत शोध-पत्रों को समाहित करता है, जो शिक्षा, डिजिटल युग, मानव चेतना, प्रकृति, सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय चेतना जैसे समकालीन विषयों को इस ज्ञानधारा के आलोक में देखने का प्रयास करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के प्रश्नों के समाधान में भी सार्थक योगदान देने की क्षमता रखती है।

मेरा विश्वास है कि यह ग्रंथ विद्यार्थियों, शोधार्थियों, अध्यापकों तथा जिज्ञासु पाठकों के लिए एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ-सामग्री सिद्ध होगा। यह केवल ज्ञानार्जन का माध्यम नहीं बनेगा, बल्कि अध्ययनकर्ताओं को चिंतन, आत्ममंथन और समग्र दृष्टि के विकास की दिशा में भी प्रेरित करेगा।

इस अभिनव शैक्षिक एवं शोधपरक पहल के प्रारम्भ, संकल्पना और उसे सार्थक दिशा प्रदान करने में निमित्त बने डॉ. जयप्रकाश शाक्य, सभी संपादकों, विद्वानों, सहयोगियों तथा संस्थाओं को मैं हार्दिक शुभकामनाएँ देता हूँ और आशा करता हूँ कि यह पहल भविष्य में अन्य विश्वविद्यालयों एवं शोध संस्थानों के लिए भी प्रेरणास्रोत सिद्ध होगी।

ज्ञान, चेतना और मानवता के समन्वित उत्कर्ष की यह यात्रा सतत आगे बढ़ती रहे — इसी मंगलकामना के साथ।

प्रो. राकेश कुशवाह, कुलगुरु
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय
छतरपुर (मध्य प्रदेश)

आत्मनिवेदन

सम्पूर्ण विश्व में भारत एक ऐसी विशिष्ट भूमि रही है, जहाँ संतों, ऋषियों, मुनियों और चिंतकों ने सत्य की खोज को केवल बौद्धिक चिंतन तक सीमित न रखकर साधना और अनुभूति का विषय बनाया। भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं में परम सत्य को ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, पुरुषोत्तम आदि अनेक नामों से समझने और अनुभव करने के प्रयास हुए हैं। इन विविध अनुभूतियों के बीच निजानन्द–प्रणामी दर्शन की तारतम दृष्टि एक विशेष भेद स्पष्ट करती है—दृश्य और परिवर्तनशील क्षर जगत, उसके आधारभूत अविनाशी अक्षर ब्रह्म, और अक्षर से भी परे अक्षरातीत परब्रह्म।

इस दृष्टि से सम्पूर्ण दृश्य जगत को सीधे अक्षरातीत परब्रह्म का विस्तार या परमधाम को इस जगत में सर्वत्र समान रूप से व्याप्त मान लेना पर्याप्त नहीं है। तारतम वाणी हमें अस्तित्व के विभिन्न स्तरों का भेद समझाते हुए उनके पार मूल सत्य की पहचान कराती है। क्षर परिवर्तनशील जगत है; अक्षर ब्रह्म उससे परे अविनाशी आधार है; और अक्षर के भी पार अक्षरातीत परब्रह्म का दिव्य परमधाम है। वाणी इसी पार-दृष्टि की ओर संकेत करती है—

निराकार के पार के पार, तारतम को जागनी भयो सार।
अछर पार घर अछरातीत, धाम के यामें सब चरित्र।।

अतः आध्यात्मिकता का उद्देश्य केवल अपने भीतर किसी सार्वभौमिक सत्ता का अनुभव करना नहीं, बल्कि तारतम ज्ञान के प्रकाश में मैं कौन हूँ, यह जगत क्या है, अक्षर क्या है, अक्षरातीत कौन हैं और मेरा निजमूल सम्बन्ध कहाँ है—इसका जाग्रत बोध प्राप्त करना है। जब यह पहचान जीवन में उतरती है, तब मनुष्य की दृष्टि संकीर्ण स्वार्थ से ऊपर उठती है। परिवार, समाज और मानवता के साथ-साथ पृथ्वी, जल, पर्वत, वृक्ष, पशु-पक्षी और सम्पूर्ण सृष्टि के प्रति उसके भीतर सम्मान, करुणा, उत्तरदायित्व और मंगलभाव विकसित होता है।

भारतीय सांस्कृतिक चिंतन की एक महत्वपूर्ण विशेषता यही व्यापक मंगलभावना रही है। यहाँ व्यक्तिगत कल्याण के साथ समस्त जगत के कल्याण की कामना की गई। इसी भावना को विभिन्न परंपराओं ने अपनी-अपनी भाषा में व्यक्त किया—"सर्वे भवन्तु सुखिनः", "मंगलाणं च सव्वेसिं", "भवतु सब्ब मंगलम्" और "सरबत दा भला" जैसे उदात्त भाव इसी व्यापक मंगल-चेतना के विविध स्वर हैं।

निजानन्द–प्रणामी परंपरा में यह मंगलभावना "सुख शीतल करूं संसार" के जागनी-संकल्प में अत्यंत प्रभावशाली रूप से अभिव्यक्त होती है। यहाँ मंगल केवल बाहरी सुख-व्यवस्था तक सीमित नहीं रहता; उसका अंतिम आशय जीव को अज्ञान और भ्रम से निकालकर सत्य की पहचान, आत्म-जागृति और परम सम्बन्ध की ओर उन्मुख करना है।

निजानन्द सतगुरु श्री देवचन्द्र जी ने दीर्घ आध्यात्मिक खोज, साधना, सेवा और श्रीमद्भागवत के गहन श्रवण-मनन के पश्चात उस परम सत्य का अनुभव किया, जिसने आगे चलकर निजानन्द ज्ञानधारा का आधार निर्मित किया। उनके द्वारा प्राप्त तारतम ज्ञान का बीज-प्रकाश श्री मिहिरराज जी—जो आगे चलकर महामति प्राणनाथ के नाम से विख्यात हुए—में पूर्ण विस्तार को प्राप्त हुआ। महामति प्राणनाथ जी के माध्यम से अवतरित तारतम वाणी ने जीव, जगत, अक्षर ब्रह्म, अक्षरातीत परब्रह्म, परमधाम और आत्मा के निज सम्बन्ध के भेद को विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया।

इस प्रकार श्री देवचन्द्र जी और महामति प्राणनाथ जी के योगदान को अलग-अलग न देखकर एक सतत् जागनी-ज्ञानधारा के रूप में समझना अधिक उचित है—सतगुरु श्री देवचन्द्र जी में जिसका बीज प्रकट हुआ और महामति प्राणनाथ जी के माध्यम से जो तारतम वाणी के विशाल स्वरूप में प्रस्फुटित हुआ। इसी ज्ञान का उद्देश्य केवल दार्शनिक सिद्धांत देना नहीं, बल्कि सोई हुई सुरता को उसके निज स्वरूप और निजधाम की स्मृति में जगाना है।

विषय के प्रवर्तन से पूर्व गुरु-शिष्य परंपरा का सम्मान करते हुए सद्गुरु श्री देवचन्द्र जी का संक्षिप्त परिचय देना मैं अपना प्रथम कर्तव्य समझता हूँ। जिस दिन उन्होंने "भज मन श्री वृंदावन कुंज बिहारी नित्य विलास" मंत्र को अपने हृदय में धारण किया, उसी दिन गुरु-आज्ञा के अनुसार उनका विवाह लीलाबाई जी के साथ सम्पन्न हुआ। उन्होंने गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिक साधना को विरोधी न मानकर दोनों के बीच सुंदर संतुलन स्थापित किया।

राधावल्लभी गुरु श्री हरिदास जी के सान्निध्य और आश्रय में उन्होंने बालमुकुंद तथा बांके बिहारी की सेवा आरंभ की। प्रारंभिक सेवा-काल के उपरांत गुरु ने उनकी निष्ठा, समर्पण और आध्यात्मिक परिपक्वता देखकर उन्हें विशेष रूप से बांके बिहारी की वस्त्र-सेवा का दायित्व प्रदान किया। यह प्रसंग उनके जीवन में सेवा, विनम्रता और गुरु-निष्ठा के महत्व को प्रकट करता है।

उन्होंने तत्कालीन विद्वान श्री कान्हजी भट्ट से लगभग चौदह वर्षों तक श्रीमद्भागवत कथा का अत्यंत निष्ठापूर्वक श्रवण किया। इससे उनके हृदय में श्रीकृष्ण की रास-लीला और नित्य वृन्दावन के रहस्य को जानने की उत्कट जिज्ञासा और अधिक

प्रबल हुई। अंततः उनके आध्यात्मिक अनुभव में वह रहस्य उद्घाटित हुआ जो केवल दृश्य नाम-रूप तक सीमित नहीं था। तारतम दृष्टि से यह यात्रा रूप को नकारकर अरूप में रुक जाने की नहीं, बल्कि रूप और निराकार दोनों के भेद को समझते हुए अक्षर से भी पार अक्षरातीत मूल की पहचान तक पहुँचने की यात्रा है।

इसी अनुभूति में उन्हें तारतम ज्ञान का बीज-रूप प्रकाश प्राप्त हुआ। जब यह दिव्य ज्ञान और परम सम्बन्ध उनके हृदय में दृढ़ हुआ, तब वे "निजानन्द स्वामी" के नाम से विख्यात हुए। इसी ज्ञानधारा से निजानन्द सम्प्रदाय का प्राकट्य हुआ और बाद में महामति प्राणनाथ जी के माध्यम से उसका व्यापक जागनी-विस्तार हुआ। परंपरा में सुंदरसाथ परस्पर "प्रणाम" कहकर अभिवादन करते हैं; इसी कारण कालांतर में यह परंपरा "प्रणामी सम्प्रदाय" के नाम से भी प्रसिद्ध हुई।

परंपरागत बीतक-वर्णन में गुरु हरिदास जी और श्री देवचन्द्र जी से संबंधित एक अत्यंत मार्मिक प्रसंग आता है। गुरु हरिदास जी को अपने शिष्य देवचन्द्र जी के उच्च आध्यात्मिक स्वरूप का बोध होने पर उनके प्रति विशेष श्रद्धाभाव उत्पन्न हुआ। इस प्रसंग से संबंधित वचन हैं—

"तू सेवक याको जाने, जो तू याको नहीं पहचाने।
तुम लाग चरण जा वाके, तू हो सेवक जाए ताके।।"

यह प्रसंग गुरु-शिष्य सम्बन्ध की सामान्य लौकिक धारणा से आगे एक गहरा आध्यात्मिक संकेत देता है—सत्य जहाँ प्रकट हो, वहाँ पूर्व भूमिका और बाहरी पद से ऊपर उठकर उसे पहचानना ही वास्तविक विनम्रता है।

नवरंग स्वामी के वर्णनानुसार स्वामी हरिदास जी का पूर्वकालीन सम्बन्ध वृषभान जी के कुलगुरु रूप से तथा राधिका जी के प्रति वात्सल्यभाव से जोड़ा गया है। निजानन्द परंपरा में इस प्रसंग को श्री देवचन्द्र जी के जीवन में सेवा, रहनी और गुरु-मार्गदर्शन की भूमिका समझाने की दृष्टि से देखा जाता है। श्री हरिदास जी ने उन्हें आगे ज्ञान-अन्वेषण के लिए जामनगर जाने की प्रेरणा भी दी।

निजानन्द स्वामी को प्राप्त ज्ञान के आधार पर और आगे महामति प्राणनाथ जी द्वारा प्रतिपादित निजानन्द पद्धति आज भी इस दर्शन के स्वरूप को संक्षेप में समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है—

निजानन्द पद्धति

सतगुरु ब्रह्मानन्द हैं, सूत्र है अक्षर रूप।
शिखा सदा तिनसे परे, चेतन चिद जो अनूप।।

सेवन है पुरुषोत्तम, गोत्र चिदानंद जान।
परम किशोरी इष्ट है, पतिव्रता साधन मान।।
श्री जुगल किशोर को जाप है, मंत्र तारतम सोए।
ब्रह्मविद्या देवी सही, पुरी नवतन मम जोए।।
अठोत्तर सो पख शाखा सही, शाला है गौलोक।
सतगुरु चरण को क्षेत्र है, जहाँ जाए सब शोक।।
सुख विलास नित्य वृन्दावन, ऋषि महाविष्णु हैं जोए।
वेद हमारो स्वसं है, तीर्थ यमुना सोए।।
शास्त्र श्रवण श्री भागवत, बुद्ध जाग्रत को ज्ञान।
कुल मूल हमारो आनंद है, फल नित्य विहार प्रमाण।।
दिव्य ब्रह्मपुर धाम है, घर अक्षरातीत निवास।
निजानंद है संप्रदा, ए उत्तर प्रश्न प्रकाश।।
श्री देवचन्द्र जी निजानंद, जिन प्रगट करी संप्रदा एह।
तिनथें हम एह लखि है, हम द्वार पावें अब तेह।।

निजानन्द दर्शन मूलतः जागनी का दर्शन है। इसका लक्ष्य केवल दार्शनिक ज्ञान अर्जित करना अथवा किसी मत की बौद्धिक स्थापना करना नहीं, बल्कि तारतम ज्ञान के प्रकाश में जीव, जगत, अक्षर और अक्षरातीत का यथार्थ भेद समझते हुए आत्मा को उसके निजस्वरूप, निजधाम और प्रियतम से उसके मूल सम्बन्ध की पहचान में जगाना है। इसीलिए यहाँ ज्ञान का चरम फल केवल "जानना" नहीं, बल्कि जागना, पहचानना और उस पहचान को प्रेम, सेवा, रहनी और मंगलभाव में जीना है।

इसी दृष्टि से "सुख शीतल करूं संसार" केवल एक धार्मिक उद्घोष नहीं रह जाता; वह जागनी की व्यावहारिक दिशा बन जाता है। जब मनुष्य की सुरता अपने संकीर्ण अहं और स्वार्थ से ऊपर उठकर अपने वास्तविक सम्बन्ध को पहचानती है, तब उसका व्यवहार भी करुणा, प्रेम, सेवा, समरसता और सर्वमंगल की ओर परिवर्तित होता है। निजानन्द दर्शन की आध्यात्मिकता इस प्रकार निज-जागृति और विश्व-मंगल को परस्पर जोड़ती है।

यह पुस्तक इसी दर्शन की मूल अवधारणाओं को क्रमबद्ध और यथासंभव सरल रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। इसमें आत्मा, परमात्मा, सृष्टि, अक्षर, अक्षरातीत, परमधाम, तारतम ज्ञान, जागनी, प्रेम, सेवा और रहनी जैसे विषयों को समझने का प्रयास किया गया है। आशा है कि यह दर्शनशास्त्र के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों, शोधार्थियों, विद्वानों तथा निजानन्द–प्रणामी परंपरा को समझने की जिज्ञासा रखने वाले पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

मैं श्री ५ पद्मावती पुरी धाम, पन्ना (मुक्तिपीठ) के धर्मगुरु एवं अध्यक्ष श्री तथा धर्मपीठ और जागनीपीठ के पूज्य आचार्यों के प्रति अपनी गहन श्रद्धा एवं कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। साथ ही धर्मवीर 'जागनी रत्न' सरकार श्री की प्रेरणा से संचालित श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान से जुड़े सभी अग्रणी सहयोगी सुंदरसाथ के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिनके मार्गदर्शन, प्रेरणा और सतत् आशीर्वाद से यह कार्य पूर्णता की ओर अग्रसर हुआ।

इस पुस्तक के विभिन्न भागों के लेखकों और सहयोगियों के प्रति भी मैं अपनी सच्ची कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके ज्ञान, परिश्रम और सहयोग से यह कृति समृद्ध हो सकी है।

मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों को निजानन्द दर्शन को केवल एक ऐतिहासिक सम्प्रदाय या दार्शनिक विचारधारा के रूप में जानने तक सीमित न रखकर उसके मूल जागनी-संदेश को समझने में सहायक होगी—वह संदेश जो मनुष्य को बाहरी नाम-रूप में रुकने के बजाय विवेकपूर्वक उनके पार जाकर अपने निजमूल की पहचान करने तथा उस पहचान को प्रेम, सेवा और सर्वमंगल के जीवन में अभिव्यक्त करने की प्रेरणा देता है।

डॉ. जयप्रकाश शाक्य
सेवानिवृत्त प्रोफेसर
दर्शनशास्त्र अध्ययनशाला एवं शोध केंद्र
महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

भूमिका

यह पुस्तक केवल एक ऐतिहासिक या धार्मिक अध्ययन नहीं, बल्कि एक समग्र बौद्धिक, सांस्कृतिक और आंतरिक यात्रा का आमंत्रण है। इसका उद्देश्य अध्ययनकर्ताओं को श्री निजानन्द - प्रणामी सम्प्रदाय के दर्शन, इतिहास, साहित्य और उसके समकालीन महत्व से इस प्रकार परिचित कराना है कि वे केवल जानकारी तक सीमित न रहें, बल्कि समझ, विश्लेषण, आत्म-चिंतन और चेतना-विकास की दिशा में भी अग्रसर हो सकें। यह ग्रंथ एकात्मता, समरसता और व्यापक मानवीय चेतना की भावना को विकसित करने का विनम्र प्रयास भी है।

इस पुस्तक के अध्ययन से पाठक न केवल श्री निजानन्द सम्प्रदाय का सुव्यवस्थित परिचय प्राप्त करेंगे, बल्कि सतगुरु श्री देवचन्द्रजी और महामति प्राणनाथ के जीवन-दर्शन को समझते हुए महाराजा छत्रसाल के व्यक्तित्व को स्वराज, धर्म, न्याय और आध्यात्मिक चेतना के अद्वितीय समन्वय के रूप में भी देख सकेंगे। साथ ही, श्रीमद् तारतम वाणी, श्री कुलजम स्वरूप तथा बीतक परंपरा के माध्यम से इस ज्ञानधारा की साहित्यिक, दार्शनिक और अनुभवात्मक परंपरा के विशेष योगदान का भी बोध प्राप्त होगा।

पुस्तक की संरचना इस प्रकार की गई है कि अध्ययनकर्ता बाह्य इतिहास से आंतरिक चेतना की ओर क्रमशः यात्रा कर सकें। इसमें भारतीय ज्ञान-परंपरा के व्यापक संदर्भ में निजानन्द दर्शन का स्थान, देवचन्द्रजी और महामति प्राणनाथ की आत्म-जागरण यात्रा, उनके समाज-दर्शन, राज्य-दर्शन तथा समरसता-आधारित दृष्टिकोण का समन्वित विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। महाराजा छत्रसाल के नेतृत्व को केवल राजनीतिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि चेतना और धर्माधारित सामाजिक पुनर्जागरण के रूप में समझने का प्रयास किया गया है।

तारतम वाणी, श्री कुलजम स्वरूप के प्रमुख ग्रंथों तथा बीतक साहित्य के परिचय के माध्यम से इस ज्ञानधारा की आध्यात्मिक और साहित्यिक परंपरा को सरल एवं सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, इस पुस्तक में सम्मिलित शोध-पत्र (Vice Chancellors' Conclave, 2025) शिक्षा, चेतना, सामाजिक समरसता और समकालीन वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में इस दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता को भी उजागर करते हैं।

यह पुस्तक केवल तथ्यों को जानने के लिए नहीं, बल्कि तीन स्तरों पर पढ़े जाने हेतु निर्मित की गई है—(1) **ज्ञान** : तथ्य, इतिहास और संदर्भ को समझना।, (2) **बोध** :

उनके आंतरिक अर्थ और परस्पर संबंधों को पहचानना।, और (3) **आत्म-चिंतन** : उन्हें अपने जीवन, समाज और चेतना से जोड़कर देखना।

यह दृष्टि व्यक्ति, समाज, आंतरिक अनुभव और बाह्य व्यवहार—सभी आयामों को समग्र परिप्रेक्ष्य में जोड़ती है और यह स्पष्ट करती है कि आध्यात्मिकता और सामाजिक जीवन परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं।

अध्यापकों से भी यह अपेक्षा है कि वे इस विषय को केवल सूचना-प्रदान तक सीमित न रखें, बल्कि संवाद, चिंतन, तुलनात्मक अध्ययन और अन्वेषण की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करें। यह विषय स्वभावतः अंतर्विषयी (interdisciplinary) है; अतः समूह-चर्चा, चिंतन-लेखन, प्रस्तुतीकरण और मूल ग्रंथों के अध्ययन जैसी विधियाँ इसे और अधिक जीवंत तथा अनुभवात्मक बना सकती हैं।

अंततः, इस अध्ययन का उद्देश्य किसी मत-विशेष को स्थापित करना नहीं, बल्कि एक व्यापक, समन्वित और चेतनात्मक दृष्टि का विकास करना है—ऐसी दृष्टि जिसमें अध्ययन धीरे-धीरे साधना में, और ज्ञान आत्म-जागृति में रूपांतरित हो सके। यह दर्शन हमें स्मरण कराता है कि ज्ञान का अंतिम लक्ष्य केवल जानना नहीं, बल्कि स्वयं को, समाज को और जीवन को सही दृष्टि से देखना है।

जिज्ञासु अध्ययनकर्ता यदि मूल वाणी, बीतक साहित्य और संबंधित ग्रंथों का गहन अध्ययन करें, तो वे अनुभव करेंगे कि आज के विखंडित, तनावपूर्ण और विभाजित समय में यह दर्शन व्यक्तिगत विकास, सामाजिक समरसता और चेतना-विस्तार का एक सशक्त मार्ग प्रस्तुत करता है। अब यह यात्रा आपके हाथ में है—प्रश्नों के साथ पढ़ें, खुले मन से विचार करें और अनुभव के माध्यम से सत्य को परखें।

धामवासी रेणुकाबेन मनुभाई पटेल की पावन स्मृति में स्थापित किए जा रहे "श्री महामति प्राणनाथ अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र" को सक्रिय एवं प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने हेतु पन्ना धाम, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, श्री निजानंद आश्रम (वडोदरा) तथा श्री निजानंद फाउंडेशन, यू.एस.ए. की ओर से विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए आवश्यक अध्ययन-सामग्री, संदर्भ-संसाधन एवं अन्य शैक्षिक सहयोग उपलब्ध कराए जाएँगे। यह पुस्तक उसी श्रृंखला में एक विनम्र प्रयास है।

मुझे विश्वास है कि महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय द्वारा आरंभ किया गया यह विशिष्ट शैक्षिक प्रयास और अध्ययन-मॉडल भविष्य में देश-विदेश के अन्य विश्वविद्यालयों, अध्ययनकर्ताओं और शोधार्थियों के लिए भी प्रेरणास्रोत तथा उपयोगी सिद्ध होगा। इस महत्त्वपूर्ण पहल के लिए मैं विश्वविद्यालय के कुलगुरु प्रो. राकेश

कुशवाह, विश्वविद्यालय प्रशासन, प्रबंधन तथा सभी सहयोगी सदस्यों के प्रति हृदय से आभार एवं धन्यवाद व्यक्त करता हूँ।

इस ग्रंथ को वर्तमान स्वरूप प्रदान करने में हमने मूल ग्रंथों के साथ-साथ अब तक प्रकाशित अनेक पुस्तकों, शोध-लेखों तथा विभिन्न विद्वानों और महानुभावों के विचार-विमर्श, मार्गदर्शन एवं सहयोग का सहारा लिया है। हम उन सभी स्रोतों, पूर्व लेखकों, आचार्यों, शोधकर्ताओं और सहयोगी महानुभावों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हैं तथा उनका विनम्र धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

विशेष रूप से डॉ. जयप्रकाश शाक्य, श्री मनुभाई पटेल, श्री शुशान्त महात्मा एवं श्री नरेंद्र पटेल के प्रति मैं अपना हार्दिक साधुवाद एवं आभार प्रकट करता हूँ। इन महानुभावों ने इस सामग्री को पाठ्यक्रम-योग्य, सुव्यवस्थित, शोधपरक तथा विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी और सुगम बनाने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उनके सहयोग, मार्गदर्शन और समर्पण के बिना इस ग्रंथ का वर्तमान स्वरूप संभव न हो पाता।

सदा आनंद मंगल में रहिए।

सप्रेम प्रणाम जी

श्री महेशभाई अ. पटेल

अध्यक्ष

श्री 108 प्राणनाथ जी मंदिर ट्रस्ट

श्री 5 पद्मावती पुरी, धाम पन्ना, म.प्र.

विषय-सूची

शुभकामना संदेश
आत्मनिवेदन
भूमिका

प्रथम भाग

अध्याय: 1 श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन और भारतीय धर्म-परंपरा
अध्याय: 2 अवतार–परंपरा और धर्म-स्थापना की अखंड धारा: देवापि–मरू से देवचन्द्र मिहिरराज तक
अध्याय: 3 श्री निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचन्द्रजी का जीवन-दर्शन
अध्याय: 4 महामति प्राणनाथ: जीवन आत्म-जागरण यात्रा
अध्याय: 5 महामति प्राणनाथ: शिक्षा, प्रशासन और संवाद-आधारित राज्यदर्शन
अध्याय: 6 महाराजा छत्रसाल बुंदेला का जीवन-दर्शन: स्वराज, संघर्ष और आध्यात्मिक मूल्य
अध्याय: 7 महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी: संक्षिप्त परिचय
अध्याय: 8 बीतक परंपरा का संक्षिप्त परिचय

द्वितीय भाग

अध्याय: 9 परमात्मा की अवधारणा: क्षर, अक्षर, अक्षरातीत स्वलीलाद्वैत
अध्याय: 10 आत्मा की अवधारणा: चेतना की त्रिस्तरीय संरचना और गतियाँ
अध्याय: 11 माया की अवधारणा: आध्यात्मिक यात्रा का केन्द्रीय रहस्य
अध्याय: 12 परमधाम की अवधारणा
अध्याय: 13 मोक्ष और मुक्ति का समग्र स्वरूप और मोक्ष प्राप्ति के साधन

तृतीय भाग

अध्याय: 14 निजानंद - प्रणामी ज्ञान धारा की नैतिक अवधारणाएँ
अध्याय: 15 महामति प्राणनाथ का समाजदर्शन: समरसता, चेतना और सार्वभौमिक मानवता की ओर
अध्याय: 16 "सर्वधर्म समन्वय" से "सर्वजीवन समन्वय" की ओर

चतुर्थ भाग

अध्याय: 17	निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक अवधारणाएँ: भक्ति, सेवा, जागनी और तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म समन्वय का समग्र विवेचन
अध्याय: 18	सुन्दरसाथ की अवधारणा: ब्रह्मसृष्टि जीवन, प्रेम, जागृति और धामभाव की संस्कृति
पंचम भाग:	MCBU द्वारा आयोजित कुलपतियों के सम्मेलन (Vice Chancellors' Conclave- अगस्त 2025) में प्रस्तुत शोध-पत्र
शोध पत्र 1:	शिक्षा का स्वरूप: जीवनपरक समन्वित दृष्टिकोण
शोध पत्र 2:	खोज क्या है? श्रीमद् तारतम वाणी की खोज:
शोध पत्र 3:	डिजिटल युग में मन की सवारी के लिए प्रभावी उपाय -तारतम ज्ञान, भौतिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान के आलोकमें
शोध पत्र 4:	प्रकृति और परम:महामति प्राणनाथ की तारतम दृष्टि में समग्र चेतना की भूमिका
शोध पत्र 5:	विभाजन से एकत्व की ओर: नस्लवाद, मानव चेतना का विकास और समग्रता की क्रांति
शोध पत्र 6:	कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — राष्ट्र जागरण के त्रिदीप: श्री निजानंद - प्रणामी दर्शन एवं इतिहास के समग्र दृष्टिकोण से महामति प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव
शोध पत्र 7:	प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव: *आध्यात्म, समाज और दर्शन का समन्वित ताना-बाना*

लेखक-परिचय एवं ग्रंथ में उनका योगदान

1. **श्री मनुभाई पटेल**, संस्थापक: रेणुका बेन मनु भाई पटेल श्री महामति प्राणनाथ अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय छतरपुर मध्य प्रदेश; मल्टीमीडिया प्रोड्यूसर, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, एवं अमिधारा ट्रस्ट, साबरकांठा, गुजरात (भाग 1, एवं भाग 5 में शोध पत्र 3, 6)
2. **नरेंद्र आर. पटेल**, एम.एस., सी.एस.पी. (सेवानिवृत्त): लेखक, संपादक, सहयोगी शोधकर्ता एवं स्क्रिप्ट लेखक, श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया प्रोडक्शन्स, पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना एवं निजानंद फाउंडेशन इंक., यू.एस.ए. सदस्य, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय सुरक्षा समन्वयक, रटगर्स विश्वविद्यालय, यू.एस.ए. Founder and Guide: "I Am Sundersath" kids & youth program (भाग: 1, 2, 3, 4 एवं भाग 5 में सहयोग)
3. **डॉ जयप्रकाश शाक्य**, सेवा निवृत प्रोफेसर दर्शनशास्त्र अध्ययन शाला एवं शोध केंद्र महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड, विश्वविद्यालय छतरपुर मध्य प्रदेश (भाग: 2)
4. **डॉ. नेहा शाक्य**, अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र विभाग, शासकीय मान कुंवर बाई महिला कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश) (भाग 3)
5. **डॉ. मौसमी सोलंकी**, पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च फेलो, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, दर्शनशास्त्र अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश) (भाग 3)
6. **डॉ. ज्योति चौधरी**, अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र विभाग, अटल बिहारी वाजपेई कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश) (भाग 4)
7. **श्री रमणभाई के. पटेल**, एम.बी.ए., यू.एस.ए. अध्यक्ष, श्री निजानंद जागनी अभियान, श्री निजानंद आश्रम, वडोदरा; ट्रस्टी, श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी, उ.प्र. पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना, सलाहकार, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान (शोध पत्र 1)
8. **श्री रमेशभाई वी. पटेल**, बी.ए., बी.एड. (संस्कृत), सेवानिवृत्त सहायक शिक्षक, सेंट ज़ेवियर्स हाई स्कूल, भीलोडा, गुजरात (शोध पत्र 2)
9. **श्री महेशभाई अ. पटेल**, अध्यक्ष, श्री 108 प्राणनाथ जी मंदिर ट्रस्ट, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना, म. प्र. (शोध पत्र 4)
10. **श्रीमति शारदा पटेल**, हिम्मतनगर, B. Sc. M. Ed, निवृत आचार्य, माध्यमिक स्कूल, विश्व मंगलम्, अनेरा, गुजरात (शोध पत्र 5)

प्रथम भाग

इस भाग के आठ अध्यायों में श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन की ऐतिहासिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि का परिचय दिया गया है। इसमें सतगुरु श्री देवचन्द्रजी, महामति प्राणनाथ और महाराजा छत्रसाल के जीवन-दर्शन, आत्म-जागरण, समाज-दृष्टि और राज्यदर्शन का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है। साथ ही, श्रीमद् तारतम वाणी श्री कुलजम स्वरूप तथा बीतक परंपरा के स्वरूप, महत्व और साहित्यिक योगदान का परिचय भी सम्मिलित है।

अध्याय

अध्याय: 1	*श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन और भारतीय धर्म-परंपरा*
अध्याय: 2	*अवतार–परंपरा और धर्म-स्थापना की अखंड धारा: देवापि–मरू से देवचन्द्र मिहिरराज तक*
अध्याय: 3	*श्री निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचन्द्रजी का जीवन-दर्शन*
अध्याय: 4	*महामति प्राणनाथ: जीवन आत्म-जागरण यात्रा*
अध्याय: 5	*महामति प्राणनाथ: शिक्षा, प्रशासन और संवाद-आधारित राज्यदर्शन*
अध्याय: 6	*महाराजा छत्रसाल बुंदेला का जीवन-दर्शन: स्वराज, संघर्ष और आध्यात्मिक मूल्य*
अध्याय: 7	*महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी: संक्षिप्त परिचय*
अध्याय: 8	*बीतक परंपरा का संक्षिप्त परिचय*

लेखक

श्री मनुभाई पटेल, संस्थापक: रेणुका बेन मनु भाई पटेल श्री महामति प्राणनाथ अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय छतरपुर मध्य प्रदेश; मल्टीमीडिया प्रोड्यूसर, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, एवं अमिधारा ट्रस्ट, साबरकांठा, गुजरात

एवं

नरेंद्र आर. पटेल, एम.एस., सी.एस.पी. (सेवानिवृत्त): लेखक, संपादक, सहयोगी शोधकर्ता एवं स्क्रिप्ट लेखक, श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया प्रोडक्शन्स, पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना एवं निजानंद फाउंडेशन इंक., यू.एस.ए. सदस्य, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय सुरक्षा समन्वयक, रटगर्स विश्वविद्यालय, यू.एस.ए.

भाग 1: अध्याय 1

श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन और भारतीय धर्म-परंपरा

1.1 भारतभूमि: चेतना, ज्ञान और जीवन-दृष्टि की भूमि

भारतभूमि केवल एक भौगोलिक भाग नहीं रही है, बल्कि युगों से यह ज्ञान, करुणा और चेतना के विकास की एक जीवंत प्रयोगशाला के रूप में विकसित होती रही है। यहाँ इतिहास केवल घटनाओं का क्रम नहीं, बल्कि मानव चेतना के क्रमिक उत्कर्ष की कथा है। इसी भूमि पर वेदों ने मानव बुद्धि को आध्यात्मिक प्रकाश दिया, उपनिषदों ने आत्मबोध की गहराई में उतरने का साहस सिखाया, और दर्शन, योग, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र तथा गणित जैसी विद्याओं ने जीवन को संतुलन, विवेक और समन्वय का मार्ग दिखाया। भारत की पहचान उसके भूभाग से अधिक उसकी उस चेतना से निर्मित हुई है, जिसने मनुष्य को केवल जीवित रहने का नहीं, बल्कि सार्थक रूप से जीने का बोध कराया।

1.2 धर्म की भारतीय अवधारणा: आत्म-जागरण और सामाजिक उत्तरदायित्व

इस चेतनात्मक परंपरा की एक विशेषता यह रही है कि यहाँ धर्म को कभी केवल आस्था या कर्मकांड तक सीमित नहीं किया गया। बुद्ध और महावीर जैसे महापुरुषों ने करुणा, अहिंसा और आत्म-जागरण को जीवन का केंद्र बनाया। मध्यकाल में यही परंपरा महामति श्री प्राणनाथ जी के चिंतन में और अधिक समन्वित तथा व्यापक रूप में प्रकट हुई। उनके लिए धर्म कोई संकीर्ण पंथ नहीं था, बल्कि मानवता का मूल स्वभाव—सत्य, प्रेम, एकता और आत्मज्ञान—था। उनके विचारों में आध्यात्मिक साधना और सामाजिक उत्तरदायित्व परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। इसी कारण उनका दर्शन व्यक्ति की आंतरिक चेतना के साथ-साथ समाज के नैतिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की दिशा भी देता है।

1.3 महामति प्राणनाथ का समन्वयकारी दर्शन

समकालीन संदर्भ में यह दृष्टि और अधिक प्रासंगिक हो जाती है। आज धर्म-प्रचारकों और धार्मिक संस्थाओं की संख्या बढ़ने के बावजूद समाज में नैतिक दृढ़ता, चरित्रबल और सत्यनिष्ठ नेतृत्व का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। धर्म अनेक स्थानों पर सत्ता, पहचान और कर्मकांड का उपकरण बन गया है। ऐसे समय में उन परंपराओं की ओर लौटना आवश्यक हो जाता है, जिन्होंने धर्म को चेतना-परिवर्तन का माध्यम माना। श्री

निजानन्द - प्रणामी परंपरा इसी अर्थ में विशिष्ट है, क्योंकि यह धर्म को भय, विभाजन और बाह्य आडंबर से मुक्त कर मानवता, विवेक और समरसता से जोड़ती है।

1.4 भारतीय ग्रंथ-परंपरा और भारतभूमि की चेतनात्मक महिमा

भारतीय ग्रंथ-परंपरा में भारतभूमि की इस चेतनात्मक विशेषता का बार-बार उल्लेख मिलता है। स्कन्द पुराण इसे कर्म और मोक्ष की पुण्यभूमि कहता है, महाभारत इसे तीनों लोकों में श्रेष्ठ मानता है, विष्णु और पद्म पुराण यहाँ के धर्म और तप को अद्वितीय बताते हैं, और भागवत पुराण में यह भाव प्रकट होता है कि देवता भी भारत में जन्म लेने की आकांक्षा रखते हैं। महामति श्री प्राणनाथ जी ने भी लगभग साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व भारत को पृथ्वी का "सबसे उत्तम खंड" कहा और इसे आत्मिक शुद्धि तथा ब्रह्मज्ञान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भूमि के रूप में देखा।

1.5 तारतम ज्ञान और भारतभूमि की आध्यात्मिक भूमिका

महामति प्राणनाथ जी का यह दृढ़ विश्वास था कि करुणा, विवेक और आध्यात्मिक चेतना से युक्त यह भूमि मानव बुद्धि को निष्कलंक बनाने में सक्षम है। इसी कारण उन्होंने भारत को अपनी आध्यात्मिक प्रयोगभूमि बनाया और यहीं तारतम ज्ञान का अवतरण तथा विस्तार किया। तारतम ज्ञान का उद्देश्य मनुष्य को संसार के भ्रम से जगाकर उसे शुद्ध, प्रेममयी और अखण्ड चेतना में प्रतिष्ठित करना है। तारतम वाणी में भारतभूमि को "निध निरमल" की भूमि कहा गया है—ऐसी भूमि जहाँ परब्रह्म की ब्रह्म-लीला मानवता के कल्याण हेतु प्रकट होती है।

1.6 भारतीय ज्ञान-परंपरा और आधुनिक विद्वानों की दृष्टि

यह उल्लेखनीय है कि तारतम वाणी के अवतरण के लगभग दो शताब्दी बाद, उन्नीसवीं शताब्दी के जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने वेदों और उपनिषदों के गहन अध्ययन के पश्चात यह स्वीकार किया कि यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो वह भारत है। एनी बेसेंट और ब्लावेत्स्की जैसे पश्चिमी विचारकों ने भी भारतीय दर्शन को मानव चेतना की सर्वोच्च उपलब्धि माना। इस पृष्ठभूमि में तारतम वाणी को भारतीय ज्ञान-परंपरा के शिखर पर स्थित एक समन्वयकारी दृष्टि एवं परम सत्य की प्रकाशना के रूप में देखा जा सकता है, जो विभिन्न धर्मों और दर्शनों के सत्यांशों को एक व्यापक चेतनात्मक ढाँचे में संयोजित करती है।

1.7 सत्रहवीं शताब्दी का संकट और महामति प्राणनाथ का अवतरण

सत्रहवीं शताब्दी का भारत ऐतिहासिक और चेतनात्मक संकट के दौर से गुजर रहा था। राजनीतिक रूप से मुग़ल साम्राज्य का दमन, सामाजिक स्तर पर जाति-पंथीय विभाजन, और धार्मिक क्षेत्र में कर्मकांड तथा आडंबर ने समाज की आंतरिक एकता को कमजोर कर दिया था। विदेशी शक्तियाँ भारत में अपनी जड़ें जमाने की तैयारी कर रही थीं

और जन-मानस निराशा, भय और असंतुलन से ग्रस्त था। ऐसे समय में मानवता को एक ऐसे दृष्टा की आवश्यकता थी, जो संकीर्ण धार्मिक सीमाओं से ऊपर उठकर प्रेम, एकता और चेतना का मार्ग प्रशस्त कर सके।

इसी ऐतिहासिक क्षण में महामति प्राणनाथ का अवतरण हुआ। उनका जीवन और कार्य इस सत्य का साक्ष्य है कि आध्यात्मिक जागरण केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह समाज और संस्कृति के पुनर्निर्माण की शक्ति बन सकता है। उनके लिए साधना और सामाजिक उत्तरदायित्व अलग-अलग मार्ग नहीं थे। उन्होंने वेद, उपनिषद, पुराण, भागवत, गीता और क़ुरान सहित विविध धार्मिक परंपराओं के सार को आत्मसात कर एक ऐसी दृष्टि प्रस्तुत की, जो मतभेदों के पार सत्य की साझा जड़ को पहचानती है।"वसुधैव कुटुम्बकम्" और "खसम एक सबन का" उनके लिए केवल दार्शनिक वाक्य नहीं, बल्कि जीवन जीने की पद्धति थे।

1.8 धर्मों की भीतरी एकता और समकालीन प्रासंगिकता

महामति प्राणनाथ ने स्पष्ट किया कि नाम, रूप और पंथ भले ही भिन्न हों, पर परम सत्य एक ही है। जैसे विभिन्न रंगों की गायों का दूध एक-सा होता है और सभी मनुष्यों का रक्त लाल होता है, वैसे ही सभी धर्मों का सार एक ही परमात्मा की अनुभूति है। तारतम ज्ञान इन विभिन्न अनुभूतियों को जोड़ने वाला समन्वय-सूत्र है, जो आंशिक दृष्टियों को संतुलित और क्रमबद्ध समझ प्रदान कर परम सत्य की प्रकाशना करता है।

निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचन्द्र जी को प्राप्त अक्षरातीत परब्रह्म के बीज-रूप ज्ञान को महामति प्राणनाथ ने श्री कुलजम स्वरूप—तारतम वाणी—के रूप में विकसित किया। यह ज्ञान अपराविद्या और पराविद्या के बीच संतुलन स्थापित करता है और साधक को उसकी आध्यात्मिक अवस्था के साथ-साथ सामाजिक भूमिका का भी बोध कराता है। उनके अनुसार मनुष्य-जन्म चेतना के उत्कर्ष का दुर्लभ अवसर है। साधना देह-निषेध नहीं, बल्कि देह के भीतर सत्य, प्रेम और करुणा के अवतरण की प्रक्रिया है। कर्तव्य, त्याग और समर्पण उनके जीवन में केवल उपदेश नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष आचरण थे।

औरंगज़ेब के अत्याचारपूर्ण शासनकाल में, जब अधिकांश राजा भय या राजनीतिक स्वार्थ के कारण मौन रहे, उस संकटपूर्ण समय में महामति श्री प्राणनाथ जी ने धर्म और स्वाभिमान की रक्षा के लिए चेतना-जागरण का संदेश दिया। उन के कई सेवाभावी सुन्दरसाथ अनुयायी सहित बुंदेलखंड के वीर महाराजा छत्रसाल ने इस संदेश को अपने जीवन में उतारते हुए अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया। श्री प्राणनाथ जी के मार्गदर्शन से उन्होंने धर्म और स्वतंत्रता की रक्षा की। पन्ना में श्री प्राणनाथ जी और महाराजा छत्रसाल का दिव्य मिलन इस जागरण-यात्रा का शिखर बना, जहाँ राजतिलक, धर्म-ध्वज

की स्थापना और पद्मावती पुरी धाम की नींव रखी गई। इस प्रकार पन्ना तारतम ज्ञान और आध्यात्मिक जागरण की जीवंत प्रयोगभूमि बन गया। यह प्रसंग इस सत्य को उद्घाटित करता है कि जब आध्यात्मिक धर्माधिकार राज्य-शक्ति से जुड़ता है, तब अन्याय और अधर्म टिक नहीं पाते।

आज के वैश्विक तनाव, पहचान-संकट और वैचारिक ध्रुवीकरण के युग में महामति प्राणनाथ का यह संदेश अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। वे सिखाते हैं कि विविधताओं का सम्मान, विरोध के स्थान पर समन्वय और ज्ञान को व्यक्तिगत उपलब्धि से आगे बढ़ाकर समाज और समस्त मानवता के कल्याण से जोड़ना ही जाग्रत जीवन की सच्ची पहचान है। लगभग चार सौ वर्ष पूर्व प्रवाहित यह चेतना-धारा आज भी यह स्मरण कराती है कि जागरण से जीवन का आरंभ होता है, कर्तव्य से समाज सुरक्षित रहता है, और समर्पण से मनुष्य अपने अस्तित्व के सर्वोच्च उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है।

.....

भाग 1: अध्याय 2

अवतार–परंपरा और धर्म-स्थापना की अखंड धारा: देवापि–मरू से देवचन्द्र–मिहिरराज तक

2.1 भारतीय इतिहास-दृष्टि: चेतना का प्रवाह, घटनाओं का नहीं

भारतीय परंपरा में इतिहास को केवल घटनाओं की कालक्रमिक सूची के रूप में नहीं देखा गया है। यहाँ इतिहास मूलतः चेतना का इतिहास है—धर्म, सत्य और करुणा के सतत प्रवाह की कथा। युग-परिवर्तन का अर्थ सत्ता या शासन-व्यवस्था का बदलना नहीं, बल्कि मानव चेतना में संतुलन, विवेक और धर्मबोध का पुनः जागरण है। इसी कारण भारतीय दृष्टि में धर्म-स्थापना को बाहरी व्यवस्था नहीं, बल्कि आंतरिक जागरण की प्रक्रिया माना गया है। जब समाज की चेतना विकृत होने लगती है, तब अवतार, महापुरुष और योगी उस विकृति को संतुलित करने के लिए प्रकट होते हैं।

2.2 श्रीमद्भागवत का संकेत: देवापि और मरू

श्रीमद्भागवत में वर्णित देवापि और मरू का प्रसंग इसी चेतनात्मक इतिहास का सूक्ष्म संकेत देता है। ये दोनों महायोगी—एक चंद्रवंशीय और दूसरे सूर्यवंशीय—हिमालय के पवित्र क्षेत्र में योगबल से समाधिस्थ हैं। वे केवल तपस्वी नहीं, बल्कि युगबोध से संपन्न दृष्टा हैं। उन्हें यह ज्ञान है कि कलियुग के उत्तरार्ध में धर्म की पुनर्स्थापना हेतु दिव्य चेतना का अवतरण होगा। यह प्रसंग भविष्यवाणी से अधिक चेतना की तैयारी का द्योतक है—एक ऐसे समय की सूचना, जब सत्य को पुनः मानव जीवन के केंद्र में स्थापित करना आवश्यक हो जाएगा।

2.3 धर्म-लीला में सहभागिता: महायोगियों की भूमिका

भारतीय दृष्टि में महायोगी केवल साक्षी नहीं होते; वे धर्म-लीला के सक्रिय सहभागी होते हैं। इसलिए देवापि और मरू केवल आने वाले अवतारों को देखने की इच्छा नहीं रखते, बल्कि उस दिव्य कार्य में स्वयं सहभागी बनने की कामना करते हैं। यह भाव स्पष्ट करता है कि धर्म-स्थापना कोई एकल घटना नहीं, बल्कि युगों तक चलने वाली सामूहिक चेतनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें दिव्य कृपा और मानवीय साधना परस्पर मिलकर कार्य करती हैं।

2.4 बीतक साहित्य और अवतार-परंपरा की निरंतरता

बीतक साहित्य और निजानन्द परंपरा में यह उद्घाटित होता है कि वही देवापि और मरू कालांतर में निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचन्द्र जी और महामति श्री मिहिरराज (प्राणनाथ) के रूप में प्रकट हुए। यह दृष्टि अवतार और महापुरुष के बीच किसी कठोर विभाजन को स्वीकार नहीं करती। यहाँ दिव्यता समय-समय पर मानव रूप में विभिन्न

स्तरों पर अभिव्यक्त होती है। अवतार कोई आकस्मिक चमत्कार नहीं, बल्कि चेतना के क्रमिक अवतरण का परिणाम है।

2.5 निजानन्द सतगुरु श्री देवचन्द्र जी: बीज-रूप अवतरण

निजानन्द सतगुरु श्री देवचन्द्र जी का जीवन इस अवतार-परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। उन्हें अक्षरातीत परब्रह्म के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए और उनके माध्यम से तारतम ब्रह्मज्ञान का बीज मानवता के लिए प्रकट हुआ। यह ज्ञान बीज-रूप में था—गूढ़, संकेतात्मक और भविष्य की पूर्ण अभिव्यक्ति की प्रतीक्षा करता हुआ। उनका कार्य उस भूमि की तैयारी जैसा था, जिसमें चेतना का बीज बोया गया, जिसे आगे विकसित होना था।

2.6 महामति प्राणनाथ: बीज का पूर्ण विकास

जिन्हें संसार आज महामति प्राणनाथ के नाम से जानता है, उन का जन्मनाम श्री मिहिरराज ठाकुर था। स्वयं की प्रेमपूर्ण सेवा समर्पितता, सतगुरु कृपा के फल स्वरूप परब्रह्म का आवेश स्वरूप उन के हृदय धाम में बिराजमान होने पर बीज रूप तारतम ज्ञान का पूर्ण विकास उन के द्वारा संभव हुआ। उनके व्यक्तित्व में दर्शन, करुणा, विवेक, समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना एक साथ प्रकट होते हैं। उन्होंने तारतम ज्ञान को केवल आंतरिक अनुभूति तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे वाणी, संवाद और जीवन-आचरण के माध्यम से समाज में प्रतिष्ठित किया। श्री कुलजम स्वरूप—तारतम वाणी—इसी चेतनात्मक अवतरण का साहित्यिक और दार्शनिक रूप है।

2.7 धर्म-स्थापना का तात्पर्य: सत्ता नहीं, चेतना

महामति प्राणनाथ की दृष्टि में धर्म-स्थापना का अर्थ किसी पंथ की विजय नहीं था। उनके लिए धर्म का तात्पर्य था—मानव बुद्धि को भ्रम से मुक्त करना, आत्मा को उसके मूल सत्य से जोड़ना और समाज को समरसता की दिशा देना। उन्होंने स्पष्ट किया कि जब धर्म सत्ता, भय या पहचान का साधन बन जाता है, तब उसका पतन आरंभ हो जाता है। धर्म तभी जीवित रहता है, जब वह चेतना को जाग्रत करे और मनुष्य को अधिक मानवीय बनाए।

2.8 निष्कर्ष: अवतार-परंपरा एक सतत चेतना-यात्रा

इस प्रकार देवापि–मरू से देवचन्द्र–मिहिरराज तक की परंपरा यह स्पष्ट करती है कि धर्म-स्थापना कोई एक बार घटित होने वाली ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि चेतना की सतत यात्रा है। इस यात्रा में योग, करुणा, विवेक और लोक-मंगल युगों तक प्रवाहित होते रहते हैं। श्री निजानन्द - प्रणामी परंपरा इसी अखंड धारा का प्रतिनिधित्व करती है—जहाँ अवतार, महापुरुष और साधक मिलकर धर्म को समाज में जीवंत रखते हैं। यहाँ धर्म नियमों का संग्रह नहीं, बल्कि जाग्रत जीवन की कला है, जो आज भी मानवता को दिशा देने में सक्षम है।

भाग – 1 | अध्याय – 3
श्री निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचन्द्रजी का जीवन-दर्शन

3.1 जन्म, बाल्यकाल और परब्रह्म-खोज की प्रारम्भिक साधना

श्री निजानन्द स्वामी धणी श्री देवचन्द्रजी का जन्म 1581 ई. (वि. सं. 1638) में मारवाड़ के उमरकोट गाँव में आश्विन शुक्ल चतुर्दशी के दिन एक कायस्थ कुल में हुआ। माता कुंवरबाई और पिता मतु मेहता धर्मनिष्ठ वैष्णव थे; पिता ऊँट-घोड़ों के समृद्ध व्यापारी थे और देवचन्द्रजी उनकी एकमात्र संतान थे। बाल्यकाल से ही वे अंतर्मुखी, चिंतनशील, जिज्ञासु और दृढ़संकल्पी थे—उनकी रुचि सामान्य बालकों से भिन्न थी, जिसे परिवार और मित्र भी अनुभव करते थे। परंपरा के अनुसार उनके भीतर दिव्य परमधाम की आह्लादिनी शक्ति आनंद स्वरूपा श्री श्यामाजी की आत्म-चेतना विद्यमान थी।

परब्रह्म-दर्शन की तीव्र अभिलाषा से वे उमरकोट के पिंगल श्याम मंदिर में नियमित रूप से प्रातः 3 से 6 बजे तक दण्डवत परिक्रमा करते, सत्संग-भजन में लीन रहते, प्रसाद ग्रहण को आवश्यक मानते और शांत भाव से परमात्मा का चिंतन करते। वे निर्भय होकर एकांत स्थलों तक चले जाते और अपनी माता से ऐसे गूढ़ प्रश्न पूछते जिनका उत्तर सहज नहीं होता। फिर भी चार वर्षों की इस साधना के बाद भी उन्हें अपेक्षित प्रत्यक्ष आत्मिक तृप्ति नहीं मिली।

3.2 ब्रह्म-जिज्ञासा का उदय और सद्गुरु–सत्यज्ञान की खोज

1593 ई. में मात्र 11 वर्ष की आयु से उनके भीतर ब्रह्म-जिज्ञासा प्रखर हो उठी—“मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा भरथार/परमेश्वर कौन और कहाँ है?” वे संतों-विद्वानों से निरंतर पूछते रहे, पर अधिकांश उत्तर उन्हें संतुष्ट न कर सके। उन्हें भीतर से यह स्पष्ट होने लगा कि जीवन-मार्ग को आलोकित करने के लिए सच्चे सतगुरु और सत्य-ज्ञान की आवश्यकता है।

एक बार पिता उन्हें भुज ले गए ताकि वे व्यापार सीखें, पर देवचन्द्रजी ने स्पष्ट कह दिया कि उनका मन व्यापार में नहीं, मंदिर-दर्शन, साधु-संग और आध्यात्मिक संवाद में रमता है। तब पिता ने उन्हें अपने गुरु श्री हरिदासजी (राधावल्लभी परंपरा) के सान्निध्य में छोड़ दिया और स्वयं व्यापार हेतु चले गए। भुज में भी उनकी खोज जारी रही—सृष्टि का रचयिता, उसका धाम, जीवन का प्रयोजन, जन्म-पूर्व स्थिति और मृत्यु के बाद की गति जैसे प्रश्नों के उत्तर खोजते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि केवल भावनात्मक भक्ति पर्याप्त नहीं; भक्ति तभी

स्थिर और फलदायी है जब वह विवेक और सत्य-ज्ञान से आलोकित हो। इसलिए उन्होंने सद्गुरु और सत्य-ज्ञान की खोज को अपना दृढ़ संकल्प बना लिया।

3.3 गृह-त्याग: प्रथम दर्शन

सन् 1598 ई. में मात्र सोलह वर्ष की आयु में श्री देवचन्द्रजी ने दृढ़ संकल्प के साथ गृह-त्याग किया और लगभग 250 किलोमीटर की वीरान रेगिस्तानी यात्रा पैदल तय कर उमरकोट से भुज पहुँचे। इस कठिन मार्ग में उन्हें एक पठान सिपाही के रूप में प्रथम दिव्य दर्शन प्राप्त हुआ, जिसने उनकी सहायता और मार्गदर्शन किया। उस क्षण वे उस स्वरूप को पहचान न सके; पर जब वह स्वरूप ओझल हुआ, तब यह बोध दृढ़ हुआ कि परमात्मा उनसे पल भर भी दूर नहीं हैं।

3.4 ब्रह्मज्ञान की खोज: विविध साधना-पथों का अनुशीलन

कच्छ पहुँचकर श्री देवचन्द्रजी ने ब्रह्मज्ञान की खोज का क्रम आरम्भ किया। उन्होंने विभिन्न साधना-पथों का गहन अनुशीलन किया—मूर्ति-पूजा और भक्ति, हठयोग व दत्तात्रेय परंपरा का संन्यास-योग, अष्टांगयोग की साधना, गुरु हरिदास के सान्निध्य में पुष्टि-मार्गीय भक्ति (1600–1606), तथा जामनगर में चौदह वर्षों तक श्रीमद्भागवत कथा का निरंतर श्रवण (1607–1621)। अंततः सन् 1621 में उन्हें तारतम ज्ञान की प्राप्ति हुई, जिससे शुद्ध प्रेम—निजानंद योग—की सिद्धि हुई।

उनकी आध्यात्मिक यात्रा किसी एक संप्रदाय तक सीमित नहीं थी; वह जिज्ञासा-प्रधान, क्रमिक और समावेशी थी। वे प्रत्येक परंपरा को चेतना-विकास की आवश्यक सीढ़ी के रूप में देखते रहे। भारतीय और अब्राहमिक परंपराओं के अनुभव-संपन्न अध्ययन से उन्हें यह बोध हुआ कि सत्य के अनेक आयाम होते हैं और हर परंपरा किसी न किसी आयाम को प्रकाशित करती है। इसी समेकित दृष्टि के परिपाक में तारतम ज्ञान प्रकट हुआ।

3.5 मूर्ति-पूजा से ब्रह्मज्ञान की ओर

अपनी साधना के आरम्भ में श्री देवचन्द्रजी ने मूर्ति-पूजा को प्रथम सोपान माना। उनके लिए यह चित्त-शुद्धि, अहं-संयमन और पवित्रता के संस्कार का माध्यम थी, न कि अंतिम लक्ष्य। उनकी मूल आकांक्षा आत्मा–परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का प्रत्यक्ष ज्ञान थी; ज्ञान के बिना मुक्ति उन्हें स्वीकार्य नहीं थी।

इसी बोध से वे बाह्य कर्मकाण्डों से आगे बढ़कर शुद्ध ब्रह्मज्ञान की खोज में प्रवृत्त हुए। वे मूर्ति को ईश्वर की चेतन उपस्थिति का साकार माध्यम मानते थे और पिंगल श्याम में दिव्य प्रेरणा अनुभव करते थे, पर मूर्ति को अंतिम सत्य नहीं ठहराया। मंदिरों में दिखावटी भक्ति और आडम्बर देखकर उन्होंने जाना कि आत्मकल्याण का मार्ग प्रेम, भाव

और अंतःसमर्पण से खुलता है। अंततः उन्होंने रूप-काल से परे परमेश्वर के निरपेक्ष साक्षात्कार को ही जीवन का परम लक्ष्य माना।

3.6 सन्यासी परंपराएँ और प्रत्यक्ष ब्रह्मबोध

इसके पश्चात् श्री देवचन्द्रजी सन्यासियों के सान्निध्य में पहुँचे और ब्रह्मज्ञान व ब्रह्मसाक्षात्कार की जिज्ञासा प्रकट की। उन्होंने दीक्षा लेकर नाम-स्मरण, ध्यान और दत्तात्रेय परंपरा की साधना की, पर उनके मूल प्रश्नों का समाधान नहीं हुआ और न ही प्रत्यक्ष ब्रह्मसाक्षात्कार प्राप्त हुआ।

इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि केवल दीक्षा, विधि या प्रतीकात्मक ज्ञान से साधना पूर्ण नहीं होती; प्रत्यक्ष ब्रह्मबोध अनिवार्य है। योग-साधना से उन्हें हृदयस्थ ज्योति का अनुभव अवश्य हुआ, किंतु "मैं कौन हूँ?" और "परम सत्य कौन है?" जैसे प्रश्न बने रहे। निराकार चेतना से साकार सृष्टि की उत्पत्ति, ब्रह्म–माया संबंध और सत्य–असत्य के द्वंद्व पर प्रचलित व्याख्याएँ भी उन्हें संतुष्ट न कर सकीं। यही असंतोष उन्हें और गहन सत्य-खोज की ओर प्रेरित करता गया।

3.7 अष्टांग योग से आगे की खोज

श्री देवचन्द्रजी ने महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग के सभी अंगों का अभ्यास कर कैवल्य-मुक्ति, ज्योति-दर्शन और आत्मसाक्षात्कार का अनुभव किया। इससे यह स्पष्ट हुआ कि इस मार्ग से जीव–ब्रह्म ऐक्य और बंधन-निवृत्ति संभव है।

परंतु यहीं उनके भीतर गहन असंतोष जागा। यदि मुक्ति ही अंतिम लक्ष्य है, तो सृष्टि, संबंध और प्रेम का प्रयोजन क्या है? यदि परम सत्य केवल निराकार है, तो साकार और अर्थपूर्ण जगत की उत्पत्ति कैसे हुई, और यदि वही सर्वव्यापी है, तो दुख और नश्वरता क्यों हैं? इन प्रश्नों ने दिखाया कि कैवल्य शांति तो देता है, पर पूर्ण तृप्ति नहीं—वहाँ बंधन का अंत है, संबंध का उदय नहीं।

इसी बोध से उन्होंने समझा कि उच्च सिद्धियाँ भी ब्रह्मज्ञान के बिना अपूर्ण हैं। इसलिए किसी एक तकनीक को अंतिम न मानते हुए वे प्रेम और भक्ति की पूर्ण अभिव्यक्ति वाले समन्वित मार्ग की खोज में आगे बढ़े।

3.8 सिद्धियाँ: साधना का उपफल, लक्ष्य नहीं

श्री देवचन्द्रजी के अनुभव से यह स्पष्ट हुआ कि सिद्धियाँ और चमत्कार सत्य की प्राप्ति नहीं, बल्कि साधना के उपफल मात्र हैं। यदि साधक वहीं रुक जाए, तो वही प्रगति में बाधा बन जाते हैं। ब्रह्मज्ञान और प्रेम के बिना परमात्मा की प्राप्ति संभव नहीं।

विविध योगियों और परंपराओं के सान्निध्य में उन्होंने अनेक योग-विधियाँ सीखी, पर यह भी देखा कि चमत्कार, मान-प्रतिष्ठा और शिष्यों की भीड़ के बावजूद अनेक

साधकों में न सच्चा वैराग्य था, न आत्मबोध की गहराई। सिद्धियाँ सूक्ष्म रूप से अहंकार को पोषित कर सकती हैं और साधना को अंतर्मुखी बोध से हटाकर लोक-प्रभाव की ओर मोड़ सकती है।

इस विचार से उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि सिद्धियाँ और आडम्बर आत्म-कल्याण का मार्ग नहीं हैं; सत्य-खोज और ब्रह्मज्ञान की साधना ही आगे बढ़ने का एकमात्र पथ है।

3.9 विधि से आगे की खोज: इबादत है, पर ब्रह्म-बोध नहीं

विविध साधनाओं के बाद भी श्री देवचन्द्रजी की अंतःप्यास शांत नहीं हुई। बाह्य अनुशासन मिला, पर आत्मा को परमात्मा से प्रेमपूर्वक जोड़ने वाला जीवंत बोध नहीं। इसी खोज में वे एक मस्जिद में मुल्ला के संग बैठे, जहाँ जन्नत और क़यामत के लिए निर्धारित कर्म-विधियाँ तो बताई गईं, पर खुदा के स्वरूप और निज-संबंध पर स्पष्ट ज्ञान नहीं मिला।

तब उन्हें यह बोध हुआ कि यहाँ इबादत तो है, पर ब्रह्म-बोध नहीं; बंदगी है, पर प्रेम-विरह की अग्नि नहीं। धर्म कर्मकाण्ड तक सीमित रह गया था, जिससे आत्मा तृप्त नहीं होती। इस असंतोष के साथ उन्होंने इस मार्ग पर भी न रुकते हुए सत्य की खोज को आगे बढ़ाया।

3.10 गुरु हरिदासजी के सान्निध्य में सेवा-समर्पण

समग्र दृष्टि के महत्त्व को समझते हुए श्री देवचन्द्रजी कच्छ में पाँच वर्ष की खोज के बाद भुज पहुँचे और राधावल्लभी संप्रदाय के संत गुरु हरिदासजी का सान्निध्य पाया। हरिदासजी श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे और सखी-भाव से बालमुकुन्द व बाँके बिहारी की निष्काम, नियमबद्ध सेवा करते थे।

उनके सान्निध्य में देवचन्द्रजी ने अहंकार-रहित, कथनी-करनी की एकरूपता वाली शुद्ध प्रेम-भक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव किया। सन् 1600–1606 के बीच वे प्रेम-सेवा की साधना में प्रवृत्त रहे। उनकी लगन देखकर गुरु हरिदासजी ने उन्हें समीप रखा और मंत्र-दीक्षा प्रदान की।

3.11 चमत्कार से परे की साधना: अनन्य भाव और आत्म-जागृति की कसौटी

गुरु हरिदासजी द्वारा चमत्कारी मंत्र का प्रस्ताव मिलने पर श्री देवचन्द्रजी ने विनम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार किया, क्योंकि उन्हें देह-संबंधी लाभ या सिद्धियों में रुचि नहीं थी; उनका चित्त बाँकेबिहारी श्रीकृष्ण में पूर्णतः रमा हुआ था। उनके लिए आत्म-साधना के सामने चमत्कार तुच्छ थे।

वे मानते थे कि चमत्कार क्षर जगत की सीमित शक्तियाँ हैं, जिनके पीछे दौड़ना आत्मा को माया में उलझाता है। सच्चा परमार्थ वही है जो चमत्कार-लालसा त्यागकर सतगुरु के माध्यम से परमधाम और परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का बोध कराए—यही आत्म-जागृति की कसौटी है।

3.12 गुप्त सेवा और भाव-प्रधान भक्ति: आत्म-बल का उद्घाटन

श्री देवचन्द्रजी ब्रह्ममुहूर्त में गुप्त रूप से मंदिर-परिक्रमा और सेवा करते थे—बिना किसी प्रदर्शन या प्रशंसा की अपेक्षा के। उनका आचरण सिखाता है कि निष्काम, गुप्त सेवा अहंकार को शांत कर मन को उच्च लक्ष्य पर स्थिर करती है; सेवा-भक्ति का वास्तविक फल शाश्वत आत्मिक आनंद है।

उनकी निरंतर, निष्काम सेवा से प्रसन्न होकर गुरु हरिदासजी ने बालमुकुन्द की मूर्ति सेवार्थ देने का निश्चय किया, पर उसी दिन मूर्ति अदृश्य हो गई। रात्रि में बालमुकुन्दजी ने प्रकट होकर बताया कि वे देवचन्द्रजी के किसी उपकार को स्वीकार नहीं कर सकते और केवल बाँके बिहारी की वस्त्र-सेवा सौंपने की आज्ञा दी। अगले दिन मूर्ति पुनः यथास्थान मिली।

यह प्रसंग देवचन्द्रजी के आत्म-बल और आध्यात्मिक ऊँचाई का संकेत देता है और दो बोध स्थापित करता है—(1) प्रेम-रस से भीगी सेवा साधक से आगे बढ़कर परिवेश को भी आलोकित करती है; (2) भक्ति में प्रधानता रूप की नहीं, भाव की है, और भाव का आधार ब्रह्मज्ञान है।

3.13 अफ़वाहों के बीच सत्य की रक्षा: कृपा का अदृश्य कवच

सत्संग बढ़ने पर कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने सतगुरु के विरुद्ध जादू-टोने की अफ़वाहें फैलाकर पुलिस में शिकायत कर दी। दो सिपाहियों को पकड़ने भेजा गया, पर वे पूरी रात भटकते रहे और सतगुरु तक नहीं पहुँच सके।

इस प्रसंग से यह बोध दृढ़ हुआ कि अफ़वाहें और बाधाएँ क्षणिक होती हैं, जबकि सत्य अडिग रहता है। जो साधक श्रद्धा और सत्य में स्थिर रहता है, उसके लिए कृपा स्वयं रक्षा का अदृश्य कवच बन जाती है; भय के स्थान पर स्पष्टता और विश्वास ही सर्वोत्तम साधन हैं।

3.14 विवेकपूर्ण जिज्ञासा और अनन्य भाव की कसौटी

श्री देवचन्द्रजी बाल्यकाल से ही उन कर्मकाण्डों पर प्रश्न करते थे जिनमें उन्हें आंतरिक अर्थ नहीं दिखता था। उनकी खोज बाह्य अनुकरण तक सीमित नहीं, बल्कि सत्य के प्रत्यक्ष बोध की ओर उन्मुख थी।

मंत्र-दीक्षा के समय दिए गए एक कर्मकाण्डीय निर्देश पर उन्होंने विनम्रतापूर्वक प्रश्न उठाया। गुरु हरिदासजी ने इस विवेकपूर्ण जिज्ञासा को पहचानकर उन्हें दिव्य मंत्र प्रदान किया—जो उनकी आत्म-साक्षात्कार-यात्रा का संकेत बना।

यह प्रसंग सिखाता है कि साधना विवेक और बोध के साथ होनी चाहिए; अनन्य भाव का अर्थ अंध-अनुकरण नहीं, बल्कि चेतना की परिपक्वता और सत्य के प्रति निरंतर अग्रसरता है।

3.15 द्वितीय दर्शन: व्रज मण्डल

ध्यानावस्था में श्री देवचन्द्रजी को ब्रजमंडल का दिव्य साक्षात्कार हुआ। यशोदा मैया के संकेत से वे वन में बाल मुकुंद श्रीकृष्ण से मिले और उनके करकमलों से प्रसाद ग्रहण किया। जब ध्यान भंग हुआ, तब उनके अंतःकरण में यह दृढ़ अनुभूति अंकुरित हो चुकी थी कि यही मेरे आत्मा के स्वामी हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बाल मुकुंद जी के रूप में परमधाम के प्रियतम ने ही देवचन्द्र जी को दर्शन दिए थे। तारतम वाणी कहती है: "तीन बेर दिए दर्शन।" किन्तु बाँके बिहारी के किशोर स्वरूप का बोध अभी पूर्ण रूप से उदित नहीं हुआ था। इसी अपूर्णता ने ब्रज और रास-लीला एवं श्रीकृष्ण की लीलात्मक सत्ता के गूढ़ रहस्यों को जानने की तीव्र आकांक्षा को जाग्रत कर दिया। उनकी बढ़ती प्यास को देखकर गुरु हरिदासजी ने उन्हें जामनगर में कान्हजी भट्ट के पास भेजा, जहाँ श्री श्यामजी के मंदिर में श्रीमद्भागवत की गहन कथा-परंपरा चलती थी।

3.16 श्रीमद्भागवत कथा निष्ठाबन्ध श्रवण और देह–धर्म का संतुलन

जामनगर में श्री देवचन्द्रजी ने कान्हजी भट्ट की श्रीमद्भागवत कथा को निष्ठा और एकाग्रता से श्रवण किया और जाना कि देह व संसार परिवर्तनशील हैं, केवल आत्मा शाश्वत है। इसलिए उन्होंने प्रतिदिन पहले आत्मा को कथा से आहार देने का प्रण लिया। परंपरागत नियमों पर उठी आपत्तियों के उत्तर में उन्होंने स्पष्ट किया कि भागवत-कथा आत्मा का भोजन है और उपवास आत्मिक प्यास को जीवित रखने का साधन। चौदह वर्षों की निरंतर कथा-साधना से उनका हृदय त्याग और भक्ति से परिपूर्ण हुआ, फिर भी प्रत्यक्ष ईश्वरानुभूति की तड़प बनी रही। गंभीर बीमारी में भी उन्होंने कथा नहीं छोड़ी—जिससे यह सिद्ध हुआ कि धर्म आस्था है, पर आध्यात्मिकता सत्य के साक्षात्कार की खोज है।

इसी संदर्भ में उनका जीवन-दर्शन देह और धर्म के संतुलन को उजागर करता है। उनका कथन—"धर्म राखे ते देह है"—आत्मिक दृष्टि को प्रकट करता है, जबकि पिता का मत—"देह राखे होय धर्म"—शारीरिक आवश्यकता की याद दिलाता है। दोनों अपने-अपने स्तर पर सत्य हैं। जीवन की पूर्णता तभी संभव है जब शरीर, मन, भाव, आत्मा और परमात्मा-विश्वास समरस हों। चेतना की यही क्रमिक परिपक्वता क्षणिक सुख से स्थायी आनंद की ओर ले जाती है। निष्कर्षतः, देह और धर्म का संतुलन ही सच्चे विकास, समरसता और आत्मिक आनंद की कुंजी है।

3.17 तृतीय दर्शन: तारतम ज्ञान अवतरण

सन 1621 की आश्विन शुक्ल एकादशी के पावन दिवस पर, श्री देवचन्द्रजी श्रीमद्भागवत की रास-लीला कथा में पूर्ण एकाग्रता और गहन शांति के साथ ध्यानस्थ थे। उसी क्षण उन पर दिव्य महेर का प्रवाह हुआ और उन्होंने अपने चारों ओर प्रेम, आनंद और निर्मल प्रकाश का व्यापक अनुभव किया। अंतःचेतना में उन्हें किशोर युगल स्वरूप का साक्षात् बोध हुआ—श्री राजजी का स्वरूप वृंदावन में रास-लीला करने वाले बाँकेबिहारी के समान रूप प्रकट हुआ।

इस दिव्य दर्शन में हुए संवाद के माध्यम से श्री राजजी ने देवचन्द्रजी को उनकी आत्म-पहचान कराई—उन्हें अक्षरातीत परमधाम से अवतरित सुंदरसाथ की परात्मा बताया और आह्लादिनी शक्ति श्री श्यामाजी को उनके भीतर विराजमान होने का बोध कराया। क्षर–अक्षर से परे अक्षरातीत परमधाम व सच्चिदानंद परब्रह्म (श्री राज जी) के यथार्थ स्वरूप का बोध कराया। इस स्वरूप ने उन्हें समझाया कि पूर्व में हुई ब्रजलीला और रासलीला में श्री कृष्ण रूप में खेलने वाले हम ही थे। और इस वक्त चल रहे 28वें कलियुग के अंतिम चरण में हमारा सब विध वतन सहित प्राकट्य हुआ है। यह भी स्पष्ट किया गया कि ब्रज और रास-लीला के पश्चात् माया-लीला की अपूर्ण तृप्ति के कारण यह तीसरी जागनी लीला है, जिसका उद्देश्य सुंदरसाथ को जगाकर परमधाम लौटाना है।

श्री राजजी ने श्रीमद्भागवत को उनका दिव्य संदेश पत्र बताया, जिसके गूढ़ार्थ केवल उन्हीं से उद्घाटित होंगे, और यह आश्वासन दिया कि अन्य सुंदरसाथ स्वयं उनके पास पहुँचेंगे। अंततः उन्होंने यह घोषित किया कि वे कहीं नहीं जा रहे, बल्कि अब देवचन्द्रजी के हृदय-धाम में सदा के लिए विराजमान होंगे। इस अनुभव से देवचन्द्रजी को यह दृढ़ बोध हुआ कि वे स्वयं केवल निमित्त हैं और समस्त कार्य परब्रह्म की प्रेरणा से संपन्न होगा।

इसी क्षण तारतम ज्ञान के बीजभूत, मंत्रस्वरूप वचन उनके अंतःकरण में प्रतिष्ठित हुए। प्रियतम अक्षरातीत के आवेश, जागृत बुद्धि और परब्रह्म के दिव्य आदेश के कारण वे बुद्धावतार कहलाए —सुप्त चेतनाओं को जगाने वाला स्वरूप। इसी से निजानंद सम्प्रदाय का प्राकट्य हुआ। यह विलक्षण और ऐतिहासिक घटना निजानंद परंपरा में "श्री राज प्रगटन" के नाम से स्मरण की जाती है—जो न केवल देवचन्द्रजी के जीवन का निर्णायक मोड़ बनी, बल्कि आगे चलकर असंख्य आत्माओं के जागरण और परमधाम-मार्ग का प्रकाशस्तंभ भी सिद्ध हुई।

इस बोध के साथ देवचन्द्रजी का लक्ष्य स्पष्ट हुआ—परमधाम के संदेशवाहक के रूप में उन के माध्यम से जागनी-सेवा प्रारंभ हुई।

3.18 जागनी लीला का विस्तार - सत्संग में समानता और उत्तरदायित्व का बोध

तारतम ब्रह्मज्ञान को सर्वप्रथम समझकर श्री गांगजी भाई उनके चरणों में आए और उनके घर ब्रह्मज्ञान-चर्चा आरम्भ हुई। जो भी इस ज्ञान में सहभागी हुए, वे सुंदरसाथ कहलाए—जहाँ चर्चा के अनुरूप दिव्य लीलाओं का अनुभव होने लगा।

निजानंद स्वामी श्री देवचन्द्रजी ने जीवन के अंतिम लगभग पचीस वर्ष नवतनपुरी में—प्रथम सुंदरसाथ गांगजी भाई के निवास चाकला मंदिर में—सत्संग और गहन आध्यात्मिक संवाद में व्यतीत किए। इसी काल में उन्होंने आडिका लीलाओं और जागनी-सेवा के माध्यम से जनमानस को जाग्रत किया और सुंदरसाथ समाज की सुदृढ़ आधारशिला रखी। **आडिका लीला का उद्देश्य चमत्कार दिखाना नहीं, बल्कि ध्यान आकर्षित कर के चेतना जगाना है। आडिका साधन है; तारतम ज्ञान साध्य है। दृष्टान्त और आडिका मिलकर साधक को परमधाम की ओर उन्मुख किया जा सकता है। काला जादू भय और नियंत्रण पर आधारित है; आडिका प्रेम, सत्य और जागनी पर आधारित है।**

यद्यपि उन्होंने चमत्कारों को कभी साधना का लक्ष्य नहीं बनाया, फिर भी धामधणी की लीला उनके भीतर बिराजमान आवेश स्वरूप से होती रही—कभी साक्षात् दर्शन से, तो कभी सेवा और करुणा के माध्यम से। तारतम दर्शन के पश्चात् गांगजी भाई के निष्कलंक सहयोग से सुंदरसाथ का संग बढ़ता गया, और इसी गृह-सेवा के फलस्वरूप मिहिरराज को तारतम के अति-गुह्य रहस्यों का प्रत्यक्ष बोध प्राप्त हुआ।

इस बीच एक महत्वपूर्ण प्रसंग घटित हुआ। श्री निजानन्द सतगुरु के सत्संग में एक निर्धन विधवा मुस्लिम स्त्री को आत्म-पहचान कराकर उन्होंने मिहिर राज की उपस्थिति में यह स्पष्ट किया कि दिव्य अनुभूति किसी धर्म, जाति या वर्ग तक सीमित नहीं, बल्कि सभी में समान रूप से विद्यमान है। इस प्रसंग से सतगुरु ने सुंदरसाथ को आत्म-विकास और समता-बोध की दिशा दिखाई।

उन्होंने समझाया कि अखंड सुख केवल आंतरिक अनुभूति नहीं, बल्कि व्यवहार, विवेक और उत्तरदायित्व में उतारने योग्य बोध है। परम और सापेक्ष सत्य के संतुलन से ही सामाजिक भेद मिटते हैं—क्योंकि सभी में वही एक चेतन सत्ता विद्यमान है। यही आत्म-दृष्टि धर्म का प्रथम बोध है।

जीवन के अंतिम 22 दिनों में निजानंदस्वामी ने मिहिरराज को आगे की जागनी लीला का दायित्व सौंपा। उनकी दैहिक लीला के उपरांत, पारब्रह्म का प्रेरक जोश और आनंद-शक्ति (श्री श्यामा जी की आत्मा) श्री मिहिरराज के तन में प्रतिष्ठित हुई—जिससे जागनी लीला का क्रम आगे विस्तृत हुआ।

3.19 प्रकरण-सार: खोज से साक्षात्कार, बुद्धावतार और कर्तव्य-बोध

बाल्यावस्था से चालीस वर्ष की आयु तक निरंतर खोज, साधना और मूल-धाम की तीव्र जिज्ञासा के परिणामस्वरूप श्री देवचन्द्रजी मेहता को सन् 1621 ई. में जामनगर स्थित श्यामजी मंदिर में अक्षरातीत परब्रह्म का दिव्य साक्षात्कार हुआ। इसी क्षण उन्हें अद्वितीय तारतम ब्रह्मज्ञान प्राप्त हुआ, जिससे निजानंद परंपरा का विधिवत उदय हुआ। यह अनुभव केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि ऐसा समेकित बोध था जिसमें आत्मा, परब्रह्म और परमधाम—तीनों की वास्तविकता एक साथ प्रकट हुई और असंख्य आत्माओं को उनके निजघर की स्मृति मिली।

परब्रह्म की "हृदय-धाम में बैठक" के पश्चात वे निजानंद स्वामी धणी श्री देवचन्द्रजी के रूप में बुद्धावतार कहलाए—अर्थात वह जाग्रत चेतना जो सुप्त आत्माओं को बाह्य कर्मकांड से आगे ले जाकर सत्य के प्रत्यक्ष बोध की ओर उन्मुख करती है। उनके लिए 'बुद्ध' का अर्थ विद्वत्ता नहीं, बल्कि आत्म-जागृति था।

यद्यपि उन्हें अनेक साधनाओं में सिद्धियाँ प्राप्त हुईं, फिर भी वे किसी उपलब्धि पर नहीं ठहरे। गुरु हरिदासजी के सान्निध्य में अनन्य प्रेम-भक्ति और जामनगर में चौदह वर्षों की श्रीमद्भागवत कथा-साधना ने उनकी साधना को परिपक्व और व्यापक बनाया। उनकी यात्रा सिखाती है कि आध्यात्मिक विकास क्रमिक होता है—हर चरण एक सीढ़ी है, मंज़िल नहीं; और प्रेम तभी स्थायी बनता है जब वह सत्य-ज्ञान से आलोकित हो।

आत्म-जागृति को उन्होंने जीवन के कर्तव्यों में उतारा—Self-Duty के रूप में आत्म-परिष्कार, Social Duty के रूप में "मैं सबका हूँ" की भावना से सुंदरसाथ समुदाय का निर्माण, और National/Universal Duty के रूप में भेदभाव व अन्याय के विरुद्ध संतुलित हस्तक्षेप तथा प्रेम-क्षमा-सेवा द्वारा मानव-एकता का संदेश। उनका त्याग वस्तुओं का नहीं, बल्कि स्वार्थ, आसक्ति और अहंकार का परित्याग था। इस प्रकार उनका संपूर्ण जीवन कर्तव्य, बलिदान और समर्पण के तीन उज्ज्वल दीपों से प्रकाशित दिखाई देता है। इस तरह, वे आत्म-जागृति के अग्रदूत सिद्ध हुए।

……..

भाग –1 | अध्याय: 4

महामति प्राणनाथ: जीवन आत्म-जागरण यात्रा

4.1 प्रस्तावना: जीवन से दर्शन की ओर

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में कुछ महापुरुष ऐसे होते हैं जिनका जीवन केवल घटनाओं का इतिहास नहीं, बल्कि चेतना के क्रमिक विकास की एक जीवंत यात्रा बन जाता है। मानव स्वभाव से विकास चाहता है, किंतु यह विकास केवल बाह्य प्रगति नहीं, बल्कि भीतर-भीतर होने वाला रूपांतरण है। महामति प्राणनाथ जी का जीवन इसी सत्य का साक्षात् उदाहरण है—जहाँ प्रत्येक उच्चतर अवस्था तक पहुँचने के लिए सीमित सोच, जड़ विश्वास और अहंकार के मरण से होकर गुजरना पड़ा।

सत्रहवीं शताब्दी में अवतरित महामति प्राणनाथ जी का जीवन एक समग्र आध्यात्मिक आख्यान के रूप में सामने आता है। बाल्यकाल की गहन जिज्ञासा से लेकर सतगुरु-कृपा द्वारा प्राप्त आत्मबोध तक, और सामाजिक–राजनीतिक संघर्षों की अग्नि-परीक्षाओं से गुजरते हुए धर्म-स्थापना की विराट भूमिका तक—उनका सम्पूर्ण जीवन मरण–विकास की निरंतर प्रक्रिया को प्रकट करता है। किशोरावस्था से ही उन्होंने आराम, प्रतिष्ठा और सुरक्षा के आकर्षण का त्याग कर सत्य की खोज को जीवन का लक्ष्य बनाया। उनकी यात्राएँ केवल भौगोलिक नहीं थीं, बल्कि आंतरिक रूपांतरण की यात्राएँ थीं, जहाँ विषम परिस्थितियों में भी कटुता के स्थान पर धैर्य, करुणा और विवेकपूर्ण संयम विकसित होता गया।

अपने निजानन्द सतगुरु के निर्देशानुसार उन्होंने श्री निजानन्द - प्रणामी संप्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक के रूप में कार्य किया। परब्रह्म के साक्षात्कार और तारतम-ज्ञान की प्रौढ़ता प्राप्त होने पर वे 'महामति' पद से विभूषित हुए और 'प्राणनाथ' नाम से विख्यात हुए। यह नाम-परिवर्तन उनकी चेतना-यात्रा के निर्णायक रूपांतरण का प्रतीक है—साधारण पहचान से दिव्य दायित्व तक। शास्त्रों में जहाँ निजानन्द सतगुरु को बुद्धावतार कहा गया है, वहीं महामति प्राणनाथ को निष्कलंक (निर्दोष) अवतार के रूप में स्मरण किया गया है।

उनका जीवन यह स्पष्ट करता है कि सच्चा धर्म ग्रंथों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि जीवन में उतरकर समाज, राज्य और मानव-चेतना को दिशा देता है। उन्होंने कर्मकांड, संकीर्ण पहचान और बौद्धिक श्रेष्ठता के मरण का संदेश दिया और धर्म को भय या अधिकार का साधन नहीं, बल्कि प्रेम, विवेक और करुणा का मार्ग बनाया। उनके उपदेशों का केंद्रीय स्वर यह था कि समस्त मानवता का परमात्मा एक है और सभी धर्मों

के मूल में एक ही सत्य विद्यमान है। उन का जीवन और तारतम दर्शन हमें यह सिखाता है कि वास्तविक विकास एक सतत प्रक्रिया है—हर आंतरिक मरण के बाद एक अधिक परिपक्व, संवेदनशील और जागरूक मानव का जन्म होता है। यही सच्चा विकास है और यही जीवन की वास्तविक सार्थकता।

परब्रह्म की आज्ञा और आवेश से अवतरित श्री कुलजम स्वरूप—तारतम वाणी इस समग्र दृष्टि की जीवंत अभिव्यक्ति है। 18,758 चौपाइयों से युक्त यह महाग्रंथ, जो गुजराती, सिंधी, अरबी, फ़ारसी, उर्दू और हिंदी जैसी अनेक भाषाओं में अवतरित होकर तत्क्षण लिपिबद्ध हुआ, विश्व का एक अनूठा धर्मग्रंथ है। आज विश्वभर में लाखों श्रद्धालु इस ज्ञान–महासागर का पठन, मंथन, गायन, चिंतन और ध्यान करते हैं। आइए, ऐसे समग्र युगदृष्टा का संक्षिप्त परिचय करें, जिन्होंने मनुष्य के भीतरी संसार में सुख और शीतलता की प्रतिष्ठा के माध्यम से सम्पूर्ण मानवता और विश्व में सुख–शांति की स्थापना का दिव्य व्रत लिया।

4.2 बाल्यकाल और आध्यात्मिक संस्कार

महामति प्राणनाथ जी का जन्म-नाम मिहिरराज ठक्कर (मेहराज ठाकुर) था। भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी, रविवार, तदानुसार ऑक्टोबर 7 1618 ई. (विक्रम संवत 1675) को जामनगर (हल्लार देश), गुजरात में उन का जन्म हुआ। उनके सूर्यवंशीय पिता श्री केशव राय ठाकुर जामनगर राज्य के प्रतिष्ठित दीवान (मंत्री) पद पर नियुक्त थे और माता धनबाई धर्मनिष्ठ, संस्कारित तथा वैष्णव भावनाओं से परिपूर्ण थीं। मिहिरराज पाँच पुत्रों में मँझले थे। श्री हरिवंश, श्री शामलिया और गोवर्धन भाई अग्रज और श्री उद्धव जी अनुज थे।

बाल्यकाल से ही मिहिरराज का स्वभाव सामान्य बालकों से भिन्न था। वे अंतर्मुखी, गंभीर, विनम्र तथा आत्म-तत्व की खोज में प्रवृत्त रहने वाले दृढ़ निश्चयी बालक थे। सांसारिक खेलों की अपेक्षा उन्हें जीवन, सत्य और परमात्मा से जुड़े प्रश्न अधिक आकर्षित करते थे। उनके भीतर सहज रूप से आध्यात्मिक संस्कार विद्यमान थे, जो समय के साथ और प्रखर होते चले गए। यही गुण आगे चलकर उनके जीवन-दर्शन की नींव बने—कि सच्चा धर्म बाहरी पहचान नहीं, भीतर की जागृति है।

4.3 निजानन्द सतगुरु की ओर आकर्षण

मिहिरराज के ज्येष्ठ भ्राता गोवर्धन ठाकुर की पत्नी पद्माजी सर्वप्रथम निजानन्द सतगुरु श्री देवचन्द्र जी (1581–1654 ई.) की दिव्य लीलाओं से प्रभावित होकर उनके चरणों में पहुँचीं। लौटकर उन्होंने अपने पति को सतगुरु के जीवन, साधना और परमात्म-साक्षात्कार के प्रसंग विस्तार से सुनाए। इसके पश्चात् गोवर्धन ठाकुर स्वयं भी सतगुरु के दर्शन हेतु गए।

इन कथाओं का प्रभाव बालक मिहिरराज पर अत्यंत गहरा पड़ा। वे अपने भ्राता और भाभी से सतगुरु श्री देवचन्द्र जी की जीवन-कथाएँ निरंतर सुनते रहते थे। देवचन्द्र जी के बाल्यकाल में उठे गहन प्रश्न, सत्य-खोज की तीव्र तड़प, मरुस्थल में परमात्मा द्वारा की गई सहायता—इन सभी प्रसंगों ने मिहिरराज के हृदय में सतगुरु-दर्शन की तीव्र आकांक्षा जगा दी।

4.4 सतगुरु-मिलन: आत्म-जागरण का निर्णायक क्षण—तारतम दीक्षा

सन 1630 ई. (विक्रम संवत 1687) में, मात्र बारह वर्ष दो माह और चार दिन की अल्पायु में ही मिहिरराज के अंतःकरण में यह दृढ़ और अचल विश्वास जागृत हो उठा कि जब स्वयं परमात्मा ने निजानन्द सतगुरु श्री देवचन्द्रजी की सहायता की है, तो वे अपने शरणागत की सहायता अवश्य करेंगे। इसी अटल आस्था के बल पर उन्होंने सतगुरु के साक्षात् दर्शन का संकल्प किया।

जब उनके भ्राता गोवर्धनभाई ने उन्हें घोड़े पर बैठाकर सत्संग में ले जाने से मना कर दिया, तब भी बालक मिहिरराज का संकल्प तनिक भी विचलित नहीं हुआ। वे घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ते हुए सत्संग-स्थल पहुँचे और बंद द्वार पर बैठकर करुण रुदन करने लगे। बाल-हृदय की यह निष्कपट पुकार सत्संगरत निजानन्द सतगुरु श्री देवचन्द्रजी तक पहुँची। करुणा और प्रेम से अभिभूत होकर उन्होंने मिहिरराज को भीतर बुलवाया।

मिहिरराज ने सतगुरु के चरणों में दण्डवत प्रणाम किया। सतगुरु ने कर-कमलों से उनके मस्तक का स्पर्श कर आशीर्वाद दिया और उनके भीतर स्थित परमधाम की परात्मा—'इंद्रावती'—की पहचान कराई। उसी पावन क्षण उन्हें तारतम ज्ञान की दीक्षा प्राप्त हुई। यह दिव्य साक्षात्कार उनके जीवन की दिशा और उद्देश्य को निश्चित करने वाला निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ।

इस दीक्षा के पश्चात् मिहिरराज ब्रह्मविद्या, सेवा, साधना और तप के पथ पर निरंतर दृढ़ होते गए। सतगुरु की दैहिक लीला की समाप्ति तक—लगभग पच्चीस वर्षों की अवधि में—यह गुरु–शिष्य संबंध अखंड, अविच्छिन्न और चेतनात्मक रूप से गहन बना रहा। वे उन के श्रेष्ठतम शिष्य बने।

4.5 सेवा, संघर्ष और आस्था की परीक्षा: विदेश-यात्रा से कारावास तक

विक्रम संवत 1703 से 1708 के मध्य, सतगुरु के स्पष्ट आदेश से मिहिरराज को अरब देश ईराक की दीर्घ और अत्यंत कठिन यात्रा पर भेजा गया। यह यात्रा किसी साधारण भौगोलिक या व्यापारिक उद्देश्य से प्रेरित नहीं थी, बल्कि एक गहन पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्व से जुड़ी हुई थी। गांगजी भाई के ज्येष्ठ भ्राता खेता भाई लगभग पच्चीस वर्षों से व्यापारिक जटिलताओं और सांसारिक उलझनों में फँसे

हुए थे। मिहिरराज को यह दायित्व सौंपा गया कि वे उन्हें संतुलित जीवन-दृष्टि, पारिवारिक उत्तरदायित्व और धार्मिक मूल्यों का बोध कराकर स्वदेश लौटने के लिए प्रेरित करें।

ईराक प्रवास के दौरान मिहिरराज को प्रशासनिक विवादों, संपत्ति-जब्ती तथा अन्यायी और दुष्ट शासकीय अधिकारियों के अत्याचारों जैसी गंभीर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन्हीं संकटपूर्ण परिस्थितियों में उन्हें एक घुड़सवार अरब के रूप में दिव्य मार्गदर्शन प्राप्त हुआ, जिसने उन्हें सही दिशा, धैर्य और आत्मबल प्रदान किया। खेता भाई से जुड़े संपत्ति-विवादों को सुलझाने हेतु स्थानीय सत्ता से जो संवाद किया, इस अनुभव ने उनके भीतर इस विश्वास को और दृढ़ किया कि सभी धर्मों के भीतर एक सार्वभौमिक सत्य छिपा है। सतत प्रयास, विवेक और निष्काम सेवा के फलस्वरूप उन्होंने न केवल जब्त की गई संपत्ति को मुक्त कराया, बल्कि बाद में आगजनी से सुरक्षित बची संपत्ति को भी गुरु-पुत्र श्री बिहारीजी के सुपुर्द किया। लगभग चार वर्षों तक चली यह यात्रा मिहिरराज के लिए सेवा, संयम, सहनशीलता और आत्मिक दृढ़ता की कठोर साधना सिद्ध हुई।

अरब से स्वदेश लौटने के पश्चात् जामनगर के वजीर ने उन पर झूठे आरोप लगाकर उन्हें बंदी बना लिया। किंतु दोष सिद्ध न होने पर अंततः वे मुक्त कर दिए गए। इसके उपरांत एक और अधिक पीड़ादायक परीक्षा सामने आई—अपने ही समुदाय के कुछ लोगों द्वारा उन पर अविश्वास व्यक्त किया गया, जिसकी शिकायत सतगुरु तक पहुँची। परिस्थितियाँ इतनी विषम बन गईं कि सतगुरु की ओर से उन्हें प्रणाम तक न करने का निर्देश दिया गया। इस उपेक्षा और मानसिक वेदना से आहत होकर मिहिरराज ने विक्रम संवत 1710 में धरोल राज्य में दीवान का दायित्व स्वीकार किया।

क्रम संवत 1712 (1654 ई.) में, जब मिहिरराज लगभग 35–36 वर्ष के थे, सतगुरु का बुलावा प्राप्त होते ही उन्होंने बिना किसी विलंब के राजकीय दायित्व योग्य व्यक्ति को सौंप दिए और पूर्णतः गुरु-सेवा में समर्पित हो गए। इसके लगभग बाईस दिनों के अल्प अंतराल पश्चात् श्री देवचन्द्रजी ने अपनी इहलीला पूर्ण की। धामगमन से पूर्व उन्होंने एक दिव्य योजना प्रकट की—कि मेहराज को जाति और मत की सीमाओं से ऊपर उठकर जागनी मिशन के माध्यम से मानवता का व्यापक जागरण करना है।

सद्गुरु के धामगमन के बाद औपचारिक रूप से गुरु-पुत्र श्री बिहारीजी को गद्दी पर प्रतिष्ठित किया गया, किंतु शीघ्र ही सुंदरसाथ समाज को यह अनुभूति होने लगी कि वह आत्म-जागरण की शक्ति, जो आत्माओं को भीतर से जाग्रत कर सके, वहाँ प्रवाहित नहीं हो रही थी। इसके विपरीत, जब श्री मिहिरराज जी वाणी-चर्चा करते, तब श्रोताओं को साक्षात् परमधाम का अनुभव होता था। इससे यह सत्य और अधिक स्पष्ट हो गया कि धर्माधिकार वंशानुक्रम से नहीं, बल्कि आत्मिक सिद्धि और प्रत्यक्ष अनुभूति से प्राप्त होता है।

फिर भी, अश्विन शुक्ल अष्टमी, विक्रम संवत 1712 को, बालबाई की इच्छा के अनुरूप श्री प्राणनाथ जी ने गुरु-पुत्र बिहारीजी को गद्दी पर विधिवत प्रतिष्ठित किया और स्वयं धर्म-कार्य के साथ-साथ राज्य-कारभार का उत्तरदायित्व भी पुनः सँभाल लिया।

जीवन की इस दीर्घ, जटिल और आत्म-परीक्षणों से भरी यात्रा में मिहिरराज को बार-बार अत्यंत कठोर परीक्षाओं से गुजरना पड़ा। बाह्य रूप से वे गृहस्थ थे, किंतु भीतर से पूर्णतः सेवा, साधना और आत्मिक उत्तरदायित्व के लिए समर्पित। गादीपति बिहारीजी के कठोर, कभी-कभी निष्ठुर व्यवहार के कारण उन्हें न केवल सामाजिक अपमान सहना पड़ा, बल्कि अपनी धर्मपत्नी से वियोग जैसी पीड़ा का भी सामना करना पड़ा। इसके बावजूद मिहिरराज की आस्था, सेवा-भाव और गुरु-निष्ठा किंचित् भी विचलित नहीं हुई। उन्होंने इस पीड़ा को विरोध या कटुता में नहीं बदला, बल्कि मौन सहनशीलता और अंतःसंयम के माध्यम से उसे आत्मिक परिपक्वता में रूपांतरित किया।

4.6 धर्म बनाम करुणा का कठोर संघर्ष

लगभग बाईस वर्ष की आयु में मिहिरराज का विवाह कुतियाणा ग्राम के प्रेमजी भाई की सुपुत्री फूलबाई से हुआ था। गृहस्थ जीवन के इसी काल में एक ऐसा मार्मिक और निर्णायक प्रसंग घटित हुआ, जिसने उस युग की धर्म-व्यवस्था और मानवीय संवेदना के बीच के गहरे तनाव को उजागर कर दिया।

गादीपति बिहारीजी द्वारा सुंदरसाथ समाज से निष्कासित किए गए एक निर्धन, भूखे और असहाय सुंदरसाथ—गंगादास—को जब कहीं भी आश्रय नहीं मिला, तब फूलबाई ने उसे अपने घर आमंत्रित किया। उन्होंने प्रेमपूर्वक भोजन कराया और करुणा के साथ उसे सांत्वना दी। यह कोई विद्रोह या साहस-प्रदर्शन नहीं था, बल्कि करुणा से उपजा गृहस्थ-धर्म का सहज और स्वाभाविक आचरण था।

किन्तु इस मानवीय सेवा-कर्म को सत्ता-प्रधान और बाह्य अनुशासन की दृष्टि से अपराध मान लिया गया। परिणामस्वरूप मिहिरराज को धर्म और पत्नी—इन दोनों में से एक को चुनने की अमानवीय परिस्थिति में खड़ा कर दिया गया। यह केवल दांपत्य-संकट नहीं था, बल्कि उस समय की कठोर धार्मिक संरचना का प्रतिबिंब था, जहाँ करुणा से ऊपर नियम और सेवा से ऊपर अधिकार को प्रतिष्ठा दी जाती थी। मिहिरराज के लिए यह क्षण आत्मा को विदीर्ण कर देने वाला था—एक ओर सामाजिक मर्यादा, दूसरी ओर करुणा और गृहस्थ-धर्म की आत्मा।

इस गहन पारिवारिक और आध्यात्मिक परीक्षा के परिणामस्वरूप फूलबाई ने स्वयं तपस्या का मार्ग चुना। उन्होंने इसे पराजय या पलायन नहीं, बल्कि चेतनात्मक उत्तरदायित्व का विस्तार माना। देह-त्याग के साथ उन्होंने यह संकल्प किया कि अधूरी

सेवा को वे पुनः अवतार लेकर पूर्ण करेंगी। लगभग पंद्रह वर्षों (1642–1657 ई.) के गृहस्थ जीवन में फूलबाई प्रेम, करुणा, सेवा और आत्मिक समर्पण की मूर्त अभिव्यक्ति रहीं। उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि गृहस्थ-धर्म और साधना परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि संतुलित रूप से एक-दूसरे के पूरक हो सकते हैं।

सुंदरसाथ परंपरा के अनुसार, वही आत्मा आगे चलकर तेजकुंवरी के रूप में प्रकट हुई और पुनः श्री मिहिरराज से मिली। यह पुनर्मिलन केवल दांपत्य-संबंध की पुनर्स्थापना नहीं, बल्कि सेवा, साधना और आत्मिक संकल्प की निरंतरता का प्रतीक था—इस सत्य का संकेत कि सच्ची सेवा देह, समय और परिस्थिति की सीमाओं से परे होती है। यह प्रसंग केवल एक पारिवारिक घटना नहीं, बल्कि सेवा बनाम रूढ़ि, करुणा बनाम सत्ता और आत्मिक धर्म बनाम बाह्य अनुशासन के बीच चलने वाले सूक्ष्म दार्शनिक संघर्ष का जीवंत दस्तावेज़ है। फूलबाई का जीवन इस सत्य को स्थापित करता है कि सच्चा धर्म वहीं है, जहाँ करुणा नियमों से बड़ी और सेवा सत्ता से श्रेष्ठ मानी जाती है।

4.7 कारावास और ब्रह्मवाणी का अवतरण

सतगुरु के धामगमन के पश्चात सन 1656 (संवत 1713) में मिहिरराज ने जामवजीर के यहाँ दीवान का दायित्व स्वीकार किया, ताकि धर्म-समाज की सेवा सुचारु रूप से हो सके। सतगुरु की स्मृति में एक भव्य धार्मिक आयोजन कर सुंदरसाथ की सेवा का संकल्प लेते ही उनकी बढ़ती आध्यात्मिक प्रतिष्ठा कुछ लोगों के लिए ईर्ष्या का कारण बन गई। निःस्वार्थ सेवा और लोककल्याण की भावना को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया गया और उन पर राजकोष से सामग्री निकालकर भंडारे के लिए उपयोग करने जैसे निराधार आरोप लगाए गए। बिना किसी जाँच के ही मिहिरराज को उनके दो भाइयों सहित जामनगर में एक कारावास में डाल दिया गया।

यह कारावास उनके जीवन में किसी पतन का नहीं, बल्कि चेतना के गहन रूपांतरण का चरण सिद्ध हुआ। अहंकार, पद और बाह्य सहारों से परे, इसी विरह और एकांत की अवस्था में उनकी आत्मा ने परमधाम के प्रियतम धणी को पुकारा। उसी अंतरंग क्षण में परब्रह्म ने उन्हें दर्शन देकर यह स्पष्ट किया कि उनसे धन या सत्ता की नहीं, बल्कि ज्ञान और चेतना की सेवा करवाई जानी है। यही वह निर्णायक बिंदु था, जहाँ से ब्रह्मवाणी के अवतरण का क्रम प्रारंभ हुआ।

कारागार के भीतर ही तारतम वाणी के श्री रास, प्रकाश और षटऋतु जैसे दिव्य ग्रंथ प्रकट हुए, जिन्हें उनके भ्राता उद्धवजी ने श्रद्धापूर्वक लिपिबद्ध किया। इस प्रकार कारावास मिहिरराज के लिए बंधन नहीं, बल्कि ब्रह्मवाणी के प्राकट्य की पावन भूमि बन गया, जो आगे चलकर 'प्रबोधपुरी' कहलाया। यहाँ प्रबोध का अर्थ केवल बौद्धिक समझ

(बोध) नहीं, बल्कि सम्पूर्ण चेतनात्मक रूपांतरण है—ऐसा स्थायी जागरण जिसमें जाना हुआ सत्य जीवन-व्यवहार में उतर आता है, अहं का क्षय होता है और सत्य दृष्टि, संवेदना तथा आचरण में प्रकट होता है। गहरे अर्थ में देखें तो प्रबोधपुरी कोई बाह्य स्थान नहीं, बल्कि श्री मिहिरराज के हृदय में घटित हुआ आंतरिक तीर्थ था।

यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि सच्चा धर्म और आध्यात्मिक अधिकार अनुकूल परिस्थितियों पर नहीं, बल्कि विपरीत स्थितियों में भी परमात्मा की अनुभूति और कृपा से प्रकट होता है। लगभग चौदह महीनों के पश्चात उन्हें शिरोपाव देकर सम्मानपूर्वक मुक्त किया गया और राजा ने अपनी भूल के लिए क्षमा भी मांगी। इन कठोर परीक्षाओं ने मिहिरराज के संकल्प को और अधिक दृढ़ किया। बाह्य बंधनों के बीच भी उनका अंतःकरण स्वतंत्र रहा और वे जीवन के समस्त उतार–चढ़ावों को धैर्य, संतुलन और विवेक के साथ स्वीकार करते हुए निरंतर परमस्मरण में स्थित रहे।

4.8 व्यापक जागरण और धर्म-स्थापना की भूमिका

पुन: विक्रम संवत 1716 में श्री प्राणनाथ जी ने जामवजीर से भेंट कर जूनागढ़ के समीप एक गाँव बसाने का दायित्व स्वीकार किया। इसी यात्रा के दौरान धोराजी में क्षत्रिय वीरजीभानजी की पुत्री तेजकुंवरी ने उन्हें अपने पूर्व-जन्म के आत्मिक संबंध से पहचान लिया। सत्य की पुष्टि होने पर श्री प्राणनाथ जी ने उन्हें फूलबाई की आत्मा—अमलावती—मानकर पत्नी रूप में स्वीकार किया। यह प्रसंग इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि लीला, कर्म और आत्मिक संबंध समय, स्थान और जन्म की सीमाओं से परे निरंतर प्रवाहित होते रहते हैं।

महामति श्री प्राणनाथ जी की जागनी निष्ठा, विनय और निष्काम सेवा-भाव से प्रेरित अनेक सुन्दरसाथों में कानजी भाई एक सरल, किंतु अत्यंत विश्वसनीय सहयोगी थे। उनकी आस्था केवल भावुकता तक सीमित नहीं थी, बल्कि साहस और विवेक से युक्त थी। सन 1659 ई. (संवत् 1716) में, जब वे प्रसिद्ध विद्वान भागवताचार्य पंडित हरजी व्यास के यहाँ सेवा में थे, तब अपनी अस्वस्थ अवस्था में हरजी व्यास ने उनसे स्वीकार किया—"आज तक कोई विद्वान मेरी 'हाँ' को 'ना' नहीं कर सका, न ही मेरी 'ना' को 'हाँ' सिद्ध कर सका है; फिर भी इस समस्त शास्त्र-ज्ञान और ख्याति के बावजूद मेरे भीतर परमात्मा का प्रत्यक्ष बोध अभी अधूरा है।"

कानजी भाई ने यह आत्मस्वीकृति श्री प्राणनाथ जी के समक्ष रखी और विनयपूर्वक निवेदन किया कि वे पंडित हरजी व्यास को तारतम ब्रह्मज्ञान का प्रकाश प्रदान कर उनका जागरण करें। श्री प्राणनाथ जी ने किसी प्रकार का अधिकार-भाव या चुनौती प्रकट किए बिना, लगभग दो माह तक एक सामान्य श्रोता की भाँति उनकी भागवत कथा

का श्रवण किया। जब दिव्य धाम और परम सत्य से जुड़े प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर उपलब्ध नहीं हो सके, तब स्वयं पंडित हरजी व्यास ने अत्यंत नम्रता से श्री प्राणनाथ जी से ब्रह्मज्ञान की याचना की। तारतम ज्ञान के प्रकाश से उनका आत्मबोध पूर्ण हुआ।

यह प्रसंग श्री प्राणनाथ जी के जीवन-दर्शन को स्पष्ट करता है कि सच्चा ज्ञान पद, अहंकार या बाह्य विद्वत्ता से नहीं, बल्कि विनय, जिज्ञासा और सत्य की निष्कपट खोज से प्राप्त होता है। जहाँ-जहाँ श्री प्राणनाथ जी गए, वहाँ केवल उपदेश नहीं, बल्कि जाग्रत चेतना से युक्त सुन्दरसाथ समुदाय का निर्माण हुआ, जो सेवा, समन्वय और समग्र मानवता का सजीव उदाहरण बना।

4.9 अहमदाबाद और स्वेच्छा से कारावास

वि.सं. 1720 (1663-64 ई.) में जामनगर पर क़ुतुब ख़ाँ के आक्रमण का संकट था। श्री प्राणनाथ जी ने दीवान पद स्वीकार कर कूटनीतिक विवेक से समय की मोहलत प्राप्त की और जन-धन की रक्षा की। शेष कर न चुका पाने पर उन्होंने अहमदाबाद में स्वयं को प्रस्तुत कर स्वेच्छा से 5-6 महीने का कारावास स्वीकार किया—यह लोक-कल्याण हेतु आत्म-बलिदान का उदाहरण है। इस प्रसंग में सुंदरसाथ कानजी भाई का त्याग अद्वितीय रहा। उन्होंने साहस और सूझबूझ से स्त्री-वेश धारण कर श्री प्राणनाथ जी को कारागार से मुक्त कराया और स्वयं उनके स्थान पर बंदी बन गए। यह घटना दर्शाती है कि सेवा, साहस और पूर्ण समर्पण से शिष्यों में भी धर्माधिकार प्रकट होता है।

इससे पूर्व मिहिरराज की आत्मा जीवन में माया की अत्यंत कठोर परीक्षाओं से अनेक बार गुजर चुकी थी। निजी सुख-दुःख से ऊपर उठकर उन्होंने सदा धर्म और सुंदरसाथ-सेवा को प्राथमिकता दी। गुरु-आज्ञा, सेवा-भाव और सत्यनिष्ठा के आधार पर उन्होंने तीन निर्णायक अवसरों पर माया को परास्त किया—ईराक-यात्रा के कठोर कष्ट, धर्मपत्नी फूलबाई का देह-त्याग, और प्रबोधपुरी का दीर्घ कारावास।

किन्तु इस चौथे प्रसंग को वे स्वयं "माया के सामने हार" मानते हैं। कारण यह कि कानजी भाई के आग्रह पर, फाँसी से बचने के लिए उन्होंने युक्तिपूर्वक कारावास से मुक्त होना स्वीकार किया। यद्यपि उन्हें अपने भीतर धामधणी के विराजमान होने का निरंतर स्मरण था, फिर भी बाह्य उपाय की स्वीकृति को वे अपनी आत्मा के लिए माया की एक अत्यंत सूक्ष्म परीक्षा मानते हैं।

इसी आत्म-बोध के कारण तारतम वाणी में वे इस प्रसंग को श्री इंद्रावती की आत्मा की "माया के सामने हार" के रूप में स्वीकार करते हैं। यह दृष्टि पराजय नहीं, बल्कि आत्म-निरीक्षण की उच्चतम अवस्था, आध्यात्मिक पारदर्शिता और विनय का चरम

उदाहरण है—जहाँ साधक अपनी सूक्ष्म चूक को भी ईमानदारी से पहचान कर उसे ज्ञान में रूपांतरित कर देता है।

4.10 दीव-बंदर की जागनी लीला (जयराम कँसारा): 1666–67 ई.

जीवन के विविध और कठोर अनुभवों से गुजरने के बाद श्री प्राणनाथ जी ने लौकिक कार्यों से पूर्ण विरक्ति धारण कर ली और धर्म-जागरण तथा तारतम ज्ञान के प्रचार को ही अपना एकमात्र जीवन-धर्म बना लिया। अहमदाबाद से प्रस्थान कर सन् 1666 ई. में वे दीव-बंदर पहुँचे, जहाँ सुंदरसाथ जयरामभाई कँसारा के निवास से जागनी अभियान पूर्ण वेग और दृढ़ संकल्प के साथ आरंभ हुआ। उनके उपदेशों से अनेक हृदय जाग्रत हुए। विरोध और संकटों के बीच भी वे अविचलित रहे, क्योंकि उनका लक्ष्य स्पष्ट था—एक दृढ़, निष्ठावान और अनुशासित सुन्दरसाथ समाज का निर्माण। यह जागरण-प्रसंग इस सत्य को प्रत्यक्ष करता है कि जो सत्य पर अडिग रहते हैं, उनकी रक्षा स्वयं परमात्मा करते हैं।

दीव-बंदर में रहते हुए उन्होंने देखा कि फिरंगी शासकों के कठोर और अमानवीय व्यवहार से स्थानीय समाज भय और पीड़ा में जी रहा था। व्यापार, जीवन और धार्मिक स्वतंत्रता—तीनों संकटग्रस्त थीं। इसी काल में अरबी लुटेरों द्वारा लोगों के अपहरण की गंभीर घटना घटी और धर्मपत्नी तेजकुंवरी जी सहित कुछ सुन्दरसाथों को बंदी बनाकर मस्कत ले जाया गया। यह समाचार मिलते ही श्री प्राणनाथ जी उन्हें मुक्त कराने के लिए मस्कत की ओर निकल पड़े।

ऐसे विकट वातावरण में एक ओर निजानन्द सतगुरु द्वारा प्रतिपादित सांप्रदायिक सौहार्द और मानवीय समन्वय को व्यवहार में उतारना स्वाभाविक कर्तव्य बन गया था, तो दूसरी ओर अत्याचारी सत्ता के समक्ष धर्म की सत्यता और उसकी नैतिक शक्ति को स्पष्ट करना भी अनिवार्य हो गया था। श्री प्राणनाथ जी यह भलीभाँति जानते थे कि करुणा और साहस, समन्वय और प्रतिरोध—परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि धर्म-रक्षा की समग्र दृष्टि के पूरक तत्व हैं। उस समय उनके पास शास्त्र ही एकमात्र शस्त्र था; शस्त्र उठाने वाला कोई संगठित बल अभी तैयार नहीं था। ऐसे में सत्य, न्याय और मानव-मर्यादा की रक्षा उनके सामने एक बड़ी और निर्णायक चुनौती बनकर खड़ी हो गई।

4.11 ठट्ठानगर का जागरण: अहंकार-त्याग से स्वरूप-बोध

महामति श्री प्राणनाथ जी का ठट्ठानगर से दो बार साक्षात्कार उनके जीवन-दर्शन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण चरण है। प्रथम बार वे विक्रम संवत 1724 में मस्कत की यात्रा के दौरान और द्वितीय बार विक्रम संवत 1727 में अब्बास बंदर से लौटते समय ठट्ठानगर पहुँचे। दोनों अवसरों पर उनके सत्संग और आध्यात्मिक संवाद ने नगर की चेतना को गहराई से प्रभावित किया।

इन ज्ञान-चर्चाओं के माध्यम से कबीर-पंथी गुरु चिंतामणि तथा उनके सहस्रों शिष्यों का व्यापक जागरण हुआ। इसी नगर में चतुरदास नामक द्विज के माध्यम से प्रतिष्ठित व्यापारी लक्ष्मण सेठ को तारतम ज्ञान की दीक्षा प्राप्त हुई। इस दीक्षा ने उनके जीवन की दिशा और दृष्टि दोनों को मूलतः रूपांतरित कर दिया।

ठट्ठानगर में ही लक्ष्मण सेठ—जो आगे चलकर लालदास जी के नाम से विख्यात हुए—ने माया और लीला के भेद को समझते हुए अपने आत्मिक स्वरूप-बोध की स्पष्ट अनुभूति की। यद्यपि उनका व्यापार अत्यंत विशाल था और वे निन्यानवे व्यापारिक पोतों के स्वामी थे, तथापि उनका जीवन बाह्य वैभव से नहीं, बल्कि धर्म, विवेक और सेवा-भाव से संचालित था। उन्हें गीता और भागवत में विशेष रुचि थी और वे स्वयं भी धर्म-चर्चा किया करते थे। यह तथ्य दर्शाता है कि महामति प्राणनाथ जी का जीवन-दर्शन वैराग्य को संसार-त्याग नहीं, बल्कि अहंकार-त्याग के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

लक्ष्मण शेठ के 99 जलपोत जब अकस्मात समुद्र में डूब गए, उन का कर्मों का बोझ हल्का हो गया और वे खाली लोटा ले कर अपनी पत्नी लाल बाई सहित सूरत आ कर श्री प्राणनाथ जी के चरणों में समर्पित हुए।

तारतम ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् लालदास जी केवल श्रोता न रहकर श्री प्राणनाथ जी की जागनी यात्रा के सक्रिय सहभागी बन गए। सूरत (मंगलपुरी) से आरंभ हुए भारत-व्यापी धर्म-प्रचार अभियान में वे उनके साथ जुड़े और जीवन-पर्यंत छाया की भाँति उनके निकटतम सहयोगी बने रहे। वे सिंधी, कच्छी, गुजराती, मारवाड़ी, हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अरबी भाषाओं के विद्वान थे तथा गीता-भागवत के साथ-साथ उन्हें क़ुरान का भी सम्यक ज्ञान था। इस बहुभाषिक और बहुधार्मिक विद्वत्ता के कारण वे विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच संवाद और समन्वय के प्रभावशाली सेतु एवं परम सत्य के प्रकाशक बने।

इस प्रकार ठट्ठानगर का जागरण-प्रसंग महामति प्राणनाथ के जीवन-दर्शन का एक सजीव उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह प्रसंग स्पष्ट करता है कि उनका संदेश केवल आध्यात्मिक उपदेश तक सीमित नहीं था, बल्कि अहंकार-त्याग, धार्मिक समन्वय और समग्र आत्मिक चेतना की स्थापना का एक व्यावहारिक मार्गदर्शन था—जहाँ बाह्य वैभव से ऊपर उठकर स्वरूप-बोध और सेवा को जीवन का केंद्र बनाया गया।

4.12 मस्कत और अब्बास-बंदर के जागरण-प्रसंग

ठट्ठानगर के बाद महामति श्री प्राणनाथ जी की जागनी यात्रा पश्चिमी समुद्री मार्ग से मस्कत और अब्बास-बंदर तक पहुँची। मस्कत में महावजी भाई को तारतम ज्ञान देकर संगठित जागरण आरंभ हुआ और अनेक दिव्य पदों की रचना हुई। अब्बास-बंदर में भैरव

शेठ के माध्यम से बंदियों की मुक्ति का सेवा-कार्य सम्पन्न हुआ, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि सच्चा धर्म करुणा, सेवा और न्याय में प्रकट होता है, न कि वैभव में।

अरब प्रवास के दौरान श्री प्राणनाथ जी ने मुस्लिम समाज में भी मानवीय मर्यादा और धर्मनीति के लिए साहसपूर्वक संघर्ष किया। भैरव शेठ के प्रसंग में सेवा से आगे बढ़कर आत्म-जागरण का रूपांतरण दिखा—निषेधों और ज्ञान-श्रवण से उन्हें गहन आंतरिक अनुभूति प्राप्त हुई, जहाँ भक्ति, सेवा और ज्ञान का सुंदर समन्वय प्रकट हुआ।

नए क्रूर प्रशासक की नियुक्ति से उत्पन्न संकट के कारण श्री प्राणनाथ जी को अब्बास-बंदर छोड़ना पड़ा। यह वियोग भी दिव्य योजना का अंग था। इस प्रकार मस्कत और अब्बास-बंदर के प्रसंग उनके जीवन-दर्शन को उजागर करते हैं—जहाँ सेवा, करुणा, साहस और सत्य के प्रति अडिग निष्ठा ही जागरण का मूल आधार है।

4.13 नलिया प्रसंग: समावेशन बनाम संकीर्णता

नलिया-बंदर का प्रसंग श्री प्राणनाथ जी के जीवन-दर्शन में एक निर्णायक और दूरगामी मोड़ का संकेत देता है। यहीं उन्होंने धाराभाई को पुनः सुंदरसाथ समुदाय में सम्मिलित किया, जिन्हें पूर्व में सामाजिक कारणों से बहिष्कृत किया गया था। यह कार्य किसी एक व्यक्ति की पुनर्स्वीकृति मात्र नहीं था, बल्कि इस सिद्धांत की स्पष्ट स्थापना थी कि धर्म का आधार जाति या सामाजिक पहचान नहीं, बल्कि आत्मा की जागृति, शुद्धता और सत्यनिष्ठा है।

श्री प्राणनाथ जी के अनुसार धर्म का स्वरूप बहिष्कार नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण समावेशन है—जहाँ करुणा, आत्मबोध और नैतिक विवेक को प्रधानता दी जाती है। अब्बास-बंदर से लौटते समय नलिया में गुरु-पुत्र बिहारीजी के साथ उनके मतभेद भी उभरने लगे, जो आगे चलकर धर्माधिकार और सामुदायिक दिशा से जुड़े प्रश्नों को और स्पष्ट करते हैं।

इस प्रकार नलिया-बंदर का यह प्रसंग सुंदरसाथ परंपरा में समावेशन के सिद्धांत को दृढ़ करता है और यह प्रतिपादित करता है कि सच्चा धर्म सामाजिक संकीर्णताओं से ऊपर उठकर आत्मा की समान गरिमा को स्वीकार करता है।

4.14 नलिया से सूरत की यात्रा: दिव्य योजना

श्री प्राणनाथ जी ने नलिया-बंदर से नौका द्वारा सूरत जाने का निश्चय किया। खंभालिया के राजकुमार की शत्रुता के कारण मार्ग में गिरफ़्तारी का खतरा था, पर दिव्य संकेत से श्री प्राणनाथ जी अंतिम क्षण में नौका से उतर गए और स्थल-मार्ग से यात्रा पर निकल पड़े। नौका खंभालिया पहुँची, जहाँ पूछताछ के बाद भी किसी ने उनका भेद नहीं खोला और सभी सुन्दर साथ सुरक्षित मुक्त होकर धोराजी पहुँचे।

धोराजी से बैलगाड़ी यात्रा के दौरान कष्ट में पड़े बैल को देखकर श्री प्राणनाथ जी ने जागनी-पथ की कठिनता का रूपक देखा और "धोरीडा, मा मूके तारी धूँसरी" का कीर्तन प्रकट हुआ—जिसका संदेश है कि पलायन नहीं, धैर्य और दायित्व-बोध ही मुक्ति का मार्ग है। यह प्रसंग उनके जीवन-दर्शन को स्पष्ट करता है: लक्ष्य-निष्ठा, वैर-विस्मरण और सत्य के प्रति अडिगता। अंततः सभी घोंघा बंदर होते हुए सुवाली उतरे और नौका से सूरत पहुँचे।

4.15 सूरत प्रसंग और स्वतंत्र जागरण की शुरुआत (1672–73)

ई.स. 1672–73 में महामति श्री प्राणनाथ लगभग सत्रह माह सूरत में रहे। यहीं से स्वतंत्र जागरण की सशक्त धारा प्रवाहित हुई। प्रारंभ में परंपरावादी विरोध के बीच उन्होंने यह स्पष्ट किया कि सच्चा धर्म पद, वैभव या कर्मकांड में नहीं, बल्कि करुणा, समता और आत्मिक बोध में प्रतिष्ठित होता है। शिवजीभाई और रामजीभाई जैसे सुन्दर साथ तारतम ज्ञान से जाग्रत हुए। रामजीभाई के साथ हुए भेदभाव के प्रसंग ने महामति के हृदय से यह वाणी प्रकट कराई कि श्री राजजी का आश्रय विशेषतः निर्धन, उपेक्षित और असहाय के लिए है।

सूरत में उनके सत्संगों से अनेक वैदांतिक और वैष्णव विद्वान—जैसे श्यामभट्ट, भीमभट्ट और गोविंदजी व्यास—तारतम ज्ञान से गहराई से प्रभावित हुए। श्री प्राणनाथ ने निराकार ब्रह्म की सीमाएँ स्पष्ट करते हुए अक्षर, अक्षरातीत और परमधाम के अद्वैत रहस्य का उद्घाटन किया। यह प्रभाव तर्क से नहीं, प्रत्यक्ष आत्मानुभव से उत्पन्न हुआ।

इसी काल में गादीपति बिहारीजी द्वारा जाति, स्त्री और अधिकार-आधारित प्रतिबंध लगाने का प्रयास हुआ, जिसका श्री प्राणनाथ ने विनम्र किंतु दृढ़ता से विरोध किया। उन्होंने घोषित किया कि आत्मा की कोई जाति नहीं और तारतम ज्ञान पर सभी का समान अधिकार है। यहीं से परंपरागत अधिकार और आत्मिक समता के बीच का अंतर स्पष्ट हुआ।

सूरत काल में 'कलश' ग्रंथ का प्रकटन हुआ, जिसे कुलजम स्वरूप का शिखर माना जाता है। निरंतर सत्संगों के फलस्वरूप जागरण सामूहिक चेतना में परिवर्तित हो गया। जब महामति सूरत से आगे की जागनी यात्रा पर निकले, तो लगभग पाँच सौ सुन्दर साथ उनके साथ हो लिए—यह स्वतंत्र, करुणामय और सर्वसमावेशी जागरण का सजीव प्रमाण था।

4.16 मेड़ता और धर्म-रक्षा का उद्घोष

सूरत से होते हुए मेड़ता पहुँचे महामति प्राणनाथ ने तंत्रबल के अहंकार का अंत कर यह स्पष्ट किया कि सच्ची विजय करुणा और सत्य की होती है। इसी समय औरंगज़ेब के अत्याचारों की खबरों के बीच उन्होंने निर्भीक होकर राजाओं और क्षत्रियों को धर्म-रक्षा के लिए जागृत किया—अपने युग में यह साहसी उद्घोष लगभग अद्वितीय था।

महामति का दर्शन राजनीतिक जागरण, आत्मबोध, धर्म-समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना का समग्र स्वरूप है। उन्होंने कर्मकांड और चमत्कारवाद से ऊपर उठकर

प्रेम, करुणा, सत्य और अहिंसा को धर्म का सार बताया तथा पराप्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतिपादन किया। सिद्धपुर और मेड़ता में उनके उपदेशों से व्यापक नवजागरण हुआ और अनेक लोग निजानन्द मार्ग से जुड़े।

मेड़ता में प्रतिष्ठित परिवारों का समर्थन मिला और उन्होंने मेवाड़ के राजा को भी धर्म-रक्षा हेतु प्रेरित किया। यहीं अजान सुनकर उन्हें हिंदू-इस्लाम की आंतरिक एकता का बोध हुआ—"ला-इल्ला-इल्लल्लाह" और "क्षर-अक्षर-अक्षरातीत" एक ही सत्य की ओर संकेत करते हैं। इसी समझ के साथ वे गोकुल, मथुरा और आगरा होते हुए दिल्ली की ओर बढ़े, जहाँ सत्संगों के माध्यम से प्रेम, सद्भाव और एकेश्वरवाद का संदेश देते रहे।

4.17 सत्य और प्रेम का निर्भय धर्मयुद्ध: औरंगज़ेब के युग में महामति प्राणनाथ का समन्वयवादी आह्वान

महामति प्राणनाथ के समन्वयतावादी एवं परम सत्य की प्रकाशना के विचारों से अनेक लोग प्रेरित हुए, पर कुछ शाही आतंक और औरंगज़ेब की कट्टर नीतियों के कारण शंकाग्रस्त भी थे। उन्होंने अपनी आशंकाएँ महामति के समक्ष रखीं। महामति ने स्पष्ट किया कि सत्य और धर्म के मार्ग पर चलना स्वयं एक धर्मयुद्ध है—जिसमें परिणाम की चिंता किए बिना कर्तव्य निभाना आवश्यक है, क्योंकि सभी धर्मों का मूल एक ही परम सत्य है और उसे जन-जन तक पहुँचाना दायित्व है।

लालदास जैसे साथी पूर्ण निष्ठा से उनके साथ थे, जबकि कुछ लोग शाही भय से डरे रहे। मेड़ता से दिल्ली जाते हुए महामति ने गोकुल, मथुरा और आगरा में सत्संग किए और निर्भीक होकर एकेश्वरवाद का प्रचार किया। उन्होंने हिंदू धर्म के कर्म–उपासना–ज्ञान–आत्मचिंतन और इस्लाम के शरीयत–तरीकत–हकीकत–मारफत मार्गों की समानता बताकर मतभेदों को भाषा और कट्टरता का परिणाम कहा।

औरंगज़ेब के शासन में जज़िया, मंदिर-ध्वंस और धार्मिक तानाशाही से जनता भयभीत थी। लोग महामति की बातें समझते थे, पर शासन की कट्टरता उन्हें रोकती थी। इसी स्थिति में महामति ने औरंगज़ेब को इस्लाम का वास्तविक मर्म समझाने का संकल्प लिया। दिल्ली में सैयद की हवेली में रहते हुए उन्होंने लालदास के साथ क़ुरआन के गूढ़ अर्थों पर आधारित 22 प्रश्नों का मसौदा तैयार किया। सुझावानुसार इसे अरबी–फ़ारसी में भेजने का निर्णय हुआ, पर उपयुक्त अनुवादक की खोज में समय लगा।

इस बीच सहारनपुर में रहते हुए उन्होंने निर्मलदास के माध्यम से स्वतंत्रता, स्वाभिमान और धर्म-रक्षा का संदेश भिजवाया। बढ़ते अत्याचारों और राजनीतिक उथल-पुथल के बीच महामति उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करते रहे, ताकि यह महत्त्वपूर्ण मसौदा बादशाह तक पहुँचाया जा सके।

4.18 हरिद्वार कुम्भ (1678): हिन्दू समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना का महाबोध

सन् 1678 ई. के हरिद्वार कुम्भ को महामति प्राणनाथ ने हिन्दू सम्प्रदायों की एकता के लिए ऐतिहासिक अवसर के रूप में देखा। ब्रह्म-चबूतरे पर आयोजित सम्मेलन में उन्होंने विभिन्न पंथों के आपसी मतभेदों को "अंधे और हाथी" के दृष्टांत से स्पष्ट किया—अनुभव भिन्न हो सकते हैं, पर सत्य एक ही है।

उनके आग्रह पर सभी आचार्यों ने अपने-अपने मत, परम्परा और उपासना-पद्धति प्रस्तुत की। इसके पश्चात महामति ने निजानन्द सम्प्रदाय का परिचय देते हुए अक्षरातीत श्री श्याम-श्यामा की प्रेम-भक्ति और तारतम्य-बोध का प्रतिपादन किया। चार माह के संवाद और प्रतीकात्मक नक्शे के माध्यम से उन्होंने दिखाया कि सभी धाम और मत एक ही परम सत्य से जुड़े हैं।

इस समन्वयकारी दृष्टि, परम सत्य की प्रकाशना और शास्त्रीय प्रामाणिकता से प्रभावित होकर सभी आचार्यों ने सर्वसम्मति से महामति प्राणनाथ को सभा का प्रमुख आचार्य घोषित किया और "श्री विजयाभिनंद बुद्ध निष्कलंक" की उपाधि प्रदान की।

4.19 औरंगज़ेब तक सत्य पहुँचाने का संकल्प

हिंदू आचार्यों को संतुष्ट करने के पश्चात् महामति प्राणनाथ का लक्ष्य मुगल सम्राट औरंगज़ेब तक इस्लाम का वास्तविक, करुणामय और मानवतावादी स्वरूप पहुँचाना था। उनका मानना था कि औरंगज़ेब कुरान के मूल संदेश से अनभिज्ञ होकर मुल्लाओं की कठोर व्याख्याओं को ही धर्म समझ बैठा है, जिसके कारण दमन, भय और अन्याय को धर्मसम्मत मान लिया गया।

दिल्ली में अनेक प्रयासों के बावजूद कट्टर मौलवियों और सत्ता-तंत्र के भय के कारण संदेश बादशाह तक नहीं पहुँच सका। समुदाय की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए महामति ने साथियों को सुरक्षित स्थानों पर भेजा, पर उनका संकल्प अडिग रहा। अनूप शहर में रहते हुए उन्होंने तौरेत और कुरान का गहन अध्ययन किया और 'सनंध' पदों की रचना की, जो धर्मों की भीतरी एकता के प्रमाण बने।

यद्यपि संदेश सीधे औरंगज़ेब तक नहीं पहुँचा, फिर भी 'सनंध' के पदों का प्रचार, उनका फारसी अनुवाद और निर्भीक प्रयास यह स्पष्ट करते हैं कि महामति प्राणनाथ का उद्देश्य सत्ता नहीं, बल्कि प्रेम, शांति और सर्वधर्म समभाव के सत्य को मानवता तक पहुँचाना था।

4.20 औरंगज़ेब के दरबार में सत्य की चुनौती: 'सनंध', समन्वय, परम सत्य की प्रकाशना और अन्याय के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष

महामति प्राणनाथ ने 'सनंध' के फारसी अनुवाद सहित कुरान-आधारित पद बादशाह औरंगज़ेब तक पहुँचाने का प्रयास किया, पर शरियत की जकड़न, पद-लालसा और भय के कारण दरबारी सत्य जानते हुए भी मौन रहे। उन्होंने मौलवियों से कुरान पर

संवाद कर करुणामय और मानवीय अर्थ प्रस्तुत किए, जिससे आलिम तर्कहीन हो गए, पर सत्ता-संरक्षित कठोरता नहीं टूटी। कयामत की नई व्याख्या पर पाँच पत्र उच्च अधिकारियों को भेजे गए, किंतु कोई उत्तर नहीं मिला।

दरबार-हाल की अपील से बादशाह तक बात पहुँची; काजी पदच्युत हुआ और जुम्मे के दिन भेंट का संकेत मिला, पर षड्यंत्र से भेंट टल गई। शाही इमाम की सहायता से आशा जगी, किंतु उच्चाधिकारियों के भय से फकीरों को नजरबंद कर एकांत भेंट रद्द कर दी गई। काजी की आत्मग्लानि से रिहाई हुई और 'सनंध' के पद सुने गए।

इस संघर्ष में महामति ने धैर्य, धर्मनिष्ठा और सत्य-पथ पर अडिग रहने का संदेश दिया। उन्होंने वेद–कुरान सहित सभी धर्मग्रंथों के अध्ययन से निष्कर्ष निकाला कि सभी धर्मों का मूल एक है—शांति, करुणा और प्रेम; भेद केवल भाषा और बाह्य आचरण का है। अंततः उन्होंने समझा कि केवल संवाद से अत्याचारी सत्ता नहीं बदलती; अन्याय के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष की चेतना आवश्यक है। यह प्रसंग उन्हें सत्य के निर्भीक साधक, सर्वधर्म समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना के प्रणेता और अन्याय के विरुद्ध युगद्रष्टा के रूप में स्थापित करता है।

4.21 सत्ता के केंद्र में सत्य की परीक्षा: औरंगज़ेब के युग में महामति प्राणनाथ का 'सनंध' अभियान, धर्म-समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना

औरंगज़ेब के क्रूर शासन, धार्मिक अत्याचार और जन-स्वातंत्र्य के दमन को देखकर महामति प्राणनाथ को यह अनुभव हुआ कि केवल उपदेश से कार्य नहीं चलेगा, अब अन्याय के प्रतिकार हेतु संगठित शक्ति और साहसी नेतृत्व आवश्यक है। इसी उद्देश्य से वे राजस्थान जैसे वीरों की भूमि में राजाओं और जनता में स्वतंत्रता व स्वाभिमान की चेतना जगाने निकल पड़े।

कामा पहाड़ी से प्रस्थान कर वे आमेर पहुँचे, जहाँ राजा विष्णु सिंह से भेंट कर उन्हें गुलामी के विरुद्ध संगठित संघर्ष का संदेश दिया। राजा भीतर से सहमत था, किंतु तत्काल साहस नहीं जुटा सका। इसके बाद सांगानेर और पौहड़ में महामति के प्रवचनों से जनमानस में जाति-धर्म से ऊपर उठकर अन्याय के विरुद्ध एकता की भावना जाग्रत होने लगी।

पौहड़ में उनके साथी मुकुंद स्वामी और शेख बदल से भेंट हुई। महामति ने स्पष्ट किया कि उनका कार्य बीज बोने का है—जहाँ जागृति के बीज पड़ जाएँ, वहाँ से आगे बढ़ जाना। इसी क्रम में वे उदयपुर पहुँचे, जहाँ लाघुमसाणी के आमंत्रण पर उनके साथियों सहित उत्तम व्यवस्था की गई। इसी समय दिल्ली में नजरबंद उनके बारह साथी काजी शेख इस्लाम के हृदय-परिवर्तन के कारण मुक्त होकर उदयपुर आ सके।

उदयपुर में महामति ने महाराणा राजसिंह को निजानंद मार्ग और राजपूताना की एकता का महत्व समझाया, पर उसी समय औरंगज़ेब की सेना ने नगर को घेर लिया। अन्य राजाओं के सहयोग न देने और सलाहकारों द्वारा फैलाए गए संदेहों के कारण राणा पीछे

हट गया और महामति से राज्य छोड़ने का आग्रह किया। परिस्थिति को देखते हुए महामति ने उदयपुर से प्रस्थान कर मंदसौर की ओर प्रस्थान किया।

इस यात्रा में महामति को तत्कालीन राजाओं की भयग्रस्त, बिखरी मानसिकता और समाज की उस प्रवृत्ति से गहरा दुःख हुआ, जो संतत्त्व को वेशभूषा से पहचानती है, आत्म-जागृति से नहीं। कुछ समय साधु-वेश में भिक्षाटन करते हुए कठिन दिन बिताकर वे मंदसौर पहुँचे, जहाँ हरिप्रसाद नामक सहृदय व्यक्ति ने उनके वास्तविक संतत्त्व को पहचान कर उनका स्वागत किया।

4.22 महामति प्राणनाथ का सर्वधर्म समन्वय, सामाजिक चेतना और परम सत्य की प्रकाशना

महामति प्राणनाथ अपने प्रवचनों में हिंदू धर्मशास्त्रों के साथ-साथ कुरान, अंजील, तौरेत और जम्बूर के मूल तत्त्वों का निर्भीक समन्वय प्रस्तुत करते थे। वे स्पष्ट करते थे कि ब्रह्म और खुदा अलग नहीं, केवल भाषा का भेद है; धर्म का मर्म एक है—करुणा, प्रेम और सद्भाव। उनके इस समन्वयवादी संदेश से कुछ लोग प्रभावित हुए तो कुछ विरोधी भी बने, किंतु वे सत्य कहने में अडिग रहे।

उनकी चर्चा मुगल सेनाओं तक पहुँची। औरंगजेब के सेनापति दौलत खान और शेरखान वेश बदलकर उनकी सभा में आए। महामति के वचनों से प्रभावित होकर उन्होंने स्वयं को प्रकट किया, अपराधों की क्षमा माँगी और धर्म की सच्ची राह पर चलने का संकल्प लिया। इससे मंदसौर और आसपास के क्षेत्रों में सर्वधर्म समभाव का वातावरण बना।

महामति की इच्छा थी कि कुरान मजीद का हिंदवी अनुवाद हो ताकि सामान्य मुसलमान स्वयं ग्रंथ पढ़कर अर्थ समझ सकें। इस कार्य के लिए इब्राहीम नामक विद्वान को नियुक्त किया गया। अनुवाद पूरा होने पर इब्राहीम पांडुलिपि लेकर भाग गया, पर नए सेनानायक महावत खां के प्रयास से उसे पकड़कर पांडुलिपि सहित प्रस्तुत किया गया। इब्राहीम ने क्षमा माँगी और महामति ने उदारतापूर्वक उसे क्षमा कर दिया। कुरान की हिंदवी प्रति प्राप्त होने से महामति अत्यंत प्रसन्न हुए।

इसी बीच महामति को औरंगजेब की सेनाओं द्वारा विभिन्न राज्यों में की गई लूटपाट, हिंसा, जबरन धर्मांतरण और मंदिर-विध्वंस की खबरें मिलीं। उन्होंने देखा कि राजे-महाराजे परस्पर असंगठित रहने के कारण एक-एक कर पराजित हो रहे थे। इस स्थिति से व्यथित होकर महामति देशभर में राजाओं को एकजुट होने और संगठित प्रतिरोध का संदेश देते हुए भ्रमण करते रहे।

4.23 समाज-जागरण, राजधर्म और महामति प्राणनाथ का संगठनात्मक अभियान

तत्कालीन समाज जाति, मत, अंधविश्वास और भाग्यवाद से जर्जर था, जिसके कारण न जन-जागरण था और न ही अन्याय के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध। महामति प्राणनाथ

ने एक ओर धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास के विरुद्ध जनचेतना जगाई, तो दूसरी ओर राजाओं को एकजुट होकर प्रजापालन और धर्मरक्षा का दायित्व समझाया। इसी क्रम में उनके शिष्य मुकुंद स्वामी बूंदी नरेश भावसिंह हाड़ा तक पहुँचे। विरोध, अपमान और हिंसा सहकर भी उन्होंने सद्गुरु का संदेश राजा तक पहुँचाया। मुकुंद स्वामी के ज्ञान, विनय और करुणा से प्रभावित होकर राजा भावसिंह ने न केवल उन्हें सम्मान दिया, बल्कि राजपुरोहित के अधर्म को दंडित किया और महामति से मिलने की इच्छा प्रकट की। आगे उज्जैन में महामति ने शैव और वैष्णव परंपराओं का समन्वय करते हुए निजानंद मार्ग की प्रतिष्ठा की और व्यापक जन-जागरण का कार्य किया।

4.24 औरंगाबाद में महामति प्राणनाथ: सर्वधर्म समन्वय का संदेश एवं परम सत्य की प्रकाशना

औरंगाबाद पहुँचने पर राजा भावसिंह हाड़ा ने महामति प्राणनाथ का भव्य स्वागत किया और परिवार सहित उनके सत्संग में सहभागी बने। महामति ने भारतभूमि, सनातन धर्म और निजानंद मार्ग की महत्ता समझाते हुए भावसिंह को निकटवर्ती राजाओं को संगठित करने का दायित्व सौंपा। दरबार में उन्होंने हिंदू, इस्लाम, ईसाई और यहूदी ग्रंथों की साक्षियों से एक ही प्रेममय, शाश्वत ब्रह्म "सोई खुदा, सोई ब्रह्म" का प्रतिपादन किया।

मुस्लिम काजियों के साथ संवाद में उन्होंने निराकार–साकार ब्रह्म और क्षर–अक्षर–अक्षरातीत की अवधारणा स्पष्ट कर गीता और कलमे का समन्वय दिखाया। अनेक विद्वानों की शंकाओं का समाधान हुआ, यद्यपि कुछ विरोध भी रहा। भावसिंह के निधन से राज्य शोक में डूब गया। इसके पश्चात् महामति ने औरंगाबाद से बुढ़ानपुर तथा अन्य नगरों में धर्मसभाएँ कर सर्वधर्म समभाव का संदेश देते हुए अपनी जागरण-यात्रा आगे बढ़ाई।

4.25 रामनगर में महामति प्राणनाथ: निर्भीक सत्य, समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना का उद्घोष

रामनगर में केतकी नदी तट पर पर्णकुटी बनाकर महामति प्राणनाथ ने प्रवचन आरंभ किए, जिनमें वे हिंदू शास्त्रों के साथ कुरान, इंजील और तौरेत के सत्य को समान रूप से प्रस्तुत करते थे। इससे कुछ हिंदू और मुस्लिम श्रोता असहज हुए, पर महामति बिना विचलित हुए सर्वधर्म में निहित एक सत्य का उद्घोष करते रहे।

दिल्ली दरबार के भय से रामनगर का राजा भी उदासीन रहा। इसी बीच शाही सिपहसालार शेख खिदर महामति को गिरफ्तार करने आया, किंतु उनके प्रवचन से प्रभावित होकर उसने आत्मबोध पाया और बादशाह तक सत्य संदेश पहुँचाने का संकल्प लेकर लौट गया।

इस घटना से देवकरण बुंदेला गहराई से प्रभावित हुए और उन्होंने यह प्रसंग महाराज छत्रसाल को सुनाया, जिससे छत्रसाल की महामति से भेंट की इच्छा प्रबल हुई।

4.26 महामति प्राणनाथ और छत्रसाल का प्रथम मिलन

रामनगर से गढ़ा जाते समय महामति प्राणनाथ के विशाल सुंदरसाथ संघ पर जागीरदार गुलाम मुहम्मद ने आक्रमण किया, परंतु साहसी सुंदरसाथों के प्रतिरोध से उसे पराजित होकर भागना पड़ा। गढ़ा में महामति को छत्रसाल की भावना का बोध हुआ और उन्होंने संदेश भेजकर भेंट का मार्ग प्रशस्त किया। सुरक्षा कारणों से छत्रसाल स्वयं न आ सके, किंतु महामति को अपने राज्य पन्ना में आमंत्रित किया।

पन्ना में किलकिला नदी के किनारे महामति ने डेरा डाला। मऊ के एक प्रवचन में छत्रसाल वेश बदलकर आए, जहाँ महामति ने उन्हें पहचान कर आत्म-परिचय कराया। छत्रसाल पूर्णतः शरणागत हुए और महामति को जीवन का सार मानकर श्रद्धा से नमन किया। बाद में उन्होंने चौपरा में महामति और उनकी धर्मपत्नी का सम्मानपूर्वक स्वागत किया। सामंतों की शंकाओं के बावजूद छत्रसाल का विश्वास अडिग रहा और महामति–छत्रसाल का यह संगम आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक रूप से निर्णायक सिद्ध हुआ।

4.27 धर्माधारित राजतिलक

चौपरा में महामति प्राणनाथ ने छत्रसाल को धर्मोपदेश देकर परंपराओं से हटकर स्वयं उनका राजतिलक कर महाराजा घोषित किया। इस निर्णय का शाही दरबार ने विरोध किया, पर छत्रसाल सद्गुरु के आदेश को ही सर्वोच्च मानकर अडिग रहे। महामति के मार्गदर्शन में उन्होंने राष्ट्रीय स्वतंत्रता का संकल्प लिया। विजयदशमी पर महामति ने उन्हें विजयी तलवार दी और जनकल्याण हेतु ईश्वरीय धन के सदुपयोग का उपदेश दिया।

4.28 पद्मावतीपुरी धाम पन्ना — सेवा और स्वावलंबन का केंद्र

छत्रसाल ने सद्गुरु महामति प्राणनाथ के चरणों में बीड़ा उठाकर तन–मन–धन को जनकल्याण, राष्ट्रसेवा और धर्मरक्षा हेतु समर्पित करने की शपथ ली, जो आज भी विजयदशमी पर परंपरा रूप में निभाई जाती है। उन्होंने नदी-तट का क्षेत्र ताम्रपत्र द्वारा महामति और उनके सुंदरसाथों को दान दिया। वहाँ टेकरी पर सभा-भवन और पर्णकुटी के साथ पद्मावतीपुरी की स्थापना हुई।

लगभग पाँच हजार परिवारों ने यहाँ निवास कर स्वावलंबी जीवन अपनाया—लघु उद्योगों और कृषि के माध्यम से आजीविका चलाते हुए महामति के सान्निध्य में साधना और धार्मिक चर्चाओं में संलग्न रहे।

4.29 कुरान–संवाद में महामति की विजय

महामति प्राणनाथ की सर्वधर्म समन्वय द्वारा परम सत्य की प्रकाशना की नीति को लेकर छत्रसाल के दरबार में शंकाएँ थीं। समाधान हेतु महोबा के प्रसिद्ध काजी अब्दुल रसूल को पन्ना बुलाया गया। कुरान के आधार पर सृष्टि-उत्पत्ति पर पूछे गए सरल किंतु

मूल प्रश्नों के सामने काजी निरुत्तर हो गया। महामति ने कुरान में वर्णित पाँच प्रकार की सृष्टि-उत्पत्ति का तात्त्विक अर्थ स्पष्ट किया, जिससे काजी का पारंपरिक ज्ञान असमर्थ सिद्ध हुआ। अंततः काजी ने महामति की विद्वत्ता स्वीकार कर उनके चरणों में नमन किया और दरबार में उनकी सर्वधर्म समन्वयकारी तारतम्य दृष्टि की प्रशंसा की।

4.30 ज्ञान पर प्रेम की विजय

सुंदर, बल्लभ और बद्री जैसे प्रकांड पंडितों ने वेदांत, योग और दर्शन पर अपनी विद्वत्ता दिखाई, पर महामति प्राणनाथ ने उन्हें समझाया कि शुष्क ज्ञान से बढ़कर प्रेममय भक्ति है—जैसा वेदव्यास और गोपियों के उदाहरणों से सिद्ध होता है। पंडित भक्ति मार्ग स्वीकार कर महामति की शरण में आए।

महामति की महिमा से प्रभावित होकर छत्रसाल के परिजन और दरबारी भी उनके अनुयायी बने। पन्ना में वर्षों से रह रहे पाँच हजार परिवारों का भरण-पोषण बिना राजकीय सहायता के स्वावलंबन, श्रम और आपसी सहयोग से हो रहा था। इसी कारण दरबारियों को महामति की किसी गुप्त 'कीमिया' का भ्रम हुआ, जिसे जानने की जिज्ञासा छत्रसाल के मन में उत्पन्न हुई।

4.31 सेवा का बोध और समर्पण

महामति प्राणनाथ ने छत्रसाल को समझाया कि उनका धर्म जीवन से पलायन नहीं, बल्कि स्वावलंबन और साधना का मार्ग है—इसीलिए साथियों ने लघु उद्योग और कृषि से आजीविका बनाई। यह जानकर छत्रसाल लज्जित हुए कि सद्गुरु और संघ की आवश्यकताएँ बाहर से पूरी हो रही थीं। बलदीवान की सलाह पर उन्होंने भूल की भरपाई करते हुए दो गाँवों की आमदनी महाप्रभु के संघ को समर्पित कर दी।

4.32 राष्ट्रीय जागरण और सर्वधर्म समभाव का बीज

छत्रसाल द्वारा मध्य भारत को मुक्त कराने के बाद भी महामति प्राणनाथ का लक्ष्य पूरे देश को निरंकुश शासन से मुक्त करना था। वे राठ, कालपी आदि अभियानों में स्वयं अग्रणी रहे और कालपी में कुरान–हदीस के आधार पर एकेश्वरवाद सिद्ध कर क़ाज़ियों से मज़हरनामा प्राप्त किया। चित्रकूट में एक वर्ष के एकांत प्रवास के दौरान उन्होंने क़यामतनामा ग्रंथ पूर्ण किया।

इसके पश्चात् विभिन्न क्षेत्रों की यात्राएँ कर वे पद्मावतीपुरी, पन्ना में स्थायी रूप से रहे। जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने जन-जागरण, राष्ट्रीय एकता और सर्वधर्म समभाव के संदेश में लगाया। वे कहते थे कि उन्होंने विचारों के बीज बो दिए हैं, जो समय पाकर पूरे देश में अंकुरित होकर फलित होंगे।

4.33 पद्मावतीपुरी धाम पन्ना का सांस्कृतिक स्वर्णकाल

महामति प्राणनाथ ने अपने जीवन के अंतिम ग्यारह वर्ष पन्ना की पद्मावतीपुरी में सुंदरसाथ समाज के साथ बिताए। इस काल में उनके सान्निध्य से साहित्य, संगीत, कला और संस्कृति का व्यापक विकास हुआ। यहीं प्रणामी काव्य धारा या दास वाणी का उत्कर्ष हुआ और भक्तिपरक रचनाओं की सृजन परंपरा स्थापित हुई। संगीत में शास्त्रीय और बुंदेली लोक-रंग के समन्वय से नई गायन शैलियाँ विकसित हुईं, जिनकी परंपरा आज भी जीवित है।

सन 1693 ई. में महामति की संगिनी तेजकुंवर का देहावसान हुआ, जिन्होंने जीवन भर उनके धर्म-जागरण अभियान में साथ निभाया। महामति प्राणनाथ ने गृहस्थ जीवन में रहते हुए भक्ति-साधना का आदर्श प्रस्तुत किया और सुंदरसाथ समाज को सांसारिक कर्तव्यों के साथ निजानंद मार्ग पर अग्रसर किया।

4.34 "सुख शीतल करूं संसार" — महामति प्राणनाथ की अमर विरासत

महामति प्राणनाथ ने अपने धर्म अभियान में दलितों, उपेक्षितों और सभी वर्गों को समान भाव से अपनाया और राष्ट्रीय-धार्मिक एकता के बीज बोए। छत्रसाल को आशीर्वाद देकर उन्होंने मध्य भारत में धर्मनिष्ठ शासन की स्थापना कराई और यही आदर्श पूरे देश में फैलाया। सन् 1694 ई. में उनके धामगमन के बाद तारतम वाणी (18,758 पद) उनकी दिव्य विरासत बनी।

उनके शिष्य लालदास ने बीतक में जीवनवृत्त संकलित किया, जिससे प्रणामी/निजानंद काव्यधारा विस्तृत हुई। पद्मावतीपुरी एक प्रमुख धार्मिक पीठ बनी, जहाँ से निजानंद मार्ग का प्रचार देशभर में हुआ। महामति का जीवन-संदेश—"सुख शीतल करूं संसार" आज भी मानवता, एकता और कल्याण का पथ प्रशस्त करता है।

.....

महामति प्राणनाथ: शिक्षा, प्रशासन और संवाद-आधारित राज्यदर्शन

5.1 महामति प्राणनाथ: शिक्षा, प्रशासन और संवाद-आधारित राज्यदर्शन

मेहराज ठाकुर (महामति प्राणनाथ) जाम राज्य के प्रधान अमात्य श्री केशव ठाकुर के पुत्र थे। पाँच भाइयों में वे चौथे स्थान पर थे। किशोरावस्था में ही उनका और उनके भ्राता गोवर्धन ठाकुर का सान्निध्य जामनगर के महान संत एवं भागवताचार्य श्री देवचंद्र (निजानंद स्वामी) से हुआ, जिनकी व्यावहारिक, जीवनोपयोगी शिक्षाओं ने उनके जीवन की दिशा निर्धारित की।

श्री देवचंद्र के मार्गदर्शन में मेहराज ने चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—को व्यावहारिक अर्थों में अपनाया: धर्म को कर्तव्य, अर्थ को पवित्र आजीविका, काम को गृहस्थीय उत्तरदायित्व और मोक्ष को सतत साधना द्वारा आत्मकल्याण के रूप में। यही आधार उनका राजनीतिक और प्रशासनिक दर्शन बना।

ध्रोल राज्य में प्रधान अमात्य के रूप में उन्होंने दमन के स्थान पर संवाद और सौहार्द को शासन का मूल सूत्र बनाया। जनता से निरंतर संवाद, सर्वसम्मति से निर्णय, और जन-सुख को राज्य-सुख मानने की नीति के कारण अल्प समय में राज्य की उल्लेखनीय उन्नति हुई। उत्पादन, व्यापार, वित्तीय अनुशासन, स्वास्थ्य, शिक्षा और न्याय पर विशेष ध्यान दिया गया।

दो वर्ष आठ माह की सफल सेवा के बाद, अपने व्यापक राष्ट्रीय उद्देश्य को आगे बढ़ाने हेतु महामति प्राणनाथ ध्रोल नरेश के आग्रह के बावजूद जामनगर लौट आए, ताकि अपने परम सत्य की प्रकाशना से जूड़े समन्वयवादी और लोककल्याणकारी विचार पूरे देश में प्रसारित कर सकें।

5.2 महामति प्राणनाथ: पवित्र साधनों, सत्य और साहस का राज्यदर्शन

धर्म के मर्म को आत्मसात् कर लेने के बाद मेहराज ठाकुर ने जीवनभर कर्तव्य-निष्ठा के निर्वाह का संकल्प लिया। विवाहोपरांत वे जामनगर राज्य के प्रधान अमात्य बने और एक बड़े, समृद्ध राज्य में अपने राजनीतिक विचारों के व्यावहारिक क्रियान्वयन का अवसर मिला। महामति के अनुसार राज्य की आर्थिक उन्नति आवश्यक है, किंतु धनार्जन के साधनों की पवित्रता अनिवार्य है। भ्रष्ट, हिंसक और शोषणकारी उपायों से भरा राजकोष अंततः राज्य को भीतर से खोखला कर देता है।

प्रधान अमात्य के रूप में उन्होंने प्रशासन में सुधार किए, जन-सहभागिता को बढ़ावा दिया और राजकोष के दुरुपयोग पर रोक लगाई। इससे असंतुष्ट पुराने सामंतों और अधिकारियों ने उन पर भ्रष्टाचार के झूठे आरोप लगाए। महामति धैर्यपूर्वक सत्य के पक्ष में प्रमाणों के साथ खड़े रहे और अंततः सत्य की विजय हुई।

इसी अवधि में अनैतिक शक्तियों के प्रभाव से जाम राज्य की सुरक्षा कमजोर पड़ी और गुजरात के सूबेदार कुतुब खां के आक्रमण के समय राजा ने आत्मसमर्पण कर लिया। बाद में जामराजा को अपनी भूल का बोध हुआ और उसने महामति प्राणनाथ के साहस, सत्यनिष्ठा और मूल्यपरक राजनीति की महत्ता को स्वीकार किया। इस प्रकार जाम राज्य में पुनः अनैतिक शक्तियों का पराभव हुआ और महामति की नैतिक, संवादशील और पवित्र साधनों पर आधारित राजनीतिक विचारधारा प्रतिष्ठित हुई।

5.3 महामति प्राणनाथ: जनकल्याण, नैतिक साहस और सत्य की राजनीति

महामति प्राणनाथ के अनुसार आदर्श राज्य वही है जहाँ महलों से अधिक महत्व प्रजाजन की सुख-सुविधाओं से जुड़े निर्माण कार्यों को दिया जाए। इसी दृष्टि से उन्होंने जूनागढ़ में अपने मित्र कान्हजी भाई के सहयोग से नए नगर के निर्माण और बसाहट में सक्रिय योगदान दिया।

जाम राजा के निधन के बाद राज्य षड्यंत्रों में घिर गया। मेहराज के अनुपस्थित रहते अविहित शक्तियाँ सक्रिय हुईं और कलाजी नामक प्रशासक ने षड्यंत्रपूर्वक तमाची को पदच्युत कर राजगद्दी हथिया ली। इस अन्याय के विरुद्ध महामति ने अकेले ही आवाज उठाई। व्यक्तिगत लाभ और अमात्य पद पर बने रहने का अवसर होते हुए भी उन्होंने अन्याय से समझौता नहीं किया।

नैतिक मूल्यों और राज्य-सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्ध रहकर उन्होंने तमाची को सुरक्षित स्थान पर रखा, सैनिक सहयोग जुटाया और निर्णायक संघर्ष में कलाजी को पराजित कर तमाची को पुनः राजगद्दी दिलाई। राजकोष की हानि और व्यक्तिगत कष्टों के बावजूद महामति ने सत्य, साहस और मूल्यपरक राजनीति से कभी विचलित न होकर अन्य राजाओं के लिए प्रेरणास्वरूप आदर्श प्रस्तुत किया।

5.4 महामति प्राणनाथ: राष्ट्रीय एकता, सर्वधर्म समभाव और जागरण-यात्रा

धार्मिक क्षेत्र में बिहारी जी का महामति प्राणनाथ से निरंतर विद्वेष रहा और उनके विरुद्ध अनेक षड्यंत्र रचे गए। एक अवसर पर समुद्र यात्रा के पश्चात् उनकी गिरफ्तारी के आदेश भी दिए गए, किंतु मेहराज ने सतर्कता, सूझबूझ और मार्ग-परिवर्तन द्वारा स्वयं को सुरक्षित रखा। इससे उनका सिद्धांत स्पष्ट होता है—सदैव सतर्क रहना और विवेकपूर्ण निर्णय लेना।

जाम राज्य छोड़ने के बाद महामति ने अपनी जागरण यात्रा आरंभ की, जिसके दो प्रमुख उद्देश्य थे—देश के राजाओं को आदर्श राज्य की अवधारणा से अवगत कराना तथा धार्मिक विभेद मिटाकर सच्चे, सनातन धर्म की स्थापना करना। वे भारतभूमि को त्रिलोकी में श्रेष्ठ मानते थे और मानते थे कि यहां जन्मा सनातन धर्म ही विभिन्न रूपों में संसार में फैला है, मूलतः उसमें कोई विभेद नहीं।

महामति का तत्कालीन केंद्रीय सत्ता से विरोध उसके निरंकुश, असंवेदनशील और धर्मदमनकारी स्वरूप के कारण था। उन्होंने संवाद द्वारा समाधान का प्रयास किया—पत्र लिखे, सभाएं कीं, संदेश गाए—परंतु बादशाह और उसके कट्टर समर्थकों ने संवाद के सभी मार्ग बंद कर दिए। विवश होकर, महाभारत की परंपरा का स्मरण करते हुए, उन्होंने विद्रोह का मार्ग चुना और शक्तिशाली, तलवारधारी राजा की खोज में निकल पड़े।

अपनी यात्राओं के दौरान उन्होंने अनेक राजाओं और नवाबों से मिलकर राष्ट्रीय एकता, स्वाभिमान और सर्वधर्म समभाव का संदेश दिया। यद्यपि अधिकांश शासक भय और स्वार्थ के कारण निष्क्रिय रहे, फिर भी महामति जीवनभर छोटे-बड़े राज्यों को संगठित करने और जनता के बीच धार्मिक एकता स्थापित करने के प्रयास में लगे रहे। उनका यह जागरण अभियान भारतीय इतिहास में राष्ट्रीय चेतना और तारतम्य-केंद्रित धार्मिक समन्वय का एक महत्वपूर्ण अध्याय बन गया।

5.5 महामति प्राणनाथ और छत्रसाल: आदर्श राज्य की स्थापना का मणि–कांचन संयोग

औरंगाबाद में महामति प्राणनाथ की भेंट वीर एवं धर्मनिष्ठ राजपूत सेनानी राजा भावसिंह हाड़ा से हुई। भावसिंह ने महामति के राष्ट्रीय एकता और सर्वधर्म समभाव के संदेश को आत्मसात् कर उसे साकार करने का संकल्प लिया। उनके माध्यम से पंडितों और मौलवियों तक यह विचार पहुँचा और अल्प समय में सकारात्मक वातावरण बना, किंतु भावसिंह की अकाल मृत्यु के साथ ही पुनः अविहित शक्तियाँ सक्रिय हो गईं।

महामति का विश्वास था—"अथ राजा तथ प्रजा"—इसीलिए वे निरंतर राजाओं में संस्कार-बीज बोते रहे, भले ही तत्काल परिणाम न दिखें। रामनगर में वे एक कमजोर राजा से मिले, जहाँ पूर्ण समर्थन न मिल सका; पर देवकरण बुंदेला के माध्यम से उनकी भेंट वीर केशरी छत्रसाल से हुई। यह मिलन मणि–कांचन संयोग सिद्ध हुआ—छत्रसाल को सच्चे सद्गुरु मिले और महामति को धर्म व राष्ट्ररक्षा हेतु वीर योद्धा।

महामति के मार्गदर्शन में छत्रsाल ने आर्थिक समृद्धि (हीरों के उत्खनन), संगठित सेना और नैतिक शासन की नींव रखी। बुंदेलखंड के छोटे राज्यों को एकजुट कर उन्होंने शाही सत्ता के विरुद्ध बावन युद्ध लड़े और विजय प्राप्त कर विशाल भू-भाग को

मुगल दासता से मुक्त कराया। चाणक्य–चंद्रगुप्त की भाँति महामति ने छत्रसाल को महाराजा घोषित किया और सत्य, नीति व धर्म के सशक्त गुरु-हस्त के साथ आदर्श राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया—जहाँ प्रजापालन, सुरक्षित सीमाएँ और प्रशिक्षित सेना राज्य का आधार बनीं।

5.6 महामति प्राणनाथ का राजधर्म: सद्गुण, कला और संवेदनशील शासन

महामति प्राणनाथ के अनुसार राजा अपने राज्य का प्रतिनिधि पुरुष होता है, इसलिए उसमें साहस, निडरता, संयम, दृढ़ निश्चय, चरित्रबल, न्यायप्रियता, नीति-कौशल और आध्यात्मिक संवेदनशीलता का समन्वय होना चाहिए। बाहर से कठोर और भीतर से करुणामय होना ही आदर्श राजपुरुष का लक्षण है। छत्रसाल में कुछ गुण जन्मजात थे और शेष सद्गुण महामति के सान्निध्य में विकसित हुए, जिन्हें उन्होंने अपने आचरण और काव्य में साकार किया।

महामति का मत था कि राजा की संवेदनशीलता सत्संग और सृजनात्मकता से विकसित होती है। इसलिए आदर्श दरबार में विद्वान, कवि, कलाकार, संगीतकार और साधक सम्मानित होने चाहिए तथा कलाओं का उद्देश्य विलास नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति होना चाहिए। छत्रसाल के दरबार में नीति, न्याय और भक्ति की कलाएं फली-फूलीं; मंदिरों और देवालयों का निर्माण हुआ; संगीत और नृत्य भक्ति-रस का माध्यम बने।

महामति ने सत्ता के विकेंद्रीकरण को बढ़ावा देते हुए स्थानीय परगनों के माध्यम से न्याय और समाधान की व्यवस्था कराई। उनके मार्गदर्शन में छत्रसाल का राज्य एक आदर्श शासन के रूप में निरंतर प्रगति करता रहा। छत्रसाल ने महामति के राजनीतिक आदर्शों को काव्य के रूप में भावी शासकों के लिए विरासत छोड़ते हुए न्याय, साहस, करुणा और जनकल्याण आधारित राजधर्म का मार्ग प्रशस्त किया।

भाग –1 अध्याय: 7

महाराजा छत्रसाल बुंदेला का जीवन-दर्शन: स्वराज, संघर्ष और आध्यात्मिक मूल्य

महाराजा छत्रसाल बुंदेला (4 मई 1649 – 20 दिसंबर 1731 ई.) मध्यकालीन भारत के उन विशिष्ट व्यक्तित्वों में से हैं, जिनका जीवन केवल युद्ध और राजनीति तक सीमित नहीं रहा। उनके व्यक्तित्व में वीरता, स्वराज्य-चेतना, मानवीय करुणा और आध्यात्मिक विवेक—इन चारों का समन्वय दिखाई देता है। यही कारण है कि वे केवल एक क्षेत्रीय शासक नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास में एक जीवन-दर्शन प्रस्तुत करने वाले नायक के रूप में स्मरण किए जाते हैं।

बुंदेला राजपूत वंश में जन्मे छत्रसाल ने लगभग छह दशकों तक मुग़ल साम्राज्य के अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष किया और अंततः बुंदेलखंड में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। उनका संघर्ष केवल सत्ता प्राप्ति के लिए नहीं था, बल्कि स्वाभिमान, सांस्कृतिक अस्मिता और लोक-स्वतंत्रता की रक्षा के लिए था।

7.1 प्रारम्भिक जीवन और संघर्ष की पृष्ठभूमि: मात्र बारह वर्ष छः माह की अल्पायु में छत्रसाल को जीवन का सबसे कठोर आघात सहना पड़ा। मुग़लों द्वारा उनके माता-पिता—पिता चंपतराय और माता सरंधा (लाड़ कुंवरी)—की हत्या कर दी गई। इस घटना ने उन्हें अनाथ और बेघर बना दिया। न उनके पास धन था, न सैन्य साधन, और न ही परिवार का संगठित सहयोग। फिर भी इस पीड़ा ने उन्हें तोड़ा नहीं, बल्कि उनके भीतर अन्याय के विरुद्ध खड़े होने का साहस उत्पन्न किया। यहाँ से छत्रसाल का जीवन यह सिखाता है कि विपरीत परिस्थितियाँ भी यदि संकल्प दृढ़ हो, तो नेतृत्व का आधार बन सकती हैं।

7.2 निरंतर संघर्ष और जन-आस्था: लगभग 22 वर्ष की आयु से लेकर 82 वर्ष की आयु तक महाराजा छत्रसाल ने मुग़लों के विरुद्ध निरंतर संघर्ष किया। ऐतिहासिक परंपराओं के अनुसार उन्होंने 52 प्रमुख युद्ध लड़े और सभी में सफलता प्राप्त की। यह केवल सैन्य विजय नहीं थी, बल्कि जनता के विश्वास और संगठित प्रतिरोध की विजय थी, जिसने मुग़ल सत्ता की नींव को कमजोर किया। छत्रसाल का संघर्ष यह दर्शाता है कि जब नेतृत्व जन-आस्था से जुड़ जाता है, तब वह केवल शक्ति नहीं, बल्कि न्याय का प्रतीक बन जाता है।

7.3 शासक, कवि और मानवतावादी दृष्टि : महाराजा छत्रसाल केवल एक योद्धा नहीं थे। वे कला और संस्कृति के संरक्षक, धर्म और नैतिक मूल्यों के संवाहक तथा एक संवेदनशील कवि भी थे। उनके शासन का आधार भय नहीं, बल्कि न्याय और लोककल्याण था। उनके दरबार में 82 कवियों को संरक्षण प्राप्त हुआ, जो उनकी सांस्कृतिक चेतना और उदार दृष्टि को दर्शाता है। इसी कारण इतिहासकार उन्हें मानवतावादी हिन्दू शासक के रूप में भी देखते हैं।

7.4 आध्यात्मिक प्रेरणा और निजानन्द - प्रणामी दर्शन: महाराजा छत्रसाल को अपने आध्यात्मिक गुरु महामति श्री प्राणनाथ जी का सान्निध्य और मार्गदर्शन प्राप्त था। निजानन्द - प्रणामी दर्शन ने उनके जीवन और शासन को नैतिक दिशा दी। उनके लिए धर्म सत्ता का साधन नहीं, बल्कि विवेक, प्रेम और समरसता का स्रोत था। उन्होंने भारत, नेपाल और भूटान तक इस तारतम्य-केंद्रित समन्वयकारी आध्यात्मिक परंपरा के प्रसार में सक्रिय भूमिका निभाई।

7.5 संघर्ष की ऐतिहासिक झलक: छत्रसाल के संघर्ष को राष्ट्रवादी कवि भूषण ने एक प्रसिद्ध पंक्ति में व्यक्त किया—

"छत्ता न होता तो सुन्नत होत सबन की।" इसका आशय यह है कि यदि छत्रसाल न होते, तो बुंदेलखंड ही नहीं, भारत के कई क्षेत्रों में धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता संकट में पड़ सकती थी। यह पंक्ति उस युग की कठोर ऐतिहासिक वास्तविकता को संक्षेप में प्रकट करती है।

7.6 जीवन-दर्शन का संदेश: महाराजा छत्रसाल का जीवन यह स्पष्ट करता है कि सच्चा स्वराज्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, नैतिकता और लोककल्याण से जुड़ा हुआ आदर्श है। उनका जीवन साहस की कथा से आगे बढ़कर सेवा, संस्कृति और आध्यात्मिक मूल्यों से आलोकित इतिहास बन जाता है—जो आज भी युवाओं और विद्यार्थियों को प्रेरित करने की क्षमता रखता है।

7.7 छत्रसाल का संघर्ष: केवल युद्ध नहीं, चेतना का प्रतिरोध: महाराजा छत्रसाल बुंदेला का संघर्ष केवल तलवारों की टकराहट तक सीमित नहीं था। यह संघर्ष धार्मिक स्वतंत्रता, सांस्कृतिक अस्मिता और मानवीय गरिमा की रक्षा के लिए था। इसी ऐतिहासिक सत्य को राष्ट्रवादी कवि भूषण ने एक पंक्ति में व्यक्त किया— "छत्ता न होता तो सुन्नत होत सबन की।" इस कथन का आशय यह है कि यदि छत्रसाल जैसे योद्धा न होते, तो बुंदेलखंड ही नहीं, भारत के अनेक क्षेत्रों में जनजीवन और संस्कृति पर गहरा संकट आ सकता था। यह पंक्ति अतिशयोक्ति नहीं, बल्कि उस युग की राजनीतिक–धार्मिक परिस्थितियों का संक्षिप्त चित्रण है।

7.8 तलवार के साथ कलम: छत्रसाल का सांस्कृतिक पक्ष: छत्रसाल केवल युद्ध-नायक नहीं थे। वे ऐसे शासक थे जिन्होंने कविता को प्रेरणा का माध्यम, और वाणी को जागरण का अस्त्र बनाया। उन्होंने अपने लेखन और काव्य के माध्यम से अन्य हिन्दू राजाओं का उत्साह बढ़ाया, जनमानस में स्वराज्य-भावना जगाई, और मुग़ल आक्रांताओं के विरुद्ध राष्ट्रचेतना को प्रखर किया। इसी कारण बुंदेलखंड की लोक-स्मृति में वे आज भी "कलम और तलवार—दोनों के धनी" माने जाते हैं।

7.9 कवियों का संरक्षण और सांस्कृतिक दृष्टि: महाराजा छत्रसाल के दरबार में 82 कवियों को संरक्षण प्राप्त था। यह तथ्य उनके व्यक्तित्व के एक महत्त्वपूर्ण पक्ष को उजागर करता है— वे सत्ता को केवल शासन नहीं, बल्कि संस्कृति के संवर्धन का साधन मानते थे। इससे विद्यार्थियों को यह समझने में सहायता मिलती है किएक सशक्त राज्य वही होता है, जो सैन्य शक्ति के साथ सांस्कृतिक चेतना को भी महत्व देता है।

7.10 आध्यात्मिक आधार: निजानन्द - प्रणामी दर्शन: छत्रसाल के जीवन और संघर्ष का नैतिक आधार उनके गुरु महामति श्री प्राणनाथ जी द्वारा प्रदत्त निजानन्द - प्रणामी दर्शन था। इस दर्शन की मुख्य विशेषताएँ थीं— धर्म और सत्ता का पृथक्करण, प्रेम, विवेक और समरसता पर आधारित जीवन और किसी भी प्रकार के धार्मिक बल-प्रयोग का विरोध। छत्रसाल ने इस दर्शन को केवल स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि अपने शासन और आचरण में लागू भी किया। यही कारण है कि उनका संघर्ष धार्मिक कट्टरता नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों से प्रेरित प्रतिरोध था।

7.11 "साकुंडल सखी" की अवधारणा और परंपरा: निजानन्द - प्रणामी परंपरा में महाराजा छत्रसाल को "साकुंडल सखी" के अवतार के रूप में स्मरण किया जाता है। इसका तात्पर्य किसी पौराणिक दावे से अधिक एक आध्यात्मिक प्रतीक से है— ऐसी चेतना, जिसे परब्रह्म की विशेष कृपा प्राप्त हो। इसी परंपरा के अनुसार, पन्ना के हीरों का वैभव उन्हें व्यक्तिगत भोग के लिए नहीं, बल्कि बुंदेलखंड की रक्षा और अत्याचार से पीड़ित समाज के संरक्षण के लिए प्राप्त हुआ।

7.12 जन-स्मृति और लोक-प्रेरणा: आज छत्रसाल केवल इतिहास की पुस्तकों में नहीं, बल्कि जन-प्रार्थना और लोक-स्मृति में जीवित हैं। निजानन्द परंपरा में उन्हें प्रतिदिन स्मरण किया जाता है—

"छत्रसाल महाबली, करियो सब की भली-भली।"

यह पंक्ति बताती है कि वे केवल योद्धा नहीं, बल्कि लोक-कल्याण के प्रतीक बन चुके हैं। इस यह स्पष्ट होता है कि महाराजा छत्रसाल का जीवन—युद्ध और सत्ता की कहानी मात्र नहीं, बल्कि संघर्ष, संस्कृति और आध्यात्मिक चेतना का समन्वित उदाहरण है। उनका

जीवन यह सिखाता है कि एक अकेला, संकल्पवान व्यक्ति भी इतिहास की दिशा बदल सकता है—यदि उसका संघर्ष न्याय, विवेक और मानवता से जुड़ा हो।

7.14 जन्म और संघर्षमय ऐतिहासिक परिवेश: महाराजा छत्रसाल बुंदेला का जन्म ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया, संवत् 1706 (21 मई 1649 ई.) को झांसी–टिकमगढ़ क्षेत्र के मोरपड़िया नामक स्थान पर हुआ। उनके माता–पिता महाराजा चंपतराय और वीरांगना रानी सरंधा (लाड़कुंवरी) उस समय मुग़ल सत्ता के अत्याचारों के विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष में संलग्न थे। अतः छत्रसाल का जन्म एक ऐसे युग में हुआ जहाँ स्थायित्व के स्थान पर असुरक्षा, पलायन और प्रतिरोध ही जीवन की सामान्य स्थितियाँ थीं। यह संघर्षमय ऐतिहासिक परिवेश उनके व्यक्तित्व के निर्माण में प्रारंभ से ही गहराई से जुड़ा रहा।

7.15 लोकपरंपरा, चमत्कारी कथाएँ और सांस्कृतिक स्मृति: छत्रसाल के जन्म से संबंधित अनेक कथाएँ लोकपरंपरा में प्रचलित हैं, जैसे नेवले द्वारा स्वर्ण मुद्राएँ रखना अथवा संकट के समय पहाड़ी से साहसिक छलांग लगाकर परिवार का सुरक्षित बच निकलना। इन कथाओं को शाब्दिक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में नहीं, बल्कि जन-आस्था और सांस्कृतिक स्मृति के प्रतीक के रूप में समझा जाना चाहिए। समाज ने इन कथाओं के माध्यम से यह भाव व्यक्त किया कि यह बालक साधारण नहीं, बल्कि भविष्य में असाधारण भूमिका निभाने वाला है। इस प्रकार लोकपरंपरा इतिहास को भावात्मक अर्थ प्रदान करती है।

7.16 पालन–पोषण और प्रारंभिक संस्कार: छत्रसाल का पालन–पोषण उनकी माता रानी सरंधा ने अत्यंत कठिन परिस्थितियों में किया। उन्होंने अपने पुत्र को वीरता, अनुशासन और धर्मबोध के संस्कार दिए। बाल्यावस्था से ही छत्रसाल में निर्भीकता, आत्मविश्वास और नेतृत्व की झलक दिखाई देने लगी। एक प्रसिद्ध प्रसंग में, जब एक ज्योतिषी ने उनके सामने तलवार और कलम रखी, तो बालक छत्रसाल ने दोनों को एक साथ उठा लिया। यह घटना उनके जीवन के दो स्थायी पक्षों—रणकौशल और विचार-नेतृत्व—का प्रतीक बन गई, जो आगे चलकर उनके जीवन-दर्शन का आधार बने।

7.17 संकटों के बीच सुरक्षित बाल्यकाल और शिक्षा: लगातार युद्ध, पलायन और असुरक्षा के वातावरण में भी छत्रसाल का जीवन सुरक्षित रहा। लोककथाओं में उन्हें कभी नाले में सुरक्षित पाया जाना, तो कभी नाग द्वारा पहरा दिए जाने जैसी घटनाओं का वर्णन मिलता है। इन कथाओं को प्रतीकात्मक रूप में उनके अदम्य साहस और समाज की सामूहिक संरक्षण-भावना से जोड़कर देखा जाता है। चार वर्ष की आयु में उन्हें ननिहाल भेजा गया, जहाँ उनकी प्रारंभिक शिक्षा आरंभ हुई। दस वर्ष की आयु तक वे शस्त्र-प्रयोग

और युद्ध-कौशल में दक्ष हो चुके थे। यह संघर्षपूर्ण लेकिन अनुशासित बाल्यकाल उनके भविष्य के नेतृत्व की ठोस नींव बना।

7.18 विंध्यवासिनी मंदिर की घटना और प्रथम मुग़ल-वध: बाल्यावस्था में ही छत्रसाल का क्षात्र-तेज एक निर्णायक घटना में प्रकट हुआ। बुंदेला कुल की कुलदेवी विंध्यवासिनी के मंदिर में पूजन-उत्सव के अवसर पर एक मुग़ल सेनापति मूर्तिभंजन के उद्देश्य से वहाँ पहुँचा। मंदिर के समीप फूल तोड़ रहे बालक छत्रसाल ने उसकी मंशा को भाँप लिया। मार्ग पूछने पर उत्तर न मिलने से क्रोधित होकर उस सेनापति ने एक बालक को थप्पड़ मार दिया। इस अन्याय को देखकर छत्रसाल ने बिना किसी भय के तलवार निकालकर उस सेनापति का वध कर दिया, जिससे शेष मुग़ल सैनिक भयभीत होकर भाग खड़े हुए।

लोककथाओं के अनुसार, छत्रसाल एक हाथ में फूलों का टोकरा और दूसरे हाथ में मुग़ल सेनापति का कटा हुआ सिर लेकर शांत भाव से मंदिर की ओर बढ़े। मात्र दस वर्ष की आयु में यह दृश्य देखकर सभी चकित रह गए। इस घटना ने स्पष्ट कर दिया कि यह बालक केवल व्यक्तिगत साहस का प्रतीक नहीं, बल्कि बुंदेलखंड के भविष्य के संघर्ष का संकेतक है। यही घटना आगे चलकर बुंदेलखंड के स्वतंत्रता-संग्राम की प्रतीकात्मक शुरुआत मानी गई।

7.19 शौर्य के साथ भक्ति का तारतम्य-केंद्रित समन्वय: छत्रसाल के व्यक्तित्व की एक विशिष्ट विशेषता यह थी कि उनके भीतर शौर्य और भक्ति का गहरा समन्वय दिखाई देता है। वे एक ओर शस्त्र-विद्या का अभ्यास करते थे, तो दूसरी ओर उनका मन सहज रूप से ईश्वर-स्मरण में लीन रहता था। चेतन गोपाल मंदिर उनके लिए उपासना-स्थल भी था और खेल-मैदान भी। लोकपरंपरा और *छत्रप्रकाश* के अनुसार वे राम, लक्ष्मण और सीता की मूर्तियों के समक्ष ध्यान में लीन रहते और बाल-सुलभ प्रेम से ईश्वर से संवाद करते थे। यह निष्कपट भक्ति उनके भीतर आत्मबल, नैतिक दृढ़ता और मानसिक संतुलन का स्थायी स्रोत बनी।

7.20 प्रथम वियोग और बचपन का अंत: यह उजला और आशापूर्ण बाल्यकाल शीघ्र ही गहरे वियोग में बदल गया। मात्र साढ़े बारह वर्ष की आयु में, सन् 1661 ईस्वी में, छत्रसाल ने अपने माता–पिता को एक षड्यंत्र के कारण खो दिया। मुग़ल सैनिकों से घिरे उनके माता–पिता ने वीरगति पाई। इस पीड़ा को और भी तीव्र बना दिया जब लोभवश कुछ अपने ही लोगों ने उनके कटे हुए सिर औरंगज़ेब को सौंप दिए। अगले दिन कार्तिक शुक्ल द्वादशी, संवत् 1718 को छत्रसाल ने स्वयं अपने माता–पिता का अंतिम संस्कार

किया। यही वह क्षण था जहाँ उनका बचपन समाप्त हुआ और संघर्षपूर्ण जीवन का नया अध्याय प्रारंभ हुआ।

7.21 अपने और पराए: विश्वास की नई परिभाषा: पिता चंपतराय के औरंगज़ेब-विरोधी विद्रोह का दंड छत्रसाल को भी भुगतना पड़ा। भय और सत्ता की राजनीति के कारण दतिया, उरछा और चंदेरी के शासक उनके विरोधी बन गए। रिश्तेदार और निकटजन भी पीछे हट गए। यहाँ तक कि पारिवारिक पुजारी से भी उन्हें आश्रय नहीं मिला। इस कठिन समय में छत्रसाल ने जीवन का यह कठोर सत्य समझा कि सत्य और न्याय का मार्ग प्रायः अकेले चलना पड़ता है। किन्तु इसी अंधकार में कुछ अजनबी लोग उनके संरक्षक बने। सुहासिन, लल्लू गडरिया, महाबली पटेल और भानु भट्ट जैसे लोगों ने सेवा, साहस और विश्वास के माध्यम से उनका संबल बना। लगभग साढ़े तीन वर्षों तक इन संरक्षकों के साथ रहते हुए छत्रसाल ने यह गहरी सीख ग्रहण की कि सच्चा विश्वास पद या संबंध से नहीं, बल्कि गुण, करुणा और आचरण से जन्म लेता है।

इस तरह, प्रारंभिक विकास काल महाराजा छत्रसाल के जीवन की वह आधारशिला है, जिसमें उनके व्यक्तित्व के मूल तत्त्व आकार लेते हैं। इसी काल में वीरता और भक्ति का संतुलन, वियोग से उपजा दृढ़ संकल्प और मानवता से प्राप्त शक्ति उनके जीवन में स्थायी रूप से स्थापित हुई। आगे चलकर यही अनुभव उन्हें बुंदेलखंड का महान स्वाधीनता-नायक और सांस्कृतिक रक्षक बनाने वाले थे।

प्रारंभिक संघर्ष का नौ-वर्षीय कालखंड (1661–1671 ई.): शोक से स्वराज्य तक

7.22 वियोग से संकल्प तक का संक्रमण: सन् 1661 ईस्वी में माता–पिता के वियोग के साथ महाराजा छत्रसाल के जीवन में एक निर्णायक मोड़ आया। यह समय उनके लिए केवल शोक का नहीं, बल्कि आत्म-निर्माण और भविष्य के संकल्प को परिपक्व करने का काल बना। माता–पिता के अंतिम उपदेश उनके हृदय में बीज-वाक्य की भाँति अंकुरित हुए, जो वर्षों तक भीतर पकते रहे और आगे चलकर इतिहास में रूपांतरित हुए। इस नौ-वर्षीय कालखंड में छत्रसाल का व्यक्तित्व भावनात्मक वेदना से निकलकर सुविचारित विद्रोह की ओर अग्रसर हुआ।

7.23 विवाह और जीवन की स्थिर आधारशिला: परिवार की इच्छा और महाबली पटेल के मार्गदर्शन में छत्रसाल का विवाह सन् 1665 ईस्वी में देवकुँवरी से हुआ। यह विवाह संघर्ष से पलायन का माध्यम नहीं, बल्कि जीवन को स्थिर आधार देने का

प्रयास था। देवकुँवरी ने आगे चलकर उनके जीवन में साहचर्य, त्याग और गोपनीय सहयोग की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस वैवाहिक स्थिरता ने छत्रसाल को अपने दीर्घकालिक लक्ष्य—बुंदेलखंड की स्वतंत्रता—पर अधिक एकाग्र होकर कार्य करने की क्षमता प्रदान की।

7.24 शत्रु को भीतर से समझने का साहसिक निर्णय: इसी काल में छत्रसाल ने एक असामान्य और साहसिक निर्णय लिया। सन् 1665 से 1667 ईस्वी के बीच वे मिर्ज़ा राजा जय सिंह की मुग़ल सेना में सम्मिलित हुए। उनका उद्देश्य मुग़ल शक्ति का अंग बनना नहीं, बल्कि शत्रु की कार्यप्रणाली, उसकी सैन्य संरचना और आंतरिक कमजोरियों को भीतर से समझना था। बीजापुर अभियान और देवगढ़ किले की लड़ाई में उन्होंने अद्भुत पराक्रम दिखाया, किंतु अपेक्षित सम्मान और न्याय न मिलने से उन्हें मुग़ल तंत्र की अन्यायपूर्ण प्रकृति का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। यही अनुभव आगे चलकर उनके विद्रोह का निर्णायक आधार बना।

7.25 देवगढ़ किले की विजय और उपेक्षा का आघात: सन् 1667 ईस्वी में औरंगज़ेब के आदेश पर मिर्ज़ा जय सिंह की मुग़ल सेना ने देवगढ़ किले को घेर लिया। महीनों के प्रयासों के बावजूद बहादुर ख़ान को सफलता नहीं मिली। निर्णायक क्षण में छत्रसाल अपनी टुकड़ी के साथ आगे बढ़े। किले की कमजोर चौकी पहचानकर उन्होंने अपने भाइयों रतनशाह और अंगद राय के साथ तीव्र आक्रमण किया और भीषण युद्ध के बाद देवगढ़ पर मुग़ल ध्वज फहराया। इस विजय में छत्रसाल की भूमिका निर्णायक थी।

विजय के साथ ही अन्याय भी सामने आया। ईर्ष्या से प्रेरित होकर बहादुर ख़ान ने श्रेय स्वयं ले लिया। आत्मसमर्पण के समय एक राजपूत सरदार के छलपूर्ण वार से छत्रसाल गंभीर रूप से घायल हो गए, पर लोहे की बुरी से उनके प्राण बच गए। कहा जाता है कि रात्रि भर उनका घोड़ा भलाभाई उनकी रक्षा में खड़ा रहा। वीरता की ख्याति तो फैली, पर उपेक्षा और अपमान ने छत्रसाल को भीतर से आहत किया। यहीं उन्होंने मुग़ल सेना त्यागने का निश्चय किया।

7.26 छत्रपति शिवाजी से भेंट: स्वराज्य का बौद्धिक संस्कार: मुग़ल सेना से अलग होने के बाद छत्रसाल ने छत्रपति शिवाजी से भेंट करने का संकल्प लिया। तीर्थयात्री के वेश में, और देवकुँवरी के पुरुष-वेश में साथ रहते हुए, उन्होंने अत्यंत जोखिमभरी यात्रा कर सिंहगढ़ पहुँचकर शिवाजी से भेंट की। शिवाजी ने उन्हें पुत्रवत स्नेह दिया, स्वराज्य के सिद्धांतों और रणनीतियों पर मार्गदर्शन दिया तथा आवश्यकता पड़ने पर मराठा सहायता का आश्वासन भी दिया। विदाई के समय शिवाजी ने उन्हें भवानी तलवार भेंट की, जो केवल एक अस्त्र नहीं, बल्कि स्वराज्य की प्रतीक ज्वाला थी। यह मिलन छत्रसाल के जीवन में सीख, पीड़ा और संकल्प के संगम के रूप में स्मरण किया जाता है।

7.27 बुंदेलखंड वापसी और प्रतिरोध की तैयारी: सन् 1667 ईस्वी में दक्षिण और मुग़ल अभियानों के गहन अनुभव लेकर छत्रसाल बुंदेलखंड लौटे। अगले दो–तीन वर्षों में उन्होंने अपनी मातृभूमि को विद्यालय बना लिया। पहाड़ों, घाटियों, वनों, दुर्गों और मुग़ल चौकियों का सूक्ष्म अध्ययन किया गया। जनसंपर्क बढ़ाया गया, विश्वस्त साथियों का चयन हुआ और स्वराज्य की रूपरेखा स्पष्ट होने लगी। भाइयों अंगद राय और रतनशाह से अपेक्षित सहयोग न मिलने पर भी छत्रसाल अपने संकल्प से विचलित नहीं हुए।

7.28 धूमघाट की विजय और खुले प्रतिरोध की घोषणा: सन् 1670 ईस्वी में औरंगज़ेब द्वारा मंदिर-विध्वंस के उद्देश्य से भेजे गए फिदाई ख़ान को छत्रसाल ने झाँसी के उत्तर धूमघाट क्षेत्र में रोका। भीषण युद्धों के बाद मुग़ल सेना पराजित हुई और ओरछा के मंदिर सुरक्षित रहे। इस विजय ने धूमघाट को बुंदेलखंड की "हल्दीघाटी" के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। ओरछा के नरेश सुजान सिंह ने छत्रसाल को सम्मानित किया, और जनमानस में वे धर्म, स्वराज्य और आत्मसम्मान के प्रतीक बनकर उभरे।

7.29 आत्मबल की दृढ़ता और आध्यात्मिक संकेत: धूमघाट की विजय के पश्चात छत्रसाल ने मऊ सहानियां–मऊ माहेवा क्षेत्र को अपने अभियानों का केंद्र बनाया। लगभग सन् 1671 ईस्वी में धुवेला झील के निकट उन्हें निष्कलंक बुद्ध के दर्शन और मुद्रा-चिह्न का अनुभव हुआ, जिसने उनके आत्मबल को और अधिक दृढ़ किया। इसी अवधि में उनकी वृंदावन–मथुरा की गुप्त यात्रा और रणनीतिक विमर्श भी हुआ। इस प्रकार उनकी अपरंपरागत कार्य-योजना स्पष्ट हुई, जिसमें रणकौशल, भूगोल-बोध और आध्यात्मिक प्रेरणा एक साथ कार्य कर रहे थे।

इस तरह, प्रारंभिक संघर्ष का यह नौ-वर्षीय कालखंड महाराजा छत्रसाल के जीवन में शोक से संकल्प और संकल्प से संगठित प्रतिरोध की यात्रा है। इसी अवधि में उन्होंने शत्रु को समझा, मित्रों को पहचाना, भूगोल को रणनीति में बदला और आध्यात्मिक दृढ़ता के साथ स्वराज्य के मार्ग पर स्वयं को स्थापित किया। यही काल आगे चलकर बुंदेलखंड के स्वतंत्र राज्य की स्थापना की ठोस नींव बना।

विकास-काल (1671–1687 ई.): संघर्ष से राज्य-स्थापना तक

7.30 विकास-काल की रूपरेखा: दो स्पष्ट चरण: सन् 1671 से 1687 ईस्वी तक का सोलह-वर्षीय काल महाराजा छत्रसाल के जीवन का निर्णायक विकास-काल माना जाता है। इस अवधि में संघर्ष से अर्जित अनुभव केवल स्मृति नहीं रहे, बल्कि धरातल पर उतरकर स्वराज्य का सुस्पष्ट स्वरूप बन गए। यह काल दो स्पष्ट चरणों में विभक्त दिखाई

देता है। पहले चरण में प्रतिरोध को व्यवहार में उतारा गया और दूसरे चरण में उस प्रतिरोध को स्थायी राज्य-रचना में रूपांतरित किया गया।

7.31 कार्यान्वयन चरण (1671–1682): लघु शक्ति से व्यापक प्रभाव: कार्यन्वयन चरण की शुरुआत अत्यंत सीमित साधनों से हुई। महाराजा छत्रसाल के पास आरंभ में केवल पाँच घुड़सवार और पच्चीस पैदल सैनिक थे, किंतु यह सेना जाति, वर्ग और पृष्ठभूमि की सीमाओं से मुक्त थी। यही समावेशी स्वरूप आगे चलकर जनसमर्थन का आधार बना। सीमित संसाधनों के बावजूद छत्रसाल ने मुग़ल दमन के विरुद्ध क्रमिक और सुनियोजित प्रहार किए। ताहव्वर ख़ान जैसे मुग़ल सेनानायकों के प्रयास विफल होते गए और जनता का विश्वास निरंतर बढ़ता चला गया।

इस चरण में छत्रसाल का संघर्ष केवल युद्धों तक सीमित नहीं था। छोटे–छोटे दैनिक संघर्षों से अर्जित संसाधन, कीर्ति और जनसंपर्क ने स्वराज्य आंदोलन की रीढ़ तैयार की। वृंदावन के स्वामी नरहरिदेव का आशीर्वाद भी उनके संकल्प को नैतिक बल प्रदान करता रहा। धीरे–धीरे छत्रसाल का नाम बुंदेलखंड में प्रतिरोध और आशा के प्रतीक के रूप में स्थापित होने लगा।

7.32 ध्वज-परंपरा और स्वराज्य का प्रतीक-बोध: इस काल में छत्रसाल की सेना ने ध्वजों के माध्यम से अपने उद्देश्य को प्रतीकात्मक रूप दिया। सन् 1683 ईस्वी तक पीले ध्वज का प्रयोग किया जाता रहा, जिस पर श्री मरुतिजी, कुलदेवी विंध्यवासिनी तथा चंद्र–सूर्य के चिह्न अंकित थे। यह ध्वज धर्म-रक्षा और परंपरा का प्रतीक था। युद्धक्षेत्र में केसरिया ध्वज प्रयुक्त होता था, जो वीरता और प्रतिरोध का संकेतक था।

सन् 1686 ईस्वी की दिग्विजय यात्रा में केसरिया दिग्विजय ध्वज के साथ चंद्र–सूर्य चिह्नों का प्रयोग स्वराज्य-संकल्प और सार्वभौमिक धर्मबोध की उद्घोषणा बन गया। इस प्रकार छत्रसाल का संघर्ष केवल सैन्य नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और वैचारिक आंदोलन भी बन चुका था।

7.33 शहीदी चौपड़ा: बलिदान और निष्ठा का अमर स्थल: सन् 1678 ईस्वी में तहावर ख़ान के अभियान के दौरान एक अत्यंत मार्मिक घटना घटी। जासूसों से घिरे छत्रसाल की रक्षा के लिए अनेक बुंदेला वीरों ने अपने प्राण न्योछावर कर दिए। ऊपर से छत्रसाल की तीर-वर्षा और नीचे से उनकी सेना के प्रतिआक्रमण ने मुग़ल टुकड़ी को पूर्णतः नष्ट कर दिया। हरिशंकर मिश्र, नंदन छीपी और कृपराम जैसे वीरों के बलिदान से यह स्थल 'शहीदी चौपड़ा' कहलाया। यह स्थान स्वराज्य के लिए दी गई सर्वोच्च आहुति का प्रतीक बन गया।

7.34 स्थापना चरण (1682–1687): आध्यात्मिक–राजनीतिक सुदृढ़ता: सन् 1682 ईस्वी से विकास-काल का दूसरा चरण आरंभ होता है, जिसे स्थापना चरण कहा जा सकता है। इसी काल में महाराजा छत्रसाल का महामति प्राणनाथ जी से संगम हुआ। इस भेंट ने उनके संघर्ष को आध्यात्मिक वैधता और दीर्घकालिक दिशा प्रदान की। प्राणनाथ जी ने उन्हें सार्वजनिक रूप से 'महाराजा' के रूप में अभिषिक्त किया, जिससे स्वराज्य आंदोलन को वैधानिक और नैतिक मान्यता मिली।

औरंगज़ेब द्वारा भेजे गए निरंतर आक्रमणों के बावजूद छत्रसाल विजयी रहे। अब उनका संघर्ष केवल प्रतिरोध नहीं, बल्कि सुदृढ़ राज्य-स्थापना की ओर बढ़ चुका था। यह वह समय था जब स्वराज्य अस्थायी प्रयोग नहीं, बल्कि स्थायी व्यवस्था बनने लगा।

7.35 महामति प्राणनाथ से भेंट: युगांतकारी संगम: महामति प्राणनाथ की कृपा महाराजा छत्रसाल को उसी प्रकार प्राप्त हुई, जैसे छत्रपति शिवाजी को समर्थ गुरु रामदास का मार्गदर्शन मिला था। लगभग 1682 से 1694 ईस्वी के बीच, जब छत्रसाल मुग़ल सत्ता को निर्णायक चुनौती दे रहे थे, महामति प्राणनाथ समस्त राजाओं और शासकों को एक उच्च मानवीय उद्देश्य के लिए जाग्रत करने में संलग्न थे। उनका लक्ष्य मानवता के कल्याण, विश्व-धर्म समन्वय की स्थापना और परम सत्य की प्रकाशना था।

उन्होंने औरंगज़ेब, महाराणा राज सिंह, राजा भाव सिंह हाड़ा सहित अनेक शासकों से संवाद किया और सार्वभौमिक आदर्शों को राजनीतिक व्यवस्था से जोड़ने का प्रयास किया। इसी क्रम में उनका प्रसिद्ध कीर्तन-घोष गूँजा, जिसमें राजाओं से धर्म और मानवता की रक्षा के लिए एकत्र होने का आह्वान किया गया। भयग्रस्त राजसत्ताओं से निराश होकर उन्होंने कठोर शब्दों में चेतावनी भी दी, ताकि सुप्त चेतना जाग सके। इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में छत्रसाल–प्राणनाथ का संगम हुआ।

7.36 छत्रसाल–प्राणनाथ संगम और राज्य-स्थापना की वैधता: बिटक ग्रंथ के अनुसार, छत्रसाल को सन् 1671 ईस्वी में पहली बार ध्यानावस्था में विजयाभिनंद निष्कलंक बुद्ध के रूप में महामति प्राणनाथ का दर्शन हुआ था। ठीक बारह वर्ष बाद, सन् 1682 ईस्वी में धुबेड़ा झील के निकट तिदानी दरवाज़ा स्थान पर दोनों का साक्षात् मिलन हुआ। प्राणनाथ जी ने छत्रसाल में देशभक्ति से ओतप्रोत एक महान योद्धा-आत्मा को पहचानकर उनके मस्तक पर तिलक किया और आशीर्वाद दिया।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश और गांडीव प्रदान किया, उसी प्रकार महामति प्राणनाथ ने छत्रसाल को तारतम ज्ञान और 'जल-पुकार' तलवार प्रदान की। इस संगम से छत्रसाल का जीवन वीरता, भक्ति और सेवा—तीनों से एक साथ आलोकित हो गया।

7.37 पन्ना की स्थापना और शासन का विस्तार: सन् 1675 ईस्वी में छत्रसाल ने गोंड राजा से पन्ना क्षेत्र जीता और प्राणनाथ जी के मार्गदर्शन में उसे बुंदेलखंड की राजधानी के रूप में विकसित किया। अपने अड़तीसवें जन्मदिन, ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी, बुधवार संध्या, सन् 1688 ईस्वी को उनका सार्वजनिक महाराजा अभिषेक हुआ। यहीं से शून्य से शिखर तक की यात्रा औपचारिक रूप से प्रतिष्ठित हुई।

प्रारंभ में मऊ–नौगाँव को सैन्य शिविर बनाया गया, जबकि शासन का संचालन पन्ना से हुआ। सन् 1683 ईस्वी में पन्ना में श्री बंगला जी मंदिर की स्थापना हुई और वहीं से प्राणनाथ जी के प्रवचन प्रारंभ हुए। प्राणनाथ जी छत्रसाल को आध्यात्मिक नाम 'साकुंडल' से संबोधित करते थे।

7.38 समरस शासन और वैचारिक विस्तार: प्राणनाथ जी की सार्वभौमिक एकता और प्रेम की शिक्षा ने छत्रसाल की दृष्टि को व्यापक बनाया। उन्होंने औरंगज़ेब से संवाद और शांति-संधि का प्रयास भी किया, जिसमें सभी धर्मों के मूल आदर्शों के सम्मान और सह-अस्तित्व पर बल दिया गया। पन्ना में अंतर-धार्मिक सम्मेलन आयोजित हुए। छत्रसाल का स्पष्ट मत था कि कट्टरता का उपचार यांत्रिक कर्मकांड नहीं, बल्कि जागृति है।

इसी कारण उनका संघर्ष किसी समुदाय के विरुद्ध नहीं, बल्कि अन्याय और धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध था। उनकी सेना बहुधर्मी थी और मुसलमान सैनिकों को भी सम्मान प्राप्त था। वे राज्य-विस्तार के लोभ से युद्ध में नहीं उतरे।

7.39 निरंतर संघर्ष और विजय-श्रृंखला: स्थापना-काल में औरंगज़ेब ने छत्रसाल को कुचलने के लिए एक के बाद एक कई सेनापति भेजे, किंतु सभी पराजित हुए। शेर अफ़ग़ान, शाहकुलीन, जलाल ख़ान, पुरदल ख़ान, राणा प्रताप सिंह और रणमस्त ख़ान जैसे सेनानायक पराजय का मुख देख चुके थे। सन् 1682 ईस्वी में महामति प्राणनाथ से भेंट के अगले ही दिन शेर अफ़ग़ान की हार के साथ उस दिन को बुंदेलखंड स्वराज्य की स्थापना का दिवस घोषित किया गया।

सन् 1686–1687 ईस्वी में छत्रसाल–प्राणनाथ की संयुक्त दिग्विजय यात्रा हुई, जिसमें प्राणनाथ जी हाथी पर सवार रहे। बिटक ग्रंथ में इन वर्षों के युद्धों का विस्तृत विवरण मिलता है। उल्लेखनीय है कि तारतम ज्ञान और कुरान की सार्वभौमिक व्याख्या से प्रभावित होकर कुछ मुग़ल सेनापति शरणागत भी बने।

इस तरह, विकास-काल (1671–1687 ई.) महाराजा छत्रसाल के जीवन में संघर्ष से सत्ता और सत्ता से सेवा की यात्रा का काल है। पाँच घुड़सवारों से आरंभ हुआ अभियान दृढ़ संकल्प, रणनीति और जनसमर्थन के बल पर एक सुदृढ़ स्वराज्य में रूपांतरित हुआ। छत्रसाल का जीवन यह सिद्ध करता है कि विश्वास, विवेक और करुणा के साथ

लड़ा गया संघर्ष अजेय होता है। वे तलवार भी थे और ध्यान भी—रण में प्रचंड, शांति में करुण और साधना में लीन। इसी कारण इतिहास उन्हें युगप्रवर्तक के रूप में स्मरण करता है।

औरंगज़ेब और बुंदेलखंड: क्रूर सत्ता बनाम स्वतंत्र चेतना

7.40 औरंगज़ेब की सत्ता-प्रकृति और उसका ऐतिहासिक प्रभाव: औरंगज़ेब मुग़ल सत्ता का वह शासक था, जिसने सत्ता-प्राप्ति के लिए किसी भी नैतिक सीमा को स्वीकार नहीं किया। उसने अपने भाइयों की हत्या करवाई और अपने पिता शाहजहाँ को जीवनपर्यंत कैद में रखा। बाहरी रूप से धार्मिक अनुशासन का प्रदर्शन करने वाला औरंगज़ेब भीतर से कठोर, निर्दयी और सत्ता-लोलुप था। उसकी नीतियाँ न्याय और सहिष्णुता के स्थान पर भय, दमन और बल-प्रयोग पर आधारित थीं। इसी क्रूर सत्ता की छाया बुंदेलखंड पर भी पड़ी, जहाँ बुंदेली वीर महाराजा चंपतराय और वीरांगना सरंधा को मुग़ल अत्याचार का शिकार होना पड़ा। यह क्रूरता तत्कालीन राजनीति की शक्ति तो बनी, पर दीर्घकाल में उसी के पतन का कारण सिद्ध हुई।

7.41 छत्रसाल: औरंगज़ेब के लिए सबसे बड़ा चुनौती-स्वरूप: चंपतराय का अनाथ पुत्र महाराजा छत्रसाल औरंगज़ेब के लिए एक ऐसा शासक सिद्ध हुआ, जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी। मात्र बाईस वर्ष की आयु में आरंभ हुआ छत्रसाल का विद्रोह शीघ्र ही व्यक्तिगत प्रतिशोध से ऊपर उठकर जन-आंदोलन में परिवर्तित हो गया। बुंदेलखंड की जनता ने इस संघर्ष में अपना आत्मसम्मान और भविष्य जुड़ा हुआ देखा। लगभग सत्ताईस वर्षों तक छत्रसाल ने औरंगज़ेब को बुंदेलखंड में उलझाए रखा। एक के बाद एक भेजे गए मुग़ल सेनानायक पराजित होते गए और कई बार मुग़ल सत्ता को चौथ देकर लौटना पड़ा। अंततः मुग़ल शासन बुंदेलखंड से समाप्त हुआ और स्वतंत्र राज्य की स्थापना सुदृढ़ हुई।

7.42 बहुस्तरीय संकटों में फँसा औरंगज़ेब: औरंगज़ेब का शासनकाल निरंतर युद्धों और आंतरिक संकटों से घिरा रहा। दक्षिण भारत में मराठों के साथ चल रहे दीर्घ युद्ध, राजस्थान में राजपूत राजनीति, दुर्गादास राठौड़ की कुशल कूटनीति और अपने ही पुत्र अकबर का विद्रोह—इन सभी ने औरंगज़ेब को चारों ओर से थका दिया। इन परिस्थितियों में वह स्वयं बुंदेलखंड आकर छत्रसाल से निर्णायक युद्ध करने की स्थिति में भी नहीं रहा। अंततः उसे बुंदेलखंड की स्वतंत्र सत्ता को मौन रूप से स्वीकार करना पड़ा। उसके अंतिम वर्ष निराशा और असफलताओं से भरे रहे। सन् 1707 ईस्वी में उसकी मृत्यु हुई और छत्रसाल के राज्य को नष्ट करने का उसका स्वप्न अधूरा ही रह गया।

7.43 औरंगज़ेब के बाद मुग़ल सत्ता की निष्क्रियता: औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद दिल्ली की गद्दी पर छह मुग़ल सम्राट बैठे, किंतु उनमें से किसी ने भी बुंदेलखंड पर आक्रमण करने का साहस नहीं किया। महाराजा छत्रसाल ने संतुलित कूटनीति के माध्यम से अपने प्रसिद्ध "दिल्ली न तोड़वो" वचन का पालन किया और अनावश्यक टकराव से बचते हुए बाहरी आक्रमणों को रोके रखा। यह उनकी राजनीतिक परिपक्वता और दूरदर्शिता का प्रमाण था। इस प्रकार बुंदेलखंड न केवल सैन्य रूप से, बल्कि कूटनीतिक रूप से भी स्वतंत्र बना रहा।

7.44 आंतरिक गद्दारी के विरुद्ध संघर्ष: महाराजा छत्रसाल का संघर्ष केवल बाहरी मुग़ल सत्ता से नहीं था। उन्होंने बुंदेलखंड के भीतर सक्रिय उन शासकों और सरदारों से भी युद्ध किया, जो स्वार्थ या भयवश मुग़लों के सहयोगी बन गए थे। सन् 1671 से 1696 के बीच कुँवरसेन धंधेरा, राजा इन्द्रमणि, केशवराय डांगी, जसौंधी, वारिस–मवासी और राजा उद्वैत सिंह जैसे गद्दार शासकों को पराजित कर छत्रसाल ने आंतरिक विश्वासघात का अंत किया। इससे बुंदेलखंड में स्वराज्य के लिए आवश्यक आंतरिक एकता स्थापित हुई।

7.45 संयुक्त मुग़ल अभियानों की विफलता: औरंगज़ेब द्वारा चलाए गए दो बड़े संयुक्त मुग़ल अभियानों, विशेषतः 1674–75 और 1675–76 के अभियानों को भी छत्रसाल ने निष्फल कर दिया। इन अभियानों में मुग़ल शक्ति ने विशाल संसाधन और सेना का प्रयोग किया, किंतु बुंदेलखंड के भूगोल, छत्रसाल की गतिशील रणनीति और जनसमर्थन के सामने वे टिक नहीं सके। इससे यह स्पष्ट हो गया कि संख्याबल और साधन ही युद्ध का निर्णायक तत्व नहीं होते।

7.46 मुग़ल सेनानायकों के साथ निरंतर युद्ध: सन् 1671 से 1701 के बीच छत्रसाल को अनेक व्यक्तिगत मुग़ल सेनानायकों से युद्ध करना पड़ा। फिदाई ख़ान, सैयद बहादुर ख़ान, खलीक ख़ान, मुहम्मद हाशिम ख़ान, मुनव्वर ख़ान, करम इलाही, दराब ख़ान, तहब्बर ख़ान, लतीफ़ ख़ान, अफ़रासियाब ख़ान, शमशेर ख़ान, शेर अफ़ग़ान ख़ान और ख़ानजहाँ जैसे सेनानायकों को पराजय का सामना करना पड़ा। इन विजयों ने छत्रसाल की सैन्य क्षमता और रणनीतिक कौशल को पूरे उत्तर भारत में प्रसिद्ध कर दिया।

7.47 औरंगज़ेब से प्रत्यक्ष संघर्ष: सन् 1704 ईस्वी, संवत् 1761 में, महाराजा छत्रसाल का औरंगज़ेब से प्रत्यक्ष युद्ध हुआ। यह संघर्ष केवल दो शासकों के बीच का युद्ध नहीं था, बल्कि क्रूर साम्राज्यवादी सत्ता और स्वतंत्र चेतना के बीच अंतिम टकराव का प्रतीक था। इस संघर्ष के बाद यह स्पष्ट हो गया कि औरंगज़ेब बुंदेलखंड को अपने अधीन करने में पूर्णतः असफल हो चुका है।

7.48 औरंगज़ेब के बाद भी संघर्ष और स्थायित्व: औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद भी मुग़ल सत्ता ने बुंदेलखंड पर दबाव बनाने के प्रयास किए, किंतु छत्रसाल ने उन्हें सफल नहीं होने दिया। दिलेर ख़ान के साथ सन् 1721 में हुए संघर्ष और बंगश के साथ सन् 1721, 1724 तथा 1726–27 के तीन युद्धों में छत्रसाल ने विजय प्राप्त की। इससे यह सिद्ध हुआ कि बुंदेलखंड की स्वतंत्रता किसी एक शासक के पतन पर आधारित नहीं, बल्कि स्थायी शक्ति-संरचना पर टिकी हुई थी।

7.49 अध्याय–सार: सत्ता बनाम चेतना: बुंदेलखंड का इतिहास यह स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि क्रूर सत्ता अंततः ढह जाती है, जबकि स्वतंत्र चेतना अमर रहती है। औरंगज़ेब की शक्ति भय और बल पर आधारित थी, जबकि छत्रसाल की शक्ति जनविश्वास, विवेक और नैतिक साहस से उपजी थी। इसी कारण एक साम्राज्यवादी शासक इतिहास में असफल और विवादास्पद सिद्ध हुआ, जबकि एक क्षेत्रीय योद्धा संपूर्ण भारतीय चेतना का प्रतीक बन गया। महाराजा छत्रसाल का जीवन इस सत्य का जीवंत प्रमाण है कि अन्याय के विरुद्ध संगठित और नैतिक संघर्ष इतिहास की दिशा बदल सकता है।

महाराजा छत्रसाल की राज्य-शासन प्रणाली: सेवा, न्याय और नीति पर आधारित लोककल्याणकारी मॉडल

7.50 शासक-स्वभाव: सत्ता नहीं, लोकमंगल की साधना:- महाराजा छत्रसाल केवल महान योद्धा नहीं थे; वे संवेदनशील, नैतिक और लोकहितकारी शासक भी थे। उनके लिए शासन का अर्थ राजसी वैभव या सत्ता-प्रदर्शन नहीं, बल्कि प्रजा की सुख-शांति, सुरक्षा और समृद्धि का सतत संरक्षण था। जिस युग में कई शासक जनता की श्रम-शक्ति का शोषण कर बड़े निर्माण करवाते थे, उस समय छत्रसाल ने प्रजा को जबरन मजदूरी, अत्याचार और अनावश्यक कर-भार से मुक्त रखा। उनकी नीति का सार यह था कि राज्य का उद्देश्य शोषण नहीं, संरक्षण है। इसी कारण जनमानस में उनके राज्य को "सतयुग के संकेत" जैसा अनुभव किया गया।

उनकी ही पंक्तियाँ उनके शासन-दर्शन को स्पष्ट करती हैं—"छत्रसाल जन पालिवो, अरिहिं घालिबो दोय।" अर्थात प्रजा का पालन और शत्रु का दमन—यही राजा का धर्म है। इस कथन में छत्रसाल की राजसत्ता का मूल उद्देश्य व्यक्त होता है, जहाँ जनता की रक्षा और राज्य की सुरक्षा एक ही नैतिक धुरी पर टिकती है।

7.51 न्याय-व्यवस्था: राजा का प्रथम धर्म: - छत्रसाल के शासन का केंद्र न्याय था। वे न्याय में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप कम रखते थे, किंतु सतत निगरानी के माध्यम से व्यवस्था को निष्पक्ष, सरल और सर्वसुलभ बनाए रखते थे। उनके राज्य में ग्राम-स्तर पर पंचायती

न्याय को विशेष रूप से सुदृढ़ किया गया। परंपरा के अनुसार पंचायतें संध्या समय "अथाई जोर" पर बैठती थीं, जिससे दिनभर के काम के बाद लोग बिना दबाव के अपनी बात रख सकें। ग्राम, जिला और राज्य-स्तरीय पंचायतों की स्पष्ट संरचना थी, जिसका प्रमुख केंद्र मऊ–महेवा क्षेत्र माना जाता है।

इस न्याय-व्यवस्था की एक विशेषता यह थी कि इसमें सभी जातियों की सहभागिता को आवश्यक माना गया और वंचित वर्गों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया। ज़मींदारों या जागीरदारों का न्याय-प्रक्रिया में हस्तक्षेप निषिद्ध था, जिससे न्याय पर निजी सत्ता का दबाव न पड़े।"पंच" को ईश्वर का प्रतिनिधि मानने की परंपरा ने न्याय को केवल कानूनी प्रक्रिया नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व का स्वरूप दिया।

7.52 न्याय-दृष्टि और युद्ध-नीति का समन्वय: - छत्रसाल के शासन-दर्शन का मूल न्याय था और उनकी युद्ध-नीति भी उसी न्याय-बोध से अनुशासित थी। उनकी काव्यवाणी यह संकेत करती है कि न्याय के बिना राज्य-धर्म उतना ही निष्फल है, जितना ताल के बिना राग। वे चाहते थे कि उद्दंड को दंड अवश्य मिले, पर निर्दोष, निर्धन और निर्बल पर अत्याचार न हो। उनका विश्वास था कि करुणा और न्याय का संतुलन ही राज्य में क्लेश का अंत करता है। इसी कारण उनकी न्याय-व्यवस्था केवल विधिसम्मत नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय भी थी।

युद्ध-नीति में वे विवेक, धैर्य और संतुलन को प्रधान मानते थे। उनका सिद्धांत था कि बिना पर्याप्त शक्ति और जनसमर्थन के सीधा युद्ध आत्मघाती हो सकता है। उन्होंने समाज के भीतर समर्थक, तटस्थ, भयग्रस्त और आत्मसम्मान-त्यागी वर्गों की पहचान की और रणनीति यह रखी कि पहले तटस्थ तथा भयग्रस्त जनसमुदाय को विश्वास में लेकर अपने पक्ष में किया जाए। जो लोग स्वार्थवश आत्मसम्मान बेचकर मुग़लों के साथ खड़े हुए, उनके विरुद्ध उन्होंने पहले प्रहार किए। पराजित पक्ष के परिवारों को संरक्षण देना उनकी दूरदर्शिता का परिचायक था, क्योंकि इससे भय घटता और भविष्य के संघर्ष की सामाजिक भूमि मजबूत होती थी।

7.53 मानवीय सैन्य नीति: दया और दंड का संतुलन:- छत्रसाल की युद्ध-नीति का एक विशिष्ट गुण सैनिक-कल्याण और मनोबल था। वे विजय जितना ही महत्व सैनिकों की सुरक्षा को देते थे। इसी मानवीय दृष्टि के कारण शत्रु-शिविरों में भी उनकी नीति की प्रशंसा होती थी और अनेक शत्रु सैनिक आत्मसमर्पण कर उनकी सेना में सम्मिलित हो गए। बंदियों को चौथ लेकर मुक्त करने की नीति ने अनावश्यक रक्तपात को रोका और युद्ध के भय को घटाया। घायल शत्रुओं को सुरक्षित लौटाना या शेर अफ़ग़ान का शव उसके पुत्र को सौंपना जैसी घटनाएँ उनके मानवीय चरित्र के उदाहरण मानी जाती हैं। वहीं बार-

बार आक्रमण करने वालों के प्रति कठोरता भी दिखाई देती है। इस प्रकार, उनकी नीति न तो केवल दया थी, न केवल दंड, बल्कि परिस्थिति के अनुसार विवेकपूर्ण संतुलन था।

7.54 धर्मयुद्ध की व्यापक दृष्टि: संकीर्णता नहीं, न्याय और स्वतंत्रता:- छत्रसाल का धर्मयुद्ध किसी संकीर्ण संप्रदाय के विरुद्ध नहीं था। उनका संघर्ष सत्य, न्याय, मानवीय गरिमा और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए था। वे परिस्थिति के अनुसार रणनीति बदलने में दक्ष थे। यदि सामने अत्यधिक शक्ति दिखाई देती, तो वे पीछे हटना भी जानते थे; अवसर मिलते ही छापामार प्रहार करते थे; और युद्ध को न्यूनतम क्षति के साथ संचालित करने का प्रयास करते थे। इस संतुलित दृष्टि ने उन्हें केवल विजयी नहीं बनाया, बल्कि नैतिक रूप से श्रेष्ठ भी सिद्ध किया।

7.55 राज्य-विस्तार: साम्राज्य नहीं, उत्तरदायित्व: -महाराजा छत्रसाल का लक्ष्य सत्ता-विस्तार नहीं, अधर्म का उन्मूलन था। सामर्थ्य होने पर भी वे निस्पृह रहे और योग्य व्यक्तियों को अधिकार तथा उत्तरदायित्व सौंपते रहे। रीवा विजय के बाद उसे लौटाने का निर्देश और दिल्ली पर आक्रमण न करने का वचन उनकी वैराग्यपूर्ण सत्ता-दृष्टि का प्रमाण है। मुग़ल दरबार में उनके पुत्रों की उपस्थिति और उदार भेंटों को भी इसी दृष्टि से देखा जाता है कि वे अनावश्यक टकराव से बचते हुए दीर्घकालिक सुरक्षा और संतुलन बनाए रखना चाहते थे। इस प्रकार, उनके लिए राज्य का अर्थ भू-सीमाओं का विस्तार नहीं, बल्कि धर्म, न्याय और उत्तरदायित्व का विस्तार था, जहाँ शक्ति नीति से और विजय करुणा से संयमित रहती थी।

7.56 प्रशासनिक विस्तार और भौगोलिक बोध: - लोकवाणी बुंदेलखंड की भौगोलिक व्यापकता और वीरता को सशक्त रूप में अभिव्यक्त करती है—"इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।" परंपरा के अनुसार यह वह भूमि थी जहाँ महाराजा छत्रसाल के नेतृत्व में शत्रु को बार-बार पराजय मिली और किसी को स्थायी विजय का साहस न हुआ। उनके अधीन लगभग 75,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र, 44 छावनियाँ और 36 प्रशासनिक विभाग होने का उल्लेख मिलता है। इनका संचालन योग्य जनों और संत-स्वभाव के अधिकारियों द्वारा किया जाता था, जिससे प्रशासन में कठोरता के साथ नैतिकता का संतुलन बना रहे। उनकी राजमुद्रा का श्लोक भी उनके आत्मविश्वास और प्रतिष्ठा का संकेतक माना जाता है।

7.57 राजकोषीय दर्शन: प्रजा की समृद्धि ही राज्य की वास्तविक संपदा:- छत्रसाल के राजकोषीय दर्शन का मूल सिद्धांत था कि प्रजा की समृद्धि ही राज्य की वास्तविक संपदा है। उनकी कर-प्रणाली उदार मानी जाती है और शोषण का स्थान नहीं था। वे राजा को माली के समान मानते थे, जो दुर्बलों को संरक्षण देकर समृद्धि उपजाता है।

महाराजा बनने के बाद उनके राज्य में 11,665 गाँव और 7.5–2 करोड़ रुपये की वार्षिक आय का उल्लेख मिलता है। आय के स्रोतों में चौथ, मुग़ल खजानों पर आक्रमण से प्राप्त धन, पन्ना के हीरे का खनन और अन्य वैध प्राप्तियाँ शामिल मानी जाती हैं। आपातकाल के लिए एक गुप्त कोष सुरक्षित रखने का उल्लेख भी उनके शासन की दूरदर्शिता को दर्शाता है।

सन् 1721 ईस्वी में प्राप्त एक बड़े खजाने के संदर्भ में छत्रसाल का निर्देश विशेष उल्लेखनीय माना जाता है, जिसमें लोकहित और पर्यावरणीय कार्यों में धन लगाने तथा शेष धन को भविष्य-सुरक्षा के लिए संरक्षित करने की बात कही गई। यह उनके निष्काम सेवा-भाव, नैतिकता और लोककल्याणकारी शासन का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

इस तरह, महाराजा छत्रसाल की राज्य-शासन प्रणाली सेवा, न्याय और नीति पर आधारित एक लोककल्याणकारी मॉडल के रूप में सामने आती है। उनकी व्यवस्था में प्रजा को शोषण से मुक्त रखने की स्पष्ट नीति, पंचायती न्याय का सुदृढ़ ढांचा, युद्ध-नीति में मानवीयता, और राज्य-विस्तार में वैराग्यपूर्ण उत्तरदायित्व—ये सभी तत्व मिलकर उन्हें केवल विजयी योद्धा नहीं, बल्कि युगद्रष्टा शासक सिद्ध करते हैं। इस शासन-दर्शन में शक्ति नीति से जुड़ती है और भक्ति न्याय से, इसलिए यह मॉडल केवल ऐतिहासिक महत्त्व नहीं रखता, बल्कि आज भी सुशासन, विकेंद्रीकरण और नैतिक नेतृत्व के लिए प्रेरक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

सेना की गतिविधियाँ (सैन्य संचालन): अल्प साधनों से आत्मनिर्भर सैन्य-तंत्र तक

7.58 प्रारंभिक सैन्य स्थिति और रणनीतिक उड़ान:- महाराजा छत्रसाल को पैतृक रूप से कोई संगठित या समृद्ध सैन्य शक्ति प्राप्त नहीं हुई थी। उनका सैन्य जीवन पाँच घुड़सवारों और पच्चीस पैदल सिपाहियों से आरंभ हुआ। किंतु आत्मविश्वास, जन-समर्थन और दूरदर्शी नेतृत्व के बल पर उन्होंने इस छोटे से प्रारंभ को एक सशक्त सैन्य-तंत्र में परिवर्तित कर दिया। महाराजा बनने तक उनकी सेना में चालीस से पचास हज़ार सैनिक, बारह से पंद्रह हज़ार घुड़सवार, पाँच सौ के लगभग तोपें और बहत्तर प्रमुख सेनानायक सम्मिलित थे। बड़े अभियानों के समय यह संख्या एक लाख से अधिक तक पहुँच जाती थी। यह सेना पूर्णतः केंद्रीकृत न होकर विकेंद्रीकृत ढाँचे में संगठित थी, जिसमें हृदयशाह के अधीन अलग घुड़सवार टुकड़ी जैसे उदाहरण मिलते हैं। इस संरचना ने सेना को लचीलापन, गति और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कार्य करने की क्षमता दी।

7.59 प्रारंभिक सहयोगी, जनजातियाँ और नैतिक नेतृत्व:- प्रारंभिक संघर्ष के वर्षों में छत्रसाल को महाबली तेली, लल्लू गड़रिया जैसे विश्वस्त सहयोगियों तथा विंध्यांचल क्षेत्र की जनजातियों का निर्णायक समर्थन मिला। इन वर्गों ने न केवल सैन्य सहयोग दिया, बल्कि स्थानीय भूगोल और सामाजिक नेटवर्क के माध्यम से संघर्ष को जनाधारित बनाया। सन् 1675 ईस्वी में धामोनी के फौजदार से छीनी गई पहली तोप ने बुंदेली सेना के मनोबल को नई दिशा दी। इसके बाद धंधेरों पर विजय और केशवराय डांगी के साथ द्वंद्व द्वारा अनावश्यक रक्तपात से बचने की नीति ने छत्रसाल को एक नैतिक नेता के रूप में स्थापित किया। इसी नेतृत्व-गुण के कारण लगभग सत्तर ज़मींदार और सामंत स्वेच्छा से उनके अधीन आ गए।

7.60 वित्तीय आधार, समावेशी सेना और सैन्य आत्मनिर्भरता:- वित्तीय संकट का समाधान महामति प्राणनाथ जी के आध्यात्मिक संबल और पन्ना के हीरा-क्षेत्र से प्राप्त संसाधनों द्वारा हुआ। छत्रसाल की सेना बहुजातीय और समावेशी थी। हिंदू और मुस्लिम—सभी वर्गों का उन्हें विश्वास प्राप्त था। मऊ (महेवा) को मुख्य सैन्य छावनी बनाकर उन्होंने सैन्य संचालन को संगठित किया। शीघ्र ही बुंदेलखंड हथियार, गोला-बारूद और घोड़ों के मामले में आत्मनिर्भर बन गया। इस सैन्य-उद्योग ने न केवल युद्ध-क्षमता बढ़ाई, बल्कि स्थानीय स्तर पर रोजगार और सामाजिक ऊर्जा को भी सुदृढ़ किया।

7.61 सैन्य संसाधन: अभाव से आत्मनिर्भरता तक:- महाराजा छत्रसाल ने सैन्य संसाधनों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता को अपनी रणनीति का आधार बनाया। धामोनी के युद्ध में मुग़लों से छीनी गई तोपों से उनके तोपख़ाने की नींव पड़ी। आगे चलकर श्रीनगर (कान्तोन्महूबा) में तोप-निर्माण का कारखाना स्थापित किया गया, जहाँ फ़ौजे मियाँ के अधीन तोपें और गोले तैयार होते थे। घुड़सवार सेना को विशेष महत्व दिया गया और अच्छी नस्ल के घोड़े, ऊँट तथा प्रशिक्षित हाथी सेना का हिस्सा बने। राजधानी पन्ना में सदैव पर्याप्त सैनिक और तोपें तैनात रखी जाती थीं, जिससे आकस्मिक आक्रमण की स्थिति में त्वरित रक्षा संभव हो सके। इस आत्मनिर्भर सैन्य आधार ने ही छत्रसाल को वास्तविक अर्थों में स्वतंत्र "महाराजा" का स्वरूप प्रदान किया।

7.62 संधि-राजनीति: युद्ध के बीच नीति का प्रयोग:- लगातार युद्धों से जन-थकान और शक्ति-संतुलन को समझते हुए छत्रसाल ने संधियों को स्थायी समझौते की बजाय रणनीतिक विराम के रूप में उपयोग किया। इन संधियों का उद्देश्य समय प्राप्त करना, संगठन को सुदृढ़ करना और शत्रु की नीति को समझना था। तहब्बर ख़ान की मध्यस्थता से हुई संधि में औरंगज़ेब का उद्देश्य विश्वासघात था, जिसे छत्रसाल ने समय रहते भाँप

लिया। इसी समझ के आधार पर उन्होंने आगे की सैन्य और कूटनीतिक चालें तय कीं, जिससे मुग़ल योजना निष्फल हो गई।

7.63 दक्षिण भारत में सैन्य सहायता और प्रत्युत्तर: -सन् 1679 ईस्वी के बाद संधि के अंतर्गत छत्रसाल ने दक्षिण भारत में मुग़लों को सैन्य सहायता दी, जिससे औरंगज़ेब को अस्थायी लाभ हुआ। किंतु इसी अवधि में मुग़लों ने बुंदेलखंड में छत्रसाल के कुछ किलों पर कब्ज़ा कर लिया। जैसे ही यह सूचना मिली, छत्रसाल ने कूटनीति से कूटनीति का उत्तर दिया। उन्होंने तीव्र वापसी की योजना बनाई और सुनियोजित अभियानों के माध्यम से छीने गए दुर्ग पुनः प्राप्त कर लिए। इस घटना ने स्पष्ट कर दिया कि छत्रसाल संधि को कमजोरी नहीं, बल्कि अवसर के रूप में प्रयोग करते थे।

7.64 राज्य-विभाजन: उत्तराधिकार नहीं, संघात्मक रणनीति: -अपने शासन के उत्तरार्ध में छत्रसाल ने राज्य को तीन रणनीतिक भागों में विभाजित किया। यह विभाजन उत्तराधिकार की सामान्य प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक संघात्मक सुरक्षा-रणनीति था। हिरदे शाह को पन्ना, गढ़ाकोटा और कालिंजर का क्षेत्र दिया गया। जगतराज को जैतपुर, अजयगढ़, बिजावर और बाँदा का दायित्व सौंपा गया। बाजीराव पेशवा को झाँसी, जालौन, सिरोंज और सागर का क्षेत्र मिला। यह व्यवस्था उत्तर–दक्षिण समन्वय, साझा रक्षा और समान बँटवारे की शर्तों पर आधारित थी। इस संघात्मक ढाँचे ने बुंदेलखंड की स्वतंत्रता को दीर्घकालिक स्थायित्व प्रदान किया।

7.65 महाराजा छत्रसाल की युद्ध-कला: शौर्य और रणनीति का संतुलन:- महाराजा छत्रसाल की युद्ध-कला केवल पराक्रम पर नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण रणनीति पर आधारित थी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि लक्ष्य के बिना किया गया बलिदान वीरता नहीं होता। पारंपरिक "पीठ न दिखाने" की धारणा से आगे बढ़कर उन्होंने पीछे हटने, पुनर्गठन करने और फिर निर्णायक प्रहार करने को युद्ध-कौशल का अंग माना। छापामार युद्ध-नीति उनके संचालन की पहचान थी, जिसमें असावधान शत्रु पर अचानक आक्रमण, आवश्यकता पड़ने पर त्वरित वापसी और पुनः प्रहार शामिल था। इससे जन-धन की हानि न्यूनतम रहती थी।

भूगोल उनके लिए प्रयोगशाला के समान था। घाटियाँ, बीहड़, वन और दुर्ग—सबका उपयोग कर उन्होंने संख्या-प्रधान मुग़ल सेनाओं की शक्ति को निष्प्रभावी किया। उनकी सेना तोप, बंदूक, अग्निशस्त्र, सरकफंद और घुड़सवार युद्ध में दक्ष थी। संसाधनों को उन्होंने धर्म-रक्षा का साधन माना, न कि दिखावे का माध्यम। अग्रिम पंक्ति में रहकर सैनिकों का मनोबल बढ़ाना, टुकड़ी-आधारित आक्रमण, भ्रम-नीति और समय-साधना के द्वारा वे कई बार हारी हुई बाज़ी भी पलट देते थे। चक्रव्यूह और द्वार-नीति का प्रयोग परिस्थिति के

अनुसार किया जाता था। उनकी सेना की तीव्र गति ऐसी थी कि एक दिन में लगभग एक सौ आठ किलोमीटर तक पहुँचकर प्रहार करना और उतनी ही तेजी से हट जाना संभव था, जिससे शत्रु सदैव असंतुलित रहता था।

इस तरह, महाराजा छत्रसाल का सैन्य संचालन केवल युद्ध-कौशल का उदाहरण नहीं, बल्कि जनाधारित संगठन, आत्मनिर्भर अर्थतंत्र और नैतिक नेतृत्व का सफल समन्वय था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सीमित साधनों के बावजूद यदि नेतृत्व स्पष्ट, नीति संतुलित और उद्देश्य न्यायपूर्ण हो, तो एक सशक्त और स्थायी सैन्य-तंत्र खड़ा किया जा सकता है। उनकी युद्ध-कला ने भारतीय सैन्य परंपरा में व्यर्थ बलिदान से हटकर लक्ष्य-केंद्रित, नैतिक और व्यावहारिक युद्ध का स्थायी मानक स्थापित किया। इसी कारण छत्रसाल को केवल विजेता सेनापति नहीं, बल्कि युगद्रष्टा सैन्य-नेता के रूप में स्मरण किया जाता है।

महाराजा छत्रसाल के शासनकाल में सार्वजनिक जीवन: स्वर्ण युग की सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना

7.66 सार्वजनिक जीवन का पुनर्निर्माण: भय से आत्मसम्मान तक:- महाराजा छत्रसाल के शासनकाल में बुंदेलखंड के सार्वजनिक जीवन में गहन और स्थायी परिवर्तन हुए। लगभग तैंतालीस वर्षों के मुग़ल अत्याचारों से उत्पन्न भय, दासता और हीनता की मानसिकता को उन्होंने क्रमशः समाप्त किया। उनके नेतृत्व में बुंदेली समाज ने फिर से आत्मसम्मान, सांस्कृतिक गर्व और स्वराज्य-बोध को अनुभव किया। यही कारण है कि इस काल को बुंदेलखंड के इतिहास में एक "स्वर्ण युग" के रूप में स्मरण किया जाता है। यह युग केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्जागरण का भी काल था।

7.67 सामाजिक समरसता और नागरिक सुरक्षा:- छत्रसाल के शासन में सामाजिक समरसता राज्य-नीति का मूल तत्व थी। हिंदू और मुस्लिम समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार और प्रतिनिधित्व प्राप्त था। जाति, वर्ग या जन्म के आधार पर भेदभाव न्यूनतम रखा गया और सम्मान का आधार योग्यता, सेवा और आचरण बना। किसान, कारीगर और श्रमिक सुरक्षित थे तथा उनके श्रम का शोषण नहीं होता था। कर-संग्रह मानवीय और उदार था, जिससे आजीविका पर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ता था। सेना और प्रशासन में किसी एक समुदाय या वर्ग का वर्चस्व नहीं था, जिससे सत्ता का चरित्र समावेशी बना रहा।

7.68 न्याय व्यवस्था और जनविश्वास:- छत्रसाल की न्याय-व्यवस्था तीन-स्तरीय संरचना पर आधारित थी, जिसमें केंद्र, परगना और ग्राम पंचायतें सम्मिलित थीं। पंचायतों में सभी वर्गों की सहभागिता अनिवार्य थी और ज़मींदारों या सामंतों को न्याय-प्रक्रिया में हस्तक्षेप का अधिकार नहीं था। प्राकृतिक आपदाओं या कठिन परिस्थितियों में करों में रियायत दी जाती थी, जिससे जनता पर संकट का बोझ कम हो। यह व्यवस्था सरल, संतुलित और निष्पक्ष थी, जिसके कारण न्याय के प्रति जनविश्वास दृढ़ हुआ। न्याय केवल दंड का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन का माध्यम बना।

7.69 जीवन-शैली, वेशभूषा और सांस्कृतिक आत्मविश्वास:- महाराजा छत्रसाल स्वयं अत्यंत सरल जीवन जीते थे और व्यक्तिगत उपहार स्वीकार नहीं करते थे। पर्वों और उत्सवों के अवसर पर वे दान के माध्यम से जनता में प्रसन्नता बाँटते थे। पुरुष और महिलाएँ सुंदर वस्त्र और आभूषण पहनते थे, और महिलाओं में निर्भीकता तथा सामाजिक सहभागिता स्पष्ट दिखाई देती थी। भोजन सात्त्विक और संतुलित था। लोकजीवन में खेल, कुश्ती, शिकार, नट-विद्या और प्रकृति से जुड़े मनोरंजन प्रचलित थे, जो शारीरिक, मानसिक और सांस्कृतिक स्फूर्ति का स्रोत बने।

7.70 पर्व, मेले और धार्मिक स्वतंत्रता: - छत्रसाल के शासन में धार्मिक स्वतंत्रता एक मूल सिद्धांत थी। हिंदू और मुस्लिम समुदाय अपने-अपने पर्व—जैसे होली, दशहरा, दीपावली, बसंतोत्सव तथा अन्य उत्सव—निर्भय होकर मनाते थे। राज्य किसी एक धर्म का पक्षधर नहीं, बल्कि सभी के लिए सुरक्षा और सम्मान का दायित्व निभाता था। इस नीति ने धार्मिक सह-अस्तित्व को सुदृढ़ किया और सामाजिक तनाव को न्यूनतम रखा।

7.71 आर्थिक जीवन और लोककल्याणकारी निर्माण: - इस काल में कृषि और अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए जलाशयों, झीलों, बावड़ियों और नहरों का निर्माण तथा जीर्णोद्धार किया गया। इससे कृषि उत्पादन बढ़ा और ग्रामीण जीवन में स्थिरता आई। राज्य आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर था और सैन्य उपकरणों का निर्माण भी स्थानीय स्तर पर होता था। अनावश्यक भव्य निर्माण के स्थान पर जनकल्याण और उपयोगी संरचनाओं को प्राथमिकता दी गई। विकास का यह मॉडल दिखावे के बजाय आवश्यकता और संतुलन पर आधारित था।

7.72 लोकभाषा में प्रशासन और शासन की पारदर्शिता: - छत्रसाल के शासन की एक विशेषता यह थी कि राजकार्य लोकभाषा बुंदेली में, देवनागरी लिपि में संचालित होता था। फारसी पत्रों का बुंदेली अनुवाद कराया जाता था, जिससे शासन जनता के लिए सुलभ और पारदर्शी बना। स्वयं महाराजा छत्रसाल बुंदेली गद्य के समर्थ लेखक थे। भाषा की यह नीति सत्ता और समाज के बीच दूरी को कम करने का प्रभावी माध्यम बनी।

7.73 शिक्षा और साहित्य का उत्कर्ष: - छत्रसाल के काल में शिक्षा और ज्ञान के प्रसार के प्रति विशेष जागरूकता दिखाई देती है। इसी कारण बुंदेलखंडवासियों ने उन्हें "जगद्गुरु" की उपाधि दी। महामति प्राणनाथ जी ने विक्रम संवत 1740 से 1748 के बीच खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिंगार, सिंधी, मारफत सागर और कयामतनामा जैसे ग्रंथों के माध्यम से गूढ़ तात्त्विक ज्ञान का प्रकाशन किया। उनके शिष्य स्वामी लालदास ने बीटक, बड़ा मज्जा और छोटी वृत्त जैसे ग्रंथों की रचना की, जबकि नवरंग स्वामी ने चौबीस ग्रंथों में विश्व-धर्मों का सार प्रस्तुत किया।

छत्रसाल के दरबार में ब्रजभूषण स्वामी, स्नेह सखी, बख्शी हंसराज, लाल कवि—जिनकी कृतियों में *छत्रप्रकाश* और *राजविनोद* विशेष उल्लेखनीय हैं—तथा राष्ट्रकवि भूषण जैसे महान कवि उपस्थित थे। कुल मिलाकर छत्रसाल के दरबार में बयासी कवियों की परंपरा विकसित हुई। उनके पुत्र हृदयशाह ने *हृदय प्रकाश* नामक आध्यात्मिक ग्रंथ की रचना की। छत्रसाल स्वयं भी कविराज थे, जिनकी रचनाएँ *छत्रसाल ग्रंथावली* और *छत्रसाल काव्यांजलि* में संकलित हैं।

7.74 चित्रकला और संगीत का स्वर्णकाल: - छत्रसाल काल में चित्रकला का विशेष विकास हुआ। परंपरा के अनुसार महामति प्राणनाथ जी स्वयं चित्रकला के ज्ञाता थे और उनके द्वारा बनाए गए स्वर्ण–रजत रंगों से युक्त चित्र आज भी उपलब्ध हैं। छतरपुर के छत्रसाली चबूतरे की दीवारों पर बनी चित्रकारी इस युग की कला का जीवंत प्रमाण है। औरंगज़ेब की चित्रकला में अरुचि के कारण मुग़ल दरबार के अनेक चित्रकार अन्य राज्यों में चले गए, जिससे बुंदेलखंड इस कला का प्रमुख केंद्र बन गया।

संगीत के क्षेत्र में भी यह काल अत्यंत समृद्ध रहा। महामति प्राणनाथ के साथ आए ब्रह्ममुनि संगीत-निपुण थे और महाराजा के दरबार में संगीतज्ञों की बहुलता थी। बुंदेलखंड की आत्मा में संगीत रच-बस गया। दिल्ली दरबार के निर्जीव हो जाने के बाद अनेक संगीतज्ञों ने छत्रसाल के दरबार में आश्रय पाया, जिससे यहाँ संगीत की परंपरा और समृद्ध हुई।

7.75 कवि-राजा और मानवतावादी शासक की विरासत: - महाराजा छत्रसाल केवल तलवार के नहीं, कलम के भी स्वामी थे। उनका विश्वास था कि जहाँ तलवार थक जाती है, वहाँ कविता सत्य, न्याय और स्वतंत्रता की रक्षा करती है। इसी कारण उन्होंने कवियों को सर्वोच्च सम्मान दिया और साहित्य को शासन का नैतिक आधार बनाया। उनके लिए सच्चा कवि वही था जिसकी वाणी चित्त को स्थिर करे और धर्म तथा सत्य का पक्ष ले।

छत्रसाल का व्यक्तित्व एक अद्वितीय मानवतावादी हिंदू शासक का था। उनका संघर्ष किसी धर्म या समुदाय के विरुद्ध नहीं, बल्कि अन्याय, धार्मिक उग्रता और अमानवीय प्रवृत्तियों के विरुद्ध था। हिंदू होते हुए भी उन्होंने मुसलमानों का दमन नहीं किया। उनके राज्य में गीता–भागवत के साथ कुरान का भी सम्मान था और सभी को एक ही ईश्वर की संतान माना जाता था। शत्रु क्षमा माँगते तो मुक्त कर दिए जाते, घायल सैनिकों को सुरक्षित पहुँचाया जाता और कई मुस्लिम सेनानायक उनके विश्वस्त सहयोगी बने।

7.76 स्वर्ण युग की चेतना: - महाराजा छत्रसाल का शासनकाल बुंदेलखंड के इतिहास में शक्ति और करुणा, नीति और भक्ति, शौर्य और शिष्टता का अद्वितीय संगम प्रस्तुत करता है। यह युग केवल सैन्य या राजनीतिक उपलब्धियों का नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक उत्कर्ष और मानव-मर्यादा की पुनर्स्थापना का काल था। छत्रसाल की विरासत यही सिखाती है कि सच्चा शासन वही है, जो प्रजा को भय से मुक्त कर आत्मसम्मान, समृद्धि और सांस्कृतिक गौरव प्रदान करे।

महाराजा छत्रसाल बुंदेला (1649–1731 ई.): जीवन-परिचय और मुख्य ऐतिहासिक घटनाएँ

7.77 पूर्व छत्रसाल काल: बुंदेला वंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: - महाराजा छत्रसाल को समझने के लिए बुंदेला वंश की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। बुंदेला वंश की उत्पत्ति गहिवंशी क्षत्रिय राजा पंचम से मानी जाती है, जिनके समय (लगभग 1040 ई.) 'विंध्येला' शब्द से आगे चलकर 'बुंदेला' नाम प्रचलित हुआ। यह वंश विंध्य क्षेत्र में स्वतंत्र क्षत्रिय सत्ता के रूप में विकसित हुआ।

1071 ई. में राजा वीर ने महौनी–जगम्मनपुर को राजधानी बनाकर बुंदेलखंड की स्वतंत्र राजनीतिक पहचान की नींव रखी। 1251 ई. में वीरपाल ने गढ़ कुंदर को दूसरी राजधानी बनाया, जिससे बुंदेला सत्ता का विस्तार हुआ। 1501 ई. में रुद्रप्रताप द्वारा ओरछा की स्थापना तीसरी राजधानी के रूप में हुई, जो आगे चलकर बुंदेलखंड की राजनीति का प्रमुख केंद्र बना।

मुग़ल काल में मधुकरशाह (1554 ई.) ने अकबर की अधीनता का खुला विरोध किया, जिससे बुंदेला स्वाभिमान की परंपरा और सुदृढ़ हुई। जहाँगीर के समय वीरसिंह देव (1606 ई.) एक प्रभावशाली शासक बने। किंतु 1627 से 1641 ई. के बीच मुग़ल षड्यंत्रों, आंतरिक संघर्षों और सत्ता-राजनीति के कारण चंपतराय और उनके परिवार पर गंभीर अत्याचार हुए। यही पृष्ठभूमि आगे चलकर छत्रसाल के विद्रोह का आधार बनी।

छत्रसाल के जीवनकाल में ओरछा के शासक—जैसे सुजानसिंह, इंद्रमणि, जसवंतसिंह, भगवंतसिंह और उद्दैतसिंह—कभी सहयोगी तो कभी विरोधी बने रहे। आगे चलकर 1736 से 1947 तक ओरछा एक पृथक रियासत के रूप में बना रहा।

7.78 छत्रसाल काल (1649–1731): जीवन-चरण और व्यक्तित्व का विकास: - महाराजा छत्रसाल का जन्म 4 मई 1649 ई. (ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया) को हुआ। उनके पिता महाराजा चंपतराय मऊ–महेवा की जागीर के स्वामी और मुग़ल सत्ता के विरोधी थे। छत्रसाल का जीवन प्रारंभ से ही संघर्ष और अस्थिरता से जुड़ा रहा।

1649 से 1661 ई. तक का काल उनका प्रारंभिक विकास काल था। मात्र बारह वर्ष की आयु में माता–पिता के बलिदान के साथ वे अनाथ हो गए। यह घटना उनके जीवन की निर्णायक मोड़ बनी। 1661 से 1671 ई. तक का दशक उनके प्रारंभिक संघर्ष का काल रहा, जिसमें शोक धीरे-धीरे संकल्प में बदलता गया।

1671 से 1682 ई. तक का काल विकास का कार्यान्वयन चरण माना जाता है, जब उन्होंने संगठित विद्रोह, सैन्य निर्माण और जनाधार की स्थापना की। 1682 से 1687 ई. तक का काल स्थापना चरण था, जिसमें महाराजा अभिषेक, राजधानी का विकास और स्वतंत्र राज्य की संरचना सुदृढ़ हुई। 1671 से 1727 ई. तक का समय उनका मुख्य युद्धकाल रहा, जिसमें उन्होंने निरंतर संघर्ष द्वारा बुंदेलखंड की स्वतंत्रता सुरक्षित रखी।

7.79 प्रमुख ऐतिहासिक घटनाएँ: संक्षिप्त कालक्रम: - छत्रसाल के जीवन में पहली बड़ी वीरता लगभग 1660 ई. में दिखाई देती है, जब उन्होंने मंदिर की रक्षा करते हुए एक मुग़ल सरदार का वध किया। यह घटना उनके विद्रोही स्वभाव और धर्मरक्षा के संकल्प का प्रारंभिक संकेत थी।

1665–1666 ई. के बीच वे मिर्ज़ा राजा जयसिंह की मुग़ल सेना में सम्मिलित हुए और मनसब भी प्राप्त किया, किंतु 1667 ई. में मुग़ल सेना त्याग दी। इसी वर्ष उनकी ऐतिहासिक भेंट छत्रपति शिवाजी से हुई, जिसने उनके स्वराज्य-दर्शन को वैचारिक दृढ़ता दी।

1671 ई. में धनधराओं पर विजय के साथ उनके विद्रोह का औपचारिक आरंभ हुआ। 1684 से 1688 ई. के बीच महाराजा अभिषेक, राजतिलक और दिग्विजय यात्राओं के माध्यम से उनका स्वतंत्र राज्य औपचारिक रूप से स्थापित हुआ। 1704 ई. में औरंगज़ेब से उनका प्रत्यक्ष युद्ध हुआ, जो क्रूर साम्राज्यवादी सत्ता और स्वतंत्र चेतना के टकराव का प्रतीक माना जाता है। 4 दिसंबर 1731 ई. को महाराजा छत्रसाल का निधन हुआ, पर उनका राज्य और आदर्श जीवित रहे।

7.80 युद्ध-सार और सैन्य उपलब्धियाँ:- महाराजा छत्रसाल के जीवन में युद्ध केवल विस्तार का साधन नहीं, बल्कि आत्मरक्षा और न्याय का उपकरण थे। परंपरा के अनुसार

उन्होंने कुल 252 युद्ध लड़े और सभी में विजय प्राप्त की। इन संघर्षों में 1671 से 1696 के बीच गद्दार हिंदू शासकों से युद्ध, 1671 से 1701 के बीच मुग़ल संयुक्त और व्यक्तिगत सेनानायकों से संघर्ष, 1704 ई. में औरंगज़ेब से प्रत्यक्ष युद्ध तथा 1721 से 1727 ई. तक औरंगज़ेबोत्तर मुग़ल शक्तियों से संघर्ष सम्मिलित हैं। इन विजयों ने बुंदेलखंड को स्थायी स्वतंत्रता प्रदान की।

7.81 उत्तर छत्रसाल काल और ऐतिहासिक विरासत: महाराजा छत्रसाल के निधन के बाद उनके उत्तराधिकारियों ने बुंदेलखंड में स्वराज्य की परंपरा को आगे बढ़ाया। यद्यपि राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलीं, फिर भी उनकी शासन-नीति, मानवतावादी दृष्टि और जनाधारित मॉडल का प्रभाव दीर्घकाल तक बना रहा। बुंदेलखंड में आत्मसम्मान, स्वतंत्र चेतना और लोककल्याण की जो परंपरा उन्होंने स्थापित की, वह उनके बाद भी स्मृति और व्यवहार में जीवित रही।

इस तरह, महाराजा छत्रसाल बुंदेला परंपरा के शिखर पुरुष थे। उन्होंने अल्प साधनों से स्वराज्य स्थापित किया, मुख्य बावन निर्णायक विजयों के माध्यम से मुग़ल वर्चस्व को चुनौती दी और बुंदेलखंड को न्याय, मानवता और आत्मसम्मान का स्वर्ण युग प्रदान किया। उनका जीवन यह सिद्ध करता है कि इतिहास केवल विशाल साम्राज्यों से नहीं, बल्कि संकल्प, विवेक और जनविश्वास से भी रचा जाता है।

महाराजा छत्रसाल बुंदेला: इतिहास, विरासत और आधुनिक भारत के लिए संदेश

7.82 इतिहास से विरासत तक: एक समग्र दृष्टि: - महाराजा छत्रसाल बुंदेला का जीवन केवल एक क्षेत्रीय शासक या सफल योद्धा की कथा नहीं है, बल्कि भारतीय इतिहास में स्वराज्य, नैतिक शासन और मानव-मूल्य आधारित सत्ता का एक पूर्ण मॉडल प्रस्तुत करता है। उन्होंने ऐसे कालखंड में स्वतंत्रता की मशाल जलाई, जब अधिकांश राजसत्ताएँ भय, स्वार्थ या समझौते के मार्ग पर थीं। छत्रसाल ने यह सिद्ध किया कि इतिहास की दिशा केवल बड़े साम्राज्यों से नहीं, बल्कि संकल्पवान व्यक्तित्व और जन-आधारित चेतना से भी बदल सकती है।

उनका संघर्ष मुग़ल सत्ता के विरुद्ध था, पर उनका लक्ष्य केवल सत्ता-परिवर्तन नहीं, बल्कि भय से मुक्ति और आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना था। इसी कारण उनका स्वराज्य तलवार से अधिक जनविश्वास पर टिका रहा।

7.83 स्वराज्य का व्यापक अर्थ: राजनीति से आगे: - छत्रसाल के लिए स्वराज्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था। वह आत्मसम्मान, न्याय, करुणा और सांस्कृतिक

स्वायत्तता का समन्वित आदर्श था। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि यदि जनता भयग्रस्त, शोषित या विभाजित हो, तो स्वतंत्र राज्य भी अर्थहीन हो जाता है।
उनका शासन मॉडल यह सिखाता है कि—

- न्याय सत्ता की कृपा नहीं, बल्कि उसका प्रथम कर्तव्य है।
- धर्म सत्ता का उपकरण नहीं, बल्कि विवेक और समरसता का स्रोत होना चाहिए।
- शक्ति का मूल्य तभी है, जब वह नीति और करुणा से नियंत्रित हो।

7.84 शक्ति और करुणा का संतुलन: समर्पण से उत्पन्न सामर्थ्य — महाराजा छत्रसाल: - भारतीय इतिहास में महाराजा छत्रसाल उन विरल शासकों में हैं, जिन्होंने शक्ति और करुणा, दंड और दया तथा युद्ध और नैतिकता के बीच संतुलन स्थापित किया। उनके लिए युद्ध कोई स्थायी नीति नहीं, बल्कि अन्याय के प्रतिकार का अंतिम विकल्प था। संघर्ष के समय उन्होंने अनुशासन, रणनीति और न्यूनतम जन-हानि को महत्व दिया, जबकि शांति की अवस्था में मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि रखा। शत्रुओं के प्रति संयम, पराजितों के परिवारों की रक्षा और बहुधर्मी सेना का गठन उनके मानवतावादी दृष्टिकोण को दर्शाता है।

इस बाह्य संतुलन की जड़ें उनके आंतरिक समर्पण में थीं। श्री प्राणनाथ जी से प्रथम भेंट पर छत्रसाल ने राजसी अहंकार का परित्याग करते हुए कहा— "छत्रसाल तिन ऊपर, तन मन धन कुरबान।" यह उद्घोष उनके जीवन-दर्शन का सार था। किरंतन और बीतक ग्रंथों के अनुसार शस्त्र उठाना उनके लिए राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं, बल्कि गुरु-प्रेरित नैतिक दायित्व था।

उन्होंने अपने राज्य, सत्ता और अहंकार को श्री प्राणनाथ जी के चरणों में अर्पित कर दिया—"अपनो आपा सब दियो… कही धन धन दिन है आज।" इस समर्पण के फलस्वरूप उन्हें आध्यात्मिक तेज और नेतृत्व-सामर्थ्य प्राप्त हुआ— "पहले दाता हम भए… पीछे दाता गुरू भए।" बीतक में वर्णित है कि गुरु-कृपा से उन्हें 'हुक्म' की शक्ति मिली—जो भौगोलिक सत्ता नहीं, बल्कि नैतिक प्रभुत्व का प्रतीक थी।

छत्रसाल ने सिद्ध किया कि सच्चा योद्धा वह है, जो केवल शत्रु को नहीं, बल्कि अपने अहंकार, स्वार्थ और लोभ को भी पराजित करे। उनके जीवन से तीन प्रमुख शिक्षाएँ मिलती हैं—1. कर्तव्य-बोध: कर्तव्य को सेवा और सत्य का माध्यम मानना। 2. बलिदान: व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर न्याय के लिए जीना। 3. समर्पण: सेवा और प्रेम का संगम ही सच्ची उपासना है।

अंततः महाराजा छत्रसाल का जीवन यह दर्शाता है कि जब सेवा, प्रेम और समर्पण जीवन का स्वभाव बन जाते हैं, तब सत्ता साधन नहीं, साधना बन जाती है और

राष्ट्र नैतिक चेतना का विस्तार। इसी भाव का सार है—"छत्रसाल तिन ऊपर, तन मन धन कुरबान।"

7.85 सांस्कृतिक और बौद्धिक विरासत: छत्रसाल केवल सेनापति या प्रशासक नहीं, बल्कि कवि-राजा थे। उनके शासनकाल में साहित्य, शिक्षा, संगीत और कला का अभूतपूर्व उत्कर्ष हुआ। 82 कवियों का संरक्षण, लोकभाषा में शासन, और महामति प्राणनाथ के तारतम ज्ञान का प्रसार—इन सबने बुंदेलखंड को एक सांस्कृतिक शक्ति-केंद्र बना दिया।

उनकी काव्य-दृष्टि आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि वह सत्ता को लोकसेवा से जोड़ती है और शासक को नैतिक उत्तरदायित्व की याद दिलाती है।

7.86 आधुनिक भारत के लिए छत्रसाल का संदेश:- आज के लोकतांत्रिक और बहुलतावादी भारत में महाराजा छत्रसाल का जीवन अनेक स्तरों पर प्रेरणा देता है— नेतृत्व के लिए: सत्ता नहीं, सेवा को केंद्र में रखना। प्रशासन के लिए: विकेंद्रीकरण, लोकभाषा और पारदर्शिता। सामाजिक जीवन के लिए: समरसता, धार्मिक सह-अस्तित्व और मानव-मर्यादा। राष्ट्रीय चेतना के लिए: आत्मसम्मान के साथ वैश्विक संवाद। उनका जीवन यह भी सिखाता है कि कट्टरता का उत्तर कट्टरता नहीं, बल्कि जागृति (जागनी) है—चाहे वह धार्मिक हो, राजनीतिक हो या वैचारिक।

7.87 छत्रसाल का स्थायी महत्व: महाराजा छत्रसाल न केवल अपने युग के नायक थे, बल्कि वे समयातीत (timeless) व्यक्तित्व हैं। उनका योगदान केवल बुंदेलखंड या उत्तर भारत तक सीमित नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के उस मूल तत्त्व से जुड़ा है, जहाँ धर्म का अर्थ न्याय, भक्ति का अर्थ सेवा, और शक्ति का अर्थ संरक्षण है। इसी कारण वे इतिहास में केवल विजेता नहीं, बल्कि युगप्रवर्तक के रूप में स्मरण किए जाते हैं।

महाराजा छत्रसाल बुंदेला का जीवन हमें यह स्मरण कराता है कि— जब संकल्प नैतिक हो, साधन जन-आधारित हों और लक्ष्य मानवता हो, तो इतिहास भी झुकता है। उनकी विरासत तलवार में नहीं, बल्कि उस चेतना में है, जो अन्याय के सामने झुकने से इंकार करती है और करुणा के साथ शक्ति का प्रयोग करना जानती है। यही छत्रसाल का स्थायी संदेश है—और यही उनकी अमरता।

भाग 1: अध्याय - 8
महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी: संक्षिप्त परिचय

8.1 भूमिका: मानव चेतना का उत्कर्ष और तारतम की समन्वित जीवन-दृष्टि

मनुष्य स्वभावतः जीवन के बड़े रहस्यों को जानने के लिए व्याकुल रहता है—पर केवल जिज्ञासा से नहीं, चेतना-विकास की दृष्टि से जब यह खोज चलती है, तभी जीवन का वास्तविक अर्थ खुलता है। बाह्य उपलब्धियाँ, सामाजिक प्रतिष्ठा या केवल मानसिक शांति—इनसे कुछ राहत मिल सकती है, पर चरम लक्ष्य तब भी अधूरा रहता है। तारतम वाणी के अनुसार मानव-अस्तित्व का शिखर आत्म-पहचान और शाश्वत प्रेम-आनंद की वह अवस्था है जिसमें शरीर, मन, भाव, बुद्धि और आत्मा—पाँचों आयाम एक-दूसरे से भिड़ते नहीं, बल्कि एक जीवंत समन्वय में स्थिर हो जाते हैं। यहाँ शांति केवल मन की स्थिति नहीं रहती; वह स्वरूप की स्वाभाविक स्थिरता बनती है, और प्रेम केवल भावना नहीं रहता; वह अस्तित्व की मूल ऊर्जा के रूप में प्रकट होता है।

भारतीय दर्शन "सच्चिदानंद" का संकेत देता है—सत् (अस्तित्व), चित् (चेतना) और आनंद (पूर्णता) के रूप में परम तत्त्व का बोध। साधक जब अपने वास्तविक अस्तित्व से जुड़ता है, तब समझता है कि वह केवल शरीर–मन नहीं, बल्कि नित्य सत् है; अनुभव करने वाली चेतना चित् है; और सत्य की पहचान से जो सहज तृप्ति उपजती है, वही आनंद है। जीवन में सुख-दुःख आते-जाते हैं, पर दिव्य चेतना साधक को साक्षी-भाव देती है—जैसे कोई चलचित्र देखते हुए दृश्य में बहता नहीं, बल्कि सीखता है। यही साक्षी-भाव आत्मा को परिष्कृत कर निजानंद की ओर आकृष्ट करता है।

तारतम वाणी इसी कारण किसी एक पक्ष पर नहीं टिकती। यदि कोई केवल भीतर का अनुभव पकड़े, तो व्यवहार टूटता है; केवल कर्म/डेटा पकड़े, तो अर्थ और करुणा सूखती है; केवल समूह-परिचय पकड़े, तो विभाजन बढ़ता है; और केवल नीति/प्रणाली पकड़े, तो मानव-हृदय उपेक्षित हो जाता है। तारतम ज्ञान इन चारों आयामों को साथ लेकर चलता है—यही इसकी समग्र दृष्टि है: भीतर–बाहर, व्यक्ति–समाज, साधना–संरचना—सबका संतुलित विकास।

8.2. 'तारतम' का अर्थ: क्रम, स्तर और तारतम्य-केंद्रित समन्वय (तारतम्यवाद)

'तारतम' दो शब्दों से मिलकर बना है— 'तार' और 'तम'। 'तार' ज्ञान और प्रेम के प्रकाश का प्रतीक है, जबकि 'तम' अज्ञान, भ्रम और अंधकार का। जब ज्ञान और

प्रेम का यह प्रकाश अज्ञान के अंधकार से मिलता है, तब भीतर सच्ची चेतना जागृत होती है। इसी आंतरिक जागरण की प्रक्रिया को तारतम कहा गया है। जहाँ 'तम' मनुष्य को भय, द्वैत और अलगाव में बाँधता है, वहीं 'तार' उन आवरणों को हटाकर सत्य को प्रकट करता है—यही है "तारतम तेज, पूरण प्रकाश।"

'तारतम' शब्द 'तारतम्य' से भी जुड़ा है—अर्थात् क्रम और स्तरों के बीच उचित संबंध। यह दृष्टि मानती है कि सृष्टि अव्यवस्थित संयोग नहीं, बल्कि अनेक परतों में व्यवस्थित चेतन-व्यवस्था है—कुछ स्थूल, कुछ सूक्ष्म; कुछ निकट, कुछ दूर। महामति प्राणनाथ ने इस क्रम-बोध को केवल बाह्य जगत तक सीमित नहीं रखा, बल्कि चेतना के भीतर के स्तरों को भी स्पष्ट किया। परिणाम यह हुआ कि ज्ञान सूचना नहीं रह जाता—वह विवेक और अनुभव में बदलता है।

तारतम्यवाद का मूल संदेश सरल है: पूर्ण सत्य एकांगी नहीं होता। कई परंपराएँ सत्य के अलग-अलग पहलू दिखाती हैं; पर जब उन्हें सही क्रम और संदर्भ में जोड़ा जाए, तभी समग्र चित्र उभरता है। जैसे किसी पहेली के टुकड़े अलग-अलग देखकर अधूरे लगते हैं, पर सही क्रम में जुड़ने पर पूरा चित्र साफ हो जाता है। इसीलिए तारतम वाणी "मेरा ही सत्य" वाले संकीर्ण आग्रह को तोड़कर "समग्र सत्य" की दिशा में ले जाती है—जहाँ विविधता का अर्थ विवाद नहीं, बल्कि पूरकता बन जाता है।

संक्षेप में, तारतम केवल साकार–निराकार के भेद से आगे बढ़कर अक्षर से अक्षरातीत परब्रह्म तक के क्रम का बोध नहीं कराता, बल्कि चेतना की वह अंतःयात्रा है जिसमें अज्ञान की परतें क्रमशः विलीन होती जाती हैं और ज्ञान–प्रेम के शुद्ध प्रकाश में मानव सीमित दृष्टि से उठकर पूर्ण सत्य, परम प्रेम और अक्षरातीत बोध में प्रतिष्ठित होता है।

8.3. तारतम ज्ञान: स्वप्न से सत्य, भ्रम से प्रेम की यात्रा

तारतम वाणी मनुष्य को यह बोध कराती है कि यह संसार केवल भोग या संघर्ष का मैदान नहीं, बल्कि आत्मा के जागरण का शिक्षात्मक स्वप्न है। स्वप्न में दृश्य सच्चे लगते हैं, पर जागने पर स्पष्ट होता है कि सत्य दृश्य नहीं—दृष्टा है। इसी प्रकार, दृश्य जगत बदलता रहता है; पर सत्य की खोज दृष्टा-चेतना को स्थिर करती है। इस यात्रा में साधारण जागरूकता धीरे-धीरे करुणा, एकत्व और प्रेम से परिपूर्ण चेतना बनती जाती है। अंततः प्रश्न "मैं कैसे पाऊँ?" से उठकर "मैं किसमें स्थिर हो जाऊँ?" बन जाता है—और उत्तर प्रेम में मिलता है।

8.4. ऐतिहासिक अवतरण: बीज से वट-वृक्ष तक

श्री निजानंद - प्रणामी परंपरा और बीतक-साहित्य के अनुसार तारतम ज्ञान का अवतरण आकस्मिक घटना नहीं, बल्कि उद्देश्यपूर्ण, क्रमबद्ध प्रक्रिया है। संवत 1612 में

निजानंद स्वामी श्री देवचंद्र जी को अक्षरातीत परब्रह्म के दर्शन हुए—यहीं बीज-रूप तारतम का प्रथम प्रकाश माना जाता है। यह बीज-ज्ञान आगे चलकर श्री मिहिरराज (महामति प्राणनाथ) के माध्यम से लगभग 33 वर्षों में विकसित हुआ। ई.स. 1659 (नौतनपुरी, जामनगर) से 1692 (पन्ना) तक विभिन्न स्थलों पर वाणी का अवतरण होता रहा, और साथ रहने वाले सुन्दरसाथ उस वाणी को उसी क्षण लिपिबद्ध करते गए। बाद में पन्ना की चोपड़ा हवेली में ब्रह्ममुनि श्री केशवदास जी के नेतृत्व में विभिन्न स्थलों की वाणियों का संकलन सम्पन्न हुआ—जिसे परंपरा में 'अर्चावतार' स्वरूप 'श्री कुलजम स्वरूप' की स्थापना कहा जाता है। यह क्रम "बीज से वट-वृक्ष" का रूपक बन जाता है—जहाँ मूल बीज वही रहता है, पर विस्तार एक विशाल छाया देता है।

"श्री कुलजम स्वरूप" तारतम ज्ञान का मुख्य स्रोत है। यहाँ "कुलजम[1]" का अर्थ होता है, 'प्रत्यक्ष आत्म-साक्षात्कार (मारिफ़त) के ज्ञान का अथाह समुद्र'। और "स्वरूप" सच्चिदानंद परब्रह्म के अनंत, अद्वैत और प्रज्ञानात्मक स्वरूप का द्योतक है। इस तरह, "श्री कुलजम स्वरूप" नाम से तात्पर्य है— 'परमात्मा के प्रज्ञान-स्वरूप का स्वसंवेद्य, जीवंत ज्ञान-सागर'।

जब श्री प्राणनाथ जी हरिद्वार महाकुंभ (संवत् 1735 / 1678 ई.) में विविध हिन्दू धर्माचार्यों से आध्यात्मिक चर्चा हेतु पहुंचे, वहाँ उन्होंने तारतम ज्ञान का परिचय देते हुए कहा कि "वेद हमारो स्वसं है।"अर्थात् सच्चा ब्रह्मज्ञान वही है जो स्वयं अपना प्रमाण हो—जो बाहर से सिद्ध नहीं किया जाता, बल्कि भीतर जाग्रत होकर स्वयं को प्रकाशित करता है। यह ज्ञान 'स्वसंवेद' भी कहलाता है, क्योंकि यह आत्मा के भीतर स्वयं अनुभूत होकर प्रकट होता है—न अध्ययन से अर्जित, न तर्क से निर्मित। यह परमात्मा की कृपा से जाग्रत होने वाला साक्षात् अनुभवजन्य प्रकाश है, जो शास्त्रों के बहुविध अर्थों को उनके मर्म में एकीकृत करता है और आत्मा को क्षर–अक्षर की सीमाओं से उबारकर अक्षरातीत परब्रह्म के प्रेमानंद धाम की ओर उन्मुख करता है। यहाँ ज्ञान विचार मात्र न रहकर जीवन में रूपांतरित हो जाता है; जानना और जीना एक ही चेतना-प्रवाह बन जाते हैं। इसी कारण तारतम वाणी में अपरा–परा विद्या का भेद विलीन हो जाता है और विज्ञान, दर्शन व अध्यात्म एक अखंड चेतन-सत्य के रूप में प्रकट होते हैं—जहाँ अनुभव ही प्रमाण और बोध ही सिद्धि है।

8.5. आवेश-अवतरण: ब्रह्मवाणी का स्रोत और 'महामति' की विशिष्टता

तारतम वाणी का अवतरण सामान्य योगावस्था, साधनाजन्य अनुभूति या काव्य-कल्पना के रूप में नहीं समझा जाता। परंपरा के अनुसार यह अक्षरातीत परब्रह्म के 'आवेश' से प्रेरित अवस्था में प्रकट हुई। 'आवेश' का अर्थ—चेतना का परब्रह्म की इच्छा-शक्ति (हुक्म) के अधिकार-क्षेत्र में स्थित होकर वाहक बन जाना। इस दृष्टि से माध्यम स्वयं

---

[1] *'कुलजम' (कूल्जूम) अरबी शब्द है, इस का अर्थ 'कुल' चौपाइयों का 'जमा' नहीं समझना चाहिए।*

"कर्ता" नहीं, बल्कि "वाहक" है; वाणी का स्रोत परब्रह्म की प्रेरणा मानी जाती है। इसी विलक्षण आवेश-स्थिति के कारण "महामति"—अर्थात् महान-बोध की भूमिका—का संकेत आता है, जिसमें भाषा के भीतर परमधाम-चेतना का प्रवाह माना गया है।

इस तरह, तारतम वाणी किसी मानव-मस्तिष्क की रचना नहीं, न किसी कवि की कल्पना या भावोच्छवास का परिणाम है। यह तो प्रियतम परब्रह्म के प्रेमावेश से चुनी हुई आत्मा पर बरसने वाली ब्रह्म-वाणी है—चेतना की तुरीय से भी परे, तुरीयातीत अवस्था में अनुभूत आनंद-रस का सहज और स्वाभाविक प्रवाह है। इस वाणी का प्रत्येक प्रेमलक्षी शब्द परब्रह्म धनी की आज्ञा और अनुकंपा से प्रकट हुआ है। अतः यह वाणी केवल उपदेश नहीं, बल्कि प्रेम, ज्ञान और सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात् रूप है—जो आत्मा को उसके निज-घर और निजानंद की स्मृति कराती है।

8.6. ग्रंथ-रचना और संरचना: श्री कुलजम स्वरूप का संक्षिप्त मानचित्र

'श्री कुलजम स्वरूप' तारतम वाणी का संगृहीत रूप है। परंपरा के अनुसार इसमें कुल 14 (भाषा-भेद से 17) ग्रंथ, 527 प्रकरण और 18,758 चौपाइयाँ संकलित हैं। इन ग्रंथों का क्रम विषयानुसार नहीं, अवतरण-काल के अनुसार माना जाता है; फिर भी अध्ययन-सुविधा के लिए इन्हें विषयगत रूप से पाँच समूहों में समझा जा सकता है—

1. आत्म-बोधक ज्ञान: *रास* और *प्रकाश* — प्रेम-लक्षणा भक्ति, सतगुरु-धणी निस्बत, स्मरण और रहनी।
2. ब्रह्म-बोधक ज्ञान: *षडऋतु/खटरूती* और *कलश* — विरह-भाव का विकास, तारतम्य-केंद्रित धर्म-समन्वय की भूमि।
3. शास्त्रीय/समीक्षात्मक ज्ञान: *किरन्तन* और *खुलासा* — विविध परंपराओं के संकेतों का तारतम्यपूर्ण स्पष्टीकरण।
4. परमधाम-लीला और स्वरूप-बोध: *खिलवत, परिक्रमा, सागर, सिंगार, सिन्धी* — प्रेम-रस, चितवनि, अंतर्धारा का अनुभव।
5. विश्वधर्म और अंतिम जागरण-बोध: *मारफत सागर* और *क़यामतनामा (छोटा-बड़ा)* — समग्र दृष्टि और आत्म-जागृति का पूर्ण संकेत।

यह वर्गीकरण "वाणी का दायरा" समझने में सहायता देता है—कि यह केवल भक्ति-पाठ नहीं, बल्कि ज्ञान, प्रेम, साधना, समाज और तारतम्य-केंद्रित समन्वय का व्यापक मानचित्र है।

8.7. साधना का व्यावहारिक मार्ग: स्मरण–चितवन–सेवा

तारतम वाणी के अनुसार साधना का केंद्र बाह्य प्रदर्शन नहीं, भीतर का रूपांतरण है। इस मार्ग की तीन धुरी बार-बार उभरती हैं—स्मरण (निरंतर चेतना-संबंध), चितवन (स्वरूप-ध्यान की रसपूर्ण दृष्टि), और सेवा (जीवन में प्रेम का व्यावहारिक रूप)। इसके साथ चार स्पष्ट उद्देश्यों पर बल दिया जाता है:

1. ग्रंथों के गूढ़ अर्थ का उद्घाटन—ताकि साधक कथा/रिवाज में न अटके।
2. अंधविश्वास और रूढ़ि से मुक्ति—ताकि धर्म भय नहीं, विवेक बने।
3. चमत्कार/सिद्धि को सत्य का मापदंड न मानना—क्योंकि सत्य का प्रमाण परिवर्तन है, तमाशा नहीं।
4. साधक में स्वयं सत्य देखने की क्षमता जगाना—क्योंकि उधार का अनुभव आत्म-साक्षात्कार नहीं बन सकता।

इसीलिए वाणी "नित्य नयी चरनी" का आग्रह करती है—अर्थात् चेतना प्रतिदिन नई स्पष्टता, नई विनम्रता और नई गहराई से आगे बढ़े; जड़ता साधना का शत्रु है।

यह रूपांतरण न केवल बौद्धिक या भावात्मक, बल्कि गहन अनुभूतिगत है—जहाँ शब्द चेतना बनते हैं और चेतना प्रेम में ढल जाती है। इसी कारण तारतम ज्ञान जीवन और चेतना के सभी स्तरों में संतुलन व समन्वय स्थापित करता हुआ एक समग्र आध्यात्मिक विज्ञान बनता है, जिसमें विविध दर्शन पूरक रूप में एक ही सत्य-प्रकाश में एकीकृत होते हैं। अंततः यह साधक को उस अवस्था तक ले जाता है जहाँ ज्ञान, अनुभव और प्रेम एक ही रस बनकर जीवन को दिव्य प्रेम-लीला के रूप में प्रकट करते हैं—यही इसकी यात्रा का सार और लक्ष्य है।

8.8. तारतम दर्शन के मुख्य तत्त्व: क्षर–अक्षर–अक्षरातीत और चेतना-अवस्थाएँ

तारतम वाणी में वास्तविकता को तीन प्रमुख स्तरों में समझाया जाता है—क्षर: परिवर्तनशील जगत (कालमाया के भीतर), अक्षर: स्थिर/नित्य प्रतीत होने वाला ब्रह्म-प्रदेश, अक्षरातीत: इन दोनों से परे शुद्ध साकार परब्रह्म—परमधाम। परमधाम को केवल एक भौगोलिक लोक के रूप में न दर्शा कर मनुष्य आत्मा के हृदयाकाश में भी उस का सूक्ष्म प्रतिबिंब अनुभव करने की बात समझाई है। इस तरह, परमधाम को चेतना की उस सर्वोच्च अवस्था -- जहाँ समय, परिवर्तन, जन्म–मृत्यु और कारण–कार्य की सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं – से भी जोड़ा गया है। इसलिए परमधाम केवल "कहीं ऊपर" स्थित नहीं, बल्कि भीतर जागृत चेतना में प्रत्यक्ष अनुभूत भी किया जा सकता है।

साथ ही चेतना की अवस्थाओं (स्टेट्स ऑफ कॉन्सियसनेस) का उत्तरोत्तर ऊंचा क्रम भी समझाया जाता है—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय, तुरीयातीत और अक्षरातीत निर्मल चेतन अवस्था। इसका प्रयोजन यह बताना है कि साधना "एक छलांग" नहीं, बल्कि क्रमिक शुद्धि और स्थिरता का पथ है—जहाँ हर अवस्था का स्थान समझकर आगे बढ़ा जाता है। तारतम वाणी के अनुसार मनुष्य केवल भौतिक देह नहीं, बल्कि बहुस्तरीय चेतना

है। चेतना जैसे-जैसे परिष्कृत होती है, वैसे-वैसे देहों और अवस्थाओं की परतें खुलती जाती हैं—स्थूल अनुभव से लेकर अक्षरातीत सच्चिदानंद तक।

इस यात्रा की मुख्य अवस्थाएँ संक्षेप में इस प्रकार हैं— स्थूल शरीर (जाग्रत अवस्था): पाँच महाभूतों से बनी देह, जहाँ कर्म, सुख-दुःख और चंचल मन का अनुभव होता है। यहीं से साधना आरंभ होती है। सूक्ष्म शरीर (स्वप्न अवस्था): मन, प्राण और बुद्धि का लोक, जहाँ प्रकाश, शांति और करुणा के सूक्ष्म अनुभव जन्म लेते हैं। कारण शरीर (गहन सुषुप्ति): विचार विलीन हो जाते हैं और केवल शुद्ध साक्षीभाव शेष रहता है। महाकारण / तुरीय बोध: आत्मा स्वयं को देह-त्रय से भिन्न जान लेती है—"मैं शरीर नहीं हूँ" का स्थिर अनुभव। अक्षरातीत सच्चिदानंद अवस्था: चेतना निर्विकार होकर परमधाम में प्रतिष्ठित होती है—जहाँ न सीमा है, न अभाव, केवल प्रेमानंद।

सामान्य ध्यान-परंपराओं में अद्वैत एकता तक पहुँचना संभव है, पर तारतम वाणी बताती है कि यह अनुभव प्रायः निराकार शांति तक सीमित रहता है। तारतम की विशिष्टता इससे आगे है—तुरीयातीत परतों को पार कर परमधाम की परात्म-अवस्था में जागरण, जहाँ प्रेमानंदघन अक्षरातीत परब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इस प्रकार तारतम वाणी भौतिक से परमात्मिक तक चेतना का एक समग्र, एकीकृत मानचित्र देती है। यह किसी अवस्था का निषेध नहीं करती, बल्कि हर स्तर के सार को सुरक्षित रखते हुए चेतना को उच्चतर तारतम्य-केंद्रित समन्वय और पूर्णता की ओर ले जाती है।

8.9. "निराकार के पार": परब्रह्म-बोध की विशेषता

तारतम वाणी का केंद्रीय संदेश यह उद्घाटित करता है कि अंतिम सत्य निराकार पर ही समाप्त नहीं होता, बल्कि उसके भी पार एक शुद्ध साकार परब्रह्म का बोध है—पूर्ण चेतन, प्रेम से परिपूर्ण, दिव्य सौंदर्य और नूर से युक्त, कामनारहित, धीर और अमृतस्वरूप। यह अखंड युवा स्वरूप सच्चिदानंदमय है, नित्य धाम में प्रतिष्ठित है और आनंद-रस का अक्षय स्रोत तथा अनंत सामर्थ्य का अधिष्ठान है। इस दृष्टि में साकार–निराकार की बहस स्वयं अंतिम सत्य नहीं रह जाती; ये दोनों माया-क्षेत्र में समझ के उपयोगी उपकरण मात्र हैं। इस बोध के साथ साधक का लक्ष्य केवल बंधन-मुक्ति नहीं रह जाता, बल्कि परब्रह्म के साथ प्रेम-निस्बत में पूर्ण प्रतिष्ठा बन जाता है—जहाँ मुक्ति से आगे प्रेम और सहभागिता का शाश्वत आनंद प्रकट होता है।

8.10. परा प्रेमलक्षणा भक्ति: ज्ञान और प्रेम का संतुलित उत्कर्ष

तारतम वाणी के अनुसार परमात्मा ने मनुष्य को दो मूल उपहार दिए हैं—ज्ञान और प्रेम। ज्ञान बुद्धि को प्रकाशित करता है, प्रेम हृदय को रूपांतरित करता है। दोनों का संतुलन ही जीवन को समरस और पूर्ण बनाता है। ज्ञान यदि प्रेम से रहित हो तो शुष्क हो

जाता है, और प्रेम यदि विवेक से विहीन हो तो भ्रम बन सकता है। तारतम वाणी इसी संतुलन का मार्ग दिखाती है।

इसी तारतम्य-केंद्रित समन्वय से परा प्रेमलक्षणा भक्ति का उदय होता है—जो भक्ति की पराकाष्ठा है। यह किसी विधि या प्रयास का परिणाम नहीं, बल्कि चेतना का सहज स्वभाव है। यहाँ भक्ति की जाती नहीं, भक्ति हो जाती है। यह न भयजन्य आस्था है, न अंधविश्वास; बल्कि विवेक से परिपक्व वह प्रेम है, जहाँ तर्क अपना कार्य पूरा कर मौन में विश्राम पाता है और प्रेम स्वयं सत्य बनकर प्रकट होता है।

अपरा भक्ति के अनुशासन, सेवा और आत्मचिंतन से अहंकार शिथिल होता है। जैसे-जैसे मिथ्या 'मैं' गलता है, प्रेम साधना का फल न रहकर स्वाभाविक प्रवाह बन जाता है। इस अवस्था में इष्ट बाहर नहीं रहते, हृदय के केंद्र में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। तब भक्ति निष्काम हो जाती है—जहाँ प्रेम ही साधन है और वही साध्य। आत्मा–परमात्मा का संबंध "अंश–अंशी" से आगे बढ़कर जीवंत "अंग–अंगी" का हो जाता है।

यह प्रेम विविध रूपों में व्यक्त होता है—वात्सल्य, सख्य, दास्य, शरणागति, माधुर्य, स्मरण और विरह—पर ये अलग मार्ग नहीं, एक ही प्रेम की गहराती तरंगें हैं। दार्शनिक रूप से यह वह बिंदु है जहाँ तर्क पराजित नहीं होता, शांत हो जाता है; अहंकार टूटता नहीं, पिघल जाता है। इसी कारण परा भक्ति को मोक्ष से भी आगे की अवस्था कहा गया है—क्योंकि यहाँ आत्मा शून्य में नहीं, बल्कि इष्ट की अनंत लीला में सचेत सहभागी बनती है।

जब जाग्रत ब्रह्मज्ञान मिथ्या अहंकार का लय करता है, तब हृदय में प्रेम अंकुरित होता है और ध्यान व चितवन में स्थिर होकर जीवन का आधार बन जाता है। कथनी, करनी और रहनी एकरूप हो जाती हैं। यही परा प्रेमलक्षणा भक्ति का मर्म है—जहाँ ज्ञान अनुभूति बन जाता है, अनुभूति प्रेम में ढल जाती है, और प्रेम स्वयं सत्य का नाम बन जाता है।

8.11. विशिष्ट शब्दावली: एक तत्त्व, अनेक नाम (समन्वय का अनुशासन)

तारतम वाणी की शब्दावली तारतम्य-केंद्रित समन्वयकारी है। एक ही तत्त्व को भावानुसार अनेक नामों से संबोधित किया गया—पर लक्ष्य संकीर्णता नहीं, प्रेम और बोध का विस्तार है। इस में

(1) सच्चिदानंद परमात्मा को अनेक स्नेहिल, तात्त्विक और भावपूर्ण नामों से संबोधित किया गया है—परब्रह्म, धणी, पिया, मेहबूब, खसम, खुद, हक़, प्राणनाथ, अक्षरातीत, श्री राज जी आदि। ये नाम किसी भिन्न सत्ता के संकेत नहीं, बल्कि एक ही परम सत्य के विविध भावात्मक और आध्यात्मिक आयाम हैं।

(2) परब्रह्म की आनंदमयी शक्ति—जो उनके हृदय की भावात्मक, सृजनशील और प्रेममय अभिव्यक्ति है—तारतम वाणी में श्री श्यामा जी, रूहल्लाह, बड़ी रूह, मल्की सूरत, मुहम्मद और सतगुरु जैसे नामों से जानी जाती है। यह शक्ति परब्रह्म की करुणा, प्रेम और जागरण-शक्ति का वह स्वरूप है, जो आत्माओं को उनकी मूल पहचान और निजानंद की ओर उन्मुख करता है।

(3) आनंदस्वरूपा श्री श्यामा जी के अंगरूप ब्रह्मात्माएँ विविध नामों से अभिहित हैं—ब्रह्मसृष्टि, आत्मा, रूह, अंगना, ब्रह्म-अंगना, सखी, मोमिन और सुन्दरसाथ। इन आत्माओं का परमधाम में स्थित मूल, शुद्ध स्वरूप पर-आत्मा कहलाता है; जबकि मायावी लीला में अवतरित होकर जीवभाव से युक्त चेतना को आत्मा, रूह या सुरता कहा गया है। इस प्रकार तारतम वाणी आत्मा के शाश्वत स्वरूप और उसके लौकिक अनुभव—दोनों का स्पष्ट भेद और तारतम्य-केंद्रित समन्वय प्रस्तुत करती है।

(4) परब्रह्म के अखंड और नित्य धाम को परमधाम, अक्षरातीत धाम, निजधाम और अर्शे-अज़ीम जैसे नाम दिए गए हैं।

(5) पाश्चात्य कतेबी परंपराओं में इसी परम सत्य को भिन्न शब्दावली में व्यक्त किया गया है—अक्षरातीत को नूर-जमाल, सत्-अंग अक्षर ब्रह्म को नूर-जलाल, आनंद-अंग श्री श्यामा जी को रूह-अल्लाह, और ब्रह्मात्माओं को मोमिन तथा उम्मत कहा गया है।

इस प्रकार, शब्द और नाम भिन्न होते हुए भी तत्त्व एक ही रहता है—और यही तारतम वाणी की तारतम्य-केंद्रित समन्वयकारी, सार्वदेशिक और सार्वकालिक चेतना का सार है।

8.12. भाषिक दर्शन: भाषा विवाद नहीं, संवाद का पुल

तारतम वाणी बहुभाषिक स्वरूप में मिलती है—गुजराती, हिन्दुस्तानी/हिन्दवी, अरबी–फारसी, संस्कृत, और सिंधी का समन्वित प्रयोग। इसका संकेत स्पष्ट है: सत्य को किसी एक भाषा की सीमाओं में बंद नहीं किया जा सकता। भारतीय संस्कृति और शायद विश्व के सभी धर्मग्रंथों में तारतम वाणी ही एक ऐसा ग्रंथ है, जो एक ही व्यक्तित्व के श्री मुख से अवतरित और बहुभाषिक हो। हिन्दुस्तानी भाषा को लोकसुलभ और सार्वभौमिक संवाद की भाषा जान कर अधिक प्रयोग हुआ है। मूल गुजराती प्रकाश और कलश ग्रंथ बाद में हिन्दी में रूपांतरित हुए हैं।

तारतम वाणी का केंद्रीय भाषा-सिद्धांत स्पष्ट है— भाषा सत्य नहीं, सत्य तक पहुँचने का साधन है। अर्थात भाषा का उद्देश्य विभाजन नहीं, उद्घाटन है। इसके मूल सूत्र हैं—भाषा लोकहित के लिए है, विद्वत अहंकार के लिए नहीं। सरल भाषा सत्य को अधिक गहराई से प्रकट करती है। मातृभाषा आत्मीय होती है, पर सार्वभौमिक संवाद के लिए बहुभाषिकता आवश्यक है। भाषा, वेश और जाति ईश्वरीय लीला के अंग हैं—आत्मा एक है। भाषा के मोह से ऊपर उठकर अर्थ और भाव को पकड़ना ही वास्तविक साधना है।

और वेद, उपनिषद, कतेब और अन्य ग्रंथ—भाषा-भेद के बावजूद—एक ही सत्य की साक्षी हैं।

महामति प्राणनाथ जी की यात्राएँ भारत से अरब देशों तक फैली थीं, इसलिए उनकी वाणी में वैश्विक समन्वय चेतना दिखाई देती है। इसी दृष्टि से महात्मा गांधी का "हिन्दुस्तानी" का आग्रह—संस्कृत और फारसी परंपराओं को जोड़ने का प्रयास—तारतम दृष्टि से गहरे रूप में मेल खाता है। तारतम वाणी का भाषिक दर्शन यह सिखाता है कि भाषा न तो संप्रदाय का अस्त्र है, न अहंकार का साधन—
वह मानवता को जोड़ने वाला सेतु है। जब भाषा प्रेम, विवेक और सत्य की वाहक बनती है, तब सांस्कृतिक समरसता, आध्यात्मिक एकता और वैश्विक शांति का मार्ग प्रशस्त होता है—यही तारतम वाणी का मूल संदेश है।

8.13. चेतना से उपजा नेतृत्व (तारतम दृष्टि)

तारतम वाणी के अनुसार नेतृत्व पद या अधिकार नहीं, बल्कि चेतना की परिपक्वता का परिणाम है। सच्चा सरदार वह है जिसकी दृष्टि ऊँची, हृदय निर्मल और भाव सेवा-प्रधान हो। अहंकार-आधारित नेतृत्व क्षणिक प्रभाव डाल सकता है, पर अंततः विभाजन और असंतुलन लाता है; जबकि विनय, आत्म-जागरूकता और करुणा से उपजा नेतृत्व समाज में विश्वास, स्थिरता और समन्वय पैदा करता है।

महामति प्राणनाथ जी बताते हैं कि सरदारी की नींव निर्गुणता और विनय में है। ऐसा नेता स्वयं को केंद्र में नहीं रखता, बल्कि सत्य, उद्देश्य और सामूहिक कल्याण को आगे बढ़ाता है—यही Servant और Integral Leadership का मर्म है। सच्ची सरदारी भय से नहीं, भरोसे से लोगों को जोड़ती है।

सरदार का एक प्रमुख गुण सेतु बनना है—वह सत्य (धनी) और संगत के बीच पुल होता है। नेतृत्व किसी एक व्यक्ति की बपौती नहीं; हर मनुष्य में इसका बीज है। जब अहं घटता है और उत्तरदायित्व बढ़ता है, तब साझा नेतृत्व प्रकट होता है। निष्कर्षतः, सरदारी पद नहीं, प्रक्रिया है; अधिकार नहीं, उत्तरदायित्व है—और वही सच्चा सरदार है जो स्वयं को घटाकर सत्य, प्रेम और समग्र चेतना को बढ़ा दे।

तारतम वाणी के आधार पर नेतृत्व के दस लक्षण इस प्रकार समझे जा सकते हैं:

1. विनय-आधारित नेतृत्व: सच्चा नेता पहले अपने अहंकार को पहचानता है और उसे त्यागता है। निर्गुणता और विनय नेतृत्व की जड़ हैं। सिरदारी का अधिकार अहं से नहीं, कृपा और विनय से टिकता है।[2]

---

[2] *कृपा करी साथ सिरदारों, मुझ पर हुए मेहेरबान।*
निरगुन होए न्यारी रहूँ, छोड़ बड़ाई गुमान।। किरन्तन 101/7

2. रोशनी बाँटने वाला नेता: सिरदार का कार्य पद या नियंत्रण नहीं, बल्कि धामधनी की रोशनी को लोगों तक पहुँचाना है। जो धामधनी की रोशनी नहीं लाता, उसकी सिरदारी टिकाऊ नहीं रहती।[3]

3. सेतु-भूमिका (Bridge Leadership): नेता धनी और संगत के बीच सेतु होता है; वह जोड़ता है, दूरी नहीं बनाता। सच्चा सिरदार दोनों पक्षों का अंग बनकर एकता बनाए रखता है।[4]

4. अंतर-दृष्टि से निर्णय: बाहरी व्यवस्था से पहले भीतर का विवेक आवश्यक है—"सार का सार" पकड़ना नेतृत्व की कसौटी है। सही निर्णय वही है जो भीतर–बाहर दोनों स्तरों पर सत्य हो।[5]

5. पाक-दिल और नरम मन: कठोरता नहीं, शुद्ध हृदय और करुणा से नेतृत्व प्रभावी बनता है। नरम मन वाला सिरदार ही आत्माओं को धनी से जोड़ सकता है।[6]

6. अहं-रहित अधिकार: अधिकार सेवा से आता है। सिरदारी का घमंड नेतृत्व को गिरा देता है। अहंयुक्त सिरदारी अंततः हार में बदल जाती है।[7]

7. एकता का रक्षक: नेता का काम "रंग" (एकता) को सुरक्षित रखना है; विभाजन नेतृत्व की विफलता है। वास्तविक सिरदारी अनेक नामों में एकता को पहचानती है।[8]

---

[3] *जो कोई साथ में सिरदार, लई धाम धनी रोसन।*
खैंच छोड़ सको सो छोड़ियो, ना तो आपे छूटे हुए दिन।। किरन्तन 94/27

[4] *साथ अंग सिरदार को, सिरदार धनी को अंग।*
*बीच सिरदार दोऊ अंग के, करे न रंग को भंग।।*किरन्तन 95/9

[5] *सुनों साथ जी सिरदारो, ए कीजो वचन विचार।*
*देखो बाहेर माहें अन्तर, लीजो सार को सार जो सार।।*किरन्तन 94/1

[6] *साथ धाम के सिरदार को, मोमिन मन नरम।*
*मिलावे और धनीय की, दोऊ इनके बीच सरम।।*किरन्तन 95/10

[7] *इन जिमी में साथ में, जिनों करी सिरदारी।*
पुकार पुकार पछताए चले, जीत के बाजी हारी।। किरन्तन101/10

[8] *लटी तिनसे न होवहीं, जो कहे सिरदार।*
*सबों सिरदार एक होवहीं, मिने बारे हजार।।*किरन्तन 95/16

8. मूल-संबंध में स्थिरता: धामधनी से जुड़ा नेतृत्व ही टिकाऊ है; मूल से कटा अधिकार भ्रम पैदा करता है। मूल-संबंध के बिना नेतृत्व केवल भ्रम और बंधन बढ़ाता है।[9]

9. उदाहरण से नेतृत्व: उपदेश से अधिक जीवन-आचरण बोलता है—सेवा, आतिथ्य और विनय से। सेवा और व्यवहार ही सच्ची सिरदारी की पहचान हैं।[10]

10. सिरदारी का समग्र निष्कर्ष: तारतम लीडरशिप सत्ता नहीं, सेवा–सेतु–सत्य की साधना है। सिरदार वही है जो स्वयं छोटा होकर, सबको जोड़कर, धामधनी की रोशनी में आगे बढ़े।

महामति प्राणनाथ प्रणीत वाणी ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय

(निम्न सभी ग्रंथ "श्री कुलजम स्वरूप" "तारतम वाणी" महाग्रन्थ के अंगरूप है)

8.14 श्री रास ग्रंथ: प्रेम-रस दर्शन

प्रेम प्रायः भावनात्मक आकर्षण, संबंध या अनुभव तक सीमित समझा जाता है। पर भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में प्रेम जीवन का अंतिम सत्य माना गया है—ऐसा प्रेम जो न स्वार्थ से जन्म लेता है, न भय से समाप्त होता है। श्री रास ग्रंथ इसी सत्य को उद्घाटित करता है। यह ग्रंथ हमें बताता है कि प्रेम केवल मनोभाव नहीं, बल्कि आत्मा और परब्रह्म के बीच का शाश्वत संबंध है।

संस्कृत सूत्र कहता है—"रसाणां समूहः रासः" अर्थात, *रसों का निरंतर बहाव* ही रास है। यहाँ रास किसी नृत्य-उत्सव या सांस्कृतिक आयोजन का नाम नहीं है। रास वह दिव्य चेतन अवस्था है, जहाँ आत्मा और परब्रह्म के बीच शुद्ध, निःस्वार्थ और पूर्ण प्रेम का अनुभव होता है। परब्रह्म स्वयं रस-राज हैं—आनंद-रस की मूर्ति। परब्रह्म और आत्मा का जीवंत प्रेम, आज भी हर जाग्रत आत्मा के लिए उपलब्ध है। जैसे संगीत में स्वर, ताल और लय मिलकर रस उत्पन्न करते हैं, वैसे ही रासलीला आत्मा को निजधाम के आनंद के चरम का एक हल्का सा अनुभव कराती है।

---

[9] *मूल बिना करूं सिरदारी, जीव को भी बस आनों।।*प्रकाश हि. 20/86

[10] *तब उन कायस्थ सिरदार ने, रसोई का किया आदर।*
*चाहो तो सीधा लेवो, या आओ रसोई पर।।*बीतक, 2/85

जब व्रजमंडल की गोपिकाओं के मन में 11 साल की प्रेम लीला के पश्चात थोड़ा सा द्वैत(मैं पने) का भाव आ गया, तब परब्रह्म उन को और सारी मानवता को यह स्मरण कराने के लिए रासलीला का प्रकाश करते हैं कि जीवन का मूल सत्य प्रेम है। परमधाम स्वयं तो प्रेम-रस से परिपूर्ण है, पर माया-जगत में रहने वाली आत्माएँ उस दिव्य प्रेम को भूल चुकी थीं। इसलिए परब्रह्म ने श्रीकृष्ण के रूप में वृन्दावन में रासलीला प्रकट की, ताकि आत्माएँ यह समझ सकें कि—प्रेम देह का विषय नहीं है, वास्तविक प्रेम आत्मा और परब्रह्म का संबंध है, और यह प्रेम परमधाम में सदा विद्यमान रहता है। दिव्य योगमाया में रास मण्डल रच कर परब्रह्म ने परमधाम की लीलाओं की झलक दिखलाई। रासलीला की गोपियाँ कोई साधारण स्त्रियाँ नहीं थीं, बल्कि अर्ध जाग्रत ब्रह्मात्माएँ थीं, जो उस प्रेम-सत्य को अनुभव कर रही थीं। महामति को इस लीला के साक्षात दर्शन ही नहीं हुए, उन्होंने स्वयं अपने आप को इस में खेलते हुए देखा और श्री राज जी के आवेश बल से हमारे लिए प्रगत भी किया।

परमधाम में परब्रह्म का एकमात्र "कार्य" यही है—आत्माओं को नए-नए प्रेमपूर्ण आनंद देना। जैसे माता-पिता बच्चों की खुशी में ही आनंद पाते हैं, वैसे ही परब्रह्म की प्रसन्नता आत्माओं के आनंद में है। परमधाम में आनंद के दो स्तर हैं— एकान्तिक मिलन का आनंद आत्मा और परब्रह्म के बीच का निजी प्रेम और सामूहिक लीला का आनंद अनेक आत्माओं के साथ प्रेमपूर्ण खेल और रस। ठीक उसी दो प्रकार से रासलीला भी हुई। एक कृष्ण हजारों गोपी रूप आत्माओं के साथ खेले और बाद में एक एक गोपी एक एक कान्हा की पूर्ण, निजी और एकान्तिक आनंद लीला हुई, जिसे महारास भी कहा गया। इस सत्य को वाणी कहती है— "प्रति सखी प्रति श्याम" अर्थात, *हर आत्मा के लिए परब्रह्म स्वयं उपस्थित* थे। शास्त्र कहते हैं, यह लीला ब्रह्माजी की एक रात्रि के समान काल में घटित हुई। इसे साधारण बुद्धि से समझना कठिन है। हम इसे केवल प्रतीकों से समझ सकते हैं— जैसे सागर की एक बूँद देखकर पूरे सागर की गहराई का अनुमान लगाया जाता है।

रास ग्रंथ में समझाया है कि ज्ञान-रस और प्रेम-रस में अंतर होता है। माया-जगत और अक्षर ब्रह्म के लोकों में ज्ञान-रस का विस्तार होता है—जानना, समझना, विवेचना करना। पर परमधाम में चेतना प्रेम-रस में डूबी रहती है। वहाँ आत्माएँ ज्ञान इकट्ठा नहीं करतीं, बल्कि प्रेम में जीती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान अंतिम लक्ष्य नहीं, बल्कि प्रेम की ओर ले जाने वाला साधन है। विरह से प्रेम की गहराई बढ़ती है। श्री प्राणनाथ जी के जीवन में विरह एक केंद्रीय अनुभव है। श्यामाजी के श्रृंगार-दर्शन के बाद उनके भीतर गहरा विरह जागा—"दुख ते विरहा उपजे, विरहा से प्रेम इशक।" फिर श्री राज जी एवं श्री

सुन्दरसाथ ब्रहमात्माओं के श्रृंगार दर्शन भी किए। इससे स्पष्ट होता है कि— विरह प्रेम को कमजोर नहीं करता, बल्कि प्रेम को और गहरा, परिपक्व और शुद्ध बनाता है।

श्री रास ग्रंथ अनन्य प्रेम-भक्ति का ग्रंथ है। यह आत्मा को सिखाता है कि परब्रह्म को कैसे पहचाना जाए, सेवा और समर्पण का वास्तविक अर्थ क्या है, माया क्या है और उससे कैसे मुक्त हुआ जाए, संसार में रहते हुए भी प्रेम में कैसे जाग्रत रहा जाए। इसी कारण इसे परब्रह्म अक्षरातीत के दिव्य स्वरूप का "चरण अंग" कहा गया है—अर्थात, *आत्म-जागृति के मार्ग का प्रथम और आधारभूत चरण*।

यह अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु है कि— यहाँ वर्णित रासलीला न इस भौतिक ब्रह्माण्ड में हुई कोई साधारण ऐतिहासिक घटना है, न ही यह परमधाम में हुई है। यह लीला हुई अक्षर ब्रह्म के आनंद पाद क्षेत्र में, योगमाया द्वारा निर्मित नित्य वृन्दावन में। यह मंडल माया से परे है, पर परमधाम की सत्ता-शक्ति से जुड़ा हुआ है। अतः रासलीला को सांसारिक नहीं, आध्यात्मिक चेतना से समझना चाहिए। इस में परब्रह्म का स्वरूप श्रीकृष्ण के रूप में, आनंद-स्वरूपा शक्ति श्रीश्यामा का स्वरूप राधिका के रूप में, और ब्रह्मात्माएँ गोपियों के रूप में प्रकट हुईं। आज वही आत्माएँ जागनी-लीला में इस संसार में *सुन्दरसाथ* बनकर आई हैं, जहाँ परब्रह्म स्वयं निजानंद सतगुरु और महामति के माध्यम से आत्म-जागरण का कार्य कर रहे हैं।

श्री रास ग्रंथ हमें सिखाता है कि—प्रेम ही परम सत्य है, आत्मा और परब्रह्म का संबंध जीवंत है, सेवा और समर्पण प्रेम का स्वाभाविक फल हैं, माया अस्थायी है, प्रेम शाश्वत है, और आत्म-जागृति केवल प्रेम से ही संभव है। इस तरह, श्री रास ग्रंथ केवल पढ़ने का ग्रंथ नहीं— यह प्रेम में जीने की शिक्षा है।

8.15 प्रकाश ग्रंथ: आत्म-जागृति का दीप

अज्ञान कोई अँधेरा स्थान नहीं है, वह एक विस्मृति है। आत्मा ने जब स्वयं को भूल लिया, तभी संसार का शोर सत्य बन बैठा। इसी विस्मृति के युगों पुराने अरण्य में प्रकाश ग्रंथ वह दीप है जो बाहर नहीं, भीतर जलाया जाता है। यह ग्रंथ जानकारी नहीं देता, वह स्मरण कराता है। स्मरण—कि तू देह नहीं है, न ही मन की चंचल लहर, न बुद्धि की सीमित दृष्टि। तू नूरी आत्मा है— चेतन, अविनाशी आनंद स्वरूप — जिसका मूल नाता अक्षरातीत परमधाम से है। युगों से आत्मा ने कर्मों के वस्त्र पहन लिए, गुण-अवगुणों को ही अपना स्वरूप मान लिया। इसी भूल से जन्म और मरण की अंतहीन कथा चली। प्रकाश उस मूल भ्रांति का मौन विच्छेदन है— कोई शोर नहीं, केवल जागरण।

इस जागरण में स्पष्ट होता है— शरीर साधन है, स्वामी नहीं; इंद्रियाँ द्वार हैं, गंतव्य नहीं; मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार सब औज़ार हैं— जिनका कार्य सेवा है, शासन

नहीं। इन सबके पार आत्मा स्थित है—शांत, उज्ज्वल और स्वतंत्र। जैसे दीप जलते ही अँधेरा स्वयं हट जाता है, वैसे ही आत्म-प्रकाश होते ही माया का बंधन ढीला पड़ने लगता है। यह प्रक्रिया बौद्धिक नहीं, जीवनगत है— सोच बदलती है, भाव पवित्र होते हैं, और दिशा घर की ओर मुड़ जाती है।

इस प्रकाश में तीन भाव सहज प्रकट होते हैं— कृतज्ञता, विरह और प्रेम-सेवा। कृतज्ञता उस कृपा के प्रति जिसने भूली हुई पहचान लौटाई। विरह उस घर की स्मृति से उपजता है जहाँ आत्मा की साँसें आज भी बसी हैं। और प्रेम-सेवा—विरह की अग्नि में शुद्ध होकर बहती धारा है, जहाँ आत्मा अपने अंग, गुण और इंद्रियाँ निजधनी को अर्पित कर देती है।

श्री मिहिरराज में विराजमान इंद्रावती—जागनी-लीला की चेतना हैं। वे आत्मा को अकेला नहीं जगातीं। कभी मन को टोकती हैं, कभी इंद्रियों को समझाती हैं, कभी जीव को अपने साथ चलने को कहती हैं। यहाँ जागरण एकाकी नहीं, समन्वित है— पूरा अंतःकरण एक दिशा में जागता है। प्रकाश ग्रंथ सुंदरसाथ को दोहरा दायित्व सौंपता है— पहले स्वयं जागो, फिर दूसरों के लिए दीप बनो।

यह संसार-त्याग नहीं सिखाता; यह संसार में रहते हुए माया से अछूता रहना सिखाता है। मार्कण्ड ऋषि की भाँति बैठे-बैठे माया को पहचान लेना ही इसकी साधना है। यहाँ प्रेम-सेवा भी प्रतीक में ढलती है— शरीर चरखा बनता है, मन तकला, श्वास पूँजी और श्रद्धा माला। इनसे काता गया सूत परमधाम में पश्चाताप से मुक्त करता है।

महामति लक्ष्य को अस्पष्ट नहीं छोड़ते। गोलोक या लीला नहीं, अब ध्येय है— अक्षरातीत परमधाम के प्रियतम के चरणों में होना। जहाँ आत्माएँ अपने निजधनी के संग अखंड प्रेमानंद में लीन रहती हैं। वे कहते हैं: वेदों का सार भागवत, भागवत का सार रास, रास का सार तारतम—और तारतम का सार जागनी-विचार है। जो इस विचार को जीवन में उतार लेता है, वह जन्म-मरण के भ्रम से मुक्त होकर अपने मूल घर लौट आता है। अतः प्रकाश ग्रंथ कोई ग्रंथ मात्र नहीं— यह आत्मा के हाथ में दिया गया वह दीप है जो अँधेरे को गिनाता नहीं, प्रकाश की दिशा दिखाता है।

8.16 खटरूती ग्रन्थ: विरह की ऋतुओं में जागती आत्मा

एक बालिका अपने दूर देश गए प्रियजन को हर ऋतु में एक पत्र लिख कर अपने हृदय के भाव प्रगट करती है तो वह वसंत में फूलों की खुशबू के साथ, ग्रीष्म में आँसुओं की तपन के साथ, वर्षा में भीगे मन के साथ, शरद में शांत प्रतीक्षा के साथ, हेमंत में स्वच्छ आशा के साथ और शिशिर में काँपते हृदय से करती है। ऋतुएँ तो बदलती रहती है, पर

सभी पत्रों में एक ही मूल बात थी— "मुझे तुम याद हो।" प्रियजन का यही विरह, जब गहराता है, तो प्रेम बनता है। और यही प्रेम मिलन की राह खोलता है।

खटरूती ग्रन्थ तारतम वाणी का वह भावमय ग्रन्थ है जहाँ आत्मा अपनी कथा छः ऋतुओं की भाषा में कहती है। यहाँ ऋतुएँ केवल मौसम नहीं, आत्मा की अवस्थाएँ हैं। वसंत – स्मृति की कोमलता है तो ग्रीष्म – विरह की तपन। वर्षा –प्रेम की उमंग, शरद – शांत प्रतीक्षा, हेमंत – निर्मल आशा, शिशिर – तीव्र तड़प। हर ऋतु आत्मा के भीतर प्रियतम की याद को और गहरा करती है।

आत्मा के लिए विरह दुःख नहीं, शोधन है। खटरूती में विरह रोने के लिए नहीं है, निखरने के लिए है। यहाँ दो प्रकार का विरह दिखता है— 1. सतगुरु-विरह जब श्री मिहिरराज जी अपने सतगुरु श्री देवचन्द्र जी से बिछुड़ते हैं— यह विरह गुरु-दर्शन की प्यास है। 2. धनी-विरह जिस में प्रबोधपुरी में नज़रबंदी के समय आत्मा अपने अक्षरातीत प्रियतम के साक्षात् दर्शन को तड़पती है। दोनों ही विरह आत्मा को भीतर से धो डालते हैं।

ऋतुओं की अग्नि में आत्मा का शोधन होता है। हर ऋतु में आत्मा पूर्व के आनंद की स्मृति को याद करती है। उसी स्मृति से विरह की अग्नि जलती है और उस अग्नि में उस के जैविक अवगुण पिघल जाते हैं। जैसे सोना आग में तपकर और अधिक चमकता है, वैसे ही आत्मा निर्मल होकर धनी के सामने खड़ी होती है और विनती करती है— "हे धनी! परमधाम में तो मैं आपके मिलन का सुख पाती हूँ, पर इस संसार में भी दर्शन देकर मेरी विरह-अग्नि शांत कीजिए।"

विरह से भीगी यह पुकार प्रियतम को द्रवित कर देती है। इन्द्रावती की विरहिणी आत्मा बारहमासी प्रसंग में श्री देवचन्द्र जी को ही धामधनी मानकर विरह करती है। यहाँ दो धाराएँ साथ बहती हैं— आत्मा का परब्रह्म से विरह और इन्द्रावती का निजानन्द-स्वामी से विरह। यह विरह अकेला नहीं, समग्र जागरण का प्रवाह है। खटरूती का कलश नाम के प्रकरण यह आश्वासन और विश्वास दिलाया गया है कि जो पहचान और उपलब्धि इन्द्रावती को हुई, वही हर आत्मा के लिए संभव है। विरह व्यर्थ नहीं जाता। स्वर्ण-कंगन के दृष्टांत द्वारा विरह की चरम अवस्था में आत्मा कह उठती है— "हे धनी! जब आप स्वयं सामने हैं, तो प्रतिबिंब क्यों दिखाया जा रहा है? जब हाथ में स्वर्ण-कंगन हो, तो दर्पण में उसे देखने की क्या ज़रूरत?" यह प्रश्न बताता है—आत्मा अब संकेतों से आगे, साक्षात् सत्य चाहती है।

अंततः आत्मा कहती है—"धनी! अब मैंने आपको पहचान लिया है। यही मेरी सबसे बड़ी संपत्ति है। अब मैं यह पहचान सब ब्रह्मात्माओं को दूँगी, ताकि वे भी जाग सकें।" यही खटरूती की सिद्धि है— विरह से जन्मा ऐसा प्रेम, जो केवल स्वयं को नहीं,

सबको जगाता है। खटरूती ग्रन्थ सिखाता है— विरह यदि सच्चा हो, तो वह रोने नहीं, पहचान दिलाने आता है।

8.17 कलश ग्रन्थ: आत्म-जागृति की पूर्णता

किसी भव्य मंदिर को देखिए। नीचे दीवारें हैं, स्तंभ हैं, गर्भगृह है—पर जब शिखर पर कलश स्थापित होता है, तभी मंदिर पूर्ण कहलाता है। कलश बताता है—अब निर्माण पूरा हुआ, अब यहाँ देवता का वास है। कलश ग्रन्थ भी यही कार्य करता है। यह समस्त शास्त्रों, दर्शनों और साधनाओं की यात्रा को आत्म-जागृति की पूर्णता तक पहुँचा देता है। यह तारतम वाणी का परिपक्व और निर्णायक चरण है—जहाँ प्रश्न समाप्त होते हैं और पहचान स्पष्ट हो जाती है। सूरत (महामंगलपुरी) में अवतरित यह वाणी पहले प्रकट हुए ज्ञान को एक समग्र दृष्टि प्रदान करती है और दिखाती है कि धर्म का अंतिम फल कर्मकांड नहीं, बल्कि जाग्रत आत्मा है।

कलश ग्रन्थ का केंद्र आत्मा की भीतरी अवस्था है। यह बताता है कि ज्ञान का अंतिम फल सूचना नहीं, परिवर्तन है। यह स्पष्ट करता है कि मनुष्य कैसे अपने भीतर—रूढ़ियों में उलझ जाता है, कर्मकांड की जड़ता में अटक जाता है, और बाह्य आडंबर को ही धर्म मानकर अपने मूल लक्ष्य से भटक जाता है। इस ग्रन्थ में विरह को आत्म-जागृति की शुरुआत बताया गया है। परब्रह्म की पहचान, उनकी कृपा का बोध और उनसे बिछुड़ने का विरह— यही वह आंतरिक प्रक्रिया है जिससे प्रेम जन्म लेता है, प्रेम से कृपा बरसती है, और कृपा से आत्मा अपने निज-स्वरूप को पहचान लेती है। यहाँ चेतावनी भी है—बिना सोचे-समझे दूसरों की नकल करना "चींटी-चाल" है। ऐसी चाल आत्मा को भ्रम में डाल देती है। इस तरह, कलश ग्रन्थ आत्मा को कलश की तरह उज्ज्वल, स्वच्छ और पूर्ण बनने का आह्वान करता है।

व्यवहार, साधना और जीवन-आचरण के संदर्भ में कलश ग्रन्थ यह स्पष्ट करता है कि कर्म स्वयं में मुक्ति नहीं देता। कर्म बाँधता है, पर प्रेम मुक्त करता है। यह वाणी दिखाती है कि परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग केवल विधि, नियम या बाह्य साधना से नहीं खुलता, बल्कि प्रेम, विरह और आत्मीय रहनी से खुलता है। यह ग्रन्थ ज्ञान के अहंकार में फँसे विद्वानों को, माया के जाल में उलझे धर्माचार्यों को, और केवल निराकार में अटके साधकों को आईना दिखाता है। इसके विपरीत, यह सहज प्रेमियों की मस्त, सरल और मुक्त जीवन-पद्धति को श्रेष्ठ ठहराता है—जहाँ आचरण, स्मरण और प्रेम एक हो जाते हैं।

सांस्कृतिक समन्वय और सामूहिक चेतना के संदर्भ में कलश ग्रन्थ तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म समन्वय का सशक्त आधार है। इसमें मूसा पैग़म्बर की तौरेत में निहित सत्य नए अर्थ के साथ प्रकट होता है— जहाँ कर्मकांड से आगे बढ़कर यह स्पष्ट किया जाता है

कि परमात्मा केवल निराकार नहीं, बल्कि निराकार से परे शुद्ध साकार परब्रह्म हैं। इसी कारण इसे प्रतीक रूप में "नवीन तौरेत" कहा गया है। क़ुरान-कतेब की परंपरा के गूढ़ भावों को खोलते हुए यह वाणी बताती है कि इस्लाम का वास्तविक स्वरूप केवल शरीयत में नहीं, बल्कि इश्क (प्रेम), करुणा और आत्म-जागृति में समझना चाहिए। इस प्रकार कलश ग्रन्थ दिखाता है कि भाषाएँ अलग हैं, पर सत्य एक है— और धर्म का उद्देश्य विभाजन नहीं, पहचान है।

कलश ग्रन्थ धर्म की संरचनात्मक विकृतियों को भी स्पष्ट करता है। यह दिखाता है कि जब धर्म केवल संस्थागत शक्ति, बाह्य नियम और सामाजिक नियंत्रण बन जाता है, तो वह आत्मा से कट जाता है। यह वाणी स्पष्ट कहती है— धर्म का काम मनुष्य को बाँधना नहीं, जाग्रत करना है। जैसे मंदिर का कलश पूरे मंदिर की पहचान बनता है, वैसे ही कलश ग्रन्थ समस्त शास्त्रों और परंपराओं के ज्ञान-मंदिर का शिखर है— जहाँ धर्म का चेहरा साफ-साफ दिखता है।

इस तरह, कलश ग्रन्थ का सार स्पष्ट और एकीकृत है—विरह से प्रेम से कृपा से पहचान। यह ग्रन्थ आत्मा को भीतर से जगाता है (I), जीवन-आचरण को शुद्ध करता है (IT), धर्मों के बीच समन्वय रचता है (WE), और धार्मिक संरचनाओं को सत्य की ओर मोड़ता है (ITS)। कलश ग्रंथ की ज्ञान यात्रा समाप्त नहीं होती, बल्कि आत्म-जागृति में स्थिर हो जाती है।

8.18 सनंध ग्रन्थ: सत्य का प्रमाण–दीप

कल्पना कीजिए—एक सभा में अनेक स्वर गूँज रहे हैं। हर स्वर स्वयं को सत्य कह रहा है। तर्क टकराते हैं, विश्वास भिड़ते हैं, पर निर्णय नहीं हो पाता। तभी एक शांत, गंभीर वाणी उठती है— "मुझे विश्वास नहीं, प्रमाण चाहिए।" क्षण भर में शोर थम जाता है। जहाँ प्रमाण प्रकट होता है, वहाँ सत्य को बोलने के लिए ऊँची आवाज़ की आवश्यकता नहीं रहती। सनंध ग्रन्थ वही स्थान है— जहाँ सत्य तर्क से नहीं, प्रमाण के प्रकाश से उद्घाटित होता है। यह ग्रन्थ मानने को नहीं कहता, यह जाँचने का साहस देता है। यह डराकर नहीं बाँधता, समझाकर मुक्त करता है। यह अंधी आस्था का ग्रन्थ नहीं, बल्कि जाग्रत विवेक का दीप है। यह मनुष्य से कहता है—आँख बंद मत करो, अंतर्दृष्टि जगाओ।

लगभग बयालीस प्रकरणों और अठारह सौ चौपाइयों में यह ग्रन्थ महामति प्राणनाथ जी के तारतम ज्ञान का प्रमाणिक स्तंभ बनकर खड़ा होता है। औरंगज़ेब तक पहुँची इसकी वाणी का संदेश स्पष्ट था— समस्या धर्म में नहीं, धर्म को संकीर्ण बना देने वाली दृष्टि में है।जब शास्त्र केवल बाह्य अर्थों में पकड़े जाते हैं, तो वही धर्म करुणा खो देता है और भय, कठोरता तथा हिंसा का रूप ले लेता है।

महामति स्पष्ट कहते हैं—धर्म का प्रयोजन मनुष्य को डराना नहीं, संवारना है। धर्म का कार्य है—अहं को गलाना, विवेक जगाना, और प्रेम को जीवन में उतारना। यदि धर्म के नाम पर घृणा फैले, अत्याचार बढ़े, तो वह धर्म नहीं— धर्म का विकृत प्रतिबिंब है। इसलिए सनंध ग्रन्थ का लक्ष्य स्पष्ट है—अंधविश्वास से मुक्ति, कर्मकांड जड़ता से स्वतंत्रता, कट्टरता से ऊपर उठकर सभी धर्मों के हृदय में धड़कती एकता की पहचान। यह सिखाता है कि सच्ची धार्मिकता भेष में नहीं, अहं-शून्यता, स्मरण और प्रेमपूर्ण जीवन में है।

सनंध प्रमाण सहित उद्घाटित करता है—जिसे वेद *ज्योति* कहते हैं, कुरान *नूर* कहता है, और बाइबिल *लाइट*— वह एक ही तत्त्व है—चेतन प्रकाश। वही प्रकाश ब्रह्माण्ड को चलाता है और मनुष्य के भीतर विवेक बनकर जलता है। फरिश्ते और देवतत्त्व, भाषाएँ भिन्न हैं, पर सत्ता एक ही है।

सनंध ग्रन्थ की एक गहरी चेतावनी है—जब कोई व्यक्ति या विचार एक ही दृष्टिकोण को पूर्ण सत्य मान ले और शेष आयामों को नकार दे, तो वही सोच खतरनाक एकांगीवाद बन जाती है। केवल आंतरिक अनुभव पर टिकना—जीवन को व्यवहार से काट देता है। केवल कर्म और आँकड़ों पर टिकना—करुणा का रस सुखा देता है। केवल अपनी संस्कृति को सर्वोच्च मानना—विभाजन को जन्म देता है। केवल प्रणालियों पर भरोसा—मानवीय संवेदना को अनदेखा कर देता है।परिणाम—असंतुलन, संघर्ष और अधूरा समाधान। महामति का उत्तर सीधा है—चारों आयामों का समन्वय। यही पूर्ण दृष्टि है, यही न्याय है, यही मंगल।

सनंध ग्रन्थ हमें यह बोध कराता है—सत्य किसी एक ग्रन्थ की संपत्ति नहीं, वह प्रमाण से प्रकाशित होने वालाअनंत प्रकाश है। जो इस दीप के आलोक में चलता है, वही अंधे अनुकरण से मुक्त होकर अपने वास्तविक लक्ष्य—परमात्मा के साक्षात्कार और आत्मिक पूर्णता की ओर अग्रसर होता है। आत्मा स्वतंत्र है— वह चाहे तो माया में उलझे, और चाहे तो विवेक से परमधाम का मार्ग पाए। मृत्यु अंत नहीं, यात्रा का मोड़ है। इस मार्ग पर दुख शत्रु नहीं, शिक्षक बन जाता है। आत्मा चलती रहती है— सीखती, जागती, और लौटती है। इस तरह, सनंध ग्रन्थ सिर्फ पढ़ा नहीं जाता— वह भीतर जलता है।

8.19 किरन्तन ग्रन्थ: जागरण की वाणी और जीवन-निर्माण का समन्वित मार्ग

कल्पना कीजिए—एक विशाल नगर है। लोग जागते हैं, चलते हैं, व्यापार करते हैं, पूजा भी करते हैं; पर भीतर कहीं कुछ सोया हुआ है। आँखें खुली हैं, पर दृष्टि नहीं; शब्द हैं, पर अर्थ नहीं; कर्म हैं, पर चेतना नहीं। एक दिन नगर के मध्य से एक ऐसी ध्वनि उठती है, जो न उत्सव की घोषणा है, न किसी सत्ता का आदेश। वह ध्वनि भीतर तक पहुँचती

है—और लोग पहली बार अपने ही जीवन को प्रश्नवाचक दृष्टि से देखने लगते हैं। किरन्तन वही ध्वनि है। वह मनोरंजन मात्र नहीं करता—वह जगाता है।

किरन्तन शब्द सुनते ही सामान्यतः 'कीर्तन' का भाव आता है—गायन, पाठ या भक्ति-संगीत। पर महामति श्री प्राणनाथ जी के यहाँ किरन्तन केवल गाने या सुनने की वाणी नहीं है। यह वह काव्यात्मक चेतना है, जो मनुष्य की सोई हुई आत्मा, सुप्त विवेक और भूली हुई आत्म-पहचान—तीनों को एक साथ स्पर्श करती है। इसी कारण किरन्तन कोई क्षणिक उपदेश नहीं, बल्कि जीवन-भर चलने वाली जागनी-यात्रा है। इस वाणी का मूल प्रश्न अत्यंत सीधा है— "मैं कौन हूँ?" महामति स्पष्ट करते हैं कि जब तक आत्मा अपने स्वरूप और अपने मूल लोक को नहीं पहचानती, तब तक धर्म केवल सामाजिक व्यवस्था बनकर रह जाता है। यहाँ निर्मल आत्मा को ही सच्चा वैष्णव कहा गया है—और यह निर्मलता वेश या कर्मकांड से नहीं, बल्कि परब्रह्म की पहचान से जन्म लेती है। किरन्तन सुख और दुख—दोनों को जागरण के उपकरण की तरह देखता है। सुख आए तो आसक्ति से सावधान करता है, और दुख आए तो उसे गुरु बना लेने को कहता है। क्योंकि जागृति के बिना सुख भी प्रियतम से दूर कर सकता है, और जागृति के साथ दुख भी मिलन की सीढ़ी बन सकता है।

किरन्तन संसार से पलायन नहीं सिखाता; वह संसार में रहते हुए जाग्रत रहने की कला सिखाता है। यह स्पष्ट करता है कि केवल बाह्य भक्ति या कर्मकांड से मुक्ति नहीं खुलती। हर साधना को अक्षरातीत प्रेम में रूपांतरित करना पड़ता है। इस यात्रा का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है— आत्म-साक्षी। यही भीतर का दीप है, जो बिखरे अनुभवों को जोड़कर साधक को समग्र सत्य की ओर ले जाता है। किरन्तन इस क्रमिक चेतना-विकास को 'महामतित्व' कहता है—जहाँ छोटी-छोटी समझें मिलकर व्यापक दृष्टि बन जाती हैं। कुछ लोग किनारे बैठकर बहस करते हैं, कुछ केवल स्नान कर संतुष्ट हो जाते हैं, पर जो पार जाना चाहता है, उसे नदी में उतरकर पुल बनाना पड़ता है। किरन्तन सिखाता है—ज्ञान तभी सार्थक है, जब वह जीवन-पुल बने।

किरन्तन की वाणी आत्मा–परमात्मा के शाश्वत संबंध को किसी दार्शनिक जटिलता में नहीं बाँधती। वह रूपकों, जीवन-दृष्टांतों और दैनिक अनुभवों के माध्यम से साधक को भीतर की यात्रा पर ले जाती है। इसी कारण यह ग्रन्थ केवल आध्यात्मिक नहीं रहता—यह जीवन-निर्माण का काव्य बन जाता है, जहाँ भक्ति, नैतिकता, सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय बोध एक ही प्रवाह में बहते हैं। इस में उपनिषद, गीता और भागवत के गूढ़ संकेत बोझ नहीं बनते—अनुभव बन जाते हैं। विभिन्न मतों और परंपराओं से संवाद मिलता है, पर विवाद नहीं। यह वाणी बार-बार चेताती है— शब्दों में मत उलझो; अर्थ को

जियो। जो शब्द में अटक गया, वह भटका; जिसने अर्थ को जिया, वह पहुँचा। यहाँ "यथार्थ हिंदुत्व" किसी से द्वेष नहीं, बल्कि सत्य, करुणा, नैतिकता और साहस से जीया गया जीवन-धर्म है यह समझाया गया है।

सामाजिक स्तर पर किरन्तन जाति-पाँति, छुआछूत, पाखंड और जड़ कर्मकांड का स्पष्ट खंडन करता है। मुगलकालीन अत्याचारों का वर्णन घृणा फैलाने के लिए नहीं, बल्कि समाज को नींद से जगाने और आत्म-सम्मान को दृढ़ करने के लिए है। इसी संदर्भ में सतगुरु का दृष्टांत आता है। संसार कभी सागर बन जाता है, कभी बाज़ार। शरीर नौका है और जीव नाविक। पर सतगुरु के बिना यह यात्रा खतरनाक है। सतगुरु वह कुशल मार्गदर्शक है, जो ढोंग से बचाता है, भीतर की जागृति को स्थिर करता है और सहजता से पार उतार देता है। किरन्तन समाज को यह स्मरण कराता है कि धर्म का कार्य केवल व्यवस्था बनाना नहीं, बल्कि चेतना का उत्थान है—व्यक्ति में भी और समाज में भी।

इस तरह, किरन्तन ग्रन्थ केवल सुनने या पढ़ने की वाणी नहीं है—यह जीने की शिक्षा है। यह आत्मा को उसकी पहचान तक, जीवन-आचरण को प्रेममय साधना में, समाज को करुणा और संवाद में, और संरचनाओं को विवेक व मार्गदर्शन में स्थापित करता है। संक्षेप में किरन्तन का संदेश स्पष्ट है—भीतर जागो, सत्य पहचानो, प्रेम में स्थिर हो, और संसार में रहते हुए भी परमधाम की ओर अग्रसर हो। यही किरन्तन की जागरण-घंटी है—जो आज भी सुनाई देती है, यदि कोई सुनने को तैयार हो।

8.20 खुलासा ग्रन्थ *(तारतम ज्ञान की रोशनी में वेद–कतेब के गूढ़ रहस्यों का समन्वित उद्घाटन)*

मान लीजिए एक भवन में अनेक कक्ष हैं। हर कक्ष का ताला अलग है। कोई व्यक्ति एक ही चाबी लेकर सभी तालों को खोलना चाहता है—कहीं वह चाबी बड़ी है, कहीं छोटी; कहीं घूमती है, कहीं अटक जाती है। तब विवाद होता है—"यह ताला गलत है" या "यह चाबी झूठी है।" पर जब कोई समझदार व्यक्ति आता है और कहता है—"ताले अलग हैं, इसलिए चाबियाँ भी अलग होंगी"—तभी भवन खुलने लगता है। खुलासा ग्रन्थ वही समझ है। यह ताले नहीं तोड़ता, न चाबियाँ बदलता है— यह यह पहचान कराता है कि किस ताले के लिए कौन-सी चाबी है।

खुलासा उर्दू शब्द है—जिसका अर्थ है *स्पष्टीकरण* या *भीतरी अर्थ का उद्घाटन*। इस ग्रन्थ का पहला कार्य मनुष्य की भीतरी दृष्टि को शुद्ध करना है। महामति स्पष्ट करते हैं कि धर्मों का झगड़ा परमात्मा की अनेकता का प्रमाण नहीं, बल्कि मानव-बुद्धि की सीमाओं, अहं और अज्ञान का परिणाम है। यदि सब आत्माएँ एक ही परमेश्वर से उत्पन्न हैं, तो यह कैसे संभव है कि परमात्मा किसी को सत्य दे और किसी को असत्य? इसी प्रश्न

से खुलासा ग्रन्थ मनुष्य को झकझोरता है और कहता है— गलती सत्य में नहीं, हमारी समझने की विधि में है। यही कारण है कि केवल वेद–कतेब पढ़ लेने से "पहचान" नहीं होती। पहचान के लिए कुंजी चाहिए—भीतरी अर्थ की। जब यह कुंजी मिलती है, तब मनुष्य के भीतर से "मैं सही–तुम गलत" का अहं ढहने लगता है।

खुलासा ग्रन्थ केवल भावनात्मक समन्वय नहीं सिखाता; वह तारतम्य-केंद्रित तर्कपूर्ण स्पष्टता भी देता है। महामति बताते हैं कि संसार स्वप्न-सदृश दृश्य-लीला है— अस्थायी, परिवर्तनशील। इसलिए परमात्मा अपने मूल स्वरूप से इस स्वप्न-जगत में सीधे नहीं आते, पर एक ऐसा कार्यकारी तत्त्व अवश्य प्रकट होता है, जो इस दृश्य-जगत में काम कर सके और धाम से भी जुड़ा रहे। इसी तत्त्व को महामति "हुकम" कहते हैं—परमात्मा की इच्छा-शक्ति, आदेश-शक्ति, संचालक विवेक। जैसे स्वप्न में दृश्य बदलते रहते हैं, पर स्वप्न-दृष्टा सत्य रहता है, वैसे ही सृष्टि के दृश्य बदलते हैं, पर हुकम-तत्त्व स्थिर रहता है। यह समझ साधक के व्यवहार को भी संतुलित करती है— वह दृश्य में उलझता नहीं, दृष्टा को पहचानने लगता है।

इस ग्रन्थ का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान धर्मों के बीच संवाद है—विवाद नहीं। यह वेद-पक्ष और कतेब-पक्ष को आमने-सामने खड़ा नहीं करता, बल्कि उनकी प्रतीकात्मक भाषाओं के पीछे छिपे एकत्व-सूत्र को उजागर करता है। महामति दिखाते हैं कि कृष्ण, क्राइस्ट, मुहम्मद जैसे नाम अनेक संदर्भों में एक ही हुकम-तत्त्व के भाषाई संकेत हो सकते हैं— कहीं "वर्ड", कहीं "नूर", कहीं "बोधि", कहीं "कृष्ण-तत्त्व"। यह महापुरुषों को छोटा करना नहीं, बल्कि यह समझना है कि उनके पीछे प्रेरक-स्रोत एक ही है। जब यह दृष्टि खुलती है, तब जाति, भेष, भाषा और परंपरा की दीवारें ढहने लगती हैं, और धर्म "पहचान" नहीं, प्रेम का सेतु बन जाता है।

खुलासा ग्रन्थ "हुकम" के कार्य-रूप को तीन स्तरों में स्पष्ट करता है— बशरी, मलकी और हकीकत। बशरी स्तर पर धर्म समाज को नियम और मर्यादा देता है। मलकी स्तर साधक को ऊर्ध्व ज्ञान और धाम-सुध की ओर उठाता है। और हकीकत स्तर परमधाम और परमात्म-तत्त्व की पूर्ण सच्चाई को उद्घाटित करता है। इसी क्रम में "म्याराज" या "धाम-दर्शन" का संकेत आता है—

धाम का दर्शन उसी को संभव है, जिसका धाम से वास्तविक सम्बन्ध हो। इस प्रकार हुकम-तत्त्व एक मध्यस्थ संरचना बन जाता है— जो संसार और धाम, दृश्य और सत्य, मनुष्य और परमात्मा को जोड़ता है।

यह एक कुंजी-ग्रन्थ है, जो धर्मों को मिटाता नहीं, बल्कि उनके भीतर छिपे सत्य को खोलता है। सिखाता है कि सत्य एक है, भाषाएँ अनेक हैं। और इस समझ का फल यह

है कि पूर्वाग्रह ढहें, झगड़े शिथिल हों, और आत्मा अनन्य प्रेम-उपासना द्वारा सत्य–प्रेम–आनन्द के धाम की ओर अग्रसर हो। यही खुलासा ग्रन्थ का संदेश है— विवाद नहीं, विवेक; खंड नहीं, तारतम्य-केंद्रित समन्वय; और पहचान नहीं, जागरण।

8.21 खिलवत ग्रन्थ *(प्रेम, भुलवनी और जागृति का दिव्य रहस्य)*

मान लीजिए एक दीपक जल रहा है। जब तक उसकी लौ शांत और स्थिर है, तब तक वह आसपास सब कुछ प्रकाशित करता है। पर यदि हवा तेज़ हो जाए, तो लौ काँपने लगती है— प्रकाश भी डगमगाने लगता है। खिलवत ग्रन्थ उसी भीतरी लौ की बात करता है— जहाँ आत्मा और परमात्मा के बी ऐसा अंतरंग मिलन होता है कि बाहर की हवा भीतर के प्रकाश को हिला नहीं पाती। यही खिलवत है।

"खिलवत" शब्द अरबी *ख़ल्वत* से निकला है, जिसका सामान्य अर्थ एकांत है। पर तारतम वाणी में खिलवत सिर्फ बाहरी (शारीरिक) एकांत नहीं, बल्कि आत्मा और अक्षरातीत परब्रह्म के बीच सबसे गहन, प्रेमपूर्ण और दिव्य अंतरंग मिलन है। यह वह अवस्था है जहाँ आत्मा को अनुभव होता है कि परमात्मा कोई दूर की सत्ता नहीं, बल्कि अपने हृदय के धाम में हैं। जब प्रेम (इश्क) की तरंगें आत्मा को स्पर्श करती हैं, तब आत्मा खिलवत में प्रवेश करती है— जहाँ "मैं" और "तू" नहीं रहते, केवल प्रेम का रस और उसका आस्वादन रहता है।

तारतम वाणी का मूल उद्घोष है—"प्रेम और ब्रह्म एक हैं।" यदि परमात्मा रस हैं— *"रसो वै सः"*—तो आत्मा उस रस की प्यास है। रस और प्यास का यह संबंध अनादि है। परमात्मा पूर्णता हैं, आत्मा चाह की कोमल अपूर्णता। और इसी पूर्णता–अपूर्णता के बीच प्रेम की लीला चलती है— कभी मिलन में, कभी विरह में। यहाँ विरह प्रेम का शत्रु नहीं, उसकी गहराई का साधन है।

जब आत्माएँ प्रेम के इस रहस्य को भूल जाती हैं, तब रसराज अपने प्रेम को प्रकट करने का संकल्प करते हैं। पर प्रेम बिना विरह के परिपक्व नहीं होता— जैसे संगीत बिना आलाप के नहीं निखरता। इसीलिए भुलवनी और विरह उत्पन्न होते हैं। यह कोई दंड नहीं, बल्कि प्रेम की तैयारी है। जैसे जल से बाहर मछली तड़पती है, वैसे ही आत्मा विरह में तड़पती है। और जब वह प्रेम-जल में लौटती है, तो उसका आनंद पहले से कहीं अधिक गहन होता है। दुःख-लीला यहाँ शोधन है— अहं, जड़ता और भ्रम का गलना।

यह संसार स्वप्न-सदृश है। झूठे को देखे बिना सच्चे का मूल्य समझ में नहीं आता। नदी किनारे रहने वाला जल का मूल्य नहीं जानता, पर रेगिस्तान में रहने वाला एक बूँद की कीमत समझता है। सपने का जल प्यास नहीं बुझाता— तभी असली जल की

पहचान होती है। इसी प्रकार संसार की नकल देखकर ही आत्मा परमधाम की सच्ची साहेबी पहचानती है।

वाणी स्पष्ट करती है कि अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत परब्रह्म स्वरूप से एक हैं, पर लीला में भिन्न। अक्षर ब्रह्म की लीला बालवत् है—जैसे बालक रेत में घर बनाता है। सृष्टि रचना है, पर प्रेम की गहराई अभी नहीं। अक्षरातीत परब्रह्म की लीला प्रेम-माधुर्य की पराकाष्ठा है— जहाँ मिलन, विरह, चाह और आनंद सब चरम पर पहुँचते हैं।

प्रेम-शक्ति का कार्य है—लीला के अनंत भावों को जगाना। इसलिए एक अद्भुत समन्वय रचा गया—अक्षर ब्रह्म को अक्षरातीत की प्रेमलीला का दर्शन मिले, और परमात्मा की कलांश-आत्माओं को अक्षर ब्रह्म की सृष्टि-लीला का अनुभव। पर प्रेमलीला का तेज इतना प्रबल है कि उसे सीधे नहीं दिखाया जा सकता। इसलिए यह स्वप्न के माध्यम से प्रकट होती है— जैसे सूर्यग्रहण दर्पण में देखा जाता है।

सृष्टि इसलिए रची गई कि आत्माएँ भुलवनी से विरह और विरह से मिलन के क्रम से गुजरकर प्रेम को पहचानें। यह संसार दृष्टि की सृष्टि है— जो दिखता है, वही सच लगता है, और फिर मिट जाता है। आत्मा देखने वाली है, परमात्मा दिखाने वाले। देश–काल–कारण से छोटा स्वप्न (रात) और बड़ा स्वप्न (सृष्टि) खड़ा होता है। जागनी तब होगी जब देखने की रुचि पूरी होगी।

खिलवत ग्रन्थ का अंतिम फल यह है कि आत्मा मिथ्या "मैं" को गलाकर हृदय में धनी की सच्ची "मैं" प्रतिष्ठित करे। तब—प्रेम, बुद्धि और आचरण एकरस हो जाते हैं। कहनी–करनी–रहनी में भेद नहीं रहता। जीवन स्वयं प्रेम-सेवा का धर्म बन जाता है। और आत्मा का हृदय खुद परमधाम बन जाता है। यही खिलवत की सिद्धि है—जहाँ आत्मा और परमात्मा के बीच कोई दूरी नहीं रहती, केवल अनंत प्रेम का अंतरंग संवाद शेष रहता है।

8.22 परिक्रमा ग्रन्थ: परमधाम के 25 आयामों की प्रेम–यात्रा

एक बार एक बालक अपनी माँ का हाथ पकड़कर मंदिर आया। वह बहुत छोटा था; उसे देवता के दर्शन भी ठीक से समझ नहीं आते थे। माँ ने उसे गोद में उठाया और पूरे मंदिर की परिक्रमा करा दी। बालक ने कुछ पूछा नहीं, कुछ जाना नहीं—पर जब माँ ने उसे नीचे उतारा, तो उसके भीतर एक अजीब-सी शांति और अपनापन बस चुका था। मंदिर अब उसके लिए कोई दूर की चीज़ नहीं रही; वह उसकी स्मृति और भाव में उतर चुका था। परिक्रमा ग्रन्थ साधक के साथ ठीक यही करता है। यह आत्मा को जानकारी नहीं देता, बल्कि प्रेमपूर्वक गोद में उठाकर परमधाम की परिक्रमा करा देता है—ऐसी परिक्रमा, जो पैरों से नहीं, चित और चेतना से होती है।

परिक्रमा ग्रन्थ कुलजम स्वरूप का वह विशाल और उजला आँगन है, जहाँ शब्द केवल पढ़े नहीं जाते—वे आत्मा को चलाते हैं। यह ग्रन्थ केवल किसी "ऊपरी लोक" का वर्णन नहीं करता, बल्कि भीतर की चेतना को क्रमशः उसी लोक के अनुरूप ढालता है। इसका केंद्रीय संदेश अत्यंत सरल है—परमधाम को जानो नहीं, परमधाम में जीना सीखो। इसलिए यह ग्रन्थ परमधाम को एक बिंदु या एक कल्पना के रूप में नहीं, बल्कि 25 प्रेम–आयामों में प्रकट करता है। ये 25 पक्ष कोई भौगोलिक स्थल नहीं, बल्कि प्रेम की 25 अवस्थाएँ हैं, जिनसे होकर आत्मा का भाव परिपक्व होता है, गहराता है और अंततः "वापसी" का अडिग निश्चय बन जाता है।

जैसे मानव अस्तित्व अनेक स्तरों और आयामों का समन्वय है—देह, मन, भाव, चेतना, समाज—वैसे ही परिक्रमा ग्रन्थ बताता है कि आत्मा को पूर्ण प्रेम-बोध तक पहुँचाने के लिए परमधाम की यह बहुआयामी यात्रा आवश्यक है। इसलिए यह यात्रा देखने की नहीं, हो जाने की यात्रा है। परमधाम कोई स्थिर स्वर्ग नहीं, बल्कि नित्य प्रेम और नित्य लीला की चेतन भूमि है, जहाँ समय बहता नहीं, क्षय नहीं होता और जड़ता का प्रवेश नहीं। वहाँ जीवन चलता नहीं—वह खिलता है। हर क्षण नई लीला, नया रस, नया उल्लास। मन को टिकने के लिए लक्ष्य चाहिए, ध्यान को आकार चाहिए और प्रेम को आधार चाहिए—इसीलिए परिक्रमा ग्रन्थ परमधाम की शोभा, व्यवस्था और लीला का इतना सजीव वर्णन करता है, ताकि साधक के भीतर धाम का जीवंत नक्शा बन सके।

ग्रन्थ का संकेत स्पष्ट है—निराकार में शांति संभव है, पर नित्य आनंद केवल नित्य, चिदघन साकार स्वरूप में स्थिर होता है। परमधाम इस जगत की जड़ प्रकृति से बना नहीं; वह परब्रह्म के नूर से रचा है—इसलिए उसे अप्राकृतिक कहा गया है। वहाँ पर्वत, नदी, वन, महल और आकाश आते हैं, पर वे वस्तुएँ नहीं, चेतना की अवस्थाएँ हैं। कहीं चैतन्य पर्वत-सा सघन हो जाता है, कहीं नदी-सा बहने लगता है। यह धाम तर्क से नहीं पकड़ा जाता; इसे तारतम ज्ञान, अनन्य श्रद्धा और प्रेम-लक्षणा भक्ति से ही अनुभव में उतारा जा सकता है। यही ब्रह्मप्रियाओं का नित्य सुहाग है—जहाँ प्रेम कोई घटना नहीं, आत्मा की स्वाभाविक धड़कन बन जाता है।

परमधाम कालातीत है। वहाँ "पहले–बाद" का बंधन नहीं। परिक्रमा ग्रन्थ संकेत देता है कि धाम में जागने पर आत्मा को ऐसा अनुभव होगा मानो ब्रज-लीला, रास-लीला और जागनी-लीला—तीनों एक ही क्षण में प्रकाशित हो गई हों। जो यहाँ क्रम में घटता है, वहाँ नित्य-वर्तमान बनकर एक साथ चमकता है। इसी अनुभव को स्थिर करने का सबसे मधुर साधन ग्रन्थ बताता है—चितवनि। चितवनि कल्पना नहीं, प्रेमपूर्वक देखना है। जब

आत्मा भीतर से धाम को देखती है, तभी प्रेम अंकुरित होता है; और प्रेम के बिना मोह ढीला नहीं पड़ता।

परमधाम के 25 पक्ष—रंगमहल, कुंज-निकुंज, यमुना, चौगान, माणिक-पहाड़, आठ सागर आदि—किसी जड़ भूगोल का नक्शा नहीं हैं। ये प्रेम के 25 क्रीड़ा-स्थल हैं, जहाँ सेवा, स्नेह, एकदिली और आनंद-विहार के माध्यम से आत्मा के भीतर धाम की हकीकत उतरती है। और इन सबके केंद्र में है परिक्रमा ग्रन्थ की सबसे गहरी दृष्टि—स्वलीला-अद्वैत। धाम में श्रीराज ही भोक्ता हैं और वही भोग्य। उसी चिदघन प्रकाश में विविध रूप, रंग और रस स्वतः स्फुरित होते हैं, और आत्माएँ नित्य-नवीन आनंद पाती रहती हैं।

इस प्रकार परिक्रमा ग्रन्थ आत्मा को तीन अमूल्य उपहार देता है—लक्ष्य (परमधाम का जीवंत लक्ष्य), आधार (चितवनि का स्थिर आधार) और रस (प्रेम की गहराई)। यह ग्रन्थ आत्मा को परमधाम के 25 प्रेम-आयामों की परिक्रमा कराकर उसके भीतर धाम की ऐसी स्मृति जगा देता है कि वह परमधाम को केवल माने नहीं, अनुभव करे—और उसी प्रेम में लौटने को आतुर हो जाए। यही परिक्रमा ग्रन्थ का संदेश है—भीतर की यात्रा से ही बाहरी मुक्ति संभव है।

8.23 सागर ग्रन्थ — परम चेतन की अनन्त लीलाओं का बोध

कल्पना करें—सभी विद्यार्थी अपने शिक्षक के साथ समुद्र के किनारे खड़े हैं। सामने दूर तक फैला नील जल, उठती–गिरती लहरें, गहराई से आती गर्जना और क्षितिज तक फैली असीमता। कुछ विद्यार्थी लहरों को गिनने लगते हैं, कुछ पानी की ठंडक पर बात करते हैं, और कोई कहता है—"समुद्र कितना विशाल है!"तभी शिक्षक एक प्रश्न करते हैं—"क्या समुद्र केवल उतना ही है, जितना हमारी आँखें देख पा रही हैं?" फिर वे मुट्ठी में थोड़ा-सा समुद्री जल भरकर कहते हैं—"यह भी समुद्र का ही जल है, पर क्या इसे समुद्र कह सकते हैं?" विद्यार्थी चुप हो जाते हैं। शिक्षक मुस्कुराकर कहते हैं—"समुद्र को जानना मतलब उसे नापना नहीं, बल्कि उसकी गहराई, उसके स्वभाव और उसकी असीमता को महसूस करना है। जब तक हम किनारे खड़े हैं, तब तक हम केवल उसकी सतह देखते हैं; जानना तब शुरू होता है, जब हम भीतर उतरते हैं।" यही बोध सागर ग्रन्थ का प्रवेश-द्वार है।

सागर ग्रन्थ परमात्मा की असीमता और अनन्तता को "सागर" के रूपक से समझाता है। जैसे समुद्र के सामने खड़े होकर मनुष्य उसकी विशालता, गहराई और शोभा में डूबता है, वैसे ही आत्मा जब परम चेतन की अनन्त लीलाओं पर चित्त स्थिर करती है, तो वह अपनी संकुचित सीमाओं से मुक्त होकर आनंद के विस्तार का अनुभव करती है। संसार के सागर विशाल होकर भी जड़ प्राकृतिक नियमों से बंधे हैं—वे चाहें तो सबकी

प्यास बुझा सकते हैं, पर "चाह" नहीं रखते; वे शक्ति रखते हैं, पर "कृपा" नहीं। इसके विपरीत परमधाम का आनंद-सागर चेतन नियमों से संचालित है—प्रेम, सौंदर्य और प्रज्ञान के नियमों से—जहाँ हर क्षण नित्य नवीन लीला प्रवाहित होती रहती है। इसीलिए सागर ग्रन्थ का संदेश यह नहीं कि "बहुत कुछ है", बल्कि यह कि अनन्तता चेतना का स्वभाव है, और उसे जानने की विधि भी चेतना ही है।

इस बोध को परिक्रमा ग्रन्थ और सागर ग्रन्थ का संबंध और स्पष्ट करता है। परिक्रमा ग्रन्थ में आठों सागरों को जल से भरे हुए, "बड़ी रांग" (किलानुमा विशाल महलों) के बीच, नूरी भूमि, बाग़-बगीचों और हवेलियों से घिरा हुआ दिखाया गया है—यह परमधाम की जाहिरी शोभा है, जो दृष्टि को आकर्षित करती है और कल्पना को दिशा देती है। पर सागर ग्रन्थ उसी दृश्य के भीतर छिपे बातिनी स्वरूप को खोलता है—यहाँ सागर जल नहीं, बल्कि परब्रह्म के दिव्य गुण-लक्षणों के महासागर हैं। इसलिए पाठ्यक्रम में यह सूत्र याद रखें: परिक्रमा ग्रन्थ "दृश्य-वैभव" का पाठ है, सागर ग्रन्थ "गुण-वैभव" का। पहला आँख को धाम दिखाता है, दूसरा हृदय को धाम की भाषा सिखाता है।

सागर ग्रन्थ का केंद्रीय तत्त्व प्रज्ञान है। यहाँ ज्ञान और प्रज्ञान का भेद बहुत निर्णायक बन जाता है: ज्ञान सीमाएँ खोजता है, वस्तुओं को नाम-रूप में बाँधकर समझता है; जबकि प्रज्ञान सीमाएँ गिराता है, नाम-रूप के पार जाकर एकत्व की अखण्डता में टिकता है। जहाँ ज्ञान सीमित रूपों में प्रकट होता है, वहीं प्रज्ञान में वही सीमाएँ अनन्तता में विलीन होने लगती हैं। इसी कारण तारतम-दृष्टि कहती है कि परमधाम में चिद-प्रज्ञान एकरस है—इसलिए वहाँ परिवर्तन नहीं; पर सृष्टि में वही चिद-रस ज्ञान-रूप होकर विविधता और परिवर्तन का खेल रच देता है। आधुनिक युग की नेटवर्क-चेतना—इंटरनेट, डेटा-जाल, कृत्रिम बुद्धिमत्ता—भी हमें एक संकेत देती है कि "जानना" केवल जानकारी इकट्ठा करना नहीं, बल्कि सम्बन्धों का विशाल जाल समझना है; फिर भी यह संकेत केवल आभास है—परमधाम का प्रज्ञान तो उससे भी परे, स्वप्रकाश और स्वानुभूत है।

तारतम दृष्टि में परमात्मा गुणों के सागर हैं—आनंद, ज्ञान, प्रेम, दया, शोभा और प्रकाश के सागर। संसार में जो भी सुंदरता, प्रकाश या प्रेम दिखाई देता है, वह उसी परम शोभा-सागर और नूर-सागर की झलक है। जैसे बिजलीघर में अपार ऊर्जा होती है, पर वह बल्बों के माध्यम से "जगमगाहट" बनकर प्रकट होती है; वैसे ही परमात्मा स्वयं परमज्योति हैं—और लोक-लोक में उनके प्रकाश, शोभा और रस के अलग-अलग स्तरों के प्रकटन दिखाई देते हैं। यह दृष्टि साधक को संसार-विरोधी नहीं बनाती; बल्कि संसार के आकर्षणों को ऊर्ध्व करती है—झलक को मूल से जोड़ देती है, ताकि मन "छोटे रस" में अटककर न रह जाए, बल्कि महासागर की ओर लौटे।

सागर ग्रन्थ यह भी बताता है कि आठ सागर परमधाम के मध्य स्थित 'मूल मिलावा' में विराजमान परब्रह्म धनी के हृदय-कमल से प्रकट हुए हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि कोई भूगोलिक जल-स्रोत बहा, बल्कि यह कि ब्रह्मात्माओं के सुख हेतु धनी के हृदय से निरंतर प्रवाहित होने वाला अनन्त लाड़-प्यार—अपने-अपने प्रधान भाव में—आठ दिशाओं में आठ सागर बनकर शोभित है। प्रत्येक सागर धनी के हृदय के किसी एक प्रधान गुण को प्रकाशित करता है, पर कोई गुण किसी एक सागर में बंद नहीं; सभी सागर परस्पर संबंध में एक-दूसरे के गुणों से श्रृंगारित हैं। इसी प्रधानता के कारण हर सागर का अपना रंग, स्थान और लीला-स्वरूप बताया गया है, और आठों सागरों की परिक्रमा सम्पूर्ण परमधाम को इंद्रधनुषी माला-सा श्रृंगारित कर देती है।

समझ की सुविधा के लिए सागर ग्रन्थ आठ सागरों को दो व्यापक विभागों में भी देखने देता है। एक विभाग—नूर, दधि, मधु और सर्वरस—मुख्यतः श्री राज जी की साहेबी, ऐश्वर्य, इल्म/प्रज्ञान की परिपूर्णता और मेहेर की महिमा को प्रकाशित करता है। दूसरा विभाग—नीर, क्षीर, घृत और रस—आनंदस्वरूपा श्री श्यामा जी और समस्त ब्रह्मात्माओं की शोभा, एकदिली, निश्चल प्रेम और अखण्ड निसबत को प्रकट करता है। इस विभाजन का उद्देश्य अलगाव नहीं, बल्कि अध्ययन की स्पष्टता है—ताकि हम समझ सकें कि परमधाम की एक ही पूर्णता में राज-पक्ष और श्यामा-पक्ष—दोनों का रस-संतुलन साथ-साथ चमकता है।

अंततः सागर ग्रन्थ साधक को यह निष्कर्ष देता है कि परमात्मा को जानना बाहरी कल्पना नहीं, बल्कि चेतना की जड़ता से मुक्त होकर अनन्त चेतन-सागर में उतरना है। परिक्रमा ग्रन्थ दृश्य-वैभव से मन को आकर्षित करके "धाम" की ओर मोड़ता है, और सागर ग्रन्थ उस मोड़ को भीतर की दिशा देता है—कि अब सागरों की जाहिरी शोभा से आगे बढ़कर उनकी बातिनी गहराइयों में गोता लगाओ। यही गोता "चितवनी" है—जहाँ साधक गुणों का पाठ नहीं पढ़ता, गुणों में स्नान करता है; और धीरे-धीरे प्रियतम के दिल की गहराई तक पहुँचकर यह अनुभव करने लगता है कि अनन्तता कहीं बाहर नहीं, अंदर जागी हुई चेतना का स्वभाव है।

आठ सागर — "जाहिरी शोभा" से "बातिनी गुण" तक

भूमिका (तारतम्य-केंद्रित समन्वय की कुंजी): परमधाम के *आठ सागर* को समझने की सरल कुंजी यह है कि परिक्रमा ग्रन्थ सागरों की *जाहिरी* (दृश्य/स्थापत्य) शोभा दिखाता है—जल से भरे सागर, नूरी भूमि, बाग़-बगीचे और भव्य महल; जबकि सागर ग्रन्थ उसी दृश्य के पीछे छिपे *बातिनी* (आंतरिक) अर्थ को खोलता है—कि ये सागर वास्तव में परब्रह्म के दिव्य गुणों के महासागर हैं।

संक्षेप में: परिक्रमा = बाह्य दर्शन, सागर = अंतर्मर्म। आठों सागर *मूल मिलावा* में विराजमान धनी के हृदय-कमल से प्रकट माने गए हैं—अर्थात ये जड़ भूगोल नहीं, बल्कि अनन्त लाड़–प्यार के गुण-प्रवाह हैं। हर सागर में सभी गुण उपस्थित हैं, पर एक प्रधान गुण विशेष रूप से प्रकाशित होता है; इसी कारण उसका रंग, स्थान और लीला अलग कही गई है।

(1) नूर सागर — तेज/ज्योति और साहेबी: नूर सागर परमधाम के चैतन्य-प्रकाश का मूल रूपक है। यह नूर केवल प्रकाश नहीं, बल्कि सच्चिदानन्दमय, कोमल और दिव्य-रसपूर्ण तत्त्व है, जिसका प्रतिबिम्ब परमधाम–अक्षर–क्षर में तारतम्य से झलकता है। इसके स्पर्श से आत्मा में "पहचान" जागती है—ईश्वर को मानने से आगे, भीतर से जानना। यहाँ *अंग–अंगी* भाव स्पष्ट होता है।

(2) नीर सागर — शोभा/सुंदरता: नीर सागर परम-शोभा का सागर है। इसका केन्द्र ब्रह्मात्माओं की सामूहिक शोभा—निर्मल भाव, पारदर्शी संवाद और युगल-स्वरूप के समक्ष एकरस विराजना है। यह बताता है कि परमधाम की सुंदरता वस्तुओं से नहीं, हृदय-भाव के प्रकाश से बनती है।

(3) क्षीर सागर — इकदिली (वाहेदत): क्षीर (खीर) का रूपक एकात्म-हृदय का संकेत है—धनी का प्रेम आत्माओं में ऐसा भर जाता है कि "एक दिल" स्थिर हो जाता है। एक के सुख से सबका सुख—यही *दिल सागर* का अनुभव है। प्रतिभास में यह इकदिली कम–अधिक हो सकती है; स्वप्न-संसार में विभाजन का आभास बनता है।

(4) दधि सागर — श्रृंगार-शोभा: दधि सागर में क्षीर की एकदिली श्रृंगार-लीला में प्रकट होती है। यहाँ शोभा बाहरी सजावट नहीं, गुण-प्राकट्य है—रस के विस्तार हेतु। साधक के लिए फल है: चितवन द्वारा शीतलता और *मूल मिलावे* में स्थिरता।

(5) घृत सागर — अन्तरंग इश्क़: घृत (घी) प्रेम की चिपकन का संकेत है। यह सागर इश्क़ की एकान्तिक गहराई दिखाता है—जहाँ "मैं–तू" की दूरी गलती है और रस-आसक्ति शेष रहती है। यहीं से मधु सागर का द्वार खुलता है।

(6) मधु सागर — इल्म/प्रज्ञान: मधु सागर खुदाई इल्म—धनी की जागृत निज-बुद्धि और प्रज्ञान का सागर है। यहाँ ज्ञान मधुर होकर अखण्ड बोध बनता है। इश्क़ ही इल्म का स्रोत है; तारतम-रूप *कुंजी* साधक की स्वप्न-बुद्धि हटाकर अद्वैत-इश्क की दृष्टि देती है।

(7) रस सागर — निसबत/संबंध-रस: पूर्व सभी सागरों का बोध मिलकर निसबत का रस बनता है—धनी और ब्रह्मात्माओं के बीच अनन्य, जन्म-सिद्ध संबंध। यहाँ वाहेदत का अर्थ व्यक्तित्व का लय नहीं, बल्कि दूरी का लोप है। यही संबंध-रस जागनी-लीला का आधार है।

(8) मेहेर सागर — सर्वरस और कृपा: मेहेर सागर सर्वरस का सागर है—तेज, शोभा, इकदिली, श्रृंगार, इश्क, इल्म और निसबत सब एक साथ। लीला का मूल चालक मेहेर है; इसके बिना खेल विष बनता है, इसके साथ दुख भी मार्ग बन जाता है। मेहेर प्रतिष्ठित होते ही हृदय *अर्श/धाम* सा हो जाता है। आठ सागर अलग-अलग वस्तुएँ नहीं, एक ही परमधाम-सत्य के आठ द्वार हैं—नूर से पहचान, नीर से शोभा, क्षीर से इकदिली, दधि से श्रृंगार, घृत से अन्तरंग इश्क, मधु से प्रज्ञान, रस से निसबत और मेहेर से सर्वरस-पूर्णता।

8.24 सिनगार ग्रन्थ: "परमात्मा ही जीवन का श्रेष्ठतम श्रृंगार"

कल्पना कीजिए, किसी ने अपने घर को सजाया है—दीवारों पर रंग, खिड़कियों पर परदे, फूलों की खुशबू। सब कुछ सुंदर है, पर भीतर एक खालीपन है। अब वही घर जब दीपक से आलोकित होता है, तो सजावट ही नहीं, घर की आत्मा भी चमक उठती है। सिनगार ग्रन्थ कहता है—जीवन की बाहरी सजावट बहुत हो सकती है, पर जब तक परमात्मा का प्रकाश भीतर न उतरे, श्रृंगार अधूरा ही रहता है।

मनुष्य का जीवन बाहर से देखने पर सुख, सौंदर्य और संबंधों की खोज जैसा लगता है, पर भीतर से वह रस की तलाश है। हम प्रेम, मान, आकर्षण और आनंद की ओर इसलिए खिंचते हैं क्योंकि उनमें हमें जीवन का स्वाद मिलता है। पर संसार के ये सारे स्वाद क्षणिक और अधूरे हैं। वे मन को छूते हैं, पर आत्मा को तृप्त नहीं कर पाते। जैसे बूंद-भर जल से प्यास नहीं बुझती, वैसे ही सीमित सुख असीम आत्मा को भर नहीं पाते। सिनगार ग्रन्थ का मूल उद्घोष यही है— जीवन का सच्चा, पूर्ण और स्थायी श्रृंगार परमात्मा हैं।

यह ग्रन्थ संसार को दोष नहीं देता, बल्कि यह दिखाता है कि हम रस को गलत जगह खोज रहे हैं। यदि मन काम, सौंदर्य या भोग की ओर भागता है, तो उसे दबाने की आवश्यकता नहीं— उसे ऊर्ध्व करने की आवश्यकता है। दमन नहीं, रूपांतरण। रस-आसक्ति की छाया तब गलती है जब आत्मा को उसी रस का हज़ार गुना व्यापक अनुभव परमात्मा में मिलने लगता है।

सिनगार ग्रन्थ सिखाता है— मन उपदेश से नहीं, रस से बदलता है। इसलिए केवल यह कहना कि "परमात्मा आनंदमय हैं" पर्याप्त नहीं। आनंद को अनुभव बनाना पड़ता है। रास-लीला और उससे भी ऊँची परमधाम की लीलाएँ उसी रूपांतरण का माध्यम हैं। यहाँ देह से बँधी बुद्धि धीरे-धीरे मुक्त होकर प्रेम और रस की चेतना में नहाने लगती है। जितना गहन ध्यान, उतना संसार फीका—
और उतना ही भीतर का श्रृंगार उज्ज्वल।

सिनगार ग्रन्थ स्पष्ट करता है कि परमात्मा का सौंदर्य एक साथ सब जगह समान रूप से नहीं दिखता। जैसे बिजलीघर की अपार ऊर्जा अलग-अलग बल्बों में अलग-अलग

प्रकाश बनती है— वैसे ही परमधाम में सौंदर्य पूर्णता में, अक्षर में उससे कम, और क्षर जगत में और भी सीमित रूप में प्रकट होता है। फिर भी संसार में जो भी सुंदरता दिखती है, वह उसी परम शोभा-सागर की झलक है।

इसी संदर्भ में ग्रन्थ परब्रह्म को रसराज कहता है—जहाँ सभी रस, सभी आनंद, सभी सौंदर्य घनीभूत होकर एक हो जाते हैं।

जिसने रसराज को पा लिया, उसने जीवन के सभी श्रृंगार पा लिए। संसार की सारी चाहें उसी एक परम धन के बिखरे अंश हैं— जैसे स्वर्ण में सभी आभूषण निहित होते हैं। कृष्ण-लीला में भक्ति का माधुर्य प्रकट हुआ, और उसकी पराकाष्ठा प्राणनाथ जी की तारतम वाणी के सिनगार ग्रन्थ में दिखाई देती है।

सिनगार ग्रन्थ परमधाम की चितवनि मानव-देह के रूपकों से कराता है। यह इसलिए नहीं कि परमधाम स्थूल है, बल्कि इसलिए कि हमारी बुद्धि उसी भाषा को समझती है जिसे वह रोज़ देखती है। वास्तव में श्यामा-श्याम परम ज्योति हैं— प्रकाश का प्रकाश और वह भी परम चैतन्य। मानव रूपक केवल एक सेतु हैं, जिससे अनन्त हृदय में उतर सके। रास-लीला का श्रृंगार भी इसी चितवनि की विधि है—जहाँ ध्यान चरणों से शुरू होकर धीरे-धीरे स्वरूप-बोध में विलीन हो जाता है।

यह ग्रन्थ आत्मा को भाव ⟶ महाभाव ⟶ महारास की यात्रा पर ले जाता है। संसार में जानना और होना अलग रहते हैं, पर परमधाम में— जानना ही हो जाना है।"जानत तुमहि तुमही हो जाई।" यहाँ प्रेम और ज्ञान अलग नहीं रहते— दोनों एक ही रस बन जाते हैं। हर क्षण नया है, क्योंकि अनन्त में न सौंदर्य का अंत है, न आनंद का।

सिनगार ग्रन्थ का सार बहुत सरल है— परमात्मा ही जीवन का श्रेष्ठतम श्रृंगार हैं। जब आत्मा अपने हृदय में प्रियतम को विराजमान कर लेती है, तो संसार त्याज्य नहीं लगता— बस छोटा पड़ जाता है। तब आत्मा बूंद नहीं, सागर चाहती है; क्षणिक सुख नहीं, शाश्वत तृप्ति चाहती है; और रूप नहीं, स्वरूप में विश्राम पाती है। यही सिनगार ग्रन्थ की सिद्धि है— जहाँ जीवन सजावट नहीं, दिव्य शोभा बन जाता है।

8.25 सिन्धी ग्रंथ *(विरह से जागरण तक की यात्रा)*

एक राजा ने अपनी रानी की शक्ति और धैर्य की परीक्षा लेने के लिए स्वयं युद्ध में हस्तक्षेप नहीं किया। जब शत्रुओं ने राज्य पर आक्रमण किया, तब रानी ने राजा का वेश धारण किया, उसकी शक्ति और मर्यादा को अपने भीतर धारण किया, और एक–एक कर शत्रुओं को पराजित किया। युद्ध के बाद उसने विजित राजकुमारियों को एकत्र किया और अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करते हुए कहा—मैं स्वयं राजा नहीं हूँ, केवल उसका माध्यम हूँ। अंततः वही राजा सबको अपनाकर पूर्ण आनंद देता है। इस कथा का सूक्ष्म

संकेत यह है कि जागनी-लीला में इन्द्रावती आत्मा परमात्मा की शक्ति और प्रेम को धारण कर ब्रह्मात्माओं को जाग्रत करती है, पर पूर्ण मिलन और परमधाम का आनंद केवल मूल स्वरूप—श्री राजजी से ही प्राप्त होता है। इसी आंतरिक पुकार, विरह और जागरण का काव्यात्मक स्वरूप है—सिन्धी ग्रंथ।

सिन्धी ग्रंथ *कुलजम स्वरूप* की वह अंतिम अंतर्धारा है, जो पन्नाजी में प्रकट होकर पूरे तारतम-सागर की भीतर की लहर बन जाती है। इसके 600 चौपाइयों और 16 प्रकरणों में एक ही अग्नि जलती है—विरह की अग्नि, जो आत्मा को भीतर से शुद्ध करती है। यह ग्रंथ केवल परमधाम का वर्णन नहीं करता, बल्कि साधक के भीतर उठती अनकही अवस्थाओं को शब्द देता है। यहाँ भाषा केवल कहती नहीं—अनुभव बन जाती है। शब्द रोते हैं, और वही रोना धीरे-धीरे समझ में बदल जाता है।

सिन्धी ग्रंथ बताता है कि साधक की पीड़ा दो रूपों में प्रकट होती है। पहली पीड़ा तब आती है, जब संसार का स्वप्न टूट जाता है, पर परमधाम का स्थायी अनुभव अभी नहीं हुआ होता। न संसार रहा, न धाम मिला—भीतर रिक्तता, बाहर धूल। यह वह स्थिति है, जब साधक स्वयं को बीच आकाश में लटका हुआ अनुभव करता है। दूसरी पीड़ा और भी गहरी होती है—जब परमधाम की झलक मिलने लगती है, पर टिकती नहीं। जैसे बिजली चमककर अंधेरे में खो जाए। अब पीड़ा बढ़ जाती है, क्योंकि आत्मा जान चुकी होती है कि आनंद है—बस पास नहीं। यही अधूरी तृप्ति विरह को और तीव्र बनाती है। इस मनोदशा को ग्रंथ "षटऋतु" की तरह रचता है—टूटन से तड़प तक, और तड़प से प्रेम की गहराई तक।

सिन्धी ग्रंथ एक सरल लेकिन गहरा सत्य कहता है— सोचना और जानना अलग बातें हैं। विचार सीमाएँ बनाता है; असीम को बाँध देता है। इसलिए परमात्मा को केवल विचार से पकड़ने जाओ, तो वह समस्या बन जाता है। फिर भी यह वाणी करुण आग्रह करती है—परमात्मा शब्दातीत है, पर प्रेम में उसका स्मरण आवश्यक है। इसलिए सिन्धी वाणी पुल बनती है— एक ओर कहती है "वह परे है", दूसरी ओर कहती है "फिर भी प्रेम से कहो- 'कहे बिना भागे न हाम'"। कहते-कहते चित्त टिकता है, और टिकते-टिकते सीमा गलने लगती है।

यह ग्रंथ साधक को दिखाता है कि हम केवल संसार से नहीं जुड़े—हम उस दिखाने वाले से भी जुड़े हैं। जब यह अनुभव गहराता है, तब "मैं" और "तुम" मिलकर "हम" बन जाते हैं। संसार का सुख तब छोटा लगने लगता है, क्योंकि वह केवल प्रतिबिंब है। जैसे सूर्य का प्रतिबिंब जल में चमकता है, पर स्रोत नहीं होता। जब स्रोत की पहचान हो जाए, तो आँख प्रतिबिंब में नहीं अटकती। संसार से हटने पर जो खालीपन आता है, उसे

केवल परम आनंद भर सकता है। जब तक वह आनंद स्थिर न हो, विरह बना रहता है—और यही विरह इस ग्रंथ की धड़कन है।

सिन्धी वाणी कवि-हृदय है। वह "रसो वै सः" की आकर्षण-शक्ति को ब्रज-और रास लीलाओं में उतार देकर परमधाम की ओर अंगुलिनिर्देश करती है—यमुना-क्रीड़ा, कुंज-विहार, बाल-किशोर लीलाएँ यह मनोरंजन नहीं, भाव-दीक्षा है। भाव परिपक्व होता है, तो प्रेम के लक्षण प्रकट होते हैं—अश्रु, पुलक, थिरकन, और अंततः विरह-विलास। पर यह वाणी प्रेम की मर्यादा भी सिखाती है—गोपनीयता।"जिन पाया तिन माहें छिपाया"—जो पाया, उसे भीतर सँभालो। विनम्रता और आंतरिक स्मरण प्रेम की रक्षा करते हैं।

धीरे-धीरे साधक की दृष्टि बदलती है। वह अब केवल खेल नहीं देखता—खेल दिखाने वाले को पहचानने लगता है। जीवन एक चलचित्र है, और भीतर कोई प्रोजेक्टर निरंतर चल रहा है। यह समझ आते ही अहं पीछे हटता है और साक्षी-भाव जागता है। यहीं वह सूत्र खुलता है— रुचि से बंधन है, रुचि से मुक्ति है। जिस ओर रुचि टिके, वही बड़ा दृश्य बन जाता है। अंततः वाणी "हुकम–इलम–इश्क" की मंज़िल पर पहुँचाती है—जहाँ हुकम कठोर आदेश नहीं, बल्कि महाचेतना की लीला बन जाता है।

सिन्धी ग्रंथ विरह का ग्रंथ है—पर यह विरह दर्द नहीं, प्रेम की आग है, जो अहं की जड़ता को गलाती है। यह साधक को टूटे स्वप्नों से उठाता है, खोती झलकों की तड़प देता है, दृश्य से हटाकर दर्शक को दिखाता है, और अंततः निजधाम की ओर अनिवार्य प्रेम-यात्रा पर ले जाता है। यह संसार छोड़ना नहीं सिखाता—वह संसार को देखने की नई दृष्टि देता है, जिससे आत्मा स्वयं अपने घर की ओर लौटने लगती है।

8.26 मारफत सागर: समग्र दृष्टि का ग्रंथ

कल्पना कीजिए एक विशाल घर है, जिसकी चारों दिशाओं में खिड़कियाँ खुलती हैं। कोई पूर्व की खिड़की से आकाश देखता है, कोई पश्चिम की, कोई उत्तर की और कोई दक्षिण की। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने अनुभव को ही पूरा आकाश मान लेता है और कभी-कभी दूसरों से विवाद भी करने लगता है। पर जिस क्षण कोई घर के बीच खड़ा होकर समझता है कि खिड़कियाँ भिन्न हैं, पर आकाश एक ही है—उसी क्षण विवाद समाप्त हो जाता है और दृष्टि व्यापक हो जाती है। मारफत सागर ऐसा ही ग्रंथ है। यह साधक को खिड़कियों तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे उस मध्य-बिंदु तक ले जाता है, जहाँ से समग्र सत्य एक साथ दिखाई देने लगता है।

मारफत सागर *कुलजम स्वरूप* का वह उजास है, जहाँ विश्व के विविध धर्म, परंपराएँ और साधना-मार्ग एक ही सत्य-सूर्य में समाकर एकता का प्रकाश देते हैं। यह ग्रंथ किसी एक पंथ का समर्थन नहीं करता, बल्कि यह सिखाता है कि प्रत्येक धर्म सत्य की

एक-एक खिड़की है। जब साधक यह समझ लेता है, तब वह किसी एक पहचान से बँधकर नहीं रहता, बल्कि सभी मार्गों को सम्मान देते हुए अपने ही सत्य को और गहराई से पहचानने लगता है। यही व्यापक और समन्वित दृष्टि मारफत कहलाती है।

इस सत्य को ग्रंथ प्रसिद्ध दृष्टांत—*अंधे बालक और हाथी*—से स्पष्ट करता है। किसी ने हाथी की सूँड छुई तो उसे रस्सी लगा, किसी ने पैर छुआ तो खंभा। अनुभव सबका था, पर आंशिक था, इसलिए सत्य भी खंडित दिखा। जब पूरा हाथी दिखाई दिया, तब हर अंग का अर्थ भी स्पष्ट हुआ और दूसरे की बात भी समझ में आने लगी। इसी भाव को छत्रसाल ने कहा— "षड्दर्शन पड़ अंधन को हाथी है।" अर्थात केवल एक दर्शन या एक दृष्टि को पकड़ लेना पूर्ण ज्ञान नहीं है; समग्रता में उतरना ही सच्चा ज्ञान है। मारफत सागर यही समग्रता प्रदान करता है।

ग्रंथ यह भी स्पष्ट करता है कि मारफत केवल पढ़ने से प्राप्त नहीं होती। जैसे बालक को यौवन का अनुभव समझाया नहीं जा सकता, वैसे ही चेतना जब तक परिपक्व नहीं होती, तब तक मारफत का द्वार नहीं खुलता। जब साधक का चित्त निर्मल और पारदर्शी हो जाता है, तब धर्म, स्वर्ग-नरक, फरिश्ते, धाम—ये सब केवल बाहरी कथाएँ नहीं रहते, बल्कि भीतर उतरकर अनुभव बन जाते हैं।

सूफ़ी परंपरा में साधना के चार चरण बताए गए हैं—शरीया (नियम और कर्म), तरीका (अभ्यास और मार्ग), हकीका (सत्य का रहस्य) और मारिफ़ा (सत्य में निरंतर जागरूकता)। इन्हें समुद्र-उपमा से समझाया गया है—नौका, नौका चलाने की कला, मोती और उस मोती को निरंतर देखते रहना। भारतीय परंपरा में यही क्रम कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान के रूप में मिलता है। मारफत सागर इन दोनों परंपराओं को जोड़ते हुए यह दिखाता है कि साधना का उद्देश्य केवल नियम या अनुभव नहीं, बल्कि स्थायी बोध है।

महामति प्राणनाथ की विशेषता यह है कि उनका मारफत-दर्शन केवल निराकार अनुभूति तक सीमित नहीं रहता। वह साधक को प्रेम-लक्षी परमधाम की ओर उन्मुख करता है। उनके लिए साधना का लक्ष्य केवल "जानना" नहीं, बल्कि प्रेम में स्थिर होना है। इसलिए वे बार-बार चेताते हैं—किसी भी सीढ़ी को अंतिम मत मानो; हर पड़ाव पर जागरण बनाए रखो।

मारफत सागर समाज और इतिहास से भी गहरा संवाद करता है। यह बताता है कि धर्म-झगड़े प्रायः स्वभाव से नहीं, चेतना-स्तर से जन्म लेते हैं। जब चेतना संकीर्ण होती है, तो विरोध बढ़ता है; जैसे-जैसे चेतना व्यापक होती है, एकता प्रकट होने लगती है। इस अर्थ में मारफत सागर केवल आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि मानवता की सामूहिक परिपक्वता का घोष है।

अंततः यह ग्रंथ साधक को सिखाता है कि धर्म दीवार नहीं, द्वार है; सत्य विभाजित नहीं, समग्र है; और ज्ञान का लक्ष्य विवाद नहीं, विवेक है। मारफत सागर खिड़की पर रुकने नहीं देता—वह घर और आकाश, दोनों की पहचान कराता है। जब यह दृष्टि जागती है, तब भीतर "जागो और जगाओ" का संकल्प, प्रेम और पहचान—तीनों एक साथ प्रकाशित हो उठते हैं। *मारफत सागर वह ग्रंथ है जो हमें सिखाता है कि अलग-अलग धर्मों के पीछे छिपा सत्य एक है, और उसे समझने के लिए संकीर्ण नहीं, समग्र दृष्टि आवश्यक है।*

8.27 क़यामतनामा (छोटा और बड़ा) - *जागरण का ग्रंथ*

मान लीजिए कोई व्यक्ति रात में गहरी नींद में सपना देख रहा है। सपने में उसे सब कुछ वास्तविक लगता है—डर, सुख, संघर्ष और दौड़। वह बचने की कोशिश करता है, भागता है, रोता है। पर जैसे ही उसकी नींद खुलती है, पूरा सपना अपने आप टूट जाता है। न उसे मिटाने की आवश्यकता होती है, न लड़ने की—जागरण ही पर्याप्त होता है। क़यामतनामा इसी सत्य को आध्यात्मिक भाषा में प्रकट करता है। वह बताता है कि क़यामत कोई बाहर घटने वाली भयावह घटना मात्र नहीं, बल्कि चेतना के जागने की वह घड़ी है, जहाँ माया का स्वप्न स्वतः समाप्त हो जाता है।

क़यामतनामा *कुलजम स्वरूप* के अंतिम ग्रंथों में से है और यह दो स्वतंत्र रचनाओं में उपलब्ध है—क़यामतनामा (छोटा) और क़यामतनामा (बड़ा)। इन ग्रंथों में क़यामत का अर्थ विनाश, आतंक या बाहरी प्रलय मात्र से नहीं, बल्कि अधिक मात्रा में आत्म-जागृति का प्रकाश है। यहाँ "अंतिम समय" किसी भौतिक अंत की सूचना नहीं देता, बल्कि उस क्षण की ओर संकेत करता है जब चेतना अपने मूल सत्य को पहचान लेती है। कुरान, हदीस और अन्य इब्राहमी परंपराओं में वर्णित क़यामत की कथाओं के भीतर छिपे इस गूढ़ अर्थ को क़यामतनामा उद्घाटित करता है और आत्मा–परमात्मा के मिलन की दिशा स्पष्ट करता है।

ग्रंथ बताता है कि क़यामत के दो स्तर हैं। पहली है छोटी क़यामत (क़यामत–सुगरा), जो व्यक्ति के भीतर घटती है। जिस दिन आत्मा के भीतर आत्मज्ञान जागता है, उसी दिन संसार का स्वप्न टूटने लगता है। जो वस्तुएँ अब तक अत्यंत ठोस और महत्वपूर्ण लगती थीं, वे फीकी पड़ जाती हैं। अहं की पकड़ ढीली होती है और चेतना अपने वास्तविक केंद्र की ओर मुड़ जाती है। इसी अनुभव को वाणी "जीते-जी मरना" कहती है—अर्थात अहं का लय। इस जागरण में प्रत्येक आत्मा अपनी मूल पहचान की ओर बढ़ती है—कोई वैकुण्ठ की ओर, कोई अक्षरधाम की ओर। यह छोटी क़यामत एक व्यक्तिगत महाप्रलय है, जिसमें माया का खेल ढहता है और रूह की आँख खुलती है।

इस आंतरिक क्रांति को ग्रंथ बीज–वृक्ष के सुंदर रूपक से समझाता है। जीव एक बीज के समान है। जब अहं टूटता है, तब बीज फूटता है। भीतर परमधाम का वृक्ष उगने लगता है और उसी वृक्ष से असंख्य बीज अपनी विराट पहचान को समझते हैं। यह क़यामत किसी बाहरी घटना की प्रतीक्षा नहीं करती; यह भीतर घटने वाली वह क्रांति है, जो साधक के जीवन की दिशा को सदा के लिए बदल देती है।

दूसरी है बड़ी क़यामत (क़यामत–कुबरा), जो किसी एक व्यक्ति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मानवता की सामूहिक चेतना से जुड़ी होती है। इतिहास के स्तर पर यह वह काल है, जब मानव समाज अज्ञान से धर्म-ज्ञान और फिर समन्वित विज्ञान की ओर बढ़ता है। प्रारंभ में धर्म अलग-अलग रूपों में प्रकट होते हैं और टकराव भी होता है, पर समय के साथ खोजी, विवेकशील और परिपक्व बुद्धि के जागरण से एकता की ओर गति होती है। ग्रंथ इसे परमात्मा की लीला कहता है—कभी विभाजन, कभी समन्वय द्वारा परम सत्य की प्रकाशना। सत्रहवीं शताब्दी से आरंभ हुआ वैज्ञानिक और बौद्धिक पुनर्जागरण इसी बड़ी क़यामत का संकेत माना गया है, जहाँ मनुष्य खंडित सत्यों को जोड़कर समग्र दृष्टि विकसित करता है।

क़यामतनामा स्पष्ट करता है कि छोटी और बड़ी—दोनों क़यामतों का लक्ष्य एक ही है: मूल स्वरूप में जागरण। छोटी क़यामत आत्मा को भीतर से मुक्त करती है, जबकि बड़ी क़यामत मानव बुद्धि को समग्र बनाती है। इसी संदर्भ में ग्रंथ ब्रह्मसृष्टि, ईश्वरीसृष्टि और जीवसृष्टि का भेद समझाता है और रेखांकित करता है कि ब्रह्मात्माओं की वास्तविक पूँजी ईमान, इश्क और निस्बत है। इसलिए उनके लिए कहनी, करनी और रहनी—तीनों का एक होना अनिवार्य है।

अंततः क़यामतनामा एक शांत, पर दृढ़ पुकार करता है—अब केवल बाहरी कर्मकांड की प्रधानता का समय नहीं रहा। मारफत का सूर्य उग चुका है। क़यामत डराने नहीं आई, जगाने आई है। जो जागते हैं, उनके लिए संसार का स्वप्न अपने आप टूट जाता है और परमधाम की स्मृति स्थिर हो जाती है। इस प्रकार क़यामतनामा क़यामत को विनाश की घटना नहीं, बल्कि चेतना के उत्कर्ष की सतत प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है—व्यक्ति के भीतर भी और इतिहास की धारा में भी—ताकि आत्मा अंततः अपने धामधनी के निकट खड़ी होकर अपने निज-घर की पहचान में स्थिर हो सके।

संक्षेप में, क़यामतनामा यह सिखाता है कि सच्ची क़यामत बाहर नहीं, भीतर घटती है—जहाँ अहं का अंत, चेतना का उदय और आत्मा की घर-वापसी एक ही क्षण में घटित हो जाती है।

भाग 1: अध्याय – 8

8.1 निजानंद दर्शन की जीवंत परंपरा और ब्रह्ममुनि लालदास

बीतक परंपरा निजानंद - प्रणामी दर्शन की *जीवित स्मृति* और *व्यावहारिक साधना-धारा* के रूप में प्रस्तुत है। तारतम ज्ञान केवल सिद्धांत नहीं, बल्कि जीवन-आचरण, सेवा, संगठन, संवाद और इतिहास में उतरकर समाज को दिशा देने वाली चेतना है। इसी चेतना को *समय के भीतर पकड़कर सुरक्षित रखने* का कार्य बीतक-साहित्य करता है—इसलिए बीतक को संप्रदाय में श्री कुलजम स्वरूप के बाद सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है और आज भी मंदिरों व गृहस्थ परिवारों में इसका नियमित पाठ एक *जीवित साधना–परंपरा* की तरह चलता है।

बीतक, नवरंग वाणी, बड़ी वृत्त (वृत्तान्त मुक्तावली) और दास वाणियाँ—ये चारों मिलकर निजानंद दर्शन की *प्रवाहमान परंपरा* बनाते हैं। महामति प्राणनाथ ने जो सिद्धांत तारतम वाणी में दिया, उसे अपने जीवन में साकार किया; इसलिए उनके जीवन-आधारित बीतक भी *प्रामाणिक* माने गए। यहाँ दो प्रमुख स्तंभ उभरते हैं—ब्रह्ममुनि लालदास और नवरंग स्वामी। लालदास कृत बीतक सबसे अधिक प्रमाणित मानी जाती है; नवरंग वाणी दर्शन को सूत्रबद्ध कर साधारण जन के लिए पूजा–सेवा की व्यावहारिक पद्धति देती है; और वृत्तान्त मुक्तावली (व्रजभूषण) परंपरा को दार्शनिक–साहित्यिक विस्तार देती है।

विशेष रूप से, लालदास का योगदान निर्णायक है: महामति की दैहिक लीला के अगले ही दिन जीवन-वृत्त का संकलन आरंभ होना, और लगभग 35 दिनों में उसका रूप लेना—बीतक की ऐतिहासिक प्रामाणिकता का मजबूत संकेत है। 'वाका' नामक प्रारंभिक सामूहिक लेखन (बदरीदास के निरंतर लेखन) को लालदास ने संपादित-क्रमबद्ध कर "श्री बीतक साहेब" का रूप दिया। उनका बहु-सांस्कृतिक अनुभव (व्यापार, हिंदू समाज व अरब/इस्लामी जगत से संपर्क) लेखन में तारतम्य-केंद्रित समन्वय, संतुलन और संवाद की दृष्टि जोड़ता है, जबकि केंद्र हमेशा महामति का तारतम अनुभव ही रहता है।

8.2 बीतक साहित्य परंपरा—इतिहास, श्रद्धा और साहित्य का संगम

यह अध्याय बीतक-लेखन को एक सांस्कृतिक–आध्यात्मिक परंपरा के रूप में रखता है, जहाँ इतिहास-घटनाएँ, भक्ति-रस, और रीतिकालीन काव्य-शैली साथ चलती हैं। बीतकें केवल संप्रदाय-कथा नहीं, बल्कि बुंदेलखंड/मध्यभारत की सामाजिक–धार्मिक–राजनीतिक स्थितियों का भी सजीव अंकन करती हैं। प्रमुख बीतक-ग्रंथों की सूची दी गई है—लालदास कृत बीतक, वृत्तान्त मुक्तावली, नवरंग बीतक, मेहराज चरित,

श्रीलीलारससागर, तारतम सागर, और गुजराती "वर्तमान दीपक" आदि। स्वामी लालदास कृत बीतक (71 प्रकरण, 4304 चौपाइयाँ) की रचना-योजना चार चरणों में दिखती है—(1) युग-परिप्रेक्ष्य व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, (2) देवचन्द्रजी का जीवन, (3) महामति की जागनी-यात्रा (सूरत से दिल्ली/हरिद्वार/रामनगर/पन्ना तक) और (4) पन्ना-प्रवास व सेवा-संगठन का अनुशासन। वृत्तान्त मुक्तावली (80 प्रकरण, 5654 चौपाइयाँ) ब्रजभाषा में योग-साधना, दर्शन और जीवन-वृत्त का व्यापक संगम प्रस्तुत करती है। आधुनिक काल में टीकायुक्त/सरल संस्करणों, टीवी-धारावाहिक और डिजिटल माध्यमों से बीतक का पुनर्पाठ व प्रसार बढ़ा है।

8.2.1 ऐतिहासिक योगदान, सामाजिक–राष्ट्रीय चेतना और जागनी पुरुषार्थ

यह अध्याय बीतक को वैकल्पिक इतिहास-स्रोत की तरह देखने का आग्रह करता है—क्योंकि इसमें सत्ता-केंद्रित इतिहास के साथ लोकजीवन, संवाद, नैतिक संघर्ष और संगठन भी दर्ज हैं। उत्तर-मुगलकालीन मध्यदेश की उथल-पुथल का संतुलित चित्र मुख्यधारा इतिहास में कम दिखा; बीतक उस रिक्ति की पूर्ति करती है। महामति के प्रसंगों में आध्यात्मिकता, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय चेतना अलग नहीं—एक ही जागनी-धारा के रूप हैं। अरब-यात्रा, फिरंगी अत्याचार के दर्शन, औरंगज़ेब के समय संवाद/संघर्ष, तथा राजाओं को आत्मबल-संगठन की प्रेरणा—इन सबके बीच बीतक यह दिखाती है कि धर्म = करुणा + न्याय + विवेक। यहीं "जागनी पुरुषार्थ" का सार उभरता है: विवेक-जागरण, निर्भीक सत्य-संवाद, संगठन-निर्माण, स्वावलंबन, समन्वय और समावेशन—जिसका लक्ष्य "सुख-शीतल करूँ संसार" है। बीतक की पत्र-परंपरा (सनंध पत्रियाँ, सूरत पत्राचार, बड़ी/छोटी पत्री आदि) इस आंदोलन की रणनीति, धैर्य और सामूहिक नेतृत्व को भी उजागर करती है।

8.3 राजनीतिक एवं सामाजिक दर्शन, वर्तमान की चुनौती

यह अध्याय महामति के विचार को चेतना-केन्द्रित राजधर्म के रूप में प्रस्तुत करता है—जहाँ शासन का लक्ष्य कर-वसूली या विजय नहीं, बल्कि प्रजापालन, न्याय, नैतिकता, स्वावलंबन और सर्वधर्म-समभाव है। राजनीति के स्तर पर शिक्षा-चरित्र, पवित्र साधन, सत्य-प्रणाली, अन्याय के विरुद्ध नैतिक साहस, संवाद-नीति और संस्कृति-निर्माण को राज्य के आधार बताया गया है। सामाजिक दर्शन में जातिवाद-विरोध, अंतःकरण-प्रधान पहचान, नारी-सम्मान, गृहस्थ-साधना, आचरण-शुद्धि, शिक्षा द्वारा पंडित/मुल्ला-आधारित निर्भरता से मुक्ति, करुणा-प्रधान धर्म, और स्वावलंबी अनुशासित समुदाय—ये मूल सूत्र आते हैं। अंततः प्रकरण–6 का निष्कर्ष यह है कि बीतक अतीत की कथा होकर भी वर्तमान का विवेक और भविष्य की दिशा देती है। यह सिखाती है कि जागनी कोई

एककालिक घटना नहीं, बल्कि हर युग में घटित होने वाली चेतना-प्रक्रिया है—और जब साधक इतिहास, दर्शन और जीवन को एक ही प्रकाश में देखता है, तब बीतक उसके लिए सच अर्थों में "वर्तमान दीपक" बन जाती है।

8.4 निजानंद दर्शन की जीवंत परंपरा और ब्रह्ममुनि लालदास: परिचय

महाराजा छत्रसाल द्वारा प्रसारित श्री कुलजम स्वरूप ग्रंथ में निहित तारतम ज्ञान के साथ-साथ निजानंद दर्शन की जो जीवंत और प्रवहमान परंपरा विकसित हुई, उसमें बीतक, नवरंग वाणी, बड़ी वृत्त तथा दास वाणियों का विशिष्ट और अनिवार्य योगदान रहा है। महामति प्राणनाथ जी ने तारतम वाणी के माध्यम से निजानंद दर्शन के सिद्धांतों को केवल वाणी में ही नहीं, बल्कि अपने सम्पूर्ण जीवन, आचरण, सेवा और साधना में साकार कर दिखाया। यही कारण है कि उनके जीवन पर आधारित बीतक साहित्य भी निजानंद परंपरा में आदरणीय और प्रामाणिक ग्रंथों के रूप में स्वीकार किया गया।

महामति के अनन्य समकालीन शिष्यों में स्वामी लालदास और नवरंग स्वामी (मुकुंद स्वामी) इस परंपरा के दो प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। स्वामी लालदास द्वारा रचित बीतक ग्रंथ सर्वाधिक प्रामाणित और प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें महामति की तारतम्य-केंद्रित समन्वय-दृष्टि, करुणा, निर्भीकता तथा जागनी सेवा का सजीव और प्रभावशाली चित्रण मिलता है। तत्कालीन समय की आवश्यकता और महामति की आज्ञानुसार, स्वामी लालदास ने कुरान, जंबूर, तौरेत और अंजील का गहन अध्ययन कर महामति के सिद्धांतों के आलोक में अनेक ग्रंथों की रचना की और निजानंद दर्शन की तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म समन्वय परंपरा को व्यापक आधार प्रदान किया।

दूसरी ओर, नवरंग स्वामी वैदिक परंपरा के प्रतिष्ठित विद्वान थे। उन्होंने निजानंद दर्शन की स्थापनाओं को सूत्रबद्ध करते हुए नवरंग वाणी की रचना की और दर्शन को एक सुव्यवस्थित, व्यावहारिक जीवन-पद्धति का रूप दिया। जप, तप, ध्यान और भक्ति पर आधारित उनकी सेवा-पूजा पद्धति सामान्य जन के लिए निजानंद दर्शन की गंभीरता को समझने का सरल और सुलभ मार्ग बनी। नवरंग वाणी में तारतम ज्ञान की विस्तृत व्याख्या के साथ-साथ संक्षिप्त बीतक भी सम्मिलित है, जिसमें 27 प्रकरणों और 822 चौपाइयों के माध्यम से बीतक प्रसंगों के साथ आध्यात्मिक विषयों पर गहन विचार किया गया है।

इसी परंपरा में महाराजा छत्रसाल जी के परम शिष्य और शास्त्रज्ञाता व्रजभूषण जी ने गुरुआज्ञानुसार वृत्तांत मुक्तावली नामक बीतक ग्रंथ की रचना की, जिसमें महामति के जीवन और उनके प्रभाव से विकसित ऐतिहासिक-आध्यात्मिक प्रसंगों का विस्तृत विवेचन मिलता है।

कालांतर में अनेक भक्त-कवियों ने महामति जी के विचारों से प्रेरणा लेकर जो पद, भजन और रचनाएँ कीं, वे दास वाणी के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। ये रचनाएँ आज भी पर्वों, उत्सवों और सत्संगों में रस-विभोर होकर गाई जाती हैं और निजानंद दर्शन को जन-जन की चेतना से जोड़ती हैं। इस प्रकार बीतक, वृत्त और दास वाणी—तीनों मिलकर निजानंद दर्शन की उस जीवंत परंपरा का निर्माण करती हैं, जहाँ दर्शन केवल ग्रंथों में सीमित नहीं रहता, बल्कि जीवन, सेवा, स्मरण और प्रेम के रूप में निरंतर प्रवाहित होता रहता है।

8.5 बीतक क्या है: स्वरूप और महत्व

शाब्दिक अर्थ: "बीतक" अर्थात् बीती हुई घटनाओं का वृत्तांत—जो बीता, उसका जीवंत लेखा। वास्तविक अर्थ: बीतक केवल इतिहास या महापुरुषों की जीवनी नहीं, बल्कि तारतम ज्ञान के जीवन में उतरने की जीवित स्मृति और व्यावहारिक जागनी-मार्गदर्शिका है। श्री बीतक साहब (बीतक) ग्रंथ में श्री निजानंद संप्रदाय के संस्थापक निजानंद सतगुरु धणी श्री देवचन्द्र जी, प्रवर्तक महामति प्राणनाथ, धर्म रक्षक बुंदेलखंड नरवीर केसरी महाराजा छत्रसाल जू, एवं ब्रह्ममुनि लालदास, नवरंग स्वामी, केशवदास, भीम भट्ट, गोवर्धन भट्ट, जैसे सेंकड़ों अग्रणी समर्पित सुन्दरसाथ एवं फूलबाई, तेजकुंवरी जी जैसी कई महिला सुन्दरसाथ के जागनी-जीवन तथा उनके प्रेरक और परिवर्तनकारी कार्यों का सजीव चित्रण मिलता है। इसे केवल निजानंद सतगुरु एवं महामति प्राणनाथ जी के जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध विवरण मानना इसके वास्तविक और व्यापक आशय को संकुचित कर देने जैसा है। तारतम वाणी हमें जागनी का ज्ञान देती है; बीतक दिखाती है कि उस ज्ञान को जीवन में कैसे जिया गया। बीतक केवल "क्या हुआ था" नहीं बताती—वह पूछती है, "उस जागनी को आज हम कैसे जिएँ?"

आध्यात्मिक दृष्टि से बीतक की संरचना साधारण कालक्रम नहीं, बल्कि चेतना की यात्रा है। यह परमधाम की दिव्य जीवन-लीला और प्रेम-संवाद से आरंभ होकर प्रथम व्रज-लीला (कालमाया के क्षेत्र) में प्रवेश करती है; वहाँ से रास के रसानंद (योगमाया) के अनुभव तक पहुँचती है; फिर सुरता को पुनः परमधाम में प्रतिष्ठित कर, अंततः वर्तमान जागनी-लीला के ब्रह्मांड में पुनः स्थापित करती है। यह क्रम केवल अवतरण और प्रस्थान का विवरण नहीं, बल्कि आत्मा की स्मृति, विस्मृति, जागरण और पुनः-प्रतिष्ठा की समग्र कथा है, जो अंततः परमधाम में वापसी के बोध तक पूर्ण होती है। वस्तुतः बीतक वह साधनात्मक सेतु है, जिसके माध्यम से साधक तारतम ज्ञान की गहराइयों में प्रवेश करता है और निजानंद दर्शन को मात्र वैचारिक सिद्धांत नहीं, बल्कि अनुभूत सत्य के रूप में ग्रहण करता है।

आध्यात्मिक आयाम के साथ-साथ बीतक मध्यकालीन भारत की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियों का भी एक विश्वसनीय ऐतिहासिक साक्ष्य प्रस्तुत करती है। तत्कालीन सत्ता-संरचनाएँ, धार्मिक तनाव, समन्वय के प्रयास, संत–राजा संबंध और जन-जीवन की जटिलताएँ इसमें स्वाभाविक प्रवाह के साथ अंकित हैं। इसके बावजूद भारतीय मुख्यधारा के इतिहास-लेखन में बीतक को अब तक वह स्थान नहीं मिला, जिसकी वह बौद्धिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अधिकारी है।इस प्रकार बीतक निजानंद दर्शन की जीवंत स्मृति, आध्यात्मिक मानचित्र और समकालीन दीपक है—जो साधक को इतिहास, दर्शन और वर्तमान जीवन को अलग-अलग नहीं, बल्कि एकीकृत चेतनात्मक प्रकाश में देखने की समग्र दृष्टि प्रदान करती है।

बीतक यह स्पष्ट रूप से बताती है कि ज्ञान केवल भीतर की अनुभूति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि देह, व्यवहार, सेवा, संगठन और ऐतिहासिक कर्म के माध्यम से समाज को दिशा देता है। इसमें जाग्रत चेतना व्यक्ति से आगे बढ़कर सामूहिक जीवन का मार्गदर्शन करती हुई दिखाई देती है। बीतक का महत्व केवल घटनाओं के संकलन में नहीं, बल्कि उसके दृष्टिकोण में निहित है। इसमें उस चेतना का प्रामाणिक दस्तावेज़ सुरक्षित है, जिसने निजानंद संप्रदाय को एक संगठित, समन्वयात्मक और मिशन-प्रधान परंपरा के रूप में आकार दिया। इसके माध्यम से हमें न केवल महामति का व्यक्तित्व मिलता है, बल्कि उस संगठनात्मक संरचना, अनुशासन, सेवा-पद्धति और वैचारिक स्पष्टता का भी बोध होता है, जो आगे चलकर संप्रदाय की पहचान बनी।

यद्यपि बीतक अतीत की घटनाओं का वर्णन करती है, उसका अर्थ वर्तमान और भविष्य तक फैलता है। यह स्पष्ट करती है कि *जागनी* कोई एक समय की ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि हर युग में घटित होने वाली चेतना की निरंतर प्रक्रिया है। इसी कारण बीतक को केवल जीवन-चरित नहीं, बल्कि जागरण का प्रामाणिक अभिलेख कहा जाता है—जिसमें चेतना के विकसित होने, समाज में उतरने और इतिहास का रूप लेने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

इसी व्यापक और जीवंत दृष्टि के कारण बीतक को निजानंद - प्रणामी संप्रदाय का दूसरा प्रमुख एवं अत्यंत प्रतिष्ठित ग्रंथ माना जाता है।

8.6 ब्रह्ममुनि लालदास: प्रथम एवं सर्वाधिक प्रामाणिक बीतककार

महामति प्राणनाथ जी की दैहिक लीला के समाप्त होते ही—अर्थात् अगले ही दिन—उनके जीवन-वृत्त के संरक्षण का कार्य ब्रह्म मुनि लालदास जी द्वारा आरंभ हो जाना, बीतक-परंपरा की ऐतिहासिक प्रामाणिकता का अत्यंत सशक्त प्रमाण है। परंपरा के अनुसार यह संकलन-कार्य लगभग पैंतीस दिनों में पूर्ण हुआ। इस की रचना 1695 ई. में मानी जाती

है। बीतक कोई आकस्मिक या भावुक स्मृति-लेखन नहीं, बल्कि पूर्व-नियोजित, सजग और सतत लिपिबद्धता का परिणाम था। स्वयं महामति के जीवनकाल में उनकी यात्राओं, सत्संगों, संवादों और निर्णायक घटनाओं को क्रमबद्ध रूप से लिखने की परंपरा पहले से प्रचलित थी, जिसे उनके समाधिष्ठ होने के पश्चात सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया गया।

वृत्तांत मुक्तावली (3/15) के संकेतों से यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि ब्रह्ममुनि लालदास जी के मार्गदर्शन में बदरीदास नामक एक समर्पित सुन्दरसाथ ने लगभग एक वर्ष तक निरंतर घटनाओं का लेखन किया। इस प्रारंभिक संकलन को परंपरा में *'वाका'* कहा गया। यह वाका न तो निजी डायरी थी और न ही स्मृति-आधारित भावुक आख्यान, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव, श्रवण और सहभागिता से उपजा एक सामूहिक दस्तावेज़ था। बाद में स्वामी लालदास ने महामति की आज्ञा के अनुसार इस विस्तृत सामग्री को संपादित, क्रमबद्ध और प्रमाणित रूप दिया। इस प्रकार बीतक किसी एक व्यक्ति की रचना न रहकर सम्पूर्ण सुन्दरसाथ समाज की जीवित चेतना का संहिताबद्ध स्वरूप बन गई। इस दृष्टि से बीतक केवल किसी संप्रदाय या धार्मिक ग्रंथ तक सीमित नहीं रहती, बल्कि हिंदी गद्य-परंपरा के विकास में एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक चरण बन जाती है। इसमें जीवन-वृत्त लेखन भक्तिकाल की काव्यात्मक शैली से आगे बढ़कर तथ्यपरक, क्रमबद्ध और संवादप्रधान रूप में सामने आता है।

इस तरह, स्वामी लालदास जी सर्व प्रथम और सर्वाधिक प्रामाणिक बीतककार एवं खड़ी बोली के प्रथम जीवन-वृत्तकार भी बने। स्वामी लालदास का पूर्व जीवन उनके लेखन की विश्वसनीयता को और अधिक सुदृढ़ करता है। लक्ष्मण सेठ—जो आगे चलकर स्वामी लालदास कहलाए—पोरबंदर के लोहाणा व्यापारी समुदाय के प्रतिष्ठित सदस्य थे और ठट्ठानगर में निवास करते थे। उनका व्यापार अत्यंत व्यापक था; परंपरा में उनके 99 जहाज़ों के स्वामित्व का उल्लेख मिलता है। इस व्यापारिक जीवन के कारण उनका संपर्क न केवल विविध हिंदू समाजों से, बल्कि अरब जगत और इस्लामी सांस्कृतिक परिवेश से भी रहा। यही बहु-सांस्कृतिक अनुभव उनके लेखन में संतुलन, व्यापकता और समन्वय की दृष्टि प्रदान करता है।

ठट्ठानगर में महामति से उनका प्रथम साक्षात्कार और तारतम ज्ञान की दीक्षा उनके जीवन का निर्णायक मोड़ सिद्ध हुई। कुछ वर्षों बाद, जब उनका समस्त व्यापार नष्ट हो गया, तब लक्ष्मण सेठ अपनी पत्नी लालबाई सहित सूरत पहुँचे और महामति के चरणों में पूर्ण समर्पण किया। यह समर्पण किसी पलायन का नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि के गहन रूपांतरण का संकेत था। इसी क्षण से वे जागनी यात्रा के अग्रणी सहभागी बने और महामति के निकटतम सहयोगी के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

स्वामी लालदास महामति प्राणनाथ के सर्वाधिक विश्वसनीय अनुयायियों में अग्रणी थे। बीतक और वृत्तांत मुक्तावली के अनेक प्रसंग दर्शाते हैं कि महामति उनके सुझावों, सेवा-भाव और विवेक को विशेष महत्त्व देते थे। उन्हें सुन्दरसाथ और संप्रदाय के नेतृत्व का दायित्व सौंपा गया और 'निजधाम का अंकुर' मानकर महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक कार्यभार प्रदान किया गया। यही निकटता बीतक को केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि अंतरंग और यथार्थपरक बनाती है—जहाँ महिमा के साथ-साथ संघर्ष, मानवीय क्षण और आत्म-परीक्षण भी स्थान पाते हैं।

इस महान कार्य के पूर्ण होने के कुछ समय बाद ही स्वामी लालदास की दैहिक लीला समाप्त हो गई। महाराजा छत्रसाल द्वारा निर्मित श्री प्राणनाथ जी मंदिर—गुंमट जी परिसर, पन्ना—में उन्हें समाधि प्रदान की गई। इस प्रकार ब्रह्ममुनि लालदास का जीवन और लेखन एक ही सत्य की ओर संकेत करता है—कि सच्चा इतिहास वही है, जो प्रत्यक्ष अनुभूति, निष्ठा और चेतन उत्तरदायित्व से लिखा गया हो। पाठ्यक्रम और अध्ययन की दृष्टि से बीतक और उसके रचयिता लालदास न केवल संप्रदाय के इतिहासकार हैं, बल्कि भारतीय आध्यात्मिक और साहित्यिक परंपरा के एक अनिवार्य स्तंभ भी हैं।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि सैद्धांतिक और ऐतिहासिक प्रमाणिकता की दृष्टि से श्री कुलजम स्वरूप के बाद श्री लालदास-कृत बीतक को ही सर्वाधिक मान्य माना गया है, क्योंकि इसमें स्वयं महामति की स्वीकृति और छाप निहित है। इसी कारण परंपरा में इसे श्रद्धापूर्वक "श्री बीतक साहेब" कहा जाता है।

8. 7 बीतक साहित्य परंपरा: इतिहास, श्रद्धा और साहित्य का संगम

8.7.1 परंपरा का संक्षिप्त परिचय

निजानंद संप्रदाय में बीतक लेखन एक विशिष्ट सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपरा के रूप में विकसित हुआ। विभिन्न सुंदरसाथ विद्वानों और ब्रह्ममुनियों ने देवचंद्रजी, महामति प्राणनाथजी और उस समय की घटनाओं को चौपाइयों और छंदों में संकलित किया। इन रचनाओं में एक ओर जहाँ घटनाओं की ऐतिहासिकता है, वहीं दूसरी ओर भक्ति, सौंदर्यबोध और रीतिकालीन साहित्यिक शैली का सुंदर संयोजन भी दिखाई देता है।

बीतक साहित्य से बुंदेलखंड और मध्य भारत की धार्मिक–सांस्कृतिक स्थिति का भी प्रामाणिक ज्ञान मिलता है, जो उस समय के इतिहास को समझने में अत्यंत उपयोगी है। इन बीतकों ने कुलजम स्वरूप और वेद-क़तेब समभाव के संदेश को पुष्ट किया। महाराजा छत्रसाल को महामति ने धर्म-संघर्ष में औरंगज़ेब के विरुद्ध आशा के रूप में देखा और विजय के लिए प्रेरित किया।

श्री कुलजम स्वरूप साहेब के पश्चात् बीतक को निजानंद - प्रणामी संप्रदाय में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। आज भी मंदिरों और गृहस्थ परिवारों में इसका नियमित पाठ श्रद्धा, अनुशासन और भक्तिभाव के साथ किया जाता है। इस प्रकार बीतक केवल अध्ययन का ग्रंथ नहीं रहती, बल्कि एक जीवित साधना–परंपरा के रूप में निरंतर प्रवाहित होती है।

स्वामी लालदास का पूर्व व्यापारिक जीवन उनके लेखन को विशिष्ट व्यापकता और संतुलन प्रदान करता है। हिंदू समाज के साथ-साथ अरब जगत और इस्लामी सांस्कृतिक संसार से उनके प्रत्यक्ष संपर्क ने उनके दृष्टिकोण में सहज समन्वय, संवाद और वैश्विक चेतना विकसित की। इसी कारण वे खड़ी बोली के आरंभिक जीवन-वृत्तकार, भागवत-परंपरा के गहन ज्ञाता और बीतक-परंपरा के सर्वाधिक प्रामाणिक लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके लेखन में समय-संदर्भ के अनुरूप इस्लामी संकेत कभी-कभी गौण रूप में उपस्थित होते हैं, किंतु केंद्रीय धुरी सदैव महामति प्राणनाथ का आध्यात्मिक अनुभव और तारतम दृष्टि ही रहती है।

बीतक-परंपरा का मूल आधार ब्रह्म मुनि स्वामी लालदास कृत बीतक है। इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए बाद के काल में अनेक विद्वान सुंदरसाथों ने विभिन्न बीतक-ग्रंथों की रचना की। इन बीतकों में केवल संप्रदायगत घटनाओं का ही नहीं, बल्कि उस युग की राजनीतिक उथल-पुथल, धार्मिक संवादों, सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक गतिशीलता का भी विस्तार से अंकन मिलता है। यदि इतिहासकारों और साहित्येतिहासकारों ने इन स्रोतों पर समय रहते गंभीर ध्यान दिया होता, तो बुंदेलखंड और मध्यभारत का इतिहास कहीं अधिक समृद्ध, बहुआयामी और जीवंत रूप में सामने आता। ये सभी बीतक प्रायः हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं और इनकी अनेक अनुप्रतियाँ विभिन्न स्थानों पर सुरक्षित हैं।

बीतक-परंपरा के अंतर्गत प्रमुख ग्रंथ इस प्रकार माने जाते हैं—

1. ब्रह्म मुनि स्वामी लालदास कृत बीतक (श्री बीतक साहेब)
2. वृत्तान्त मुक्तावली — स्वामी ब्रजभूषण कृत
3. नवरंग बीतक — नवरंग स्वामी कृत
4. मेहराज चरित — बक्शी हंसराज कृत
5. श्रीलीलारससागर — सनेह सखी कृत
6. तारतम सागर — करूणासखी (जयरामभाई कंसारा) कृत
7. वर्तमान दीपक — लल्लूजी भट्ट कृत (गुजराती)

स्वामी लालदास कृत बीतक के पश्चात् वृत्तान्त मुक्तावली विशेष रूप से उल्लेखनीय ग्रंथ है, क्योंकि यह बीतक-साहित्य की परंपरा में केवल विस्तार ही नहीं करती,

बल्कि उसे दार्शनिक, साहित्यिक और वैचारिक ऊँचाई भी प्रदान करती है। जहाँ लालदास-कृत बीतक में कतेब/कुरान-पक्ष अपेक्षाकृत अधिक प्रत्यक्ष और प्रमुख रूप में सामने आता है, वहीं वृत्तान्त मुक्तावली में वेद–उपनिषद् परंपरा और वैदिक तत्त्वदृष्टि का अधिक सुस्पष्ट और सुव्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है।

यह अंतर किसी प्रकार का विरोध या मतभेद नहीं, बल्कि एक ही तारतम्य-केंद्रित समन्वय-दृष्टि के दो भिन्न संदर्भात्मक प्रस्तुतीकरण हैं। इन दोनों ग्रंथों की भिन्नताएँ उनके रचनाकाल, रचनाकार के उद्देश्य, तथा लक्षित पाठक-समुदाय से स्वाभाविक रूप से जुड़ी हुई हैं। एक ओर जहाँ लालदास-कृत बीतक का स्वर उस समय के इस्लामी-सांस्कृतिक परिवेश से संवाद स्थापित करता है, वहीं वृत्तान्त मुक्तावली वैदिक दार्शनिक परंपरा के माध्यम से उसी तारतम-सत्य को अन्य कोण से उद्घाटित करती है।

अतः बीतक-साहित्य या अन्य दास-वाणियों में यदि कहीं ऐतिहासिक विवरणों अथवा आध्यात्मिक सिद्धांतों के स्तर पर कोई मतांतर या भिन्न व्याख्या दिखाई दे, तो स्वामी लालदास कृत बीतक तथा श्री तारतम वाणी को ही सर्वाधिक प्रामाणिक आधार मानकर विवेचन करना चाहिए। यही ग्रंथ तारतम परंपरा के मूल तत्त्व, सिद्धांत और आध्यात्मिक दृष्टि को सर्वाधिक विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इसी संदर्भ में आगे हम प्रथम दो बीतकों का संक्षिप्त, तथ्यपरक और समन्वित परिचय प्रस्तुत करेंगे, जिससे बीतक-साहित्य की ऐतिहासिक तथा दार्शनिक परंपरा को सही संदर्भ में समझा जा सके।

8.7.2 स्वामी लालदास कृत बीतक:

स्वामी लालदास द्वारा रचित बीतक की रचना-योजना और विषय-वस्तु से स्पष्ट होता है कि इसे केवल संत-जीवनी के रूप में नहीं, बल्कि एक वृहत्तर ऐतिहासिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। 71 प्रकरणों और 4304 चौपाइयों में निबद्ध यह कृति साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक अध्ययन के स्तर पर भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानी जाती है।

बीतक का आरंभ महाकाव्यात्मक गरिमा के साथ होता है। प्रथम प्रकरण में चारों युगों—सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग—का संक्षिप्त उल्लेख करते हुए प्राचीन राजाओं से लेकर मुग़ल शासक औरंगज़ेब तक की ऐतिहासिक कड़ी प्रस्तुत की गई है। यह विवरण मात्र इतिहास-कथन नहीं, बल्कि उस वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण करता है, जिसके अंतर्गत महामति प्राणनाथ को कलियुग के जागरणकर्ता और 'निष्कलंक बुधावतार' के रूप में देखा गया है। यहाँ प्रयुक्त नाम और संकेत वाचिक परंपरा से जुड़े हैं;

इसलिए वे आधुनिक इतिहास-बोध से भिन्न प्रतीत होते हैं, किंतु उस युग की धार्मिक चेतना और सांप्रदायिक स्मृति को समझने के लिए वे अत्यंत उपयोगी हैं।

बीतक का दूसरा चरण (प्रकरण 2–14) निजानंद पंथ के प्रवर्तक सद्गुरु देवचन्द्र जी के जीवन को केंद्र में रखता है। इसमें उनके जन्म, आध्यात्मिक प्रवृत्ति, सद्गुरु की खोज, कच्छ यात्रा, भुज में स्वामी हरिदास के साथ सेवा-समर्पण, जामनगर में भागवत श्रवण, तारतम ज्ञान का प्रकटन तथा महामति प्राणनाथ के साथ गुरु–शिष्य संबंध के क्रमिक विकास का सजीव चित्रण मिलता है। यह खंड महामति की जागनी-यात्रा की आधारभूमि तैयार करता है और आत्म-शुद्धि, आत्म-निरीक्षण तथा साधना की प्रारंभिक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है।

तीसरा चरण (प्रकरण 15–59) बीतक का सबसे विस्तृत और प्रभावशाली जागनी यात्रा भाग है। इसमें महामति प्राणनाथ के जीवन, उनकी यात्राओं, आंतरिक और बाह्य संघर्षों, धर्मचर्चाओं और जागनी अभियान का क्रमबद्ध विवरण मिलता है। सूरत, ठट्ठानगर, मस्कत, दिल्ली, हरिद्वार, उदयपुर, रामनगर और पन्ना जैसे स्थलों पर उनकी गतिविधियाँ केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना से भी गहराई से जुड़ी दिखाई देती हैं। इस खंड में सतगुरु की आज्ञा से अरब यात्रा, गुरु-विरह और पुनर्मिलन, देवचन्द्र जी का धामगमन, बिहारी जी का गादीभिषेक तथा महाराजा छत्रसाल जैसे वीरों को धर्म और आत्मबल के लिए प्रेरित करने के प्रसंग आते हैं। वेद–क़ुरान (वेद–कतेब) के तारतम्य-केंद्रित समन्वय और संवाद के माध्यम से धार्मिक सद्भाव का संदेश इस खंड का केंद्रीय सूत्र है।

चौथा और अंतिम चरण महामति के पन्ना-प्रवास और उनके अंतिम वर्षों पर केंद्रित है। इसमें आठों पहर की बीतक-सेवा, सत्संग, अनुशासन और सुन्दरसाथ की भूमिकाओं का विस्तार से वर्णन मिलता है। यही सेवा-पद्धति आगे चलकर प्रणामी संप्रदाय के मंदिरों और आश्रमों की दैनिक व्यवस्था का आधार बनी। यहाँ धर्म को केवल वैचारिक सिद्धांत नहीं, बल्कि अनुशासित और सामूहिक जीवन-पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

बीतक की एक विशेष महत्ता यह है कि इसमें महामति का चित्रण केवल महिमामंडित रूप में नहीं किया गया है। अनेक प्रसंगों में वे एक साधारण मनुष्य की भाँति संघर्ष, निराशा और कठिन परिस्थितियों से जूझते हुए दिखाई देते हैं—एक ओर समाज का विरोध, दूसरी ओर औरंगज़ेब जैसी कठोर सत्ता। इन स्थितियों के बीच संतुलन बनाए रखते हुए जागनी अभियान को व्यापक भूभाग में फैलाना उनके असाधारण धैर्य, साहस और विवेक का प्रमाण है। स्वामी लालदास ने इन सभी पक्षों को प्रत्यक्ष संगति, यात्राओं और सेवा-अनुभव के आधार पर निष्कपट भाव से अंकित किया है।

समग्रतः, स्वामी लालदास कृत बीतक केवल एक संत-जीवनी नहीं, बल्कि इतिहास, दर्शन, भक्ति और समाज का सजीव संगम है। इसमें सद्गुरु देवचन्द्र, महामति प्राणनाथ और महाराजा छत्रसाल—तीनों व्यक्तित्व एक ही वैचारिक धारा में जुड़े हुए दिखाई देते हैं। वेद–कतेब समन्वय, धार्मिक सहअस्तित्व, सेवा-पद्धति और जागरण की चेतना इस ग्रंथ के मूल स्वर हैं। पाठ्यक्रम की दृष्टि से बीतक यह समझने में सहायक है कि एक आध्यात्मिक विचार कैसे जीवन-आचरण बनता है, जीवन कैसे आंदोलन का रूप लेता है, और आंदोलन किस प्रकार इतिहास और संस्कृति को दिशा देता है।

8.7.3 वृत्तान्त मुक्तावली बीतक, स्वामी ब्रजभूषण कृत

वृत्तान्त मुक्तावली स्वामी ब्रजभूषण द्वारा रचित एक महत्त्वपूर्ण बीतक-ग्रंथ है, जिसमें महामति प्राणनाथ के जीवन को केंद्र में रखकर व्यापक दार्शनिक–आध्यात्मिक दृष्टि से विषय-विन्यास किया गया है। यह केवल जीवन-चरित नहीं, बल्कि बीतक-साहित्य की परंपरा में स्थित एक आम्नाय (परंपरा-आधारित) ग्रंथ है। ब्रजभाषा/ब्रजी हिन्दी में रचित यह कृति प्रणामी संप्रदाय की मान्यताओं के साथ-साथ भारतीय चिंतन, साधना और धर्म-दर्शन की व्यापक झलक प्रस्तुत करती है।

विद्वानों के अनुसार इसका रचनाकाल 1699 ई. (वि.सं. 1755) है। कवि ब्रजभूषण के जीवन के विषय में ऐतिहासिक जानकारी सीमित है, किंतु परंपरा उन्हें बुंदेलखंड से संबद्ध मानती है और महाराजा छत्रसाल का शिष्य स्वीकार करती है। वे ब्रजभाषा के सिद्ध कवि, छंद-शास्त्र के जानकार तथा प्रणामी वाङ्मय के समर्पित रचनाकार माने जाते हैं। वृत्तान्त मुक्तावली कुल 80 प्रकरणों और लगभग 5654 चौपाइयों में रचित है। इसकी संरचना विषयानुसार स्पष्ट रूप से विभाजित है, जिससे पाठ्यक्रम के संदर्भ में इसका अध्ययन सुगम हो जाता है।

प्रारंभिक खंड (प्रकरण 1–35) में मुख्यतः सद्गुरु देवचन्द्र जी का जीवन और निजानंद पंथ की वैचारिक आधारभूमि प्रस्तुत की गई है। इसमें उनके जन्म, आध्यात्मिक प्रवृत्ति, गुरु–शिष्य परंपरा तथा साधना-पथ का वर्णन मिलता है। साथ ही योग-साधना से जुड़े विषय—अष्टांग योग, पातंजल योग, प्राण, चक्र, आसन, ध्यान और साधक की आंतरिक तैयारी—सरल भाषा में समझाए गए हैं, जिससे सामान्य पाठक और विद्यार्थी भी इन मूल अवधारणाओं से परिचित हो सकें।

मध्य खंड (प्रकरण 36–65) में महामति प्राणनाथ के जीवन-वृत्त का केंद्र है। इसमें उनकी यात्राएँ, धर्मचर्चाएँ, जागनी अभियान और सामाजिक–धार्मिक समन्वय के प्रयास विस्तार से वर्णित हैं। वेद और कतेब के तारतम्य-केंद्रित समन्वय की भावना, विभिन्न शास्त्रों पर संवाद तथा धार्मिक मतभेदों के बीच सत्य और करुणा का संदेश—इन

सबका सजीव चित्रण इस भाग में मिलता है। यहीं महामति के बहुपठित, संवादशील और निर्भीक व्यक्तित्व का स्पष्ट विकास दिखाई देता है।

अंतिम खंड (प्रकरण 66–80) में महामति के पन्ना-प्रवास, महाराजा छत्रसाल की राजचर्या तथा प्रणामी मत के प्रमुख सिद्धांतों की व्याख्या की गई है। यहाँ गुरु–संत–राजा की त्रयी को एक समन्वित दृष्टि में प्रस्तुत किया गया है, जिसमें आध्यात्मिक जागरण, सामाजिक उत्तरदायित्व और राजधर्म—तीनों का संतुलन दृष्टिगोचर होता है।

वृत्तान्त मुक्तावली में केवल ऐतिहासिक घटनाएँ नहीं, बल्कि भारतीय दर्शन, योग-साधना, शास्त्रीय संवाद, श्रुति–स्मृति, पुराण, भागवत, उपनिषद तथा कुरान की आयतों के संदर्भ भी समाहित हैं। कुछ भविष्यवाणी-संबंधी प्रसंग भी आते हैं, जिन्हें ऐतिहासिक प्रमाण की अपेक्षा सांप्रदायिक स्मृति और आस्था के रूप में पढ़ना चाहिए। महामति के औरंगझेब से मिलने का और उस के हृदय परिवर्तन संबंधी प्रसंगों में मूल बीतक से थोड़ी विसंगतता अवश्य दिखाई देती है। औरंगज़ेब से न तो निर्णायक ज्ञान-वार्ता हुई और न ही महामति (श्रीजी) की प्रत्यक्ष भेंट का कोई ठोस प्रमाण मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी "औरंगज़ेब के सुधरने" का दावा उसके पश्चातवर्ती आचरण से पुष्ट नहीं होता। अतः यह अधिक संगत प्रतीत होता है कि "बड़ा क़यामतनामा" अथवा धर्म-रक्षा और सुख-स्थापना जैसे फलात्मक संकेत महामति–छत्रसाल (पन्ना) प्रसंग पर केंद्रित हैं, न कि औरंगज़ेब से किसी सिद्ध भेंट पर।

ग्रंथ का अधिकांश भाग चौपाई छंद में है, किंतु अन्य वर्णिक–मात्रिक छंदों और अलंकारों का भी सुंदर प्रयोग हुआ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि वृत्तान्त मुक्तावली केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि ब्रजभाषा का एक सशक्त प्रबंध-काव्य भी है। ब्रजभूषण ने सांप्रदायिक निष्ठा बनाए रखते हुए साहित्यिक अनुशासन और छंद-मर्यादा का पूरा पालन किया है, जिससे यह कृति साहित्य-अध्ययन के लिए भी अत्यंत उपयोगी बन जाती है।

संक्षेप में, वृत्तान्त मुक्तावली एक ऐसी कृति है जिसमें महामति प्राणनाथ के जीवन के माध्यम से निजानंद - प्रणामी परंपरा, भारतीय दर्शन और ब्रजभाषा काव्य—तीनों का संगम दिखाई देता है। इस से यह समझने में सहायता करती है कि धार्मिक परंपरा कैसे साहित्य का रूप लेती है, साहित्य दर्शन को कैसे वहन करता है, और दर्शन किस प्रकार इतिहास-बोध और सामाजिक चेतना को दिशा देता है। लेकिन इस में जहां भी कोई ऐतिहासिक मतभेद दिखाई दे, लालदास कृत बीतक को सर्वाधिक प्रामाणित मानना चाहिए।

8.7 .4 नवरंग बीतक, श्री मुकुंदस्वामी (नवरंगस्वामी) कृत

महामति प्राणनाथ के 'बाएँ हाथ' कहे जाने वाले नवरंग स्वामी ने अत्यंत गूढ़ आध्यात्मिक विषयों का विस्तार से वर्णन 'नवरंग वाणी' ग्रंथ में किया है। नवरंग बीतक अपने आध्यात्मिक गहनता और विश्लेषणात्मक दृष्टि के लिए विशेष प्रसिद्ध है। नवरंग वाणी में तारतम ज्ञान की विस्तृत व्याख्या के साथ-साथ संक्षिप्त बीतक भी सम्मिलित है, जिसमें 27 प्रकरणों और 922 चौपाइयों के माध्यम से बीतक प्रसंगों के साथ आध्यात्मिक विषयों पर गहन विचार किया गया है। विशेष रूप से इसमें वर्णित आध्यात्मिक यात्रा के 108 पक्षों का स्पष्टीकरण अत्यंत विचारणीय हैं।

8.7.5 वर्तमान दीपक, श्री लल्लूजी भट्ट कृत

गुजराती भाषा में रचित यह बीतक संप्रदाय की घटनाओं को सरल, सहज और भावपूर्ण शैली में प्रस्तुत करती है। गुजरात के विद्वान लालू भट्ट ने इसे सार्थक रूप से "वर्तमान दीपक" नाम दिया है। यह नाम अपने भीतर गहरा संकेत समेटे हुए है—बीतक भले ही अतीत की कथा कहती हो, पर उसका प्रकाश वर्तमान जीवन को आलोकित करता है। जब पाठक अपने अनुभव, प्रश्न और जीवन–स्थितियों को बीतक के प्रसंगों में प्रतिबिंबित होता हुआ देख पाता है, तब वही बीतक उसके लिए सच अर्थों में "वर्तमान दीपक" बन जाती है।

इस प्रकार बीतक यह स्पष्ट करती है कि जागनी कोई समाप्त हो चुकी ऐतिहासिक घटना नहीं, बल्कि प्रत्येक युग में, प्रत्येक साधक के जीवन में घटित होने वाली चेतना की निरंतर प्रक्रिया है।

8.7. 6 आधुनिक काल में बीतक का प्रकाशन, पुनर्पाठ और प्रगतिशील प्रसार

आधुनिक काल में बीतक-साहित्य केवल संरक्षित धरोहर के रूप में नहीं, बल्कि एक सजीव, गतिशील और समाज-संवादी परंपरा के रूप में पुनः प्रतिष्ठित हुआ है। विशेष रूप से सन 1983 के पश्चात बीतक के गद्यात्मक, सरल, टीकायुक्त और संदर्भ-संपन्न संस्करणों का प्रकाशन आरंभ हुआ, जिसने इस ग्रंथ को केवल विद्वानों तक सीमित न रखकर सामान्य पाठक, विद्यार्थी और जिज्ञासु समाज तक पहुँचाया। यह चरण बीतक-परंपरा की आधुनिक प्रगतिशीलता का स्पष्ट संकेत है—जहाँ परंपरा को यथावत जड़ रूप में नहीं, बल्कि समयानुकूल व्याख्या और शिक्षण के माध्यम से जीवंत किया गया।

इस दिशा में श्री प्राणनाथ मिशन, श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी (उत्तर प्रदेश) एवं वडोदरा, तथा श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा द्वारा प्रकाशित हिन्दी और गुजराती टीकायुक्त संस्करण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये प्रकाशन केवल अनुवाद नहीं, बल्कि भाषिक सरलीकरण, दार्शनिक स्पष्टता और ऐतिहासिक संदर्भों के साथ प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे बीतक का अध्ययन अब संप्रदायगत पाठ तक सीमित न रहकर पाठ्यक्रम, शोध

और तुलनात्मक धर्म-अध्ययन के योग्य बन सका है। इसी क्रम में नवतनपुरी (जामनगर) से प्रकाशित निजानंद चरितामृत (गुजराती) ने बीतक-विषयक गद्य-परंपरा को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। विशेष रूप से, प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान द्वारा 2024 में प्रकाशित विस्तृत बीतक-टीका आधुनिक काल की सबसे प्रामाणिक और संदर्भ-संपन्न व्याख्याओं में से एक मानी जा रही है।

प्रगतिशील प्रसार का एक और महत्त्वपूर्ण चरण सन 2011–12 में निर्मित 'श्री प्राणनाथजी' टीवी धारावाहिक रहा, जो समस्त प्रमाणित बीतक-साहित्य पर आधारित था। इसे श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान (श्री निजानंद आश्रम, वडोदरा) द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस धारावाहिक ने बीतक के जटिल जीवन-प्रसंगों, जागनी-यात्रा और वेद–कतेब समन्वय के संदेश को सरल, भावपूर्ण और दृश्यात्मक माध्यम से लाखों दर्शकों तक पहुँचाया। यह प्रयोग दर्शाता है कि बीतक परंपरा आधुनिक संचार माध्यमों के साथ संवाद स्थापित करने में सक्षम है। डिजिटल युग में यह प्रवाह और अधिक विस्तृत हुआ है। आज 'श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया' यूट्यूब चैनल के माध्यम से संपूर्ण बीतक-सामग्री, प्रवचन, व्याख्याएँ और दुर्लभ पाठ वैश्विक स्तर पर उपलब्ध हैं।

2020 ई. में प्रकाशित छत्रसाल वेबसीरीज द्वारा महाराजा छत्रसाल बुंदेला का भारतीय संस्कृति और धर्म की रक्षा में योगदान से करोड़ों लोग परिचित हो रहे हैं। इन सब प्रयासों से न केवल भारत, बल्कि प्रवासी भारतीयों और अंतरराष्ट्रीय जिज्ञासुओं में भी बीतक-साहित्य के प्रति नई जागरूकता उत्पन्न हो रही है।

इस प्रकार आधुनिक काल में बीतक का प्रकाशन और प्रसार संरक्षण से आगे बढ़कर पुनर्सृजन की दिशा में अग्रसर है। यह परंपरा अब केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान के लिए संवाद, विवेक और समन्वय द्वारा परम सत्य की प्रकाशना का जीवंत स्रोत बनती जा रही है—जो भविष्य में अकादमिक अध्ययन, अंतरधार्मिक संवाद और नैतिक नेतृत्व के लिए और भी व्यापक संभावनाएँ खोलती है।

8.10 ऐतिहासिक योगदान, सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना स्रोत एवं जागनी पुरुषार्थ

निजानंद - प्रणामी संप्रदाय को सम्यक रूप से समझने के लिए उसकी बीतक-लेखन परंपरा पर गंभीर, संतुलित और वैचारिक दृष्टि से विचार करना अनिवार्य है। यद्यपि बीतकें एक विशिष्ट आध्यात्मिक परंपरा से संबद्ध हैं, फिर भी वे केवल भक्तिपरक या संप्रदायगत ग्रंथ नहीं हैं। अपने-अपने देशकाल में घटित राजनीतिक सक्रियताओं, सामाजिक संघर्षों और धार्मिक संवादों का जिस विस्तार, सजीवता और आत्मीय प्रामाणिकता से इनमें अंकन हुआ है, वह इन्हें भारतीय इतिहास के लिए एक महत्त्वपूर्ण

वैकल्पिक इतिहास-स्रोत के रूप में प्रतिष्ठित करता है। यदि यह समृद्ध परंपरा आरंभिक काल में ही इतिहासकारों और साहित्येतिहासकारों की दृष्टि में आ गई होती, तो बुंदेलखंड तथा मध्यभारत के राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास की संरचना निश्चय ही अधिक व्यापक, संतुलित और बहुस्वरात्मक होती।

मूल बीतक-परंपरा के विस्तार में आगे चलकर अनेक विद्वान सुन्दरसाथों ने भी बीतक-रचनाएँ कीं, जिनमें समकालीन घटनाओं, यात्राओं, शासकीय-संत संबंधों और सामाजिक गतिशीलताओं का सजीव चित्रण मिलता है। इन ग्रंथों की उपेक्षा के कारण इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण धारा लंबे समय तक अनदेखी रह गई। आज जब इन बीतकों का पुनर्पाठ और पुनर्मूल्यांकन किया जा रहा है, तब यह स्पष्ट होता है कि इनके माध्यम से मध्यभारत का इतिहास अधिक सम्पन्न, गहन और जीवंत रूप में सामने आ सकता है—ऐसा इतिहास जो केवल सत्ता-केंद्रित न होकर लोकजीवन, आस्था, संवाद और नैतिक संघर्षों को भी समाहित करता है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि बीतकें "घटनाओं की सूची" भर नहीं हैं। वे उस समय के धर्म-नीति, सामाजिक मनोविज्ञान, भय-व्यवस्था, संवाद-प्रयासों और संगठनात्मक कौशल को भी पकड़ती हैं। इसी कारण वे इतिहास के साथ-साथ इतिहास-बोध (history consciousness) विकसित करने में भी सहायक हैं—कि समाज किन परिस्थितियों में कैसे सोचता है, कैसे चुनता है, और कैसे रूपांतरित होता है।

उत्तर-मुग़लकालीन मध्यदेश की राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक उथल-पुथल का संतुलित अंकन मुख्यधारा के इतिहास-ग्रंथों में अपेक्षाकृत कम हुआ। महामति प्राणनाथ के समाधिष्ठ होने के बाद निजानंद संप्रदाय एक संक्रमणकाल से गुज़रा, जहाँ उसका सर्वधर्म-समभाव आधारित संदेश सार्वजनिक स्तर पर क्रमशः सिमटता गया, यद्यपि उसकी मूल दृष्टि दुर्बल नहीं हुई।

'वेद–कतेब' समन्वय की उदार परंपरा को दोनों ओर से संकीर्ण मतवादों की चुनौतियाँ मिलना स्वाभाविक है। फिर भी महामति का करुणामय और संवादात्मक धर्म-बोध संप्रदाय के भीतर एक जीवित अंतःप्रवाह के रूप में बना रहा, जो पुनः बाहर प्रगट हो रहा है। धीरे धीरे व्यापक सामाजिक हस्तक्षेप दिखाई दे रहा है। मंदिरों और सत्संगों तक सीमित हुई परंपरा अब संरक्षण और अंतर्मुखी साधना के चरण को अधिक मजबूत बनाते हुए विश्व समाज को लाभान्वित करने का संकल्प लिए आगे आ रही है। ब्रह्ममुनियों और परमहंसों ने शिक्षाओं की जिस लौ को सुरक्षित रखा, आज यही संरक्षित धरोहर—बीतक, तारतम वाणी और समन्वय की चेतना—इतिहास की रिक्तियों की पूर्ति करती हुई नवचिंतन और अकादमिक पुनर्पाठ के लिए सशक्त आधार प्रदान करती है।

8.11 बीतक - सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना का जीवंत स्रोत

महामति की जागनी यात्राओं की विशेषता यह थी कि उस में आध्यात्मिक जागृति के साथ सामाजिक और राजनीतिक पक्ष भी सहज जूड़ा हुआ था। 1647 ई. की चार-वर्षीय अरब-यात्रा से लेकर 1660 ई. (जामनगर) से 1695 ई. (पन्ना) तक की लगभग चार दशकों की भारत-यात्रा में महामति प्राणनाथ जी का प्रधान उद्देश्य आध्यात्मिक जागृति था, किंतु इसके साथ सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना स्वाभाविक रूप से जुड़ी रही।

अरब (1652-1656 ई.) में उन्होंने इराक और मस्कत के मुस्लिम समाज के बीच न्याय और धर्मनीति के लिए प्रत्यक्ष संघर्ष किया। उस के बाद, 1666 ई. में दीव-बंदर पर उन्होंने फिरंगियों के कठोर और अमानवीय व्यवहार को देखा, जिससे स्थानीय समाज भय और पीड़ा में जी रहा था। ऐसी परिस्थितियों में एक ओर सांप्रदायिक सौहार्द को व्यवहार में उतारना था, तो दूसरी ओर औरंगज़ेब जैसे क्रूर शासक के समक्ष धर्म की सच्चाई को स्पष्ट करना भी अनिवार्य था—जहाँ आवश्यक हुआ, वहाँ शास्त्र और शस्त्र दोनों के विवेकपूर्ण संतुलन का आग्रह दिखाई देता है।

यहाँ बीतक एक महत्त्वपूर्ण संकेत देता है: आध्यात्मिकता केवल "व्यक्तिगत मुक्ति" नहीं, बल्कि लोकधर्म, न्याय, और मानवीय मर्यादा की रक्षा का विवेक भी है।

औरंगज़ेब के आतंक को शांत करने में भी महामति के अभियान की अहम भूमिका रही। जब समूचा हिंदू समाज औरंगज़ेब के आतंक से भयभीत था, तब महामति के सुन्दरसाथ साथी उसके अनेक अग्रणी सिपहसालारों और प्रशासकों के सीधे संपर्क में आए। उन्होंने संतुलित ज्ञान और विवेक के साथ तारतम्य-केंद्रित समन्वय तथा एकत्व की बात रखी, किंतु अधिकांश लोग सरियती कट्टरता की सीमाओं से बाहर आकर सत्य को स्वीकार न कर सके।

इसी काल में महामति ने हिंदू राजाओं, राणाओं, जागीरदारों और प्रभावशाली वर्गों को धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए साहस, आत्मबल और संगठन की प्रेरणा दी। निरंतर यात्रा करते हुए स्वयं को और अपने अनुयायियों को सुरक्षित रखना—यह अपने आप में एक असाधारण ऐतिहासिक उपलब्धि थी। यह पक्ष मुख्यधारा इतिहास में प्रायः "राजा बनाम बादशाह" की कथा बनकर रह जाता है; बीतक उसे समाज-चेतना, नैतिक प्रतिरोध और संवाद-नीति की कथा बना देता है।

महामति की प्रेरणा और मार्गदर्शन से महाराजा छत्रसाल ने 1661 ई. से 1731 ई. तक मुगलों के विरुद्ध निरंतर संघर्ष किया और अंततः बुंदेलखंड को स्वतंत्र कराया। इस ऐतिहासिक संघर्ष में छत्रपति शिवाजी और बाजीराव पेशवा का सहयोग भी महत्त्वपूर्ण रहा। अपने जीवन के अंत में छत्रसाल ने स्वीकार किया कि महामति ने उन्हें बंधन से मुक्त

किया, धर्म की दिशा दी और उनके संघर्षों को आध्यात्मिक अर्थ प्रदान किया। बीतक के अनेक प्रसंग यह संकेत देते हैं कि भारत की स्वतंत्रता का पहला संगठित चेतनात्मक मोर्चा वास्तव में सुन्दरसाथ समुदाय ने ही खोला था। यहाँ बीतक का योगदान यह है कि वह संघर्ष को केवल "सत्ता-परिवर्तन" नहीं मानता, बल्कि उसे धर्म-नीति, स्वाभिमान, संगठन और जन-धर्म की जागृति से जोड़कर पढ़ता है—यानी स्वतंत्रता की जड़ें केवल रणभूमि में नहीं, चेतना में भी होती हैं।

8.12 बीतक परंपरा में जागनी पुरुषार्थ का विहंगावलोकन

महामति प्राणनाथ का *जागनी पुरुषार्थ* बीतक में केवल आध्यात्मिक साधना के रूप में नहीं, बल्कि समाज, सत्ता और संस्कृति के विवेकपूर्ण जागरण के रूप में प्रकट होता है। बीतक यह स्पष्ट करती है कि धर्म का संकट उसकी बहुलता नहीं, बल्कि उसके मर्म—करुणा, न्याय, सत्य और सहअस्तित्व—का लोप है। इसी संदर्भ में महामति का पुरुषार्थ विवेक-जागरण, निर्भीक सत्य-संवाद, संगठन, स्वावलंबन, तारतम्य-केंद्रित समन्वय और समावेशन का संयुक्त संकल्प बनता है, जिसका लक्ष्य है—"सुख-शीतल करूँ संसार।"

बाल्यकाल से ही महामति में अंतर्मुखी खोज, अनुशासन और दृढ़ निश्चय के जागनी-संस्कार दिखाई देते हैं। प्रेरक संग और जीवित कथाओं से सतगुरु-आकर्षण जागता है, जो बारह वर्ष की आयु में सतगुरु देवचन्द्र से दीक्षा लेकर जीवन की धुरी बदल देता है। उनका संदेश स्पष्ट है—प्रेरणा तात्कालिक उत्साह से नहीं, उद्देश्य की स्पष्टता से जन्मती है।

सेवा और परीक्षा के प्रसंग बताते हैं कि जागरण संसार से पलायन नहीं, बल्कि संसार में रहते हुए सत्य का आचरण है। फूलबाई-प्रसंग धर्म बनाम करुणा की कसौटी रखता है—जहाँ नियमों से ऊपर करुणा और सेवा को प्रतिष्ठित किया गया। गादीपति बिहारीजी से मतभेद यह सिखाता है कि परंपरा का सम्मान रखते हुए भी जागरण की आत्मा को स्थिरता में कैद नहीं किया जा सकता।

सूरत के सत्संग जागरण को व्यक्तिगत मुक्ति से आगे सामूहिक उत्तरदायित्व बनाते हैं। तारतम-बोध आत्मा को उसके मूल स्वरूप, धाम और संबंध की स्मृति कराकर जीवन को उपभोग से उत्तरदायित्व की ओर ले जाता है। शिवजीभाई–रामजीभाई प्रसंग धर्म की वास्तविक परीक्षा—कृतज्ञता और करुणा—को उजागर करता है।

सिद्धपुर और मेड़ता में कर्मकांड से आत्मबोध और प्रेम-लक्षणा भक्ति का प्रतिपादन होता है। अजान-प्रसंग से दिल्ली-गमन तक तारतम्य-केंद्रित समन्वय और साहस का मार्ग दिखता है—जहाँ धर्मों की आंतरिक एकता पर बल है। हरिद्वार महाकुंभ में तारतम्य का समग्र नक्शा यह सिखाता है कि सत्य एक है, अनुभव भिन्न।

राजस्थान यात्राएँ, छत्रसाल-प्रसंग और पद्मावतीपुरी का स्वावलंबी समाज यह दर्शाते हैं कि धर्म-आधारित राज्य और संगठन का आधार न्याय, करुणा और विवेक है—दान नहीं, श्रम और सहयोग। अंततः संस्कृति-निर्माण (साहित्य, संगीत, कला) के माध्यम से महामति का लक्ष्य स्पष्ट होता है—शीतल संसार।

समकालीन बोध: जागनी पुरुषार्थ आज के लिए धर्म-साक्षरता, करुणामय संवाद, संगठन व स्वावलंबन, और संस्कृति-निर्माण का मार्ग देता है। धर्म का उद्देश्य किसी को हराना नहीं, बल्कि दुख को हराकर संसार को सुख-शीतल बनाना है।

8.13 बीतक-वाणी में प्रेरक पत्र-परम्परा का स्वरूप

बीतक परम्परा में एवं तारतम वाणी में सद्गुरु देवचन्द्र, गुरुपुत्र बिहारीजी, महामति प्राणनाथ, सुन्दरसाथ शिष्यों और शासकों के बीच पत्राचार का उल्लेख मिलता है। अधिकांश पत्र मूल रूप में उपलब्ध नहीं, पर बीतक आदि में उनका काव्यात्मक (पद्य) उल्लेख सुरक्षित है। अपवाद केवल बाईजू राज (तेज कुँवरी) की पत्री है जो गद्य में है और आज भी मूल रूप में सुरक्षित बताई गई है। सबसे महत्वपूर्ण पत्र-समूह इस प्रकार है:

8.13.1. सनंध की बड़ी पत्री (74 चौपाइयाँ) और छोटी पत्री (27 चौपाइयाँ) – दोनों सनन्ध ग्रंथ के अंत में संकलित हैं। बड़ी पत्री दिल्ली से उदयपुर में भीम भाई और मुकुन्ददास को संबोधित है; इसमें कुरान को "रसूल के हाथ भेजा गया पत्र" जैसे अर्थ में देखा गया है और धाम–ब्रज–रास के रहस्य से जोड़ा गया है। छोटी पत्री पूरक रूप में जागनी लीला, काल-गणना, रसूल–देवचन्द्र–महामति संबंध तथा महामति द्वारा इमाम मेहदी-उल्लेख आदि को स्पष्ट करती है।

8.13.2 देवचन्द्रजी की 69 पत्रियों की सूचना—सनंध में "उनहतर पातियाँ" का उल्लेख मिलता है; परम्परा में कथा है कि वे पत्रियाँ चमत्कारिक रूप से महामति तक पहुँचीं (आड़िका लीला), हालांकि यह विवरण ग्रंथों में नहीं, मुख्यतः श्रुत परम्परा/आधुनिक विमर्श में मिलता है।

8.13.3 सूरत प्रसंग का पत्राचार—यह सबसे युगांतरकारी माना गया है, क्योंकि इसमें महामति ने जाति/वेश-आधारित दीक्षा-निषेध, विधवा-दीक्षा निषेध, और दीक्षा-अधिकार सीमित रखने जैसे विचारों को चुनौती दी। उन्होंने कहा कि जागृत आत्मा दूसरों को जगाने में सक्षम है और "चारों वर्णों" में साथ के उतरने का संकेत दिया। इसके प्रत्युत्तर में बिहारीजी ने संबंध-विच्छेद/निष्कासन की भाषा वाला पत्र भेजा—यही प्रसंग सम्प्रदाय में नए उदार मार्ग की आधारभूमि बताया गया है।

8.13.4 राजनीतिक-सामाजिक संवाद के आयाम में -- मेड़ता से जसवंत सिंह, दिल्ली से औरंगज़ेब और उसके प्रमुख अधिकारियों (शेख-इस्लाम, रजवी ख़ाँ, शेख निज़ाम, आकिल ख़ाँ, सिद्धी पोलाद आदि) को प्रश्नों/रुक्कों के रूप में पत्र भेजने का

विवरण है। इससे महामति की जन-संपर्क, संवाद-कौशल, और रणनीतिक लेखन की भूमिका उभरती है।

8.13.5 बाईजू राज की पत्री एकमात्र मूल पत्र उपलब्ध है। गुरुपुत्र बिहारीजी के धामगमन के बाद जामनगर के सुन्दरसाथ को बाईजू राज ने गुजराती में सांत्वना-पत्र लिखा—यह लगभग 9 पृष्ठों का है, संग्रहालय (पन्ना) में सुरक्षित बताया गया है और इसमें तारतम वाणी की चौपाइयों से विचार-पुष्टि भी है।

8.13.6 बीतक की बड़ी पत्री और छोटी पत्री दिल्ली में नज़रबंद 12 सुन्दरसाथ को सांत्वना देने हेतु भेजी गई बीतक की बड़ी पत्री (लगभग 150 चौपाइयाँ) महामति के धर्म-दर्शन और राजनीतिक प्रबंध दोनों का परिचय देती है—विरोधी को अनुकूल बनाने, प्रमाण-साक्ष्य (कुरान संदर्भ) का रणनीतिक उपयोग, और संघर्ष-नीति जैसे बिंदु सामने आते हैं। छोटी पत्री (88 चौपाइयाँ) पूरक है—जाति-वेश भेदभाव, संगठन-समन्वय, सुन्दरसाथ शिष्यों की सुरक्षा और आंतरिक एकता पर जोर देती है। दोनों पत्री अत्यंत बोधगम्य और महत्वपूर्ण होने से इस पर विशेष विचार करेंगे:

8.13.6.1 बीतक की बड़ी पत्री: बीतक की 'बड़ी पत्री' महामति प्राणनाथ ने कामा पहाड़ी से, दिल्ली में औरंगज़ेब द्वारा नज़रबंद किए गए बारह सुन्दरसाथ को ढाढ़स बँधाने के लिए कान्हजी भाई और भाई शेख़ बदल के माध्यम से भेजा था (बीतक, प्रकरण 46)। पत्र में महामति संघर्षरत साथियों के साहस और साधना की प्रशंसा करते हैं। वे उनके प्रयासों को आध्यात्मिक रूप से उच्च और धार्मिक रूप से उचित ठहराते हुए कहते हैं कि उनका कार्य परम उद्देश्य से जुड़ा है।

यह पत्र महामति की धर्म-दृष्टि, दार्शनिक गहराई और राजनीतिक प्रबंधन-कौशल—तीनों को स्पष्ट करता है। वे बताते हैं कि विरोधी को अनुकूल बनाने के लिए पहले उसके स्तर पर उतरना पड़ता है, फिर प्रेमपूर्ण संवाद से उसे अपने पक्ष में किया जा सकता है (बीतक, 47/28)। वे यह भी सलाह देते हैं कि आसुरी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति पर सीधा टकराव करने के बजाय रणनीतिक ढंग से काम लेना चाहिए (बीतक, 47/36)। शासकीय अधिकारियों और क़ाज़ियों को समझाने के लिए, आवश्यकता पड़ने पर क़ुरान जैसे उनके धर्म-ग्रंथों के संदर्भ देकर तर्क प्रस्तुत करने की बात भी वे कहते हैं (बीतक, 47/50, 70)।

महामति इस पत्र में यह स्पष्ट करते हैं कि धर्म-संघर्ष में लगे साधकों का सम्मान दूर-दूर तक फैलता है, और इसी भाव से वे सुन्दरसाथ का उत्साह बढ़ाते हैं। साथ ही, जागनी अभियान में अपनी सक्रिय भूमिका और भावी यात्राओं का संकेत देकर प्रेरणा देते हैं।

लगभग 150 चौपाइयों वाली यह पत्री, आकार और प्रभाव—दोनों दृष्टि से—महामति का सबसे बड़ा पत्र है।

यह प्रसंग परम्परा के उस निर्णायक ऐतिहासिक–आध्यात्मिक क्षण से जुड़ा है, जब औरंगज़ेब के दरबार तक क़यामत और इमाम महदी के संदेश को पहुँचाने का साहसिक प्रयास हुआ। इस संदेश ने शरीयत-आधारित सत्ता की जड़ता को चुनौती दी, इसलिए क़ाज़ियों और दरबारियों ने तीव्र विरोध किया और सुन्दरसाथ को प्रताड़ना, क़ैद तथा अपमान सहना पड़ा। यह टकराव केवल राजनीतिक या सामान्य धार्मिक विवाद नहीं था; यह मूलतः सत्यज्ञान बनाम रूढ़ धार्मिक अहंकार का संघर्ष था—जहाँ बाहरी दमन के बावजूद ज्ञान के स्तर पर विरोधी पक्ष सुन्दरसाथ को असत्य सिद्ध नहीं कर सका। इसी कारण इस संघर्ष को "उलटी विजय" कहा जा सकता है: बाहर से पराजय जैसी स्थिति, पर भीतर से सत्य की गहरी प्रतिष्ठा।

ऐसे संकट-काल में श्री प्राणनाथजी ने कामा पहाड़ी से बीतक की 'बड़ी पत्री' भेजकर सुन्दरसाथ को केवल ढाढ़स नहीं दिया, बल्कि उन्हें दिशा, रणनीति और आध्यात्मिक बल प्रदान किया। लालदासजी के संकेत के अनुसार यह पत्र उस समय पहुँचा जब सुन्दरसाथ क़ाज़ी के यहाँ नज़रबंद थे। इसलिए यह पत्र निजी सांत्वना के साथ-साथ पूरे सुन्दरसाथ समुदाय के लिए पाठ्य-मार्गदर्शन बन गया। पत्र का भाव-केन्द्र अत्यंत आत्मीय है—श्रीजी सुन्दरसाथ को "प्राणों का प्रिय", "आत्मा का आधार" और "सिरदार" कहकर संबोधित करते हैं। यहाँ "योद्धा" का अर्थ शस्त्रधारी नहीं, बल्कि वह साधक है जो सत्य, धैर्य और आत्मबल से संघर्ष करता है और जिसकी रहनी दूसरों के लिए जीवित उदाहरण बनती है।

पत्र में लोक-लज्जा और सामाजिक भय को तोड़ने वाले उस साहस पर विशेष प्रकाश है, जिसके अंतर्गत सुन्दरसाथ ने मुस्लिम फकीरी वेश धारण कर सत्य का उद्घोष किया। यह बाहरी 'भेष' की कथा नहीं, बल्कि उस निर्भीकता का संकेत है जो निजस्वरूप की पहचान और धामधणी की निस्बत से पैदा होती है। इसी कारण यह कार्य केवल व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं, बल्कि पूरे सुन्दरसाथ के लिए गौरव और प्रेरणा का कारण बनता है। पत्र अनेक साथियों के नाम लेकर यह भी स्पष्ट करता है कि यह आंदोलन किसी एक व्यक्ति का नहीं, बल्कि एक सामूहिक ब्रह्म-चेतना का कार्य है—जहाँ नेतृत्व, सेवा, संवाद और सहयोग मिलकर जागरण-यात्रा को आगे बढ़ाते हैं।

बड़ी पत्री का संदेश वर्तमान संघर्ष तक सीमित नहीं रहता; वह भविष्य के साधकों के लिए भी दिशासूचक बनता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि जो आज सत्यज्ञान के प्रचार में लगे हैं और जो आने वाले समय में जागनी-कार्य से जुड़ेंगे—सभी के लिए यह

पत्र एक प्रकार का अनुशासन-पाठ है: धामधणी की छाया में निर्भय, स्थिर और आनंदित रहकर कार्य करना। पत्र का केंद्रीय आध्यात्मिक आश्वासन यह है कि यह संघर्ष आकस्मिक नहीं; शास्त्रों में पहले से संकेतित "माया–दज्जाल" और सत्य के बीच के द्वंद्व का ही हिस्सा है, और अंततः धामधणी स्वयं ब्रह्मात्माओं का हाथ पकड़कर उन्हें जागृत कर रहे हैं। इन्द्रावती की ओर से कोटि-कोटि प्रणाम और धामधणी की ओट लेकर आगे बढ़ने का आग्रह इसी विश्वास को भावात्मक पूर्णता देता है कि एक दिन सब जागृत होकर एकत्र होंगे और तब पूर्ण सुख-शांति-आनंद की स्थापना होगी।

इस प्रकार बीतक की बड़ी पत्री केवल एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ नहीं रह जाती; वह धैर्य का शास्त्र, निर्भीकता का घोष, सामूहिक जागरण का घोषणापत्र, और तारतम ज्ञान की जीवंत धारा बन जाती है। वह यह सिखाती है कि सत्य के मार्ग पर आने वाले बाहरी कष्ट पराजय नहीं, बल्कि सत्य की प्रामाणिकता की कसौटी हैं—और वही कसौटी आगे चलकर व्यापक जागरण का आधार बनती है।

8.13.6.2 बीतक की छोटी पत्री: 'छोटी पत्री', बड़ी पत्री की पूरक है। बड़ी पत्री में जो बातें संक्षेप में रह गई थीं, उन्हें यहाँ विस्तार मिला है। इसमें 88 चौपाइयाँ हैं—अर्थात आकार में यह बड़ी पत्री से लगभग आधी है। इसमें बीतककार के कुछ ऐतिहासिक-तथ्यात्मक (इति-वृत्त) उल्लेख भी सम्मिलित हैं। इस पत्री के समय तक औरंगज़ेब के प्रति महामति का दृष्टिकोण बदल चुका था; वे उसकी नीति को धूर्तता से जोड़ते हैं। पत्री से यह भी संकेत मिलता है कि उस काल में निचली जातियों को गायत्री मंत्र आदि सुनना-सुनाना वर्जित था (बीतक, 48/6), और मुसलमानों में भी हिंदुओं के प्रति इसी प्रकार की गोपनीयता/रोक-टोक प्रचलित थी। महामति इस जाति और वेश-आधारित भेदभाव को समाप्त करना चाहते थे और उसे स्पष्ट शब्दों में चुनौती देते हैं (बीतक, 48/8)। स्वामी लालदास इन विचारों से प्रभावित होकर उन्हें व्यवहार में उतारते हैं—*"तो हम जात भेष के, क्यों ना भानें सिर।"* (बीतक, 48/1)

छोटी पत्री में महामति जोर देते हैं कि जागनी अभियान की जानकारी अधिकतम सुन्दरसाथ तक पहुँचे और सभी आपस में जुड़े रहें। वे इसी उद्देश्य से बार-बार प्रयास करते हैं और बिहारीजी का पक्ष जानने की कोशिश भी करते हैं (बीतक, 48/58–61)। इस पत्री से महामति के शिष्य-केन्द्रों का भी परिचय मिलता है। वे बारह शिष्यों की सुरक्षा को लेकर चिंतित हैं और आवश्यकता पड़ने पर विरोधियों के विरुद्ध कठोर रुख अपनाने की बात भी कहते हैं—"तिसका सिर हम भान के।" (बीतक, 48/50)

महामति को बारह सुन्दरसाथ के बीच आंतरिक मतभेद की आशंका भी थी (बीतक, 48/51), इसलिए वे आपसी सहमति, सहयोग और एकता पर विशेष बल देते हैं

(बीतक, 48/73)। पत्री के अंत में वे बार-बार यह विश्वास दिलाते हैं कि गुरु और शिष्य अलग नहीं, एकात्म हैं।

"तिस वास्ते तुमारी आत्मा से, मेरी होय न जुदी आतम।" (बीतक, 48/81)

इन दोनों पत्रियों के माध्यम से महामति प्राणनाथ की करुणा, तारतम्य-केंद्रित समन्वय-दृष्टि और संगठनात्मक चेतना अत्यंत स्पष्ट रूप में सामने आती है।

8.13.6.3 श्री जी की दोनों पत्रियों से मिलने वाली जीवन-सच्चाइयाँ

1. सत्य तक पहुँचने में बाधाएँ आती हैं
   सत्य का संदेश सीधे लोगों तक नहीं पहुँचता; बीच में सत्ता, अहंकार, स्वार्थ और माया जैसी दीवारें खड़ी हो जाती हैं।
2. लोग अक्सर सत्य से नहीं, उसकी व्याख्या से उलझते हैं
   मनुष्य बाहरी भेष, रस्म और परंपरा में अटक जाता है, जबकि वास्तविक हकीकत भीतर छिपी रहती है।
3. बाहरी हार हमेशा वास्तविक हार नहीं होती
   अपमान, कैद या विरोध कई बार भीतर की आध्यात्मिक विजय का संकेत होते हैं। जब सत्य को तर्क से दबाया नहीं जा सकता, तब उसकी जीत शुरू हो जाती है।
4. परिवर्तन समझदारी से आता है, केवल विरोध से नहीं
   सही भाषा, सही युक्ति और सही समय लोगों के हृदय खोलते हैं। केवल शोर मचाने से जागरण नहीं होता।
5. जागरण एक समय लेने वाली प्रक्रिया है
   सत्य का बीज तुरंत फल नहीं देता। पहले चेतना में बोया जाता है, फिर समय आने पर उसका फल प्रकट होता है।

8.13.6.4 श्री जी की दोनों पत्रियों से आज के समय के लिए प्रेरणादायी मुख्य बोध

1. **पहले हृदय तक पहुँचो, फिर सत्य पहुँचाओ।**
   विश्वास बने बिना गहरा सत्य स्वीकार नहीं होता। संवाद का पहला चरण संबंध है, दूसरा प्रकाश।
2. **भाषा और शैली बदलना समझदारी है, समझौता नहीं।**
   यदि उद्देश्य करुणा, जागरण और सत्य हो, तो समय, मंच और भाषा के अनुसार स्वयं को ढालना सेवा का ही रूप है।

3. **आज का वास्तविक युद्ध चेतना का युद्ध है।**
   संघर्ष केवल विचारों का नहीं, दृष्टि, विवेक और अर्थ-बोध का है। तलवारों से नहीं, चेतना से भविष्य बदलता है।
4. **समस्या विधियों में नहीं, उनसे जुड़े अहंकार में है।**
   रस्में बदल सकती हैं, पर यदि भीतर अहंकार बना रहे तो धर्म भी विभाजन का कारण बन जाता है।
5. **व्यक्ति की पहचान नहीं, सत्य का प्रश्न केंद्र में लाओ।**
   "कौन सही है?" से अधिक महत्त्वपूर्ण है—"सत्य क्या है?"
6. **गहरा परिवर्तन शोर में नहीं, शांत संवाद में जन्म लेता है।**
   आज "वायरल" होने से अधिक आवश्यक है "वाइटल" होना—ऐसी बातचीत जो आत्मा को छू सके।
7. **जबरदस्ती से नहीं, पहचान और प्रेम से परिवर्तन आता है।**
   भय और दबाव क्षणिक असर डालते हैं; स्थायी परिवर्तन समझ, करुणा और अर्थ-बोध से आता है।
8. **रहनी ही सबसे बड़ी वाणी है।**
   मनुष्य का आचरण उसकी सबसे प्रभावशाली शिक्षा और सबसे सशक्त व्याख्या होता है।
9. **तारतम्य-केंद्रित समन्वय और संवाद भी आध्यात्मिक साधना हैं।**
   संगठन, सहयोग, पत्राचार, संवाद और निरंतर संपर्क—ये केवल प्रबंधन नहीं, जागरण के माध्यम हैं।
10. **उतावलापन भ्रम पैदा करता है; स्थिरता सत्य को प्रकट करती है।**
    प्रतिक्रिया देना आसान है, पर ठहरकर सही कदम उठाना ही परिपक्व चेतना का चिन्ह है।
11. **अपमान नहीं, प्रतिक्रिया व्यक्ति को छोटा बनाती है।**
    गरिमा, संयम और विवेक कठिन परिस्थितियों में भी आत्मबल को सुरक्षित रखते हैं।
12. **सच्चा नेतृत्व सेवाभाव से प्रकट होता है।**
    जो लोगों के बीच उतरकर उनकी भाषा, पीड़ा और परिस्थिति को समझता है, वही उन्हें सत्य की ओर ले जा सकता है।
13. **व्यक्ति नहीं, अज्ञान वास्तविक विरोधी है।**
    लक्ष्य लोगों को हराना नहीं, दृष्टि को बदलना होना चाहिए।

14. **सत्य का प्रभाव संख्या से नहीं, शुद्धता से फैलता है।**
    एक जागृत चेतना भी हजारों जीवनों में परिवर्तन की चिंगारी जगा सकती है।
15. **वास्तविक "क़यामत" भीतर घटती है।**
    जब अहंकार टूटता है, झूठी पहचान गिरती है और अंतःकरण शुद्ध होता है—तभी वास्तविक परिवर्तन प्रारंभ होता है।
16. **हुक्म का अर्थ निष्क्रियता नहीं, अहंकार-रहित कर्म है।**
    कर्म पूरी निष्ठा से करो, पर कर्तापन की गाँठ मत बाँधो।
17. **जिस भाषा में सामने वाला समझ सके, उसी में सत्य कहो।**
    यह केवल संवाद-कौशल नहीं, करुणा और विवेक की परिपक्वता है।
18. **सत्य-कार्य का सबसे बड़ा ईंधन प्रेम है।**
    सूखी बहस मन को थका सकती है, पर प्रेम और इश्क़ से भरी वाणी हृदय को बदल देती है।

8.14 1857 ई. का संग्राम और बीतक प्रेरित परंपरा की निरंतरता

छत्रसाल के अंतर्धान के लगभग एक शताब्दी बाद भी यह चेतना समाप्त नहीं हुई। 1829 ई. के बाद राजा परीक्षित और रानी गजमाला के काल में अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष हेतु रानी गजमाला बुंदेलखंड में भ्रमण कर जन-जागृति और स्त्रियों को युद्ध के लिए प्रेरित करती रहीं।

इसी परंपरा का उत्कर्ष झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के जीवन में दिखाई देता है। सांप्रदायिक परंपरा के अनुसार वे परमहंस महाराज श्री जुगलदास जी की शिष्या थीं। 1857 के संग्राम में प्रणामी युवाओं और व्यापारियों ने रानी को गुप्त सूचना, रसद और आर्थिक सहायता दी। स्त्री-शक्ति, साहस, न्याय, धार्मिक समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना — ये प्रणामी दर्शन के मूल मूल्य—रानी लक्ष्मीबाई के जीवन और नीतियों में स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित होते हैं। इस खंड की ऐतिहासिक उपयोगिता यह है कि वह यह दिखाता है: परंपराएँ केवल कर्मकांड नहीं होतीं; वे सामाजिक ऊर्जा भी होती हैं—जो समय-समय पर राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन को भीतर से शक्ति देती हैं।

8.15 बीतक—अतीत का साक्ष्य, वर्तमान का विवेक, भविष्य की दिशा

महामति प्राणनाथ की वाणी का अनुकरण महात्मा गांधी के पूर्वजों द्वारा किया जाता रहा, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव गांधी जी के चिंतन में दिखाई देता है। उनकी आत्मकथा में इसके संकेत स्पष्ट हैं। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि महामति प्राणनाथ गांधी-दर्शन के एक मौन प्रेरणास्रोत रहे। यदि श्रीमद् तारतम वाणी को महासागर कहा जाए, तो गांधी दर्शन उसकी एक तरंग के समान प्रतीत होता है।

यह भी एक अर्थपूर्ण संयोग है कि दोनों का जन्म गुजरात की उसी धरती पर हुआ, जहाँ तारतम्य-केंद्रित समन्वय, व्यापार और संवाद की परंपरा ऐतिहासिक रूप से सुदृढ़ रही है। यह तुलना बीतक के तारतम्य-केंद्रित "समन्वय-धर्म" को आधुनिक भारत के नैतिक विमर्श से जोड़ती है—कि धर्म का सार सत्ता नहीं, सत्य और करुणा है।

इस प्रकार बीतक केवल एक आध्यात्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि भारतीय इतिहास की एक उपेक्षित, किंतु अत्यंत महत्त्वपूर्ण धारा का सशक्त साक्ष्य है। इसमें आध्यात्मिक जागरण, सामाजिक चेतना, राजनीतिक संघर्ष और राष्ट्रीय स्वतंत्रता की वह निरंतर कड़ी दिखाई देती है, जो अब तक इतिहास के मुख्य पृष्ठों से प्रायः ओझल रही।

आज, जब भारतीय इतिहास को बहुस्तरीय, संवादात्मक और समावेशी दृष्टि से समझने की आवश्यकता पहले से अधिक अनुभव की जा रही है, तब बीतक-साहित्य हमें तीन स्तरों पर सहायता करता है—

1. घटनाओं और यात्राओं का वैकल्पिक, लोक-संसिक्त वृत्तांत द्वारा इतिहास समझने में;

2. धर्म, समाज, सत्ता और नैतिक संघर्ष के बीच संबंधों की समझ द्वारा इतिहास-बोध ग्रहण करने में; और

3. करुणा, तारतम्य-केंद्रित समन्वय और संवाद के आधार पर मानव-कल्याण की प्रेरणा की महिमा द्वारा दिशा-बोध।

यही कारण है कि बीतक-साहित्य अतीत को नए प्रकाश में देखने, वर्तमान को गहराई से समझने और भविष्य के लिए मानवीय, करुणामय तथा तारतम्य-केंद्रित समन्वयकारी दिशा ग्रहण करने का अवसर प्रदान करता है—और भारतीय इतिहास के भीतर दबे हुए एक जीवंत, लोक-केन्द्रित और नैतिक इतिहास को पुनः उद्घाटित करता है।

राजनीतिक एवं सामाजिक दर्शन, वर्तमान की चुनौती

8.16 बीतक-आधारित महामति प्राणनाथ का राजनीतिक दर्शन: (शिक्षा–प्रशासन–नीति–राष्ट्रीय चेतना–राजधर्म)

बीतक के प्रसंगों में महामति प्राणनाथ का राजनीतिक चिंतन किसी राजसिंहासन-केन्द्रित सत्ता-शास्त्र नहीं, बल्कि चेतना-केन्द्रित "राजधर्म" के रूप में उभरता है—जहाँ शासन का उद्देश्य केवल कर-वसूली या विजय नहीं, बल्कि प्रजाजन की रक्षा, न्याय, नैतिकता, स्वावलंबन, और सर्वधर्म-समभाव की स्थापना है। उनका राजनीतिक दर्शन तीन स्तरों पर चलता है: (1) व्यक्ति-निर्माण (शिक्षा/संस्कार), (2) प्रशासन-शुद्धि

(पवित्र साधन/सत्य/जनहित), और (3) राष्ट्रीय एकता (संगठन/स्वाभिमान/धर्म-रक्षा)। बीतक में वर्णित उनकी जीवन-यात्रा इन तीनों स्तरों को क्रमशः स्पष्ट करती है—जामनगर के प्रशासन से लेकर जागरण-यात्रा और छत्रसाल के साथ आदर्श राज्य-स्थापना तक।

8.17 शिक्षा और प्रारंभिक संस्कार: शासन की जड़ "व्यक्ति" में

मेहराज ठाकुर का जन्म एक प्रशासनिक परिवार में हुआ—वे जाम राज्य के प्रधान अमात्य श्री केशव ठाकुर के पुत्र थे। किंतु बीतक के संकेत बताते हैं कि उनकी "राजनीति" की पहली पाठशाला दरबार नहीं, सत्गुरु देवचंद्र (निजानंद स्वामी) का व्यावहारिक शिक्षालय था। किशोरावस्था में ही देवचंद्रजी के सान्निध्य ने उनके भीतर यह बोध स्थिर कर दिया कि राज्य चलाने की क्षमता केवल बुद्धि से नहीं, चरित्र से आती है; और चरित्र केवल नियमों से नहीं, अंतःकरण की जागृति से बनता है। इसलिए महामति के राजनीतिक दर्शन की आधार-रेखा बनती है—शिक्षा = जीवनोपयोगी विवेक, जो व्यक्ति को लोभ, भय और अहंकार के ऊपर उठाकर सेवा-भाव में स्थिर करती है। उनके लिए "राजधर्म" का पहला अर्थ है: शासक और प्रशासक का शिक्षित होना—ग्रंथ-बोध, न्याय-बोध और लोक-हित का बोध।

8.18 पवित्र साधन, सत्य और साहस: प्रशासन की रीढ़ "नीति" है

विवाहोपरांत जब वे जामनगर राज्य के प्रधान अमात्य बने, तब उनके राजनीतिक विचारों को व्यवहार में उतरने का अवसर मिला। महामति के अनुसार राज्य की आर्थिक उन्नति आवश्यक है, किंतु धनार्जन के साधनों की पवित्रता अनिवार्य है। यह उनके राजनीतिक दर्शन का केंद्रीय सिद्धांत है: अशुद्ध साधनों से बना समृद्ध राजकोष भी अंततः राज्य को भीतर से खोखला कर देता है। इसलिए उन्होंने प्रशासन में सुधार किए, जन-सहभागिता को बढ़ावा दिया और राजकोष के दुरुपयोग पर रोक लगाई।

यहाँ बीतक की राजनैतिक दृष्टि बहुत स्पष्ट है—जब सुधार शुरू होते हैं, तब पुराने सामंत और अधिकारी असंतुष्ट होकर झूठे आरोप लगाते हैं। महामति का उत्तर "राजनीतिक जोड़-तोड़" नहीं, बल्कि प्रमाण, धैर्य और सत्य-स्थैर्य है। वे सत्य के पक्ष में खड़े रहे और अंततः सत्य की विजय हुई। इससे राजनीतिक दर्शन का दूसरा सूत्र निकलता है: राजनीति में सत्य "भाव" नहीं, "प्रणाली" है—जिसका प्रमाण-आधारित संचालन होना चाहिए।

इसी अवधि में अनैतिक शक्तियों के प्रभाव से राज्य की सुरक्षा कमजोर हुई और गुजरात के सूबेदार कुतुब खां के आक्रमण के समय राजा ने आत्मसमर्पण कर लिया। बाद में जामराजा ने अपनी भूल स्वीकार की और महामति के साहस, सत्यनिष्ठा और मूल्यपरक राजनीति की महत्ता को माना। बीतक के इस संकेत में तीसरा सूत्र छिपा है: भय का शासन राज्य को गिराता है; मूल्य का शासन राज्य को उठाता है।

8.19 जनकल्याण और नैतिक साहस: "महल" नहीं, "प्रजा" राज्य का केन्द्र

महामति प्राणनाथ के अनुसार आदर्श राज्य वही है जहाँ महलों से अधिक महत्व प्रजाजन की सुख-सुविधाओं से जुड़े निर्माण कार्यों को दिया जाए। जूनागढ़ में नए नगर के निर्माण और बसाहट में उनका सक्रिय योगदान इसी जन-केन्द्रित दृष्टि का उदाहरण है—राजा की प्रतिष्ठा से अधिक महत्वपूर्ण जनता की व्यवस्था।

फिर बीतक में सत्ता-षड्यंत्र का प्रसंग आता है: जाम राजा के निधन के बाद कलाजी नामक प्रशासक ने षड्यंत्र से तमाची को पदच्युत कर राजगद्दी हथिया ली। यह "राजनीतिक यथार्थ" है—और महामति का उत्तर भी उतना ही स्पष्ट है। उन्होंने अकेले आवाज उठाई, जबकि व्यक्तिगत लाभ और पद पर बने रहने का अवसर उनके सामने था। वे अन्याय से समझौता नहीं करते; तमाची को सुरक्षित रखते हैं, सैनिक सहयोग जुटाते हैं, निर्णायक संघर्ष करते हैं और तमाची को पुनः राजगद्दी दिलाते हैं।

यहाँ उनका राजनीतिक दर्शन चौथा सूत्र देता है: सत्ता की वैधता शक्ति से नहीं, न्याय से आती है; और न्याय की रक्षा के लिए नैतिक साहस आवश्यक है। राजकोष की हानि और व्यक्तिगत कष्टों के बावजूद उनका स्थैर्य बताता है कि महामति की राजनीति "लाभ" नहीं, "धर्म" पर आधारित है—और धर्म का अर्थ है अन्याय का प्रतिकार।

8.20 राष्ट्रीय एकता और सर्वधर्म समभाव: राजनीति का लक्ष्य "समाज-संगठन"

बीतक यह भी दिखाता है कि महामति के सामने केवल राज्य-सुधार का प्रश्न नहीं था; उनके समय में धर्म-आधारित विभाजन और केंद्रीय सत्ता का दमन—दोनों समाज को तोड़ रहे थे। धार्मिक क्षेत्र में बिहारीजी का निरंतर विद्वेष, षड्यंत्र, और समुद्र-यात्रा के पश्चात गिरफ्तारी के आदेश—इन सबके बीच महामति का सिद्धांत उभरता है: सदैव सतर्क रहना और विवेकपूर्ण निर्णय लेना। यह राजनीति का पाँचवाँ सूत्र है—धर्म-कार्य में भी रणनीतिक विवेक आवश्यक है, क्योंकि समाज का हित भावुकता से नहीं, दूरदृष्टि से सुरक्षित होता है।

जाम राज्य छोड़कर उन्होंने जागरण यात्रा आरंभ की, जिसके दो उद्देश्य थे: राजाओं को आदर्श राज्य की अवधारणा देना, और धार्मिक विभेद मिटाकर सच्चे, सनातन धर्म की स्थापना करना। उन्होंने संवाद किया—पत्र लिखे, सभाएँ कीं, संदेश गाए—पर जब सत्ता ने संवाद के मार्ग बंद कर दिए, तब महाभारत की परंपरा का स्मरण करते हुए वे विद्रोह की दिशा में बढ़े और शक्तिशाली नेतृत्व की खोज में निकल पड़े। यहाँ बीतक का राजनीतिक यथार्थ-ज्ञान सामने आता है: पहले संवाद, पर संवाद बंद हो जाए तो अन्याय के विरुद्ध संगठित प्रतिकार। यह उनकी राजनीति को "नैतिक आदर्शवाद" से आगे ले जाकर "धर्म-आधारित व्यावहारिक राष्ट्रनीति" बनाता है। उन्होंने अनेक राजाओं और नवाबों से मिलकर राष्ट्रीय एकता, स्वाभिमान और सर्वधर्म समभाव का संदेश दिया—भले ही अधिकतर शासक भय और स्वार्थ में निष्क्रिय रहे।

8.21 मणि–कांचन संयोग: नीति को शक्ति मिले तो इतिहास बदलता है

औरंगाबाद में महामति प्राणनाथ की भेंट वीर एवं धर्मनिष्ठ राजपूत सेनानी राजा भावसिंह हाड़ा से हुई। भावसिंह ने महामति के राष्ट्रीय एकता और सर्वधर्म समभाव के संदेश को आत्मसात् कर उसे साकार करने का संकल्प लिया। उनके माध्यम से पंडितों और मुल्लवियों तक यह विचार पहुँचा और अल्प समय में सकारात्मक वातावरण बना, किंतु भावसिंह की अकाल मृत्यु के साथ ही पुनः अविहित शक्तियाँ सक्रिय हो गईं।

महामति का विश्वास था—"अथ राजा तथ प्रजा"—इसीलिए वे निरंतर राजाओं में संस्कार-बीज बोते रहे, भले ही तत्काल परिणाम न दिखें। रामनगर में वे एक कमजोर राजा से मिले, जहाँ पूर्ण समर्थन न मिल सका; पर देवकरण बुंदेला के माध्यम से उनकी भेंट वीर केशरी छत्रसाल से हुई। यह मिलन मणि–कांचन संयोग सिद्ध हुआ—छत्रसाल को सच्चे सद्गुरु मिले और महामति को धर्म व राष्ट्ररक्षा हेतु वीर योद्धा।

8.22 राजधर्म की परिभाषा: कठोरता बाहर, करुणा भीतर

महामति के अनुसार राजा में साहस, निडरता, संयम, दृढ़ निश्चय, चरित्रबल, न्यायप्रियता, नीति-कौशल और आध्यात्मिक संवेदनशीलता का समन्वय होना चाहिए। बाहर से कठोर और भीतर से करुणामय—यह आदर्श राजपुरुष का लक्षण है। छत्रसाल में कुछ गुण जन्मजात थे; शेष महामति के सान्निध्य में विकसित हुए। महामति का मत था कि राजा की संवेदनशीलता सत्संग और सृजनात्मकता से विकसित होती है—इसलिए आदर्श दरबार में विद्वान, कवि, कलाकार, संगीतकार और साधक सम्मानित हों; कला का उद्देश्य विलास नहीं, आध्यात्मिक उन्नति हो। यह राजनीति का छठा सूत्र है: संस्कृति-नीति राज्य का "मन" है; बिना संस्कृति राज्य केवल शक्ति-तंत्र रह जाता है।

उन्होंने सत्ता के विकेंद्रीकरण को बढ़ावा दिया और स्थानीय परगनों के माध्यम से न्याय-समाधान की व्यवस्था कराई। छत्रसाल का राज्य उनके मार्गदर्शन में निरंतर प्रगति करता रहा—आर्थिक समृद्धि, संगठित सेना, नैतिक शासन—और बुंदेलखंड को एकजुट कर शाही सत्ता के विरुद्ध बावन युद्धों में विजय प्राप्त हुई। इस पूरे प्रसंग में बीतक की राजनीतिक स्थापना यही है: राजधर्म का अंतिम उद्देश्य प्रजापालन, सुरक्षित सीमाएँ, प्रशिक्षित सेना, और न्याय-आधारित लोक-कल्याण है—पर उसकी आत्मा करुणा और धर्म-समभाव है।

8.23 महामति का "राजनीतिक दर्शन" — धर्म का सार्वजनिक रूप

इन बीतक-आधारित प्रसंगों से महामति प्राणनाथ का राजनीतिक दर्शन एक समग्र सूत्र में संकेंद्रित होता है: राज्य केवल सत्ता नहीं—धर्म का सार्वजनिक रूप है। शिक्षा से चरित्र बनता है; चरित्र से प्रशासन शुद्ध होता है; शुद्ध प्रशासन से जनकल्याण संभव होता है; और जनकल्याण तभी टिकता है जब राष्ट्र-संगठन, स्वाभिमान और सर्वधर्म-

समभाव साथ चलें। यही कारण है कि महामति की राजनीति न तो केवल राज-नीति है, न केवल आध्यात्मिक उपदेश—वह नीति, धर्म, करुणा और साहस का समन्वित "राजधर्म-दर्शन" है, जो बीतक में जीवन-प्रसंगों के माध्यम से एक जीवित आदर्श की तरह सामने आता है।

8.24 बीतक-आधारित महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन: (समता, करुणा, नारी-सम्मान, शिक्षा और आचरण-शुद्धि)

बीतक के प्रसंगों में महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन किसी एक वर्ग, जाति या संप्रदाय के हित-संरक्षण का विधान नहीं, बल्कि मानव-एकता का जीवन-विधान है। उनका आग्रह यह है कि समाज की पहचान जन्म, वेश, पद से नहीं, बल्कि अंतःकरण, आचरण और करुणा से हो। इसी कारण वे उस समय की रूढ़ सामाजिक संरचनाओं—विशेषतः वर्ण-जाति आधारित भेदभाव, स्त्री-विरोध, निर्धनता-तिरस्कार और बाह्य आडंबर—के विरुद्ध एक क्रांतिकारी, परंतु करुणामय दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। बीतक बताता है कि उनका संघर्ष किसी समुदाय से नहीं, अन्याय और असत्य से है; और उनका समाधान किसी नए पाखंड में नहीं, बल्कि शिक्षा, विवेक, समभाव और सेवा में है।

8.25 जातिवाद-विरोधी सामाजिक दृष्टि: मनुस्मृति से परे मानवता का धर्म

महामति प्राणनाथ मानते थे कि तत्कालीन समाज में मनुस्मृति की वर्ण-आधारित व्यवस्था मानवता और धर्म के वास्तविक मर्म को व्यक्त नहीं कर पाती। इसलिए वे अपने जीवन और आचरण में मनुस्मृति की कई रूढ़ स्थापनाओं से स्पष्ट रूप से बाहर दिखाई देते हैं। वर्ण, जाति, स्त्री और निर्धनता के आधार पर भेदभाव को वे सिरे से नकारते हैं। उनका मूल सिद्धांत है—ईश्वर की दृष्टि "जाति" पर नहीं, "चित्त" पर है; और समाज की कसौटी "वेश" नहीं, "विवेक" है।

इन्हीं मुद्दों पर सद्गुरु देवचंद्र के पुत्र बिहारी जी से उनके मतभेद गहरे होते हैं। बिहारी जी जातिवाद, बाह्य आडंबर, गादी-प्रधानता और स्त्रियों व दलितों के प्रति संकीर्ण दृष्टि के समर्थक थे, जबकि महामति गुण, चरित्र और हृदय की पवित्रता को ही धर्म का आधार मानते थे। बीतक की धारा में यह मतभेद केवल वैचारिक नहीं, बल्कि मानवता बनाम अहंकार का संघर्ष बन जाता है। बिहारी जी द्वारा बहिष्कृत दलित, निर्धन और विधवाओं को महामति ने स्नेहपूर्वक अपनाया और बिना जाति-भेद के दीक्षा व धर्मोपदेश दिया।

महामति प्राणनाथ ने छुआछूत और जातिगत श्रेष्ठता पर तीखा प्रहार करते हुए स्पष्ट कहा कि ईश्वर हृदय की निर्मलता देखता है, न कि बाहरी भेष। उनके अनुसार चंडाल का शुद्ध हृदय ब्राह्मण के बाह्य आडंबर से कहीं श्रेष्ठ हो सकता है। इस प्रकार उनका

सामाजिक दर्शन जाति-वर्ण आधारित समाज के विरुद्ध, समानता, करुणा और आंतरिक पवित्रता पर आधारित एक क्रांतिकारी मानवीय दृष्टि प्रस्तुत करता है।

8.26 अंतःकरण की पहचान: समाज को "बाहर" नहीं, "भीतर" से देखने की शिक्षा

महामति प्राणनाथ दो टूक कहते हैं कि जाति और वेशभूषा बाहरी प्रपंच हैं; वास्तविक पहचान अंतःकरण की पवित्रता से होती है। वे समाज को भीतर से देखने और मनुष्य को उसके गुण, चरित्र और भाव से पहचानने का आग्रह करते हैं—यही सच्चा धर्म है। बीतक में उनका समाज-dर्शन एक तरह से मानवीय मनोविज्ञान भी है: आदमी अक्सर "दिखने" से प्रभावित होता है, "होने" से नहीं; इसलिए समाज में अन्याय टिकता है। महामति इसी भ्रम का शोधन करते हैं—वे कहते हैं कि धर्म की पहली कसौटी हृदय का रूपांतरण है, और समाज की पहली जिम्मेदारी कमज़ोर के प्रति संवेदना।

8.27 नारी-सम्मान और गृहस्थ-धर्म: त्याग नहीं, जिम्मेदारी में साधना

स्त्रियों के प्रति महामति का दृष्टिकोण अत्यंत उच्च और क्रांतिकारी है। उनके अनुसार पहले शक्ति है, फिर सृजन; पहले जननी, फिर उसकी रचना। वे स्त्री को मुक्ति और भक्ति का अनिवार्य माध्यम मानते हैं और स्त्री-विरोधी मान्यताओं का स्पष्ट खंडन करते हुए अपने धर्म को 'पतिव्रत धर्म' कहते हैं। स्वयं को वे सखी-भाव में 'इंद्रावती' रूप से देखते हैं और अपनी रचनाओं में इस भाव को अभिव्यक्त करते हैं। इस दृष्टि में स्त्री "कमतर" नहीं, बल्कि सृजन और साधना की आधार-शक्ति है—और समाज की उन्नति का पैमाना भी यही है कि वह स्त्री को सम्मान देता है या अपमान।

महामति ने गृहस्थ जीवन को त्याग नहीं, बल्कि साधना का माध्यम बताया। उन्होंने विवाह किया, परिवार के साथ जीवन जिया और सुंदरसाथ समुदाय को भी पारिवारिक दायित्वों सहित धर्ममार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। मोहन मुकुंद (अहदी मुकुंद) जैसे उदाहरणों द्वारा उन्होंने सिखाया कि कर्तव्यों से पलायन कर नहीं, बल्कि उन्हें निभाते हुए ही सत्य और भक्ति की प्राप्ति होती है। यह समाज-दर्शन का बड़ा निष्कर्ष है: परिवार समाज की पहली पाठशाला है—यहीं से संयम, सेवा और सद्भाव सीखकर व्यक्ति व्यापक समाज में उतरता है।

झूठे ब्राह्मणवाद और बाह्य आडंबर पर प्रहार करते हुए महामति ने स्पष्ट किया कि शास्त्र-ज्ञान का सार आत्मबोध है; बिना आत्मदर्शन के अनेक भेष व्यर्थ हैं। इस प्रकार उनका सामाजिक दर्शन समानता, नारी-सम्मान, गृहस्थ साधना और अंतःकरण की सत्यता पर आधारित एक व्यावहारिक और अनुकरणीय मार्ग प्रस्तुत करता है।

8.28 आचरण-प्रधान धर्म: सामाजिक सुधार का सबसे ठोस आधार

महामति प्राणनाथ दिखावटी धर्म और बाह्य आडंबर की तीखी आलोचना करते हैं। उनके अनुसार धर्म का मूल आधार आचरण की शुद्धता है, जिसका जाति, वर्ण या

लिंग से कोई संबंध नहीं। कोई दलित या स्त्री अपने शुद्ध आचरण, जप और तप से परमपद को प्राप्त कर सकती है, जबकि अशुद्ध अंतःकरण वाला ब्राह्मण बाह्य जप-तप के बावजूद ईश्वर से दूर ही रहता है।

वे मानते हैं कि मनुस्मृति अपने समय, भूगोल और सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बनी थी, पर बदलते काल में उसकी अनेक स्थापनाएं अप्रासंगिक हो चुकी हैं। इसलिए जाति, वर्ण, अस्पृश्यता और ऊँच-नीच जैसी व्यवस्थाओं का उन्होंने निर्भीक अतिक्रमण किया। उनके अनुसार परमात्मा ने मनुष्य को एक रूप में रचा है; विभाजन मनुष्य की बनाई हुई संरचनाएं हैं, जिनसे ऊपर उठना ही सच्चा धर्म है।

महामति का दृष्टिकोण तारतम्य-केंद्रित समन्वयवादी और विवेकपूर्ण है। वे जहां हिंदू समाज की सामाजिक विकृतियों पर प्रश्न उठाते हैं, वहीं मुस्लिम समाज में व्याप्त पाखंड और अपरिवर्तनीय रूढ़ियों की भी आलोचना करते हैं। उनके अनुसार सरीयत भी अपने समय की भौगोलिक और सामाजिक आवश्यकताओं से बनी थी; जब परिस्थितियां बदल चुकी हैं, तो नियमों पर पुनर्विचार होना चाहिए। इस प्रकार महामति प्राणनाथ का संदेश एक जीवंत, आचरण-आधारित और समयानुकूल धर्म की स्थापना करता है, जो मानवता, विवेक और सत्य पर आधारित है।

8.29 शिक्षा और ग्रंथ-बोध: समाज को पंडित-मुल्ला-आधारित निर्भरता से मुक्त करना

महामति प्राणनाथ के समय हिंदू और मुस्लिम—दोनों समाजों में शिक्षा का अभाव था। अपने-अपने धर्मग्रंथों को स्वयं पढ़कर समझने के बजाय लोग पंडितों और मुल्ला–मौलवियों की व्याख्याओं पर निर्भर थे, जिससे अर्थ का अनर्थ फैलता गया और धार्मिक कटुता बढ़ी। महामति चेताते हैं कि जब समाज शिक्षित होगा और लोग ग्रंथों को स्वयं समझेंगे, तब इन स्वार्थी धार्मिक अगुओं का प्रभाव समाप्त हो जाएगा—जैसे घायल साँप पर चींटियाँ टूट पड़ती हैं।

महामति के अनुसार मुस्लिम समाज में बढ़ती हिंसा का कारण कुरान की गलत व्याख्याएँ हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि हज़रत मोहम्मद ने मेहरबानों को मुसलमान कहा था; जो दूसरों को दुःख देता है, वह मुसलमान नहीं हो सकता। सच्चा मुसलमान वही है जो कुरान का अर्थ समझकर कलमा कहे, जिसका दिल और आत्मा पवित्र हो, जो दयालु, प्रेमपूर्ण और अहिंसक हो।

इस प्रकार महामति प्राणनाथ शिक्षा, आत्मबोध और करुणा को धर्म की कसौटी मानते हुए दिखावटी बंदगी और दूसरों को 'काफ़िर' ठहराने की प्रवृत्ति का खंडन करते हैं। उनका संदेश दोनों समुदायों के लिए स्पष्ट है—ग्रंथों का सच्चा अर्थ समझो, हृदय को शुद्ध करो और मानवता को ही धर्म का मूल मानो।

8.30 करुणा-प्रधान धर्म: समाज-सुधार का अंतःस्रोत

महामति प्राणनाथ के अनुसार दिखावटी धर्म समाज को भटकाता है, क्योंकि धर्म का वास्तविक उद्देश्य बाह्य आडंबर नहीं, बल्कि अंतःकरण का रूपांतरण है। संसार की परंपराएँ, रीति-रिवाज और जीवन-शैलियाँ भिन्न हो सकती हैं, पर करुणा, प्रेम और आनंद सार्वभौमिक हैं। धर्म का मार्ग करुणा से आरंभ होकर प्रेम के माध्यम से आनंद तक पहुँचता है—और यह मार्ग समस्त मानवता के लिए समान है।

वे बाह्य कर्मकांड की बजाय हृदय की निरंतर शुद्धि पर बल देते हैं। बार-बार स्नान, जप या दिखावटी भक्ति से ईश्वर नहीं मिलता; जब तक मन और दिल निर्मल न हों, साधना निष्फल रहती है। महामति का संदेश स्पष्ट है—धर्म बाहर नहीं, भीतर घटित होता है। जब अंतःकरण शुद्ध होता है, तब ईश्वर सदा निकट रहता है; अन्यथा बाह्य आडंबर केवल भ्रम ही उत्पन्न करता है।

8.31 नैतिकता, स्वावलंबन और सामाजिक अनुशासन: आदर्श समाज की कार्य-योजना

महामति प्राणनाथ आचरण की शुद्धता को समाज-निर्माण का मूल आधार मानते हैं। उनके अनुसार अच्छे आचरण से ही स्वस्थ समाज बनता है और आचरण की गिरावट से अपराध जन्म लेते हैं। इसलिए वे नशा, चोरी, व्यभिचार और मांस-भक्षण को निषिद्ध बताते हैं। स्वामी लालदास जी के अनुसार, महामति जब भी किसी को सुंदरसाथ समूह में दीक्षा देते, तो इन दुर्व्यसनों से दूर रहने का दृढ़ वचन अवश्य लेते थे।

परिवार, स्वावलंबन और कर्तव्यपालन उनके सामाजिक दर्शन के प्रमुख स्तंभ हैं। स्वयं पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए उन्होंने आजीवन संवाद, संयम और सेवा को अपनाया। पन्ना में उन्होंने लघु उद्योग स्थापित कर रोजगार और कृषि को बढ़ावा दिया तथा राजाश्रय होते हुए भी प्रारंभ में किसी सहायता की अपेक्षा नहीं की। बाद में समुदाय की सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली देखकर राजा छत्रसाल ने उनके भरण-पोषण हेतु जागीर प्रदान की। यहाँ बीतक का समाज-दर्शन केवल उपदेश नहीं रहता—वह रोज़गार, श्रम, सहयोग और स्वावलंबन की ठोस सामाजिक-व्यवस्था बन जाता है।

8.32 सम्मान, करुणा और समतामूलक समाज: “इल्म” का सामाजिक निष्कर्ष

महामति प्राणनाथ के अनुसार आदर्श समाज वही है जहाँ माता-पिता, गुरुजन, स्त्रियों, विद्वानों और कलाकारों का यथोचित सम्मान हो तथा दीन-दुखियों के प्रति शासक और समाज दोनों संवेदनशील रहें। पन्ना में छत्रसाल के सहयोग से उन्होंने अपने सामाजिक सिद्धांतों का व्यावहारिक क्रियान्वयन किया। छत्रसाल ने कवियों और गुणीजन का सम्मान करते हुए विनय, न्याय और करुणा को राज्यनीति का आधार बनाया।

महामति का विश्वास है कि जिन समाजों और राज्यों में उनके "इल्म" का अनुसरण होगा, वहाँ दुःख टिक नहीं सकता। वे कहते हैं कि जब राजा-प्रजा, स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध—सभी सदाचार, स्मरण और कर्तव्यनिष्ठा में रत होते हैं, तब आध्यात्मिक रहस्य स्वतः प्रकट होते हैं। उनके अनुसार अध्यात्म का पुष्प तभी खिलता है जब समाज नैतिक, स्वाभिमानी और स्वावलंबी हो।

वे जाति-विहीन, भेदभाव-रहित समतामूलक समाज के पक्षधर हैं, जहाँ कार्य-विभाजन योग्यता और प्रतिभा के आधार पर हो, न कि जन्म पर। आर्थिक उन्नति के लिए साधनों की पवित्रता, सामाजिक समरसता के लिए प्रेम और करुणा, तथा विषमता के निवारण के लिए दान और जनहित आवश्यक हैं। राजा को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि राज्य में कोई भूखा या वंचित न रहे। परिवारों में प्रेम से सामंजस्य बने, समाज में सद्भाव बढ़े और मनुष्यता प्रतिष्ठित हो—इसी से संगठित समाज और उन्नत राष्ट्र का निर्माण होता है।

महामति प्राणनाथ का सामाजिक दर्शन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थों के संतुलन पर आधारित है। संसार में रहते हुए, परिवार और समाज के सहयोग से, कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए ही आत्मा का परमात्मा से मिलन संभव है—यही उनका अंतिम संदेश है।

8.33 आदर्श समाज का संक्षिप्त रूपक

महामति एक ऐसे समाज की परिकल्पना करते हैं जहाँ जाति-भेद का स्थान न हो, साधनों की पवित्रता से धनार्जन हो और प्रत्येक नागरिक—शिक्षक, व्यापारी, सैनिक, अधिकारी और राजा—अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करे। चोरी, अनाचार और राष्ट्रद्रोह दंडनीय हों तथा राजा स्वयं चरित्रवान, न्यायप्रिय और निडर हो। उनके अनुसार कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों से ही उन्नत समाज और महान राष्ट्र का निर्माण संभव है।

8.34 वर्तमान की चुनौती और बीतक की मार्गदर्शक दृष्टि

आज की दुनिया का सबसे गहरा संकट यह नहीं है कि धर्म अनेक हैं, बल्कि यह है कि धर्म का मर्म—करुणा, प्रेम और न्याय—अक्सर भाषा, पहचान और सत्ता की दीवारों में कैद हो जाता है। महामति प्राणनाथ का संदेश हमें स्मरण कराता है कि 'वेद–कतेब' का समन्वय केवल ग्रंथों का मेल नहीं, बल्कि मनुष्यता का अनुशासन है—ऐसा अनुशासन जिसमें सत्य के लिए साहस भी चाहिए और दूसरे के लिए दया भी। इसी संदर्भ में बीतक-ग्रंथों के अनेक प्रसंग मार्गदर्शक बनकर सामने आते हैं। वे दिखाते हैं कि उदारता कोई अमूर्त विचार नहीं, बल्कि आचरण है; और समभाव केवल उपदेश नहीं, बल्कि संगठन, सेवा, स्वावलंबन और निर्भीक संवाद का जीवन-व्रत है।

आज की वास्तविक चुनौती किसी परंपरा की आलोचना करना नहीं, बल्कि यह समझना है कि सर्वधर्म-समभाव जैसे उदात्त विचार हमारे समय में क्यों सिमटते जा रहे हैं—जब धर्म संवाद की भाषा छोड़कर पहचान की राजनीति बन जाता है, जब ग्रंथ केवल

पूज्य रह जाते हैं पर पढ़े नहीं जाते, और जब प्रश्न पूछने के स्थान पर केवल पक्ष चुने जाते हैं। बीतक के प्रसंग हमें सिखाते हैं कि कठिन परिस्थितियों में भी संवाद, करुणा और सत्य के प्रति निष्ठा कैसे बनाए रखी जा सकती है। विशेष रूप से युवा पीढ़ी के लिए यह सीख निर्णायक है: धर्म का उद्देश्य विभाजन नहीं, मानव-एकता है; परंपरा का अर्थ जड़ता नहीं, जागरूकता है; और अध्ययन का लक्ष्य केवल जानकारी नहीं, बल्कि विवेक और उत्तरदायित्व का विकास है। जो बीतक जैसे ग्रंथों को इस दृष्टि से पढ़ते हैं, वही सर्वधर्म-समभाव को वर्तमान में सशक्त रखते हुए भविष्य तक जीवित ले जा सकते हैं।

8.35 मनुष्य-रहनी का तारतम्य: बीतक और तारतम ज्ञान के आलोक में

मनुष्य का जीवन किसी एक ही आयाम में सीमित नहीं होता। बीतक के प्रसंगों में हम देखते हैं कि महामति प्राणनाथ, स्वामी लालदास, नवरंग स्वामी, महाराजा छत्रसाल तथा अन्य पात्र अपनी-अपनी स्थिति, भूमिका और सेवा के माध्यम से भिन्न-भिन्न "रहनियों" को जीते हुए दिखाई देते हैं। कहीं गहन आध्यात्मिक साधना है, कहीं सामाजिक संगठन, कहीं नैतिक साहस, कहीं मानसिक संतुलन, और कहीं देहिक अनुशासन।

बीतक यह स्पष्ट करती है कि ये रहनियाँ परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि जीवन के एक ही सत्य के विविध आयाम हैं। तारतम ज्ञान के प्रकाश में साधक का लक्ष्य किसी एक रहनी में अटक जाना नहीं, बल्कि सभी रहनियों का तारतम्य (क्रमबद्ध संतुलन) और समन्वय प्राप्त करना है।

जब व्यक्ति आत्मा, मन, बुद्धि, समाज और शरीर—इन सभी स्तरों पर जागरूक होकर जीने लगता है, तब उसकी रहनी "खंडित" नहीं रहती, बल्कि धीरे-धीरे समग्र रहनी का रूप ले लेती है। यही समग्र रहनी अंततः परमधाम की स्मृति, प्रेम और सेवा में प्रतिष्ठित होती है।

तारतम वाणी और बीतक का संयुक्त संदेश यह है कि केवल ध्यान से समाज नहीं सँवरता, केवल सेवा से आत्म-स्मृति नहीं टिकती, केवल नैतिकता से मन शुद्ध नहीं होता, और केवल देहिक अनुशासन से चेतना जाग्रत नहीं होती। जब ये सभी रहनियाँ एक-दूसरे को पोषित करती हुई चलती हैं, तब मनुष्य की चेतना "खंडों" से निकलकर समग्रता में प्रवेश करती है। यही समग्र रहनी निजानंद दर्शन का जीवनमूल्य है—जहाँ साधक अपने कर्तव्यों से भागता नहीं, बल्कि उन्हें परमधाम की स्मृति और करुणा की दृष्टि से जीता है। यही तारतम ज्ञान का व्यावहारिक फल है—कि जीवन स्वयं साधना बन जाए, और साधना समाज के लिए शीतलता का स्रोत बन जाए।

मनुष्य-रहनी के विविध प्रकार (तारतम्य के क्रम में)

रहनी के प्रकार	केंद्र	उद्देश्य	आधार
आध्यात्मिक	आत्मा	परम-स्मृति में स्थिरता	ज्ञान–प्रेम

रहनी के प्रकार	केंद्र	उद्देश्य	आधार
सामाजिक	समाज	समरसता, सेवा और सहयोग	एकत्व-दृष्टि
नैतिक	बुद्धि	सत्य-पालन और धर्म-आचरण	विवेक
मानसिक	मन	स्थिरता, शांति और संतुलन	ध्यान–स्मृति
देहिक	शरीर	स्वास्थ्य, अनुशासन और साधना-योग्यता	संयम
समग्र	चेतना	सभी रहनियों का तारतम्य/समन्वय	परमधाम का प्रकाश

श्री देवचंद्र जी महाराज: जीवन की प्रमुख घटनाएँ

क्रम	घटना	वर्ष (ई.)
1	जन्म — उमरकोट (सिंध)	1581
2	आत्म-परमात्मा खोज की जिज्ञासा	1593
3	खोज हेतु गृह त्याग	1598
4	अतंग योग साधना सिद्धि	1598
5	भुज में गुरु हरिदास की संगत	1600
6	ब्रज लीला दर्शन	1607
7	जामनगर आगमन	1608
8	तारतम ज्ञान प्राप्ति (श्री राज प्रगटन) – श्री निजानंद संप्रदाय प्रगटन	1621
9	निधन — जामनगर	1678

महाराजा छत्रसाल: जीवन की प्रमुख घटनाएँ

क्रम	घटना	वर्ष (ई.)
1	जन्म	1649
2	देवकुँवरी से विवाह	1665
3	मुग़ल सेना में भर्ती	1666
4	शिवाजी से भेंट	1668
5	दक्षिण से बुंदेलखंड वापसी	1670
6	विजयाभिनंद निष्कलंक का स्वप्न-संकेत	1671

क्रम	घटना	वर्ष (ई.)
7	औरंगजेब से युद्ध	1672–1683
8	पन्ना विजय (गोंड राजा से)	1675
9	अंतर्धान	1731

महामति प्राणनाथ जी: जीवन की प्रमुख घटनाएँ

क्रम	घटना	वर्ष (ई.)
1	जन्म — जामनगर	1618
2	सतगुरु देवचंद्र जी से मिलन	1630
3	फूलबाई से विवाह (1)	1640
4	अरब यात्रा (सतगुरु आज्ञा से)	1646–1650
5	अरब से वापसी	1652
6	सतगुरु विरह — जामनगर	1652–1656
7	धरोल में वजारत (राजा कलाजी)	1654–1656
8	जामनगर कारागृह, दिव्य दर्शन, तारतम वाणी अवतरण प्रारंभ	1659
9	तेजकुँवरी से विवाह (2)	1660
10	जूनागढ़ जागनी लीला	1661–1662
11	जामनगर दीवान सेवा	1663
12	अहमदाबाद कुतुबखान की जेल	1664–1665
13	दीव बंदर जागनी लीला	1666–1667
14	ठठा नगर जागनी लीला	1667
15	मस्कत / अब्बास बंदर जागनी लीला	1668–1671
16	सूरत से जागनी लीला का सुव्यवस्थित प्रारंभ	1672
17	सिद्धपुर–पाटन व मेरता जागनी लीला	1677
18	हरिद्वार कुंभ — बुध निष्कलंक अवतार एवं श्री निजानंद संप्रदाय नाम जाहिर	1678

क्रम	घटना	वर्ष (ई.)
19	औरंगजेब को जगाने का प्रयास (12 सुन्दरसाथ बलिदान)	1680
20	रामनगर जागनी लीला	1681
21	छत्रसाल से महामति का मिलन	1682
22	पन्ना पधारावनी (चोपड़ा हवेली)	1683
23	छत्रसाल जी का राजतिलक	1684
24	चित्रकूट रामनवमी लीला	1687
25	श्री गुम्मटजी मंदिर निर्माण — पन्ना	1689
26	तारतम वाणी (मारफत सागर) अंतिम अवतरण	1692
27	तेजकुँवरी (बाईजू राज) अंतर्धान	1692
28	महामति प्राणनाथ अंतर्धान, कुलजम संकलन	1695

बीतक परंपरा, प्रमुख घटनाएँ एवं विकास

क्रम	घटना	वर्ष (ई.)
	श्रीजी के धामगमन के पश्चात् श्री कुलजम स्वरूप का गादीभिषेक	1694
1	श्री बीतक साहेब रचना (ब्रह्ममुनि लालदास जी)	1695
2	परमधाम की बड़ी वृत्त (लालदास जी)	1695
3	वृत्तांत मुक्तावली (व्रजभूषण जी)	1699
4	नवरंग वाणी रचना काल	1672–1718
5	नवरंग स्वामी धाम गमन — उदयपुर	1718
6	श्री कुलजम स्वरूप की पुरानी हस्तलिखित प्रतियों का संरक्षण: प्राणनाथ मिशन, दिल्ली, श्री प्राणनाथ ज्ञान पीठ, सरसावा, श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी, एवं श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना में सुरक्षित है।	1694–वर्तमान
7	"श्री कृष्ण प्रणामी" नाम प्रचलन शुरू - 1900-1935 के पूर्व तक मूल पहचान मात्र। आध्यात्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से "निजानन्द सम्प्रदाय" नाम यथावत।	1935 करीब

क्रम	घटना	वर्ष (ई.)
8	किरंतन ग्रंथ- प्रथम मुद्रित प्रकाशन, बाद में प्रकाश हिन्दी, कलश हिन्दी एवं किरंतन प्रकाशन, सात ग्रंथों का प्रकाशन (कानपुर 1963)	1945, 1962
9	सम्पूर्ण श्री कुलजम स्वरूप (चौदह ग्रंथ) प्रथम प्रिंटिंग, प्रयागराज, मिड्ढा प्रेस	1965
10	श्री कुलजम स्वरूप का विविध नामों से प्रचलन: "तारतम सागर", "प्राणनाथ वचनामृत" आदि	1971–1972
11	श्री कुलजम स्वरूप एवं श्री बीतक साहेब प्रिंटिंग, टीका, विविध संस्थाओं द्वारा	1965–वर्तमान

भाग –2

उद्देश्य:

प्रस्तुत भाग–2 में निजानन्द सम्प्रदाय की दार्शनिक मान्यताओं का संक्षिप्त विवेचन किया गया है, जिसके अध्ययन के उपरान्त विद्यार्थी परमात्मा, आत्मा, माया, परमधाम, मोक्ष और मुक्ति की अवधारणाओं को समग्र दृष्टि से समझ सकेंगे। साथ ही, वे क्षर–अक्षर–अक्षरातीत तत्त्व, चेतना की विभिन्न अवस्थाएँ, आध्यात्मिक यात्रा के रहस्य तथा मोक्ष प्राप्ति के साधनों का दार्शनिक एवं अनुभवात्मक स्वरूप भी समझ पाएँगे।

अध्याय

अध्याय: 9 परमात्मा की अवधारणा: क्षर, अक्षर, अक्षरातीत स्वलीलाद्वैत

अध्याय: 10 आत्मा की अवधारणा: चेतना की त्रिस्तरीय संरचना और गतियाँ

अध्याय: 11 माया की अवधारणा: आध्यात्मिक यात्रा का केन्द्रीय रहस्य

अध्याय: 12 परमधाम की अवधारणा

अध्याय: 13 मोक्ष और मुक्ति का समग्र स्वरूप और मोक्ष प्राप्ति के साधन

लेखक

डॉ. जयप्रकाश शाक्य

सेवानिवृत्त प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र

दर्शनशास्त्र अध्ययनशाला एवं शोध केन्द्र

महाराजा छत्रसाल बुन्देलखण्ड वि.वि. छतरपुर (म.प्र.)

एवं

***नरेंद्र आर. पटेल**, एम.एस., सी.एस.पी. (सेवानिवृत्त)*

लेखक, संपादक, सहयोगी शोधकर्ता एवं स्क्रिप्ट लेखक, श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया प्रोडक्शन्स, पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना एवं निजानंद फाउंडेशन इंक., यू.एस.ए. सदस्य, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय सुरक्षा समन्वयक, रटगर्स विश्वविद्यालय, यू.एस.ए.

भाग 2: अध्याय - 9

परमात्मा की अवधारणा: आत्मा, रस, प्रकृति, अक्षरातीत परब्रह्म, परमधाम और स्वलीलाद्वैत के आलोक में

सारांश

तारतम वाणी में परमात्मा की अवधारणा भारतीय दार्शनिक परंपराओं के भीतर एक विशिष्ट, बहुस्तरीय और अनुभवप्रधान तत्त्वदृष्टि प्रस्तुत करती है। यहाँ परमात्मा को केवल निर्गुण ब्रह्म, सगुण ईश्वर, अवतार या उपास्य सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि अक्षरातीत परब्रह्म, महामति के धनी, समस्त आत्माओं के प्रियतम प्राणनाथ, रसराज, परमधाम के धनी और स्वलीलाद्वैत सत्ता के रूप में समझाया गया है। इस दृष्टि में आत्मा दृष्टा है, रसस्वरूपा है, और रस का आस्वादन उसका सहज धर्म है; प्रकृति दृश्य, सामग्री-प्रदायिनी और लीला-उपयोगी सत्ता है; तथा परमात्मा आत्मा और प्रकृति के संयोग, रस-संचार और अनुभव-तारतम्य के मूल नियंता हैं।

यह शोध-पत्र तारतम वाणी के आलोक में अक्षरातीत–अक्षर–क्षर की संरचना, ऐश्वर्यलीला और प्रेमलीला का भेद, आत्मा–परमात्मा–प्रकृति का त्रि-संबंध, परमधाम की तात्त्विक स्थिति, स्वलीलाद्वैत का रहस्य, रासलीला का तारतम्य, रूप और स्वरूप का विवेक, तथा जागनी-दृष्टि में परमात्मा की अंतिम पहचान को व्यवस्थित रूप से स्पष्ट करता है। विशेष रूप से यह दिखाया गया है कि परमधाम कोई मानसिक अवस्था नहीं, बल्कि

एक वास्तविक, चिन्मय, प्रेममय, नित्य, कालातीत और स्वयंप्रकाशित धाम है, जहाँ परब्रह्म, परात्माएँ और वहाँ का कण-कण अनंत प्रेमानन्द-लीला में स्थित हैं।

यह अध्ययन निष्कर्ष रूप में स्थापित करता है कि तारतम वाणी में परमात्मा का बोध केवल विचार का विषय नहीं, बल्कि पहचान, प्रेम, रस और जागृति की समेकित प्रक्रिया है। इस दृष्टि में परमात्मा को जानना पर्याप्त नहीं; उन्हें प्राणनाथ, धनी और अक्षरातीत प्रियतम के रूप में पहचानना, उनके प्रेम-विलास का अनुभव करना, और जागनी के माध्यम से निजधाम-स्मृति की ओर लौटना ही इस दर्शन का मूल लक्ष्य है।

मुख्य शब्द: तारतम वाणी, परमात्मा, अक्षरातीत, परमधाम, स्वलीलाद्वैत, रस, रास, प्राणनाथ, महामति, जागनी, रूप–स्वरूप, प्रेमलीला

9.1 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में परमात्मा का प्रश्न अत्यंत केंद्रीय, बहुपरतीय और सतत जीवित प्रश्न रहा है। वेद, उपनिषद, गीता, भागवत, सांख्य, वेदांत, भक्ति और सूफी परंपराएँ परम सत्य के अनेक आयामों की व्याख्या करती हैं। कहीं परमात्मा निर्गुण ब्रह्म हैं, कहीं ईश्वर, कहीं पुरुष, कहीं प्रेमस्वरूप, कहीं परम पुरुषोत्तम। किंतु तारतम वाणी इस बहस में एक ऐसा विशिष्ट योगदान देती है, जो दार्शनिकता को अनुभव, चेतना, प्रेम, रस, धाम और लीला के साथ एकात्म कर देता है। यहाँ परमात्मा कोई अमूर्त दार्शनिक निष्कर्ष नहीं, बल्कि एक जीवंत, अनुभवगम्य, संबंधमय और प्रेमप्रधान सत्ता हैं।

तारतम वाणी की विशेषता यह है कि वह परमात्मा की चर्चा को केवल ईश्वरवाद या ब्रह्मवाद तक सीमित नहीं रखती, बल्कि आत्मा, प्रकृति, रस, रूप, स्वरूप, धाम, लीला, स्मृति और जागृति के एक व्यापक तंत्र में रखती है। इसी कारण यहाँ परमात्मा को "प्रियतम धनी", "प्राणनाथ", "श्री राज", "अक्षरातीत परब्रह्म" और "महामति के धनी" जैसे संबोधनों में समझाया जाता है। यह संप्रदायिक भाषिक विविधता मात्र नहीं, बल्कि तात्त्विक स्तरों का संकेत है।

तारतम वाणी का अध्ययन विशेष रूप से इस कारण भी आवश्यक है कि यह केवल परमात्मा को नहीं, बल्कि आत्मा के स्वरूप को भी नए ढंग से सामने लाती है। आत्मा यहाँ केवल ज्ञाता या भोक्ता नहीं, बल्कि दृष्टा, रसस्वरूपा, प्रेम की प्यास और परमधाम-स्मृति की वाहिका है। संसार उसके लिए केवल बंधन नहीं, बल्कि कभी-कभी एक दुखांत नाटक भी है, जिसका रस वह ग्रहण करती है। यह दृष्टि भारतीय दर्शन की सामान्य शब्दावली से आगे जाती है और अस्तित्व को "अनुभव-तारतम्य" के रूप में पढ़ती है।

इसीलिए यह शोध-पत्र पाठ्यक्रमीय प्रयोजन से तारतम वाणी में परमात्मा की अवधारणा को व्यवस्थित, स्पष्ट और अकादमिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है, ताकि विद्यार्थी और शोधार्थी इस दर्शन की आंतरिक संरचना, तात्त्विक गहराई और अनुभवात्मक विशिष्टता को सम्यक् रूप से समझ सकें।

9.2 शोध-समस्या, उद्देश्य एवं पद्धति

तारतम वाणी में परमात्मा की अवधारणा को लेकर मुख्य समस्या यह है कि इसे प्रायः या तो सामान्य भक्ति-परंपरा के भीतर रखकर पढ़ा जाता है, या केवल उपनिषदिक ब्रह्मवाद के विस्तार के रूप में देखा जाता है। परिणामतः अक्षरातीत, अक्षर और क्षर के सूक्ष्म भेद; परमधाम की वास्तविकता; रास और जागनी के तारतम्य; तथा "प्राणनाथ" और "महामति" जैसे संबोधनों की तात्त्विक गहराई धुंधली हो जाती है।

दूसरी समस्या यह है कि तारतम वाणी में प्रयुक्त प्रेम, रस, धाम, लीला, अंग–अंगी, पिया–प्रियतम, स्वलीलाद्वैत और रसराज जैसे पदों को अनेक बार मात्र काव्यात्मक, भक्तिपरक या प्रतीकात्मक मान लिया जाता है, जबकि वे यहाँ गहन ontological और metaphysical अर्थ रखते हैं। तीसरी समस्या यह है कि गोलोक, वैकुण्ठ, अक्षरधाम, परमधाम, योगमाया, कालमाया, रूप और स्वरूप जैसे पदों का परस्पर तारतम्य समझे बिना परमात्मा की सही स्थिति स्पष्ट नहीं होती। चौथी समस्या यह है कि परमात्मा, आत्मा और प्रकृति के संबंध को सांख्य, वेदांत और भागवत के संकेतों के साथ किस तरह जोड़ना है, यह अकादमिक स्तर पर प्रायः अस्पष्ट रह जाता है।

अतः इस शोध का मूल प्रश्न है: तारतम वाणी में परमात्मा की अवधारणा किस प्रकार आत्मा, प्रकृति, रस, परमधाम और स्वलीलाद्वैत के समन्वय में समझी जाए, ताकि उसकी तात्त्विक विशिष्टता और आंतरिक सुसंगति स्पष्ट हो सके?

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं—

1. तारतम वाणी में परमात्मा की अवधारणा को दार्शनिक, आध्यात्मिक और अनुभवात्मक स्तरों पर स्पष्ट करना।
2. आत्मा–प्रकृति–परमात्मा के त्रि-तत्त्व संबंध को व्यवस्थित रूप से समझना।
3. अक्षरातीत, अक्षर और क्षर के भेद तथा उनके परस्पर तारतम्य को स्पष्ट करना।
4. स्वलीलाद्वैत, प्रेम-विलास, रास, जागनी और परमधाम की अवधारणाओं का पाठ्यक्रमीय प्रस्तुतीकरण करना।
5. रूप और स्वरूप के भेद को तारतम वाणी की दृष्टि से विश्लेषित करना।
6. वेद, भागवत, गीता और सांख्य के संकेतों को तारतम दृष्टि में किस प्रकार नया अर्थ मिलता है, इसे स्पष्ट करना।

7. यह दिखाना कि तारतम वाणी में परमात्मा का अंतिम बोध "प्राणनाथ" और "अक्षरातीत प्रियतम" के रूप में कैसे परिपक्व होता है।

यह अध्ययन मूलतः व्याख्यात्मक, तुलनात्मक, तात्त्विक और पाठ-विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। प्रयुक्त सामग्री में तारतम वाणी-संबंधी व्याख्यात्मक नोट्स, परमात्मा, परमधाम, प्रेम-विलास, रास, आत्मा, प्रकृति, रूप–स्वरूप, और स्वलीलाद्वैत पर केंद्रित पारंपरिक विवेचन शामिल हैं। विश्लेषण में अवधारणात्मक पुनर्निर्माण, पारिभाषिक स्पष्टता, तात्त्विक भेद-स्थापन और अंतःसंबंधों की संरचनात्मक प्रस्तुति की पद्धति अपनाई गई है।

यह शोध परंपरा की भाषा को बनाए रखते हुए उसे अकादमिक विन्यास में रूपांतरित करता है। इसका प्रयोजन न केवल परंपरागत मान्यताओं को दुहराना है, न केवल आधुनिक विश्लेषण लागू करना; बल्कि दोनों के बीच एक ऐसी संगति स्थापित करना है जिसमें परंपरा की अंतरानुभूति और आलोचनात्मक स्पष्टता साथ चलें।

9.3 आत्मा: दृष्टा, रसस्वरूपा और आस्वादिनी सत्ता

तारतम दृष्टि में आत्मा का मूल स्वरूप "दृष्टा" का है। वह दिखाने वाली नहीं, बल्कि देखने वाली है। उसे दृश्य का अनुभव करना अच्छा लगता है। वह रसस्वरूपा है, और रस का निरंतर आस्वादन करते रहना ही उसका सहज धर्म है। संसार के दुखमय खेल में भी वह केवल पीड़िता नहीं है; एक स्तर पर वह "दुखांत नाटक" का रस ग्रहण करती है। इसीलिए कहा गया कि आत्मा दुखलीला में भी रस ग्रहण करती है। यह दृष्टि साधारण दुःखवाद से भिन्न है; यहाँ अनुभव की संरचना को रस की श्रेणी में समझा गया है।

आत्मा की यह प्यास केवल सुख की प्यास नहीं, बल्कि उस रस की प्यास है जो परमात्मा के प्रेमस्वरूप से जुड़ी है। यदि परमात्मा रस की पूर्णता हैं, तो आत्मा उस रस की चाह और प्यास है। यदि परमात्मा प्रेम हैं, तो आत्मा उसकी माधुरी है। यदि परमात्मा रसराज हैं, तो आत्मा रसास्वादन की लालसा है। अतः आत्मा और परमात्मा का संबंध केवल ज्ञाता–ज्ञेय या उपासक–उपास्य का नहीं, बल्कि प्यासे और जल, आशिक और मासूक, पत्नी और पति, सोहागिन और धनी का है। यही कारण है कि तारतम वाणी आत्मा को रसस्वरूपा कहती है और उसके चरम लक्ष्य को प्रेम की तृप्ति में देखती है।

9.4 प्रकृति: रस-प्रयोजन की सामग्री और द्विविध स्वरूप

तारतम वाणी आत्मा और परमात्मा के साथ प्रकृति को भी एक मूल तत्त्व के रूप में ग्रहण करती है। आत्मा को अनुभव चाहिए, दृश्य चाहिए, खेल चाहिए, रस चाहिए। इन सभी के लिए सामग्री जुटाना प्रकृति का काम है। इस प्रकार प्रकृति केवल बाहरी पदार्थ-संसार नहीं,

बल्कि अनुभव-उपकरण भी है। यही कारण है कि आत्मा, प्रकृति और परमात्मा तीनों नित्य तत्त्व माने गए हैं, यद्यपि उनकी सत्ता और कार्य-भूमिका परस्पर भिन्न है।

प्रकृति के दो रूप विशेष रूप से बताए गए हैं। पहली जड़ प्रकृति, जो पंचभौतिक, त्रिगुणात्मक, परिवर्तनशील और दुःख-सुखमय संसार के रूप में अनुभव होती है। दूसरी दिव्य प्रकृति, जो परमेश्वर के धामों से संबंधित है और आत्माओं को दिव्य लीला-दर्शन कराती है। दिव्य प्रकृति की भी दो बड़ी अभिव्यक्तियाँ हैं—ऐश्वर्यलीला और प्रेमलीला। ऐश्वर्यलीला अक्षर ब्रह्म से संबंधित है, जबकि प्रेमलीला अक्षरातीत परब्रह्म के परमधाम से संबंधित है। यहीं से अक्षर–अक्षरातीत भेद की बड़ी रेखा स्पष्ट होने लगती है।

9.5 परमात्मा: दिखाने वाले, जोड़ने वाले और रस-संचारक

तारतम दृष्टि में परमात्मा वही हैं जो आत्मा को दृश्य दिखाते हैं। आत्मा स्वयं दिखाने वाली नहीं है; वह देखने वाली है। प्रश्न "आत्मा को यह संसार दिखा कौन रहा है?" का उत्तर है—परमात्मा। लेकिन परमात्मा का कार्य केवल दृश्य दिखाना नहीं है। वे प्रकृति और आत्मा के बीच संयोग स्थापित करते हैं, उचित अवसर पर उचित दृश्य प्रदान करते हैं, और अनुभवों के माध्यम से आत्मा में रस का संचार करते हैं।

यहीं तारतम वाणी सांख्य दर्शन का अतिक्रमण करती है। सांख्य ने पुरुष और प्रकृति के संयोग की बात अवश्य कही, पर तारतम दृष्टि पूछती है—यह संयोग स्वयं कैसे घटेगा? क्यों होगा? कब होगा? किस प्रयोजन से होगा? इस प्रश्न का उत्तर है—परमात्मा। वही सर्वसमर्थ, सर्वशक्तिमान सत्ता है जो प्रकृति के खेल और आत्मा की प्यास को जोड़ती है। वही दृश्य की व्यवस्था और दर्शक की स्थिति दोनों जानती है। इस अर्थ में परमात्मा केवल ईश्वर नहीं, बल्कि लीला-नियोजक भी हैं।

परमात्मा को आत्माओं में रस का संचार करना प्रिय है। जैसे पिता को अपने पुत्र को नए-नए खेल, उत्सव, मेले, बाजार, विवाह, जुलूस या प्रदर्शनियाँ दिखाना अच्छा लगता है, वैसे ही परमात्मा को आत्माओं को नाना खेल दिखाकर रस संचार करते रहना अच्छा लगता है।"धनी को और कछु काम नहीं, देवें रूहें लाड़ लज्जत" इसी भाव का संक्षिप्त सूत्र है। यहाँ परमात्मा का स्वभाव नियामक से अधिक रसराज और प्रियतम का है।

9.6 अक्षरातीत परब्रह्म: महामति के धनी और समस्त आत्माओं के प्राणनाथ

तारतम वाणी की सर्वोच्च तात्त्विक स्थिति अक्षरातीत परब्रह्म की है। यही परमात्मा की अंतिम पहचान है। वे अक्षर से परे, क्षर से परे, सामान्य साकार–निराकार द्वंद्व से परे, "निराकार के पार के भी पार" शुद्ध साकार, चिद्घन, प्रेममय, स्वयंप्रकाशित परब्रह्म हैं। वे परमधाम के धनी हैं, श्री राज हैं, और श्री श्यामाजी सहित युगल स्वरूप में नित्य प्रेमानन्द लीला में स्थित हैं। यही "महामति के धनी" हैं।

"प्राणनाथ" शब्द का तात्त्विक अर्थ यहाँ विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। यह केवल किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का नाम नहीं, बल्कि उस अक्षरातीत परब्रह्म का द्योतक है जो समस्त आत्माओं के मूल धनी और प्रियतम हैं। विभिन्न जीव अपने भाव, दृष्टि और तैयारी के अनुसार उन्हें संत, देव, अवतार, कृष्ण, महापुरुष या परब्रह्म के रूप में अनुभव कर सकते हैं; परंतु इन सबके पीछे एक ही अंतिम सत्य है। इसलिए नाम और संबोधनों के ऊपर तात्त्विक पहचान को रखना आवश्यक है।"महामति प्राणनाथ" तभी ठीक समझा जा सकता है जब रूप, स्वरूप, अवतरण, आवेश और धनी के भेद स्पष्ट हों।

9.7 स्वलीलाद्वैत: परमात्मा भोक्ता भी, भोग्य भी

तारतम वाणी की एक केंद्रीय और अत्यंत विशिष्ट अवधारणा है—स्वलीलाद्वैत। इसका अर्थ यह नहीं कि संसार जैसा दिख रहा है वैसा ही प्रत्यक्ष परमधाम की नित्य लीला है। बल्कि इसका आशय यह है कि परमात्मा स्वयं अपने प्रेमरस का आस्वादन अनेक लीला-रूपों में करते हैं। वे एक ओर भोक्ता हैं, दूसरी ओर भोग्य रूपों में भी वही प्रकट हैं। वे देखने वाले भी हैं और अनुभव के विषय भी। यही कारण है कि परमात्मा की लीला शुष्क अद्वैत नहीं, बल्कि रस-आधारित अद्वैत है।

आत्मा लहर की तरह परमात्मा-सागर से अलग होकर फिर उसी में अंतरंगता पाती है। दुखलीला समाप्त होने पर आत्मा की कहानी समाप्त नहीं होती; वह आनंद के अन्य आयामों में प्रवेश करती है। इस प्रकार स्वलीलाद्वैत आत्मा और परमात्मा के पूर्ण विलय की स्थिर समाप्ति नहीं, बल्कि प्रेम-आधारित अंतहीन सहभागिता है। यही "लीलावत् तु कैवल्यम्" की तारतम्यपूर्ण व्याख्या है।

9.8 स्वलीलाद्वैत और परमात्मा का प्रेम-विलास

तारतम वाणी की दृष्टि में परमधाम केवल परमात्मा का निवास-स्थान नहीं, बल्कि समूचे अस्तित्व का वह अखण्ड प्रेम-क्षेत्र है, जहाँ अनन्त रूपों का प्रेम-विलास निरंतर प्रवाहित रहता है। वहाँ प्रत्येक सत्ता, प्रत्येक रूप, प्रत्येक चेतना और प्रत्येक अनुभव एक-दूसरे से इस प्रकार जुड़े हैं कि सबकी तृप्ति सबके द्वारा होती है। यह स्थिति एक बड़े परिवार के सामूहिक सुख जैसी है, जहाँ सबकी प्रसन्नता सबकी वजह बनती है; या किसी राग जैसी है, जहाँ अनेक स्वर मिलकर ही उसकी पूर्ण मधुरता और गहराई प्रकट करते हैं। इसी अर्थ में रस अकेले नहीं प्रकट होता—अनेकता के सामंजस्य से एकता का रस उत्पन्न होता है। यही स्वलीलाद्वैत का हृदय है।

परमधाम की लीलाओं में अन्तरंग और बहिरंग भेद भी है। जहाँ गुण अपने अपरम्पार, एकरस, पूर्ण, अखण्ड और स्वाभाविक स्वरूप में विद्यमान हैं, वहाँ अन्तरंग लीला है। जहाँ वही गुण विस्तार, विविधता और न्यूनाधिक भेद में प्रकट होते हैं, वहाँ

बहिरंग लीला है। परमधाम की समस्त लीलाएँ मूलतः वहीं होती हैं, पर उनकी झलक अक्षरधाम में पड़ती है, क्योंकि अक्षर का निर्मल चैतन्य चित्-दर्पणवत् कार्य करता है। इस प्रकार प्रेम का केंद्र परमधाम है, पर उसका प्रतिबिंब अक्षर में भी दिखाई देता है।

प्रज्ञान के संदर्भ में भी यही बात स्पष्ट की गई है। परमात्मा एक ओर भोक्ता हैं, दूसरी ओर भोग्य चिद्बिन्दु-केन्द्रों में भी उपस्थित हैं। परमधाम में प्रेम-माधुरी की अनंत संभावनाएँ स्वतः स्फुरित होती रहती हैं। प्रत्येक रूप अपने अनुभव को व्यापकतर अनुभवों से जोड़ना चाहता है, जिससे सामंजस्य और विविधता का एक साथ अनुभव होता रहे। इसी परस्पर गुँथे हुए प्रेमपूर्ण ज्ञान-तारतम्य को स्वलीलाद्वैत कहा गया है। मानो एक बिंदु प्रवाहमान होकर रेखा बन गया हो, और उसकी प्रत्येक तरंग, प्रत्येक कंपन, प्रत्येक बिंब चिद्घन परब्रह्म में एक साथ प्रतिबिंबित हो रहा हो।

यहाँ "सत्–चिद्–आनन्द" की तारतम्य-रचना भी केंद्रीय है। चिद् परमात्मा का मूल, अन्तर्यामी, प्रज्ञानस्वरूप और एकरस तत्त्व है; सत् और आनन्द उसके अंगरूप विस्तार हैं। नवरंग चिद्विलास में कहा गया है कि चिद्घन परमात्मा सदा अन्तर्यामी हैं, जबकि सत् और आनन्द में उनका चिद्-रस समान रूप से सर्वत्र प्रकट नहीं होता। इसलिए जहाँ धाम में एकरसता है, वहीं सृष्टि में परिवर्तन और काल का अनुभव होता है। इस प्रकार परमधाम केवल आनन्द का धाम नहीं, बल्कि प्रज्ञान, प्रेम, नूर, शोभा और रस का एकरस अखण्ड क्षेत्र है।

9.9 परमधाम: प्रेमलीला का अखण्ड क्षेत्र

परमधाम तारतम वाणी में कोई मानसिक कल्पना या ध्यानगत अमूर्तन नहीं, बल्कि एक वास्तविक, चिन्मय, प्रेममय, स्वयंप्रकाशित, नित्य और कालातीत धाम है। वहाँ परब्रह्म, परात्माएँ और वहाँ का कण-कण अनंत प्रेमानन्द-लीला में संलग्न है। वहाँ का लक्ष्य केवल "अनंत" या "शब्दातीत" कह देने से स्पष्ट नहीं होता; इसलिए परमधाम की शोभा और लीला आत्मा के ध्यान को आकार देती है। जैसे बिना मंज़िल के यात्रा का गाढ़ापन नहीं बनता, वैसे ही बिना स्पष्ट ध्येय के ध्यान भी परिपक्व नहीं होता। निराकार में शांति का अनुभव हो सकता है, पर आनन्दयुक्त परमशांति, तारतम दृष्टि के अनुसार, नित्य चिद्घन साकार धाम में ही अपने पूर्ण स्वरूप में समझी जाती है।

परमधाम परब्रह्म धनी के अद्वैत नूर-तत्त्व से निर्मित है, अतः वह जड़-प्रकृति जैसा प्राकृतिक नहीं, बल्कि अप्राकृतिक, शुद्ध दिव्य और पूर्ण चेतन स्वरूप है। ग्रंथों में उसका वर्णन पर्वत, समुद्र, नीलगगन, हीरे-जवाहरात, पशु-पक्षी, वन-उपवन, महल और अट्टालिकाओं के रूपकों से किया गया है; किन्तु इन्हें संसार के भौतिक पदार्थों की तरह नहीं समझना चाहिए। ये अनुभव-सन्निकटन के उपकरण हैं, वास्तविकता नहीं। परमधाम

मन की कल्पना, चित्त की धारणा और बुद्धि के ज्ञान से नहीं जाना जा सकता; वह तारतम ज्ञान, अनन्य श्रद्धा और प्रेमलक्षणा भक्ति से ही प्रकट होता है। यही ब्रह्मप्रियाओं का नित्य सुहाग है।

परमधाम काल से परे है। इसीलिए वहाँ पुनः जागने पर परात्माओं को ऐसा प्रतीत होगा मानो ब्रजलीला, रासलीला और वर्तमान जागनी-लीला तीनों को एक ही क्षण—"सोई घड़ी, सोई पल"—में देख लिया गया हो। वहाँ समय बहता नहीं; वहाँ सब कुछ नित्य वर्तमान है। यह कालातीतता परमधाम की एक केंद्रीय विशेषता है।

परमधाम की शोभा को समझाने के लिए आठ दिव्य गुणों की दृष्टि भी उपयोगी है: भूमा अर्थात् प्रचुर परम आनंद; अभावरहितत्व; पूर्णता; संघर्षविहीनता; एकरूपता; अनिच्छित पूर्ण-संतृप्ति; नदी–सागर जैसा स्थायी संबंध; और असीमित अनघिरापन। इन गुणों के माध्यम से आत्मा के ध्यान को उस नित्य धाम की ओर उन्मुख किया जाता है, जहाँ सब कुछ सत्, चिद्घन, प्रेममय और अखण्ड है।

परिक्रमा ग्रंथ में वर्णित पच्चीस पक्ष—रंगमहल, हौज कौसर, कुंज-निकुंज, माणिक पहाड़, नहरें, चौगान, बड़ा वन, पुखराज पहाड़, श्री यमुना, आठ सागर और आठ जिमी—सिर्फ भौगोलिक विवरण नहीं, बल्कि प्रेमानन्द के बहुआयामी क्रीड़ा-स्थल हैं। इनका उद्देश्य आत्मा के भीतर परमधाम का एक जीवंत, सुंदर, प्रेममय और चितवन-योग्य प्रतिबिंब स्थापित करना है, ताकि वह निजघर के सुखों की लज्जत पा सके और कर्म-बंधन से अखण्ड मुक्ति की दिशा में अग्रसर हो।

9.10 अक्षर ब्रह्म और ऐश्वर्यलीला

अक्षर ब्रह्म तारतम तंत्र में परम सत्य नहीं, बल्कि परम सत्य की एक कला हैं। उनमें सत् की प्रधानता है। वे वैभव, महिमा, पद-भेद, क्रमबद्धता, सत्ता-विस्तार और ऐश्वर्य-रस के केंद्र हैं। यहाँ छोटे-बड़े, गुरु-शिष्य, लोक-विस्तार, विभूति और अनुशासन का भाव प्रकट होता है। आत्माएँ वहाँ दिव्य अनुभव अवश्य करती हैं, पर प्रेमलीला का माधुर्य वहाँ पूर्णत्व से प्रकट नहीं होता। इसलिए अक्षर की लीला को बालवत् कहा गया है और अक्षरातीत की प्रेमलीला को किशोर माधुर्य से संबद्ध किया गया है।

अक्षरातीत के चिद्-तेज का पूर्ण अनुभव अक्षर को नहीं है। वह उनकी लीला को दर्पणवत् झलकाता है। इसीलिए कहा जाता है कि अक्षर दर्शन करने जाते हैं। अक्षर और उनकी आत्माएँ उस झलकते तेज का आस्वादन करती हैं, पर अभी तक माधुर्य-प्रेम की पूर्ण लीला में प्रवेश नहीं कर पातीं। इसी लालसा के कारण उनमें अक्षरातीत की ओर आकृष्ट होने की वृत्ति बनी रहती है।

9.11 क्षर जगत और दुखलीला

क्षर जगत माया, त्रिगुण, नश्वरता, काल, भूल और प्रतिकृति का क्षेत्र है। यही दुःखलीला का मंच है। यहाँ आत्मा दुखांत नाटक भी देखती है और उससे एक प्रकार का रस भी ग्रहण करती है। यही कारण है कि तारतम वाणी संसार को केवल त्याज्य नहीं कहती; वह इसे असल की पहचान का साधन भी मानती है। जैसे मछली जल-वियोग में जल का महत्त्व समझती है, जैसे रेगिस्तान में जल का मूल्य अधिक अनुभव होता है, वैसे ही झूठी नकल देखे बिना असल का ठिकाना नहीं मिलता। संसार नकल है; परमधाम असल है।

यहाँ सावधानी यह है कि इस नकल-लोक में फँसना नहीं है। रूप को स्वरूप समझ लेना ही बंधन है। दुख से बचने का मार्ग बाहरी पलायन नहीं, बल्कि चाह का संयम, दूसरे को दुख न देना, और दुःख को अंतिम सत्य न मानना है। जागनी का प्रारंभ इसी विवेक से होता है।

9.12 रूप और स्वरूप का रहस्य

तारतम ज्ञान रूप और स्वरूप के भेद को केंद्रीय स्थान देता है। रूप बाह्य अभिव्यक्ति, अवतार, व्यक्ति, प्रतीक, विधि, साधन या माध्यम है। स्वरूप आंतरिक सत्य, चेतना, धनी, दिव्यता और अंतिम पहचान है। रूप मार्ग है; स्वरूप गंतव्य। साधना का उद्देश्य रूप में अटकना नहीं, बल्कि रूप से होकर स्वरूप तक पहुँचना है। इंद्रधनुष रूप है, सूर्य स्वरूप-स्रोत। जब पूजा रूप को स्वरूप तक ले जाती है, तब वह साधना है; जब रूप ही अंतिम बन जाता है, तब कर्मकांड बनता है।

श्रीकृष्ण के विभिन्न रूप—अवतारी, बालमुकुंद, व्रजलीलामय, गोलोकी—इन सबके पीछे खेलने वाला अंतिम स्वरूप अक्षरातीत श्री राज हैं। गोलोक अंतिम धाम नहीं; परमधाम उससे भी परे है। यही तारतम्य तारतम ज्ञान के बिना नहीं खुलता।

9.13 रासलीला, भागवत और तारतम्य

वेदों का सार भागवत, भागवत का सार रास, रास का सार तारतम ज्ञान और तारतम का सार जागनी-विचार—यह सूत्र तारतम दृष्टि के केंद्र में है। श्रीमद्भागवत श्रीकृष्ण-प्रेम को "बड़ी मत" कहता है। महामति प्राणनाथ इस भाव को स्वीकार करते हैं, पर उसे आगे ले जाकर यह स्पष्ट करते हैं कि तारतम ज्ञान मिलने के बाद लक्ष्य केवल गोलोकी श्रीकृष्ण तक सीमित नहीं रहना चाहिए; बल्कि उस अक्षरातीत प्रियतम की ओर होना चाहिए जो गोलोक और वैकुण्ठ से भी परे हैं।"निजघर पिउ को लीजे प्रकाश" इसी दिशा का आह्वान है।

व्रज की रासलीला परमधाम की प्रेमलीला का सूक्ष्म नमूना है। व्रज की रास, वर्तमान जागनी-लीला और परमधाम की अखण्ड लीला—इन तीनों का तारतम्य समझे बिना परमात्मा की पूर्ण अवधारणा नहीं खुलती। व्रज में जो झलक मिली, जागनी उसमें

स्मृति और पहचान जोड़ती है, और परमधाम उसका नित्य पूर्ण स्वरूप है। इस प्रकार भागवत और तारतम विरोधी नहीं, बल्कि क्रमबद्ध अर्थ-विस्तार में देखे जाते हैं।

9.14 गीता, महाभारत और परब्रह्म का गोपनीय ज्ञान

तारतम दृष्टि में गीता और महाभारत के अनेक कथन नया प्रकाश पाते हैं।"न तद्भासयते सूर्यो..." जैसे वचन केवल दार्शनिक अमूर्तन नहीं, बल्कि उस परमधाम की ओर संकेत हैं जो लौटकर न आने वाला धाम है। तारतम परंपरा यह भी रेखांकित करती है कि गीता का गोपनीय ज्ञान योगयुक्त, तन्मय और आवेशपूर्ण चेतना में प्रकट हुआ। यही गूढ़ ज्ञान बाद में पुनः इस आश्वासन के साथ प्रकट हुआ कि अब इसे विस्मृत न होने दिया जाएगा और व्यापक रूप से उद्घाटित किया जाएगा। इस प्रकार परमात्मा की अवधारणा केवल भागवत या वेदांत तक सीमित नहीं रहती, बल्कि जागनी-प्रकाश के व्यापक परिप्रेक्ष्य में आ जाती है।

9.15 निष्कर्ष

तारतम वाणी में परमात्मा की अवधारणा बहुस्तरीय होते हुए भी अत्यंत संगत है। परमात्मा अक्षरातीत परब्रह्म हैं—वही समस्त आत्माओं के प्रियतम प्राणनाथ और रसराज हैं। आत्मा रसस्वरूपा दृष्टा है, जबकि प्रकृति अनुभव की सामग्री प्रदान करती है। परमात्मा आत्मा को माया, रूप और विस्मृति से उठाकर उसके असली स्वरूप और प्रेममय सत्य की ओर ले जाते हैं।

परमधाम इस समग्र व्यवस्था का सर्वोच्च, चिन्मय, नित्य और प्रेममय धाम है, जहाँ परब्रह्म और आत्माओं का अखण्ड प्रेमानन्द-विलास सतत प्रकट होता रहता है। इसलिए इस दर्शन में परमात्मा का बोध केवल दार्शनिक चिंतन नहीं, बल्कि पहचान, प्रेम, जागृति और आत्मानुभूति की प्रक्रिया है।

अतः तारतम दर्शन का सार यही है कि परमात्मा को केवल ईश्वर नहीं, बल्कि अक्षरातीत प्रियतम प्राणनाथ के रूप में पहचाना जाए; आत्मा को केवल जीव नहीं, बल्कि प्रेमस्वरूपा सोहागिन के रूप में जाना जाए; और संसार को केवल बंधन नहीं, बल्कि जागृति की ओर ले जाने वाली लीला के रूप में समझा जाए। यही जागनी का मार्ग और तारतम वाणी का हृदय है।

परमात्मा की अवधारणा

अनंत, चेतन, प्रेममय, रसस्वरूप परम सत्य

परमधाम

- चिन्मय, प्रेममय, नित्य धाम
- कालातीत, स्वयंप्रकाशित
- अनंत प्रेमानन्द-लीला का स्थल
- जहाँ परातमाएँ और कण-कण प्रेम रस में स्थित

नियन्ता
आश्रय
स्वरूप

सत् - चित् - आनंद

परमात्मा

- अक्षरातीत परब्रह्म
- प्राणनाथ, प्रियतम धनी
- रसराज, महामति के धनी
- स्वलीलाद्वैत सत्ता

स्वरूप
शक्ति
लीलामय

स्वलीलाद्वैत

- अंग-अंगी का अभेद संबंध
- एक होकर भी लीला में दो रूप
- प्रेम, रस और लीला की अनंत अभिव्यक्ति

त्रि-संबंध (लीलात्मक तंत्र)

आत्मा (द्रष्टा, भोक्ता, रसस्वरूपा)

- चेतन सत्ता
- द्रष्टा, ज्ञाता, भोक्ता
- रस का आस्वादन उसका सहज धर्म
- प्रेम की प्यास
- परमधाम-स्मृति की वाहिका

प्रकृति (द्रश्य, लीला की सामग्री)

- द्रश्य जगत की मूल सत्ता
- त्रिगुणात्मक (सत्व, रजस, तमस)
- सामग्री-प्रदायिनी
- लीला-उपयोगी
- आत्मा के अनुभव का क्षेत्र

परमात्मा (रस-संचार और अनुभव के नियन्ता)

- आत्मा और प्रकृति के संयोगकर्ता
- रस का संचार करते हैं
- अनुभव-तारतम्य के मूल नियन्ता
- प्रेम-विलास और लीला के धनी
- आत्मा को जागृत कर निजधाम की ओर ले जाते हैं

अक्षरातीत - अक्षर - क्षर

- परमधाम, स्वलीलाद्वैत, प्रेमलीला
- ऐश्वर्यलीला, व्यवस्था, धर्म, मर्यादा
- माया-बंचित जगत, जन्म-मरण, अनुभव

परमात्मा के प्रमुख आयाम

जागनी की यात्रा

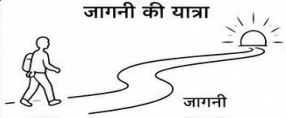

सार : आत्मा जब प्रकृति के अनुभव से जागृत होकर परमात्मा के प्रेम और रस में स्थित होती है, तब वह निजधाम की ओर लौटती है और स्वलीलाद्वैत प्रेमविलास का अनुभव करती है। यही परमात्मा का परम उद्देश्य है।

भाग 2: अध्याय – 10

आत्मा की अवधारणा
चेतना की त्रिस्तरीय संरचना और उसकी गतियाँ:
जीव, आत्मा, परात्मा

10.1 भूमिका:

चेतना वह मूल क्षमता है जिसके द्वारा हम अनुभव करते हैं, जानते हैं और जीवन को अर्थ देते हैं।"मैं देख रहा हूँ", "मैं सोच रहा हूँ", "मुझे खुशी या दुख हो रहा है"—इन सबके पीछे जो जागरूकता है, वही चेतना है। साधारण अर्थ में, चेतना एक बहुआयामी वास्तविकता है— वही अनुभव करती है, वही विकसित होती है, वही जीवन के हर स्तर पर कार्य करती है।

जैसे वेदांत, योग और बौद्ध परंपरा—चेतना को अंतिम सत्य (Ultimate Reality) मानते हैं। उनके अनुसार यह संसार चेतना का ही प्रकट रूप है। साधना का लक्ष्य है इस शुद्ध चेतना या साक्षी भाव का प्रत्यक्ष अनुभव करना—जहाँ व्यक्ति अपने विचारों, भावनाओं और शरीर से परे अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानता है।

इसके विपरीत, पश्चिमी विज्ञान और दर्शन चेतना को मुख्यतः मस्तिष्क (brain) की जटिल गतिविधियों से उत्पन्न मानते हैं। न्यूरोसाइंस के अनुसार, जब मस्तिष्क के विभिन्न भाग मिलकर काम करते हैं, तब चेतन अनुभव उत्पन्न होता है। यहाँ चेतना को एक कार्यप्रणाली (function) की तरह समझा जाता है, जो हमें सोचने, निर्णय लेने और जीवन में अनुकूलन करने में मदद करती है। फिर भी विज्ञान एक बड़ी चुनौती से जूझ रहा है—इसे "Hard Problem of Consciousness" कहते हैं—कि मस्तिष्क की गतिविधियों से "अनुभव कैसा लगता है" (जैसे दर्द या रंग का अनुभव) यह पूरी तरह कैसे उत्पन्न होता है।

समेकित (इंटीग्रल) दृष्टिकोण पूर्व और पश्चिम दोनों दृष्टियों को जोड़ते हुए यह स्पष्ट करता है कि दोनों ही आंशिक सत्य हैं। चेतना को सही रूप में समझने के लिए उसके अनेक आयामों को एक साथ देखना आवश्यक है। इसे सरल रूप में चार पहलुओं में समझा जा सकता है— (1) अनुभव: हम क्या अनुभव करते हैं और कर सकते हैं—जैसे जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और अद्वैत की अवस्थाएँ। (2) दृष्टि/स्तर: हम संसार को कैसे देखते हैं—यह हमारे चेतना-विकास के स्तर पर निर्भर करता है। (3) क्षमताएँ: हम किन-किन आयामों में विकसित होते हैं—जैसे बुद्धि, भावना, नैतिकता, आध्यात्मिकता और संबंध।

(4) परिप्रेक्ष्य: हमारे भीतर के अनुभव, शरीर/मस्तिष्क, संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था के प्रति हमारा दृष्टिकोण। ये सभी मिलकर निर्धारित करते हैं कि हमारी चेतना कितनी परिपक्व और विकसित है। इस प्रकार चेतना केवल एक स्थिर सत्ता (जिसे सामान्यतः आत्मा कहा जाता है) नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होती हुई प्रक्रिया भी है। इसलिए इसे समझना केवल ध्यान या आध्यात्मिक अनुभव तक सीमित नहीं, बल्कि शरीर, मन, भावनाओं और जीवन के समग्र विकास से जुड़ा हुआ है।

तारतम वाणी का अध्ययन इसलिए भी विशेष महत्त्व रखता है कि यह केवल परमात्मा का निरूपण नहीं करती, बल्कि चेतना के विविध स्तरों को एक नए, जीवंत और तारतम्यपूर्ण ढंग से प्रकट करती है। इसके अनुसार चेतना का अनुभव तीन प्रमुख स्तरों पर होता है। सामान्य समेकित (इंटीग्रल) विकास जहाँ 'जीव' की जागनी—अर्थात अनुभव, समझ और आत्म-विकास—से जुड़ा है, वह आवश्यक तो है, पर निजानंद के मार्ग में अंतिम नहीं माना गया।

तारतम के प्रकाश में इससे आगे एक उच्चतर आयाम प्रकट होता है—'आत्मा' की जागनी। यहाँ चेतना केवल अनुभव नहीं करती, बल्कि अपने मूल स्वरूप, ज्ञान और पूर्णता के बोध को ग्रहण करने लगती है। यह स्तर विकास की परिपक्वता का है, जहाँ अर्थ, ज्ञान और आत्म-साक्षात्कार गहराते हैं।

किन्तु तारतम दृष्टि यहीं नहीं रुकती। इससे भी परे 'परात्म-जागनी' का अंतिम और सर्वोच्च स्तर है, जहाँ चेतना विकास या उसकी पूर्णता से भी आगे बढ़कर प्रेमानंद-विलास में प्रतिष्ठित हो जाती है। इस अवस्था में चेतना केवल ज्ञाता या भोक्ता नहीं रहती, बल्कि दृष्टा, रसस्वरूपा और परमधाम-स्मृति की वाहिका बन जाती है। यहाँ अस्तित्व का अनुभव ज्ञान से अधिक प्रेम और रस के रूप में प्रकट होता है।

इस स्तर पर जाग्रत साधक के लिए संसार केवल बंधन नहीं, बल्कि एक लीला—कभी-कभी करुण, तो कभी मधुर नाटक—बन जाता है, जिसका वह साक्षी होकर रस ग्रहण करता है। इस प्रकार तारतम वाणी चेतना को केवल विकास-क्रम के रूप में नहीं, बल्कि "अनुभव-तारतम्य"—अर्थात चेतना के विविध आयामी और रसपूर्ण विस्तार—के रूप में समझने की एक अत्यंत गहन और समग्र दृष्टि प्रदान करती है।

10.2 तीनों सृष्टि: मूल सिद्धान्त

शास्त्रों में चेतना के विभिन्न स्तरों के लिए जीव, जीवात्मा, आत्मा, परात्मा और परमात्मा जैसे अनेक शब्द मिलते हैं, परंतु उनका पारस्परिक संबंध प्रायः खंडित या अस्पष्ट रूप में प्रस्तुत होता है। निजानंद दर्शन, विशेषतः तारतम वाणी, इन सभी को एक सुव्यवस्थित तारतम्य में जोड़ते हुए एक समेकित चेतना-दृष्टि प्रदान करती है। इस दृष्टि में

संपूर्ण सृष्टि एक जीवंत, चेतन-लीला है, जिसमें तीन प्रमुख सृष्टियाँ कार्यरत हैं—ब्रह्म सृष्टि, ईश्वरी सृष्टि और जीव सृष्टि। तीनों सृष्टियाँ इस संसार में मानव-शरीर धारण करती हैं, परन्तु उनके उद्गम, उनकी आत्म-दृष्टि, स्वभाव और गंतव्य भिन्न है।

10.2.1 ब्रह्म सृष्टि अक्षरातीत परमधाम से संबंधित नित्य-मुक्त चेतनाओं की सृष्टि है, जहाँ मुक्ति स्वभाव है और प्रेमानंद की अखंड लीला प्रवाहित होती है।

10.2.2 ईश्वरी सृष्टि अक्षर ब्रह्म से संबंधित जाग्रत, दिव्य चेतनाओं का स्तर है, जो धर्म, मर्यादा, व्यवस्था और ऐश्वर्य के माध्यम से चेतना को परिष्कृत करते हुए परम प्रेम की ओर अग्रसर होती हैं।

10.2.3 जीव सृष्टि माया में प्रवाहित चेतना की वह विशाल धारा है, जिसे वाणी "जीव" कहती है—जो अनुभवकर्ता बनकर सुख-दुःख, जन्म–मरण और अहंकार के बंधनों में उलझी रहती है। इन तीनों चेतना-स्तरों के तारतम्य को समझे बिना जीव, आत्मा, परात्मा, ईश्वर और परब्रह्म के संबंध का यथार्थ बोध संभव नहीं होता।

इस खंड का मूल संदेश यह है कि सृष्टि एकरूप नहीं है, बल्कि तीन भिन्न श्रेणियों—जीव, ईश्वरी और ब्रह्म—में विभाजित है, जिनका उद्गम, स्वभाव, मार्ग और अंतिम गंतव्य अलग-अलग हैं। वेद, कतेब और संतवाणी सभी इस त्रिविध व्यवस्था की पुष्टि करते हैं। प्रत्येक सृष्टि अपने "अंकुर" (मूल स्वभाव) के अनुसार ही आचरण करती है और अंततः अपने-अपने धाम में लौटती है। पूर्णब्रह्म इन तीनों के लिए केंद्र बिंदु हैं, पर उनके साथ संबंध की गहराई सृष्टि के प्रकार के अनुसार भिन्न होती है।

थीम	सार	चौपाई
शास्त्रीय उद्घोष	तीनों सृष्टियाँ अलग मूल-स्थान से आई और अंत में अपने-अपने धाम लौटती हैं।	इन बिध जाहेर कर लिख्या, सास्त्रों के दरम्यान। तीन सृष्ट आई जुदी जुदी, पोहोंचे अपने ठौर निदान।। किरंतन ७९/४
वेद-कतेब प्रमाण	वेद और कतेब तीन सृष्टियों का रहस्य कहते हैं, पर अज्ञान उसका अर्थ नहीं लेने देता।	तीन सृष्ट कही वेद ने, उमत तीन कतेब। लेने न देवे माएने, दिल आड़ा दुस्मन फरेब।। खुलासा १२/४०
तीन परंपराओं में पहचान	वेद, फुरकान और संतवाणी—तीनों में तीन सृष्टियों की पहचान दी गई है।	तीन सृष्टि कही वेद ने, तीनों कही फिरकान। और तीनों बानी साधों में, तामें सैयों पे पहिचान।। बीतक १९/१
तीन ठौर, तीन मार्ग	तीनों सृष्टियों के धाम, मार्ग और स्वभाव अलग-अलग हैं।	त्रिविध दुनी तीन ठौर की, चले तीन विध मांहें।

थीम	सार	चौपाई
		कोई छोड़े न अंकूर अपना, होवे करनी तैसी तांहें।। किरंतन ७९/२
पूर्णब्रह्म का दीदार	पूर्णब्रह्म ब्रह्मसृष्टि के प्रियतम और ईश्वरी-जीव सृष्टि के प्रभु रूप में प्रकट हुए।	प्रगटे पूरन ब्रह्म सकल में, ब्रह्म सृष्ट सिरदार। ईश्वरी सृष्ट और जीव की, सब आए करो दीदार।। किरंतन ५७/२
अलग-अलग ठौर	जीव, ईश्वरी और ब्रह्म—तीनों सृष्टियों के धाम अलग हैं।	सास्त्रों तीनों सृष्ट कही, जीव ईश्वरी ब्रह्म। तिनके ठौर जुदे जुदे, ए देखियो अनुकरम।। किरन्तन ७३/२२
लक्षण-भेद	ब्रह्मसृष्टि प्रेमलक्षणी, ईश्वरी सृष्टि कुमारिका, और जीवसृष्टि मायावी संसार से सम्बद्ध है।	ब्रह्मसृष्टी प्रेम लच्छ में, कुमारिका ईस्वर। तीसरी जीवसृष्ट दुनियां, वेद केहेत यों कर।। — खुलासा १३/४८
उद्गम-भेद	ब्रह्मसृष्टि अक्षरातीत से, ईश्वरी सृष्टि अक्षर से, और जीवसृष्टि वैकुण्ठ से सम्बद्ध है।	ब्रह्मसृष्टी अछरातीत से, ईस्वरी सृष्ट अछर से। जीव सृष्ट बैकुंठ की, ए जो गफलत में।। — खुलासा १३/५०

10.3 जीवसृष्टि

'जीव' मूलतः सत्-स्वरूप अक्षर ब्रह्म के चित्त से उद्भूत चेतना है, जो स्वप्नवत् सृष्टि में प्रवेश करती है। यह सूक्ष्म स्तर नित्य-मुक्त और एकरस होते हुए भी लीला की संभावना को धारण करता है। इसी से प्रवाहित होकर जीव शरीर, मन और कर्मों के साथ तादात्म्य स्थापित करता है और अनुभवों की धारा में बहता हुआ जन्म–मरण के चक्र में प्रविष्ट हो जाता है। इस कारण जीवसृष्टि को 'क्षर जगत' या 'स्वप्न-सृष्टि' कहा गया है—एक ऐसा अनुभव-क्षेत्र, जो यथार्थ प्रतीत होते हुए भी अपने मूल में चेतना की अभिव्यक्ति मात्र है।

जीवसृष्टि का मुख्य लक्षण माया, त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम), मोह और अहंकार में बंधन है। 'मैं और मेरा' का भाव इसके व्यवहार का केंद्र बन जाता है, जिससे यह इक्यासी नश्वर अवस्थाओं में भटकती रहती है और अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाती। इसकी दृष्टि बाह्य जगत तक सीमित रहती है; आत्मदृष्टि के अभाव में यह सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर पाती। त्रिगुणों के प्रभाव से इसकी वृत्तियाँ अस्थिर रहती हैं और यह जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओं में निरंतर घूमती रहती है।

यद्यपि जीवसृष्टि में ईश्वर (विष्णु) के प्रति श्रद्धा और भक्ति का भाव पाया जाता है, फिर भी निर्मल हृदय और मूल संबंध के अभाव में यह उच्चतर सत्य—अक्षर और

ब्रह्म—का बोध नहीं कर पाती। इसका जीवन बाहरी भक्ति और आंतरिक अशुद्धि के द्वंद्व में उलझा रहता है, जिसे 'दो-दिलपन' कहा गया है। इन्द्रियाँ विषयों में आसक्त रहती हैं और मोह-अहंकार इसके मूल में स्थिर रहते हैं।

फिर भी, मानव जन्म जीवसृष्टि के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर है। यदि यह माया के बन्धनों को पहचानकर आत्मदृष्टि की ओर मुड़ जाए और सत्य को ग्रहण करे, तो जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर अखण्ड, अविनाशी पद प्राप्त कर सकती है। ब्रह्मसृष्टि के अनुग्रह और जागृति के ज्ञान से यह रूपांतरण संभव होता है।

आ जोगबाई छे जाग्या तणी, अने विचार माहें समझण।
जे समझो ते जागजो, पण आ अवसर अरथो खिण।। — श्री रास

अर्थ: यह जन्म जागृति के लिए है — जो समझे, वह जाग जाए; परन्तु यह अवसर क्षण-भर का है।

खोटाथी खरो लीजिए, अवसर एवो आज।
आ वेला अमृत घड़ी, परमोध कहे मेहेराज।। — श्री रास

अतः जीवसृष्टि का सार यह है कि वह मूलतः चेतन, परन्तु माया में बंधी हुई अवस्था है—जो अज्ञान में भटकती हुई भी सही पहचान, जागृति और कृपा के द्वारा परम मुक्ति की ओर अग्रसर हो सकती है। यही उसका वास्तविक आध्यात्मिक प्रयोजन है।

थीम	सार	चौपाई
त्रिगुण-बद्धता	जीवसृष्टि मोह, अहंकार और त्रिगुणों में बंधकर तीन अवस्थाओं में भटकती है।	मोह अहं गुन की इंद्रियां, करे फैल पसु परवान। फिरे अवस्था तीन में, ए जीव सृष्ट पेहेचान।। किरन्तन ७९/७
वैकुण्ठीय प्रीति	जीवसृष्टि विष्णु/नारायण में प्रीति रखती है, पर अक्षर और ब्रह्म का पूर्ण बोध नहीं पाती।	ऐसी प्रीत जीव सृष्ट की, जाके पिउ विष्णु सेखसांई। वाको रटत जात अहनिस, ब्रह्म अछर सुध न पाई।। किरंतन ९७/४
दो-दिलपन	भीतर कपट और बाहर धर्म/प्रेम का प्रदर्शन जीवसृष्टि की पहचान है।	ए जो दोए दिल राखत हैं, ए तो दुनियां की रीत। मांहें मैले बाहेर उजले, ए जीव सृष्ट की प्रीत।। किरंतन १०८/७
ज्ञान ग्रहण की सीमा	अज्ञानी जीवसृष्टि निर्मल हृदय के अभाव में वाणी के गहरे रहस्य को नहीं पकड़ पाती।	निरमल हिरदे में लीजो वचन, ज्यों निकसे फूट बान जी। ए कह्या ब्रह्मसृष्ट ईश्वरी को, ए क्यों लेवे जीव अग्यान जी।। प्र हिं३०/४६

तारतम वाणी में 'आत्मा' शब्द बहुस्तरीय अर्थों में प्रयुक्त हुआ है—कहीं यह जीव के निज-स्वरूप का संकेत करता है, कहीं विष्णु या आदिनारायण के लिए आता है, और अधिकतर वाणी में ब्रह्मसृष्टि की परात्म-चेतना की 'सुरता' को व्यक्त करता है।

दार्शनिक रूप में आत्मा जीव से उच्चतर, शुद्ध साक्षी चेतना है—जो न बंधती है, न कर्म करती है, बल्कि सबका साक्षी रहती है। तथापि जीव अपने ही अज्ञान और अंतःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) के अंधकार के कारण इस आत्म-प्रकाश को ढँक देता है। परिणामस्वरूप आत्मा "अंधी" नहीं होती, बल्कि जीव की दृष्टि अज्ञान से आच्छादित हो जाती है। इन्द्रियाँ विषय-सुखों की ओर प्रवृत्त होकर चेतना को बाहर की ओर खींच लेती हैं, जिससे जीव अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान नहीं पाता। इसी सत्य को वाणी में कहा गया है—

"जीवें आतम अंधी करी, मिल अंतस्करन अंधेर।
गिरदवाए अंधी इंद्रियां, तिन लई आतम को घेर।। (किरंतन ७४/५)"

जब मन भोग, इच्छाओं और अहंकार में उलझ जाता है, तब जीव अक्षरातीत परमात्मा के प्रेम से दूर हो जाता है—इसी अवस्था को "आत्मा का अंधा होना" कहा गया है। वस्तुतः आत्मा सदैव शुद्ध है; बंधन केवल जीव के अज्ञान का परिणाम है। जैसे ही यह अज्ञान दूर होता है, वही आत्मा पुनः अपने प्रकाश में प्रकट होती है और जीव आत्मभाव की ओर अग्रसर होता है।

जब आत्मबोध जागृत होता है, तब जीव 'जीवात्मा' बनकर सत्य की ओर उन्मुख होता है। इससे भी उच्चतर अवस्था 'परात्मा' की है—जो नित्य-मुक्त, जाग्रत चेतना है और जीव में जागरण की प्रेरणा जगाती है। इसी परात्म-प्रभाव से जीव में मुमुक्षा उत्पन्न होती है—मुक्ति की तीव्र आकांक्षा—जो उसे आत्मज्ञान की ओर अग्रसर करती है।

इसी के साथ चेतना की सार्वत्रिक वृत्तियाँ(universal tendencies)—बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त—भी समझना आवश्यक है। ये किसी विशेष जीव के स्थिर प्रकार नहीं, बल्कि चेतना की गतिशील अवस्थाएँ हैं। बद्ध-वृत्ति में चेतना माया, आसक्ति और अहंकार में बँधी रहती है; मुमुक्षु-वृत्ति में वही चेतना अपने बंधनों से ऊपर उठने की तीव्र आकांक्षा अनुभव करती है; और मुक्त-वृत्ति में चेतना साक्षी, अनासक्त और प्रकाशमय हो जाती है।

यह त्रिभेद स्थिर नहीं, बल्कि गतिशील है—जहाँ भी चेतना है, वहाँ ये तीनों अवस्थाएँ विभिन्न स्तरों पर प्रकट हो सकती हैं। जीव-सृष्टि में यह बंधन–मुमुक्षा–मुक्ति के रूप में स्पष्ट दिखाई देता है; ईश्वरी सृष्टि में यह विवेक, धर्म और साक्षी-स्थिति के रूप में परिष्कृत होता है; और ब्रह्मसृष्टि में मुक्ति स्वभाव बन जाती है, जहाँ से अन्य चेतनाओं में जागरण की प्रेरणा प्रवाहित होती है—इसी को 'जगदृष्टा चिदाभास' कहा गया है।

कुछ विशेष परिस्थितियों में परब्रह्म की लीला के अनुसार ब्रह्मसृष्टि की चेतनाएँ भी जीवों के संग में आकर जागरण-कार्य में सहभागी होती हैं, जिससे मुमुक्षा तीव्र होकर जीव को ऊर्ध्वगामी बनाती है। इस प्रकार तीन सृष्टियाँ चेतना के स्तर (levels) को दर्शाती हैं, जबकि बद्ध–मुमुक्षु–मुक्त उसकी गतियों (movements) को।

अंततः यह सम्पूर्ण यात्रा जीवभाव से आत्मभाव, आत्मभाव से परात्मभाव और परात्मभाव से अक्षरातीत प्रेमानंद की ओर है—जहाँ चेतना केवल शांति में नहीं ठहरती, बल्कि अखंड प्रेम और आनंद में प्रतिष्ठित हो जाती है।

इसलिए संक्षेप में कहा जा सकता है—जीव अनुभवकर्ता है, आत्मा साक्षी है, परात्मा जागरण का कारण है; और बद्ध–मुमुक्षु–मुक्त चेतना की उसी यात्रा की आंतरिक गतियाँ हैं।

10.4 ईश्वरी सृष्टि — जागृत, धर्ममय मध्य-स्तरीय चेतना

ईश्वरी सृष्टि चेतना का वह जाग्रत और संतुलित स्तर है, जो जीवसृष्टि की अज्ञान-प्रधान अवस्था से ऊपर उठ चुका है, किन्तु अभी ब्रह्मसृष्टि की परम प्रेममय पूर्णता तक नहीं पहुँचा है। तारतम दृष्टि के अनुसार इन आत्माओं का उद्गम अक्षर ब्रह्म से है—जो 'सत्-स्वरूप', ऐश्वर्य और सृष्टि-व्यवस्था का आधार है। इसी कारण ईश्वरी सृष्टि को 'जागृत सृष्टि', 'देव-सृष्टि' या 'मुक्त-जीव' कहा जाता है। ये आत्माएँ अक्षरधाम के नूर-क्षेत्र से अवतरित होकर धर्म, व्यवस्था और दिव्य अनुशासन के माध्यम से कार्य करती हैं।

ईश्वरी सृष्टि का मूल स्वभाव सुबुद्धि, पवित्र आचरण और आज्ञापालन है। ये आत्माएँ परमात्मा की आज्ञा में चलती हैं और उनके जीवन में नैतिकता, संतुलन तथा धर्म का दृढ़ आधार होता है। जहाँ जीवसृष्टि इन्द्रियों, मोह और अहंकार में उलझी रहती है, वहीं ईश्वरी सृष्टि विवेक, नियम और शास्त्रसम्मत मार्ग पर चलती है। इसीलिए वाणी में इन्हें "सुबुध अंग, करनी सुध" कहा गया है—अर्थात् इनके विचार और कर्म दोनों ही शुद्ध और संतुलित होते हैं।

चेतना की दृष्टि से ये आत्माएँ तुरीय अवस्था तक पहुँच सकती हैं—अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे एक उच्च जागरूकता में स्थित होती हैं। फिर भी इनका केंद्र 'ऐश्वर्य भाव' (divine order, महिमा, व्यवस्था) में रहता है, न कि पूर्ण प्रेम-विलय में। इसी कारण ये ब्रह्मसृष्टि की भाँति परम प्रेम-रस (माधुर्य लीला) का पूर्ण अनुभव नहीं कर पातीं, बल्कि उसका सीमित दर्शन और आस्वादन ही करती हैं।

ईश्वरी सृष्टि का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह सेतु (bridge) का कार्य करती है। इसमें देवी-देवता, ऋषि-मुनि, संत, परमहंस, पीर-पैगम्बर आदि सम्मिलित माने जाते हैं, जो ज्ञान, धर्म और साधना के माध्यम से जीवसृष्टि को मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। ये

आत्माएँ सृष्टि-व्यवस्था, धर्म की स्थापना और आध्यात्मिक उन्नयन में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। साधना के फलस्वरूप ये सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य जैसी मुक्तियाँ प्राप्त करती हैं और अंततः अक्षरब्रह्म में लीन हो जाती हैं।

फिर भी, ईश्वरी सृष्टि की एक सीमा है—यह अभी अंग–अंगी के परम प्रेम-अद्वैत तक नहीं पहुँची होती। इसमें पूर्ण आत्म-विसर्जन (self-dissolving love) का वह तत्व नहीं होता जो ब्रह्मसृष्टि की पहचान है। अतः यह चेतना का एक उन्नयनशील (evolving) मध्य स्तर है, जो अज्ञान से ऊपर उठकर ज्ञान, धर्म और जागृति तक पहुँचा है, परंतु अभी प्रेम की अंतिम पराकाष्ठा की ओर अग्रसर है।

अतः ईश्वरी सृष्टि का समेकित सार यह है कि वह जागृत, धर्ममय और ऐश्वर्य-प्रधान चेतना का प्रतिनिधित्व करती है—जो अक्षर ब्रह्म से उत्पन्न होकर ज्ञान, साधना और अनुशासन के माध्यम से क्रमशः परम प्रेम और अद्वैत की दिशा में उन्नत होती है। यह आध्यात्मिक यात्रा का एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, जहाँ चेतना शुद्ध, स्थिर और प्रकाशमय होकर परमधाम की ओर उन्मुख होती है।

थीम	सार	चौपाई
जाग्रत सृष्टि	ईश्वरी सृष्टि जाग्रत, सद्बुद्धि-युक्त और शुद्ध आचरण वाली है।	और सृष्ट जो ईश्वरी, कही जाग्रत सृष्ट आतम। सुबुध अंग करनी सुध, चले फुरमान हुकम।। — किरंतन ७९/१०
अक्षर-नूर	ईश्वरी सृष्टि अक्षर के नूर से आई है और कृपा से तुरीय अवस्था में रहती है।	एही सृष्ट ईश्वरी जाग्रत, आई अछर नूर से जे। मेहेर ले मेहेबूब की, रहे तुरी अवस्था ए।। — किरंतन ७९/११
अंकुर-प्रभाव	ईश्वरी सृष्टि अंकुरी है और जिन जीवों पर उसका प्रभाव होता है, उनमें भी अखण्डता का अंकुर जागता है।	सृष्ट ईश्वरी कही अंकूरी, औरों अंकूर दिए कई। तिन जुदा जुदा ठौर नेहेचल, कृपा अंकूर से भई।। — किरण्टन ७९/१७
निर्मल पात्रता	यह वाणी मुख्यतः ब्रह्मसृष्टि और ईश्वरी सृष्टि के निर्मल हृदयों के लिए कही गई है।	निरमल हिरदे में लीजो वचन, ज्यों निकसे फूट बान जी। ए कह्या ब्रह्मसृष्ट ईश्वरी को, ए क्यों लेवे जीव अग्यान जी।। — प्रकाश हिं ३०/४६

थीम	सार	चौपाई
जागरण और सुख	तारतम प्रकाश से ईश्वरी सृष्टि और अक्षर-नूर जागृत होते हैं तथा सबको अखण्ड सुख की दिशा मिलती है।	मुक्त दई त्रैगुन फरिस्ते, जगाए नूर अछर। रूहें ब्रह्मसृष्ट जागते, सुख पायो सचराचर।। — खुलासा १३/११२

10.4.1 ब्रह्मसृष्टि का दार्शनिक रहस्य

तारतम वाणी में आत्मा की अवधारणा केवल सामान्य जीव तक सीमित नहीं रहती, बल्कि चेतना के विभिन्न स्तरों का एक समग्र मानचित्र प्रस्तुत करती है। महामति प्राणनाथ जी आत्माओं को तीन सृष्टियों—जीव सृष्टि, ईश्वरी सृष्टि और ब्रह्मसृष्टि—में विभाजित करते हैं, जिनमें ब्रह्मसृष्टि का स्थान सर्वोच्च है। ब्रह्मसृष्टि वे आत्माएँ हैं जो परमधाम से अवतरित होकर अक्षरातीत परब्रह्म की आनन्द-अंग स्वरूपा हैं। उनका अवतरण कर्म-बंधन या अज्ञान के कारण नहीं, बल्कि दिव्य लीला के साक्षात्कार और चेतना के जागरण हेतु होता है।

उद्गम और तात्त्विक आधार: ब्रह्मसृष्टि का संबंध परमधाम की उस चेतना से है जहाँ सत्, चित् और आनन्द की अखण्ड एकता विद्यमान है। इस त्रिविध एकत्व में "चित्" या प्रेम-चेतना मूल तत्व है, जबकि सत् और आनन्द उसकी अभिव्यक्तियाँ हैं। ब्रह्मसृष्टि को इस दृष्टि से "आनन्द की किरणें" कहा जा सकता है—जो चिद् के प्रेम से प्रकाशित होकर सत् के माध्यम से लीला में प्रकट होती हैं। वे केवल आत्माएँ नहीं, बल्कि परम प्रेम-चेतना की जीवंत अभिव्यक्तियाँ हैं।

अंग–अंगी संबंध और अद्वैत: तारतम दर्शन में ब्रह्मसृष्टि का परमात्मा से संबंध 'अंश–अंशी' का नहीं, बल्कि 'अंग–अंगी' का है। अर्थात् वे परमात्मा से पृथक इकाइयाँ नहीं, बल्कि उनकी लीला की सचेत, जीवित अभिव्यक्तियाँ हैं। इस संबंध में कोई दूरी या द्वैत नहीं रहता—यही अवस्था स्वलीलाद्वैत की है, जहाँ आत्मा और परमात्मा परस्पर एक ही चेतना में स्थित होकर लीला करते हैं।

आंतरिक स्थिति और आध्यात्मिक लक्षण: ब्रह्मसृष्टि बाह्य दृष्टि से साधारण मानवों जैसी प्रतीत हो सकती हैं, पर उनकी चेतना भीतर से परमात्मा की ओर निरंतर उन्मुख रहती है। वे इन्द्रिय-जित होती हैं—इन्द्रियाँ उनके अधीन रहती हैं, न कि वे इन्द्रियों के अधीन। उनकी दृष्टि बाह्य जगत से हटकर अंतःकरण में स्थित परमात्मा के साथ जुड़ी रहती है। उनके लिए संसार अंतिम सत्य नहीं, बल्कि एक अनुभवात्मक दृश्य है—एक लीला, जिसे पहचानना है और उससे ऊपर उठना है।

एकत्व, प्रेम और निष्कपटता: ब्रह्मसृष्टि की सबसे विशिष्ट पहचान उनकी एकरसता और निष्कपटता है। उनमें अहंकार, प्रतिस्पर्धा या द्वंद्व का स्थान नहीं होता। उनकी बुद्धि, हृदय और चित्त एक ही दिशा में प्रवाहित होते हैं—परमात्मा की ओर। उनका प्रेम एक ही केन्द्र में स्थित होता है, जिससे उनके भीतर अखण्ड एकत्व और स्थिरता बनी रहती है। यह एकत्व केवल दार्शनिक सिद्धांत नहीं, बल्कि जीवित अनुभव है—जहाँ विविधता के भीतर भी आंतरिक एकता बनी रहती है।

लीला-दृष्टि और जगत का बोध: ब्रह्मसृष्टि संसार में भोग या संघर्ष के लिए नहीं आती, बल्कि 'देखने' और 'जागने' के लिए आती है। यह 'देखना' साधारण अनुभव नहीं, बल्कि चेतना की जागृति है—जहाँ संसार को एक दिव्य खेल (लीला) के रूप में देखा जाता है। परमात्मा को 'रसराज' कहा गया है, और ब्रह्मसृष्टि उस आनन्द-तरंग की किरणें हैं, जो इस लीला का साक्षात्कार करती हैं और अंततः अपने मूल स्रोत की ओर जागृत होती हैं।

अन्य सृष्टियों से भेद: जीव सृष्टि जहाँ माया, मोह और अहंकार में बंधी रहती है, और ईश्वरी सृष्टि धर्म, ज्ञान और ऐश्वर्य के स्तर पर स्थित रहती है, वहीं ब्रह्मसृष्टि इन दोनों से परे प्रेम और अद्वैत की परम अवस्था में स्थित होती है। जीव सृष्टि "मैं और मेरा" में उलझी रहती है, ईश्वरी सृष्टि "धर्म और व्यवस्था" में स्थित रहती है, जबकि ब्रह्मसृष्टि "तू ही तू" की पूर्ण समर्पण-भावना में स्थित रहती है।

आध्यात्मिक भूमिका और उद्देश्य: ब्रह्मसृष्टि का उद्देश्य केवल स्वयं जागृत होना नहीं, बल्कि अन्य सृष्टियों को भी जागरण और मुक्ति की दिशा में प्रेरित करना है। वे माया के खेल को पहचानकर जीवों को उसके पार ले जाने की भूमिका निभाती हैं। उनका जीवन इस सत्य का प्रमाण है कि चेतना का अंतिम लक्ष्य ज्ञान या धर्म नहीं, बल्कि प्रेममय अद्वैत की अनुभूति है।

समकालीन प्रासंगिकता: आधुनिक जीवन में, जहाँ मनुष्य अपनी पहचान को बाह्य उपलब्धियों, भूमिकाओं और सामाजिक छवियों तक सीमित कर देता है, ब्रह्मसृष्टि का सिद्धांत एक गहन स्मरण कराता है—कि मनुष्य केवल भौतिक अस्तित्व नहीं है। उसके भीतर एक उच्च चेतना है, जिसका स्रोत परमधाम है और जिसका उद्देश्य आत्म-जागरण है।

निष्कर्ष : अतः ब्रह्मसृष्टि का सार यह है कि वह चेतना की सर्वोच्च अवस्था का प्रतीक है—जहाँ आत्मा परमात्मा से अभिन्न होकर प्रेम, आनंद और अद्वैत में स्थित होती है। यह मार्ग जप-तप से परे, शुद्ध प्रेम और समर्पण का मार्ग है। ब्रह्मसृष्टि माया के खेल को देखकर जागृत होती है और अंततः अपने निजधाम की ओर उन्मुख होती है। यही ब्रह्मसृष्टि का सार है—जागरण, प्रेम और परमधाम की अखण्ड स्मृति।

थीम	सार	चौपाई
भागवत-रहस्य	भागवत के गूढ़ रास-रहस्य को ब्रह्मसृष्टि ही खोल सकती है।	कागद जो भागवत का, ले आया सुक मुनी। इनका अर्थ ब्रह्मसृष्टि, खोलें जान अपनी।। बीतक १२/४
निजधाम-संबंध	ब्रह्मसृष्टि का अपना धनी श्री श्यामा-श्याम और अपना वास निजधाम है।	अब सुनियो ब्रह्मसृष्ट विचार, जो कोई निज वतनी सिरदार। अपनो धनी श्री स्यामा स्याम, अपना वासा है निज धाम।। प्र हिं ३७/८
प्रेम-दृष्टि	ब्रह्मसृष्टि प्रेमपूर्ण होती है और उसकी दृष्टि केवल धनी पर केंद्रित रहती है।	जेती कोई हैं ब्रह्मसृष्ट, प्रेम पूरन धनी पर द्रष्ट। कंस के बंध वसुदेव देवकी, इत आई सुरत चत्रभुज की।। प्र हिं ३७/२७
मुक्ति-कार्य	ब्रह्मसृष्टि त्रिगुण-बद्ध प्राणियों को मुक्ति की दिशा में ले जाती है।	ब्रह्मसृष्टि धाम पोहोंचावसी, और मुक्त देसी सबन। कलजुग असुराई मेट के, पार पोहोंचावसी त्रिगुन।। किरन्तन ७३/३०
माया-खेल	ब्रह्मसृष्टियाँ माया का खेल देखने आईं, पर खेल ने उन्हें अपना वतन भुला दिया।	ब्रह्मसृष्ट सखियां धाम की, आइयां छल देखन। जुदे जुदे घर कर बैठियां, खेलें भुलाए दिया वतन।। किरंतन ७७/२
परमधाम से आगमन	ब्रह्मसृष्टि परमधाम से आई है, इंद्रियनियंत्रित और धनी से अंतर्मुखी संबंध रखने वाली है।	ब्रह्मसृष्टी आई अर्स से, जीत इंद्री सुध अंग। छोड़ मांहें बाहेर दृष्ट अंतर, परआतम धनी संग।। किरंतन ७९/१२
प्रेम-मार्ग	ब्रह्मसृष्टि का मूल मार्ग जप-तप से ऊपर प्रेम और समर्पण का मार्ग है।	ना जप तप ना ध्यान कछू, ना जोगारंभ कष्ट। सो देखाई बृज रास में, एही वतन चाल ब्रह्मसृष्ट।। किरंतन ८२/१६
जागरण	ब्रह्मसृष्टि अक्षर का खेल देखने आई है; अब उसे जागकर अपने असली घर लौटना है।	हम ब्रह्मसृष्टि आई धाम से, अछर खेल देखन। खेल देख के जागिए, घर असलू अपने तन।। किरंतन ९६/८
अक्षरातीत धनी	सभी ब्रह्मसृष्टियाँ परमधाम से आई हैं और उनके धनी अक्षरातीत हैं।	सब ब्रह्मसृष्टी आई धाम से, अछरातीत इन धनी। मोको सबे बिध समझाई, आप जान अपनी।। किरंतन ९७/१०

थीम	सार	चौपाई
निष्कपटता	जो धनी से हृदय की बात छिपाए, वह ब्रह्मसृष्टि के लक्षण से दूर है।	कहावत हैं ब्रह्मसृष्ट में, धनीसों छिपावें बात। दिल की करें औरन सों, ए कौन सृष्ट की जात।। किरंतन १०५/६
एकदिलता	ब्रह्मसृष्टि निष्कपट, एकदिल और धनी के सामने पूर्णतः पारदर्शी होती है।	एकै बात ब्रह्मसृष्ट की, दोए दिल में नाहें। सोई करें धनीसों जाहेर, जैसी होए दिल मांहें।। किरन्तन १०५/८
खेल का उद्देश्य	माया का खेल ब्रह्मसृष्टि को दिखाने के लिए रचा गया है।	ब्रह्मसृष्ट के कारने, खेल जो रचिया ए। खेल देखाए सत वतन, महामत आए ले।। किरंतन १०७/१०
व्रज-रास संबंध	ब्रह्मसृष्टियों ने व्रज-रास में श्याम के साथ लीला की।	ब्रह्मसृष्टी सखियां स्याम संग, खेले बृज रास के मांहें। ए सुनियो तुम बेवरा, खेल फजर तीसरा इहांए।। खुलासा १३/२३
चरणरज महिमा	ब्रह्मसृष्टि की चरणरज त्रिगुण-बद्ध देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।	चरन रज ब्रह्मसृष्ट की, ढूंढ़ थके त्रैगुन। कई विध करी तपस्या, यों केहेवत वेद वचन।। खुलासा १३/५५
जागनी लीला	जागनी लीला अद्वितीय है और ब्रह्मसृष्टि में नया परमधामी सुख प्रकट करती है।	कई हुए ब्रह्मांड कई होएसी, पर ए लीला न हुई कब। विलास बड़ो ब्रह्मसृष्ट में, सुख नयो पसरसी अब।। खुलासा १३/६३
ब्रह्मलीला	ब्रह्म और ब्रह्मसृष्टि की लीला में प्रेम निरंतर बढ़ता है।	ब्रह्मलीला ब्रह्मसृष्ट में, चढ़ती चढ़ती कहे वेद। प्रेम लच्छ दोऊ कहे, किए जाहेर बुधजीएँ भेद।। खुलासा १३/७०
ब्रह्म-इश्क	ब्रह्म, प्रेम और ब्रह्मसृष्टि अभिन्न हैं और परमधाम में आनंदमय लीला करते हैं।	ब्रह्म इस्क एक संग, सो तो बसत वतन अभंग। ब्रह्मसृष्टी ब्रह्म एक अंग, ए सदा आनंद अतिरंग।। परिक्रमा १/२
प्रेम का आयुध	ब्रह्मसृष्टि का विशिष्ट मार्ग परमधामी प्रेम है, जो अन्य सृष्टियों को उपलब्ध नहीं।	प्रेम पिया जी के आउध, प्रेम स्यामा जी के अंग सुध। ब्रह्मसृष्टी की एही विध, ए दूजे काहू ना दिध।। परिक्रमा २/४०

थीम	सार	चौपाई
अखण्ड सुख	ब्रह्मसृष्टि की बरकत से चौदह लोकों को अखण्ड सुख और परब्रह्म-दर्शन मिलेगा।	अखंड सुख सबन को, होसी चौदे तबक। सो बरकत ब्रह्मसृष्ट की, पावें दीदार सब हक।। परिक्रमा २/१७
प्रेम का निवास	त्रिगुण में प्रेम नहीं; प्रेम ब्रह्मसृष्टि में है, जिसने व्रज-रास लीला की।	सुक व्यास कहें भागवत में, प्रेम ना त्रिगुन पास। प्रेम बसत ब्रह्मसृष्ट में, जो खेले सरूप बृज रास।। परिक्रमा ३९/४
लक्ष्य-बोध	व्रज-रास में प्रेम था, पर पूर्ण लक्ष्य-बोध जागनी ज्ञान से प्रकट हुआ।	ब्रह्मसृष्ट हुती बृज रास में, प्रेम हुतो लछ बिन। सो लछ अव्वल को ल्याय रूह अल्ला, पर न था आखिरी इलम पूरन।। सिंगार १/४७
ब्रह्म-संबंध	ब्रह्मसंबंध बिना विधि-आचार और षट्कर्म से भी परब्रह्म के चरण नहीं मिलते।	उत्तम होए खट करम करो, आचार करो विधोगत। ब्रह्म चरन न आवें ब्रह्मसृष्ट बिना, जाकी ब्रह्म सों निसबत।। सिंगार ७/२९

10.5 ब्रह्मसृष्टि: अंग–अंगी एकत्व और प्रेममय अद्वैत की परम चेतना

ब्रह्मसृष्टि का स्वरूप साधारण जीव या ईश्वरी सृष्टि से भिन्न, अत्यंत उच्च और परमधामी है। यह सृष्टि अक्षरातीत परमधाम से आई हुई है और उसका मूल संबंध केवल ईश्वर से नहीं, बल्कि अंग–अंगी के अभिन्न प्रेममय एकत्व से है। जहाँ सामान्य दृष्टि में आत्मा को परमात्मा का "अंश" माना जाता है, वहीं ब्रह्मसृष्टि के स्तर पर यह संबंध और अधिक गहरा होकर "अंग" का हो जाता है—अर्थात आत्मा परमात्मा से अलग कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं रहती, बल्कि उसकी जीवंत, सचेत और प्रेमपूर्ण अभिव्यक्ति बन जाती है।

ब्रह्मसृष्टि का मूल स्वभाव शुद्ध प्रेम (इश्क), निष्कपटता और पूर्ण समर्पण है। इसका मार्ग जप, तप या बाह्य साधना से ऊपर उठकर सीधा प्रेम और अनुभूति का मार्ग है। यह सृष्टि माया के खेल को देखने के लिए संसार में आती है, पर उसका अंतिम लक्ष्य जागृत होकर अपने निजधाम लौटना और अन्य सृष्टियों को भी मुक्ति की दिशा देना होता है। ब्रह्मसृष्टि में प्रेम केवल भाव नहीं, बल्कि अस्तित्व का आधार है—यही उसका आहार, उसकी चेतना और उसकी पहचान है।

इस अवस्था में आत्मा और परमात्मा के बीच कोई दूरी नहीं रहती; वे परस्पर एक-दूसरे में ही स्थित होकर लीला करते हैं। यही स्थिति स्वलीलाद्वैत की है, जहाँ द्वैत का कोई अवशेष नहीं रहता और केवल अखण्ड प्रेम तथा आनंद का अनुभव होता है। ब्रह्मसृष्टि

की विशेषता यह भी है कि वह केवल स्वयं मुक्ति प्राप्त नहीं करती, बल्कि अपनी कृपा और ज्ञान से अन्य प्राणियों को भी त्रिगुण से पार कर अखण्ड सुख की ओर ले जाती है।

अतः ब्रह्मसृष्टि चेतना की सर्वोच्च अवस्था का प्रतीक है—जहाँ ज्ञान, भक्ति और प्रेम एकाकार होकर परमधाम के अद्वैत अनुभव में परिणत हो जाते हैं, और आत्मा परमात्मा की लीला की केवल दर्शक नहीं, बल्कि उसकी सचेत सहभागी बन जाती है।

इन सार में कई सत सुख, सो मैं निरने करूँ निरधार।
ए सुख देऊँ ब्रह्मसृष्ट को, तो मैं अंगना नार।। प्रकाश हिं 37/5
अंगना को अंग दीजिए, अंगना लीजे अंग।
पास देऊं पूरा प्रेम का, नेहेचल का जो रंग।। कलस हिं 23/42
इस्क सुराही ले हाथ में, पिलाओ आठों जाम।
अपनी अंगना जो अर्स की, ताए दीजे अपनों ताम।। सागर 8/3

अंश – अंशी और अंग – अंगी

विशेषता	अंश – अंशी	अंग – अंगी
संबंध प्रकार	भाग और संपूर्ण	अभिन्न अवयव और संपूर्ण
अस्तित्व स्वतंत्रता	अंश कुछ हद तक स्वतंत्र है	अंग स्वतंत्र नहीं; अंगी से अविभाज्य
अद्वैत का स्तर	सीमित अद्वैत; भेद कुछ अंश तक बना रहता	पूर्ण अद्वैत; भिन्नता लुप्त
अनुभूति की गहराई	ज्ञान आधारित बोध	प्रेम, भक्ति, और एकता का साक्षात अनुभव
तारतम दृष्टि	जगत और परमधाम की समझ के लिए आरंभिक	परमधाम लीला और साक्षात्कार के लिए आवश्यक

10.6 निष्कर्ष और मुख्य बोध

तारतम वाणी के आलोक में चेतना का यह समग्र दर्शन हमें एक गहन और सुव्यवस्थित समझ प्रदान करता है कि सृष्टि एकरूप नहीं, बल्कि त्रिस्तरीय चेतना-व्यवस्था है—जीव, ईश्वरी और ब्रह्म। इन तीनों सृष्टियों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि चेतना केवल अनुभव करने वाली शक्ति नहीं, बल्कि एक विकसित होती हुई, जागृत होती हुई और अंततः प्रेम में विलीन होने वाली वास्तविकता है।

जीव सृष्टि अज्ञान, माया और अहंकार में बंधी हुई चेतना का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ जीवन संघर्ष, अनुभव और खोज का क्षेत्र बन जाता है। ईश्वरी सृष्टि उस चेतना का स्तर है जो जागृति, धर्म और व्यवस्था के माध्यम से स्वयं को शुद्ध करती है और उच्चतर सत्य की ओर अग्रसर होती है। परंतु ब्रह्मसृष्टि चेतना की परम अवस्था है, जहाँ आत्मा परमात्मा से अभिन्न होकर प्रेम, आनंद और अद्वैत में स्थित होती है।

इस समग्र दृष्टि का मुख्य बोध यह है कि आध्यात्मिक यात्रा केवल अज्ञान से ज्ञान तक सीमित नहीं है, बल्कि ज्ञान से प्रेम और अद्वैत की ओर उन्नयन है। जीव से आत्मा, आत्मा से परात्मा, और परात्मा से परम प्रेमानंद तक की यह यात्रा ही जीवन का वास्तविक उद्देश्य है। यहाँ मुक्ति केवल बंधनों से छुटकारा नहीं, बल्कि अपने मूल स्वरूप—प्रेममय चेतना—की पुनः पहचान है।

अंततः यह शिक्षण हमें यह समझाता है कि संसार अंतिम सत्य नहीं, बल्कि एक लीला है—एक ऐसा अनुभव-क्षेत्र जिसमें चेतना स्वयं को पहचानने, जागृत होने और अपने मूल धाम की ओर लौटने का अवसर पाती है। जब यह बोध स्थिर हो जाता है, तब जीवन का दृष्टिकोण बदल जाता है—संघर्ष लीला बन जाता है, ज्ञान प्रेम में रूपांतरित हो जाता है, और साधक साक्षी से सहभागी बनकर परम आनंद की अनुभूति में स्थित हो जाता है। यही मुख्य बोध है: चेतना का अंतिम सत्य प्रेममय अद्वैत है, और जीवन उस सत्य को पहचानने की यात्रा।

चेतना की त्रिस्तरीय संरचना और उसकी गतियाँ

चेतना की गतियाँ

मुक्त

परम प्रेम में स्थित
अखण्ड आनन्द
एकत्व का अनुभव

मुमुक्षु

साधना और जागरण
ज्ञान की खोज
मुक्ति की आकांक्षा

बद्ध

मोह और अज्ञान
बंधन में उलझा
संसार में भटका

परमधाम

(प्रेमानंद • अंग-अंगी एकत्व)

- अखण्ड प्रेम
- परम शांति
- लीला और रस

ब्रह्म सृष्टि

(परात्मभाव)
मुक्त वृत्ति
नित्य-मुक्त चेतनाएँ

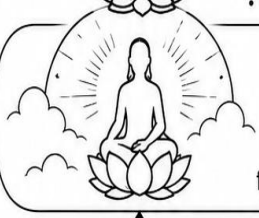

प्रेम • समर्पण • रस

ईश्वरी सृष्टि

(आत्मभाव)
मुमुक्षु वृत्ति
जाग्रत, दिव्य चेतनाएँ

धर्म • विवेक • जागरण

जीव सृष्टि

(जीवभाव)
बद्ध वृत्ति
माया में प्रवाहित
चेतना

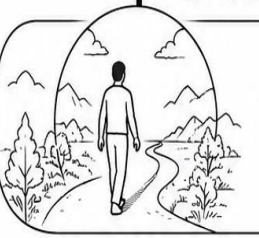

मोह • अहंकार • त्रिगुण • माया

मुख्य विशेषताएँ

- अक्षरातीत परमधाम से संबंधित
- मुक्ति स्वभाव
- प्रेमानंद की अखण्ड लीला
- दृष्टा, रसस्वरूपा, परमधाम-स्मृति
- प्रेम, समर्पण, एकत्व

- अक्षर ब्रह्म से संबंधित
- धर्म, मर्यादा, व्यवस्था, ऐश्वर्य
- चेतना का परिष्कार
- ज्ञान, विवेक, साधना
- ईश्वर की और अग्रसर

- माया में प्रवाहित
- सुख-दुःख, जन्म-मरण
- अहंकार, मोह, त्रिगुण
- अनुभवकर्ता, भोक्ता
- बंधन की अवस्था

तीन सृष्टियाँ – तीन वृत्तियाँ – तीन अवस्थाएँ

जीव सृष्टि
(जीवभाव)
बद्ध वृत्ति

ईश्वरी सृष्टि
(आत्मभाव)
मुमुक्षु वृत्ति

ब्रह्म सृष्टि
(परात्मभाव)
मुक्त वृत्ति

चेतना के आयाम

	अनुभव – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, अद्वैत
	दृष्टि/स्तर – दृष्टिकोण और चेतना-विकास
	क्षमताएँ – बुद्धि, भावना, नैतिकता, आध्यात्मिकता, संबंध
	परिप्रेक्ष्य – शरीर/मस्तिष्क, संस्कृति, समाज, व्यवस्था

बद्ध → मुमुक्षु → मुक्त →

परम लक्ष्य : प्रेममय अखण्ड चेतना

दृष्टा • रसस्वरूपा • परमधाम-स्मृति • लीला

भाग 2: अध्याय – 11
माया की अवधारणा:
आध्यात्मिक यात्रा का केंद्रीय रहस्य – तारतम ज्ञान के प्रकाश में

11.1 भूमिका:

मानव चेतना की सबसे जटिल और गूढ़ पहेली "माया" है, और इस विषय को समझे बिना न आत्मा का बोध संभव है और न ही परमात्मा के प्रेम–रस का वास्तविक अनुभव। तारतम वाणी तथा कुलजम स्वरूप के समग्र अध्ययन से स्पष्ट होता है कि माया केवल एक दार्शनिक अवधारणा नहीं, बल्कि संपूर्ण आध्यात्मिक यात्रा का केंद्रीय तत्व है। साधक जब तक माया के स्वरूप, उसकी कार्यप्रणाली और उसके उद्देश्य को नहीं समझता, तब तक वह अपने वास्तविक स्वरूप से अपरिचित बना रहता है। इसीलिए कहा गया है कि माया ही वह माध्यम है जिसके द्वारा जीव अपने मूल स्वरूप से विमुख होकर संसार में बंधता है, और यही वह साधन भी है जिसके अनुभव के माध्यम से वह अंततः जागृति की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार माया विरोधाभासी होते हुए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है—वह बंधन भी है और मुक्ति का द्वार भी। यह हमारी चेतना की जाग्रति की अवस्था पर निर्भर है। इसलिए इस ब्रह्मांड जिस में हम जीवन जी रहे हैं, उसे जागनी ब्रह्मांड कहा गया है।

माया - थीमैटिक चार्ट:

"माया सर्वव्यापी है और भ्रम उत्पन्न करती है। सतगुरु और तारतम ज्ञान ही मार्ग दिखाते हैं। परमात्मा की कृपा से ही माया से पार संभव है"

थीम	मुख्य बोध	तारतम वाणी चौपाई
1. माया का विस्तार	माया पूरे जगत में फैलकर सभी को बाँधती है	लोक चौद मायानों फंद, सहु छलतणा ए बंध। समझया विना सहुए अंध, तारतम केहेसे सहु सनंधा।। *(रास 1/42)*
2. सृष्टि में माया का कार्य	पंचतत्व में माया के साथ लीला चलती है	जाको पेड़ प्रतिबिंब प्रकृती, पांच तत्व ही को आकार। मांहें खेले निरगुन व्यापक, लिए माया मोह अहंकार।। *(किरन्तन 30/2)*
3. सार्वभौमिक प्रभाव	कोई भी माया से अछूता नहीं	क्या दानव क्या देवता, क्या तिर्थंकर अवतार। ब्रह्मा विष्णु महेस लों, सो भी पैदा माया मोह अहंकार।। *(किरन्तन 30/4)*

थीम	मुख्य बोध	तारतम वाणी चौपाई
4. माया का मूल स्थान	माया प्रकृति और त्रिगुणों में स्थित है	प्रकृति पैदा करे, ऐसे कई इंड आलम। ए ठौर माया ब्रह्म सबलिक, त्रिगुन की परआतम।। *(किरन्तन 65/10)*
5. माया का स्वभाव	माया झूठी और अस्थायी है	ए जो फना सब झूठ है, जो ऊपर से देखाया। क्यों भेदे हक को, जो नाहीं असत माया।। *(खिलवत 2/24)*
6. माया की शक्ति	माया अत्यंत छलपूर्ण और शक्तिशाली है	कहे इंद्रावती वल्लभा, ए माया छे अति छल। हवे जुध मांड्यूं छे अमसूं, एहेनो कह्यो न जाय बल।। *(रास 1/8)*
7. जीव की भूल	जीव सच्चे सुख को छोड़ माया में फँसता है	अखंड धनी फल छोड़ के, निरफल माया झूठ लई। ए सिर गुनाह हुआ जीव के, तोको सिखापन ना दई।। *(प्रकाश 20/101)*
8. सतगुरु की भूमिका	सतगुरु माया से अलग करके सत्य दिखाते हैं	सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप। पार पुरुख जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप।। *(किरन्तन 20/6)*
9. तारतम का महत्व	तारतम ज्ञान से अंधकार मिटता है	हवे मायानों जे पामसे पार, तारतम करसे तेह विचार। ब्रह्मांड मांहें तारतम सार, एणे टाल्यो सहुनो अंधकार।। *(41)*
10. धनी का आह्वान	परमात्मा माया में फँसी आत्माओं को बुलाते हैं	तब श्री मुख वचन कहे प्राणनाथ, ढूंढ काढ़नो अपनो साथ। माया मिने आई सृष्ट ब्रह्म, सो बुलावन आए है हम।। *(प्रकाश 37/82)*
11. कृपा से मुक्ति	कृपा से जीव माया से निकाला जाता है	मायाना मुख माहें थी, जुगते काढी जोर। दई तजारक अतिघणी, माया कीधी पाधरी दोर।। *(रास 1/18)*
12. दुर्लभ पारगमन	माया से पार होना दुर्लभ है	एम चौद लोकमां कोई नव कहे, जे पार मायानों आ लहे। मोटी मत धणीमां रहे, बीजा भार पुस्तक केरा वहे।। *(रास 1/38)*

थीम	मुख्य बोध	तारतम वाणी चौपाई
13. माया को देखने की दृष्टि	माया को अलग होकर देखना चाहिए	ए माया देखो न्यारे होए, भई तारतम की रोसनाई दोए। जो बानी श्री धनिएँ दई, सो आतम के अंदर तुम क्यों ना लई।। *(प्रकाश 29/67)*
14. माया का प्रभाव	माया दृष्टि को अंधा बना देती है	माया की तो एह सनंध, निरमल नेत्रे होइए अंध। ता कारन कियो प्रकास, तारतम को जो उजास।। *(प्रकाश 9/16)*

11.2 माया का अर्थ और अनुभवगत सत्य

तारतम वाणी के अनुसार माया का मूल अर्थ ही इस रहस्य को प्रकट करता है कि "जो वास्तव में नहीं है, वही अनुभव में सत्य प्रतीत होता है।" 'मा' अर्थात "नहीं" और 'या' अर्थात "जो है"—इस प्रकार माया वह है जो वास्तविक न होते हुए भी वास्तविक प्रतीत होती है। इसी सत्य को वाणी में इस प्रकार व्यक्त किया गया है—

> तो हक अर्स (परमात्मा का धाम) 'है' (नित्य, अखंड) कहया, ए चौदे तबक (लोक) जरा नाहें।
>
> जो 'नाहीं' सो 'है' को क्या कहे, ताथें आवत न शब्द माहें।। सिनगार 21/45
>
> "लोक चौदे दसों दिस, सब नाटक स्वांग संसार।
>
> आवे नैन श्रवन मन वचन, ये सब माया मोह अहंकार।।" *(किरंतन 31/3–4)*

यह समस्त संसार चौदह लोकों में फैला एक नाटक है। हम जो देखते, सुनते, सोचते और बोलते हैं—वह सब माया, मोह और अहंकार का खेल है, न कि अंतिम सत्य। यह अनुभव में सत्य, परंतु अंतिम दृष्टि से अस्थायी है। इसी कारण माया को "स्वप्नवत सत्य" कहा गया है—वह दिखाई देती है, पर स्थायी नहीं होती।

माया (संसार) जड़ और चेतन की गाँठ है। जिस में जीव "मैं" कहने वाला बनता है और प्रकृति "मेरा" दिखने वाला संसार बन जाती है। यही विषय और वस्तु का संबंध है। जब आत्मा प्रकृति के साथ तादात्म्य कर लेती है, तब माया का अनुभव होता है।

11.3 सुख-दुःख का भ्रम और जागृति का संकेत

माया का सबसे बड़ा विरोधाभास यह है कि वह असत्य (अस्थायी) होते हुए भी अत्यंत प्रभावशाली है। यह जीव को इस प्रकार बाँधती है कि वह अस्थायी वस्तुओं को स्थायी मान लेता है और दुःख को भी सुख समझ बैठता है। तारतम वाणी इस अनुभवगत विकृति को इस प्रकार प्रकट करती है—

"बारीक बातें दुख की, जो कदी लगे मिठास।
तो टूट जात है ए सुख, होत माया को नास।।" *(किरंतन 18/23)*

प्रकृति परमेश्वर की क्रियाशील शक्ति है, जिसके माध्यम से समस्त सृष्टि का व्यापार संचालित होता है। वह स्वयं जड़ होते हुए भी चेतना के सान्निध्य में गतिशील प्रतीत होती है और उसी के द्वारा शरीर, मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार का संपूर्ण तंत्र कार्य करता है। परंतु अज्ञानवश जीव इन उपाधियों से तादात्म्य कर लेता है और "मैं करता हूँ" का कर्तृत्व-अभिमान धारण कर बैठता है, जबकि दार्शनिक सत्य यह है कि प्रकृति के गुण ही प्रकृति में प्रवृत्त हैं—"गुणा गुणेषु वर्तन्ते"।

आत्मा का स्वरूप इससे सर्वथा भिन्न है। वह न कर्ता है, न भोक्ता; वह शुद्ध, साक्षी, चेतन दृष्टा है। क्रिया का क्षेत्र प्रकृति है, आत्मा नहीं। शरीर के सुख-दुःख, रोग-स्वास्थ्य, भूख-प्यास, निद्रा, राग-द्वेष—ये सभी प्रकृति के गुणों की वृत्तियाँ हैं, जिनसे आत्मा का वास्तविक संबंध नहीं होता। किंतु जब आत्मा इन अनुभवों से स्वयं को जोड़ लेती है, तब 'अहं' और 'मम' की भ्रांति उत्पन्न होती है, और वही बंधन का कारण बनती है।

11.4 माया की दो मुख्य शक्तियाँ

वेदान्त, तंत्र और तारतम्य परंपरा के अनुसार, माया की दो मुख्य शक्तियाँ — रोधिणी (आवरण) और विक्षेप (प्रक्षेपण) — मिलकर संसार का अनुभव रचती हैं। अक्षर ब्रह्म के चित्त (सबलिक विद्यापाद) में चिदानंद लहरी के रूप में उन की माया शक्ति (मूल प्रकृति) वास करती है। जब अक्षर को स्वप्न में सृष्टि-रचना की इच्छा होती है, तब पहले आवरण शक्ति अक्षर को उसका स्वरूप भुलाकर मोहित कर लेती है, और फिर विक्षेप शक्ति उसके मन को भ्रमित कर अज्ञान में डाल देती है — "भरम की बाजी रची विस्तारी, भरम सो भरम भरमानों।" इससे अक्षर स्वयं को अनेक खंडित रूपों में अनुभव करने लगता है, कालचक्र में बंधा हुआ देखता है, और नाना कर्मों के चक्र में उलझ जाता है।

यही माया जब सबलिक प्रकृति में प्रतिबिम्बित होती है, तब त्रिगुणों के माध्यम से तीन रूप धारण करती है — महाविष्णु, नारायण और विराट — और इन्हीं के द्वारा स्थूल सृष्टि का विस्तार होता है। परंतु यही माया केवल बंधन का कारण नहीं, जागृति का माध्यम भी है। जब विवेक, साक्षीभाव और प्रेम से चेतना जागती है, तब पहले विक्षेप शांत होता है, फिर आवरण हटता है — और वही संसार लीला के रूप में अनुभव होने लगता है।

तारतम दृष्टि इस तथ्य को और अधिक सूक्ष्म रूप में स्पष्ट करती है कि माया केवल आवरण या भ्रम नहीं, बल्कि अनुभव का क्षेत्र भी है। यह जीव को सुख का ऐसा आभास कराती है जो स्थायी नहीं होता; परिणामतः वही सुख अंततः दुःख में परिवर्तित हो जाता है। यह परिवर्तनशीलता ही माया का मूल स्वभाव है। परंतु इसी में एक गहन रहस्य

निहित है—माया का उद्देश्य केवल भ्रम उत्पन्न करना नहीं, बल्कि चेतना को अनुभव के माध्यम से परिपक्व करना भी है।

तारतम वाणी माया और अविद्या में स्पष्ट भेद करती है। अविद्या व्यक्तिगत अज्ञान है, जो ज्ञान से समाप्त हो जाती है; जबकि माया समष्टिगत स्तर पर कार्य करती है और पूर्ण जागृति तक अनुभव में बनी रहती है।

पक्ष	माया (समष्टि)	अविद्या (व्यष्टि)
स्तर	सम्पूर्ण सृष्टि (Cosmic)	व्यक्तिगत जीव (Individual)
उपमा	पूरा वन (Forest)	एक वृक्ष (Single tree)
प्रभाव	सभी जीवों को	एक साधक को
समाप्ति	अव्यय — सदा रहती है	ज्ञान होने पर नष्ट होती है
तारतम दृष्टि	माया अत्यंत सबल है	अविद्या = मन का भ्रम

माया मधुर प्रतीत होने वाले दुःख का आवरण रचती है, किंतु जब उसका परिणाम स्पष्ट होता है, तब साधक के भीतर विवेक उदित होता है। दुःख, जो प्रारंभ में बाधा प्रतीत होता है, वास्तव में जागृति का द्वार बन जाता है। यही विवेक प्रकृति से असंग होने की प्रेरणा देता है। जैसे ही प्रकृति से माना हुआ संबंध ढीला पड़ता है, आत्मा का परमात्मा से नित्य-संबंध प्रकट होने लगता है। इस प्रकार माया, जो पहले बंधन का कारण थी, वही अंततः जागरण और मुक्ति की प्रक्रिया का साधन बन जाती है। अंततः ज्ञान के प्रकाश में दुःख माया के बंधनों को काटने का साधन बन जाता है।

"दुःख दावानल काटत, और काटत सकल विकार।
दुःख काटत मूल माया को, बढ़े नहीं विस्तार।।" *(किरंतन 17)*

11.5 माया की उत्पत्ति: चेतना की कार्य-कारण प्रक्रिया

तारतम वाणी के अनुसार माया (मोह/अहंकार) की उत्पत्ति कोई स्थूल या भौतिक घटना नहीं, बल्कि चेतना के स्तरों में घटित होने वाली एक अत्यंत सूक्ष्म प्रक्रिया है। परमधाम की मूल अवस्था में न तो माया थी, न अहंकार, न ही निराकार या शून्य की कोई कल्पना—वहाँ केवल शुद्ध सत्–चित्–आनन्द की अखण्ड स्थिति थी। इसी तथ्य को वाणी स्पष्ट करती है—

"अब सुनियो मूल वचन प्रकार, जब नहीं उपज्यो मोह अहंकार।
नाहीं निराकार नाहीं सुन्य, ना निरगुन ना निरंजन।।"

अर्थात् उस मूल स्थिति में न मोह था, न अहंकार, न ही वह स्थिति निराकार या शून्य कही जा सकती है; वहाँ पूर्ण चेतना का स्वाभाविक प्रकाश ही विद्यमान था।

माया की उत्पत्ति तब प्रारम्भ होती है जब लीला के अनुभव और अवलोकन की द्वैत-प्रवृत्ति प्रकट होती है। आत्माओं में यह भाव जागता है कि वे अक्षर ब्रह्म की लीला का अनुभव करें, और अक्षर ब्रह्म में यह संकल्प होता है कि वे उस प्रेममयी लीला को देखें। इसी द्वि-प्रवृत्ति के कारण चेतना (सुरता) का संचरण होता है, और उसी से मोह तत्व का जन्म होता है—

"ए कहे दोऊ भिंन भिंन, खेल देखन को दोऊ कारन।
उपज्यो मोह सुरत संचरी, खेल हुआ माया विस्तरी।।।"

अर्थात् जब सुरता अपने मूल से विचलित होकर नीचे की ओर प्रवाहित होती है, तब "मोह" का उदय होता है, और यही मोह आगे चलकर सम्पूर्ण मायावी सृष्टि के विस्तार का कारण बनता है।

इस प्रकार माया कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं, बल्कि चेतना पर पड़ा हुआ एक आवरण है, जिसका मूल "मैं" या अहंकार है। यही "मैं" आगे चलकर भेद, द्वैत और संसार के अनुभव को जन्म देता है। यह अक्षर ब्रह्म की शक्ति के रूप में प्रकट होती है और उसके अविद्या पाद (अव्याकृत पाद) में सृष्टि-लीला का संचालन करती है।

सरल शब्दों में कहा जाए तो परमधाम की शुद्ध जागृति से जब सुरता अनुभव की दिशा में प्रवाहित होती है, तब अपने मूल स्वरूप को भूलकर मोह से जुड़ती है, और उसी मोह से माया का सम्पूर्ण स्वप्न-जगत प्रकट और विस्तृत होता है। यह चेतना का अवतरण है—अनंत का सीमित अनुभवों में प्रवेश। अतः माया का मूल कारण बाहरी जगत नहीं, बल्कि चेतना का यह सूक्ष्म विचलन है—और इसी को पहचान लेना ही आत्म-जागरण का प्रथम चरण है।

इस प्रकार माया का संबंध कार्य-कारण की निरंतर प्रक्रिया से है—यह उत्पन्न होती है, विकसित होती है और प्रलय में पुनः अव्यक्त हो जाती है।

11.6 माया का प्रभाव: सर्वत्र व्याप्त भ्रम

माया का प्रभाव अत्यंत व्यापक और बलवती है—इतना कि बड़े-बड़े मुनि, देवता और यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी इसकी सीमा को नहीं पा सके—

"ए माया छे अति बलवंती, उपनी छे मूल धणी थकी।
मुनिजन ने मनाव्या हार, सिव ब्रह्मादिक न लहे पार।।"

इसीलिए कहा गया है कि माया केवल साधारण जीवों को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण दैवी और लौकिक चेतना को भी अपने प्रभाव में ले लेती है—

"क्या दानव क्या देवता, क्या तीर्थंकर अवतार।
ब्रह्मा विष्णु महेश लों, सो भी पैदा मोह अहंकार।।"

माया का यह विस्तार चौदहों लोकों, निराकार मंडल और सम्पूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त है, जहाँ त्रिगुणों की लहरें निरंतर उठती रहती हैं और मोह-अहंकार का अंधकार फैलाती हैं—

"भवजल चौदह भवन, निराकार पाल चौफेर।
त्रिगुण लहरी उठत रहै, मोह अहं अंधेर।।"

तारतम वाणी आगे स्पष्ट करती है कि माया ने पाँचों तत्वों, चौदहों लोकों और समस्त सृष्टि को अपने वश में कर रखा है—

"तत्व सहु एणीए जीती लीधां, चौद लोक पोतानां कीधां।
वली लीधो तत्व मोह, जे थकी उपन्या सहु कोए।।"

11.7 माया के बहुआयामी स्तर

माया केवल व्यक्तिगत अनुभव तक सीमित नहीं, बल्कि अनेक स्तरों पर कार्य करती है – भीतर से लेकर बाहर तक, व्यक्ति से लेकर व्यवस्था तक - व्यष्टि से लेकर समष्टि तक।

11.7.1 आंतरिक स्तर (I) पर माया हमारे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के रूप में प्रकट होती है—"मन चित बुध अहंकार, आउध ए दज्जाल के।" माया का यह वह संसार है जो केवल हम जानते हैं। हमारे विचार, भावनाएँ, मान्यताएँ, सपने — इन सभी में माया प्रगट होती है। कोई बाहरी व्यक्ति हमारे भीतर की माया के स्वरूप को सीधे नहीं देख सकता। यह हमारी चेतना का एकांत है।

11.7.2 व्यवहारिक स्तर (IT) पर माया हमारे कार्य, आदतें, शरीर, हमारी डिजिटल गतिविधि — जो कुछ भी देखा और मापा जा सकता है, इन सब में बदल जाती है। यह माया का क्रिया का संसार है।"ए सूं माया करे बल, फेरवे कल करे विकल।"

11.7.3 संबंधात्मक स्तर, साझा संस्कृति (WE) पर— यह माया का वह संसार है जो हम मिलकर बनाते हैं, जैसे - परिवार, समाज, धर्म, भाषा, संस्कृति, साझी सामूहिक मान्यताएँ। यह वह अदृश्य धागा है जो लोगों को एक समूह में बाँधता है। यह सामूहिक चेतना का संसार है। माया इन सभी में उभरती है, जहां भ्रम सामूहिक रूप से पुष्ट होता है।

11.7.4 प्रणालीगत व्यवस्थाओं के स्तर (ITS) पर माया का वह संसार है जो चारों ओर से हमें घेरे हुए हैं, जैसे – आधुनिक सामाजिक ढाँचे, तकनीकी प्रणालियाँ, कानून, अर्थव्यवस्था, सोशल मीडिया और कृत्रिम संरचनाए (ए आई) – ये सब माया के नए नए आयाम प्रगट हो रहे हैं।

तारतम वाणी हमें माया को इन चारों दृष्टि कोण से - एक साथ समग्र दृष्टि से - देखने को कहती है। माया इन चारों क्षेत्र में एक साथ काम करती है। अतः इसे निर्मूल करने के लिए चतुरव्यूही जागनी योजना भी आवश्यक है।

स्तर (Quadrant)	**माया का क्षेत्र**	**कैसे प्रकट होती है**	**सरल समझ**
I (आंतरिक)	मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार	विचार, भावनाएँ, मान्यताएँ, भ्रम	भीतर की माया — जिसे केवल हम जानते हैं
It (व्यवहारिक)	शरीर, क्रिया, आदतें	कर्म, व्यवहार, डिजिटल गतिविधि	कर्म की माया — जो दिखती और मापी जा सकती है
We (संबंधात्मक)	परिवार, समाज, संस्कृति	सामूहिक मान्यताएँ, परंपराएँ, भाषा	साझी माया — जो मिलकर बनती है
Its (प्रणालीगत)	व्यवस्था, सिस्टम, संरचना	तकनीक, कानून, अर्थव्यवस्था, AI	सिस्टम की माया — जो हमें चारों ओर से घेरे रहती है

11.8 माया के विभिन्न शस्त्र:

तारतम वाणी के अनुसार, माया अपने अनेक प्रकार के शस्त्रों के द्वारा जीवात्मा पर निरंतर प्रहार करती रहती है। वह रोज़-रोज़ अपने शस्त्रागार में नए-नए उपाय जोड़ती रहती है और जीवनभर जीव को तीन प्रकार के दुःखों से पीड़ित करती है—आध्यात्मिक (शारीरिक और मानसिक), आधिभौतिक (पंचभौतिक जगत से उत्पन्न) और आधिदैविक (दैवी या प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न)। श्री रास ग्रंथ में कहा गया है—

"एहना आउध अमृत रूप रस, छल बल वल अकल।
अग्नि कुटिल ने कोमल, चंचल चतुर चपल।।" (१/९)

माया के इन विविध "शस्त्रों" को यदि समग्र (Integral) दृष्टि से देखने का प्रयास करें तो वे उपरोक्त चारों क्वाड्रेंट में व्यवस्थित रूप से कार्य करते हुए दिखाई देते हैं:

1. आंतरिक (I) – मन और चेतना के भीतर: माया सबसे पहले भीतर काम करती है। वह भौतिक सुखों को अमृत जैसा दिखाकर आकर्षण पैदा करती है, मन में मोह उत्पन्न करती है और काम-क्रोध की अग्नि भड़काती है। मन को चंचल, अस्थिर और भ्रमित बनाकर साधक को अपने ही विचारों में उलझा देती है। छलपूर्वक झूठ को सच और सच को झूठ प्रतीत कराती है, जिससे विवेक ढक जाता है। यहाँ माया का मुख्य शस्त्र है: भ्रम, मोह, वासना, मानसिक विक्षेप

2. संबंधात्मक (We) – संबंध, समाज और संवाद: माया केवल व्यक्ति तक सीमित नहीं रहती; वह संबंधों और समाज में भी कार्य करती है। अपनी चतुर वाणी, नम्रता के दिखावे और भावनात्मक प्रभाव से लोगों को वश में कर लेती है। कुटिलता से संबंधों में विरोध, भ्रम और गलतफहमियाँ उत्पन्न करती है, जिससे सामूहिक चेतना भी प्रभावित होती है। यहाँ माया का शस्त्र है: वाणी, भावनात्मक चाल, सामाजिक भ्रम

3. व्यवहारिक (It) – कर्म और इन्द्रिय-स्तर: इन्द्रियों के स्तर पर माया अत्यंत शक्तिशाली बन जाती है। वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के विषयों में फँसाकर जीव को भोगों में उलझाती है। बाहरी आकर्षण, रूप-सौंदर्य और सुख-साधनों के माध्यम से साधक को सत्य मार्ग से भटका देती है और कर्मों को विकृत कर देती है। यहाँ माया का शस्त्र है: इन्द्रिय-भोग, आकर्षण, बाह्य लिप्सा

4. प्रणालीगत (Its) – संरचनाएँ और व्यापक व्यवस्था: माया व्यापक स्तर पर भी सक्रिय है—वह निरंतर रूप बदलती है, नई-नई युक्तियाँ और चालें रचती है और अपनी वास्तविक प्रकृति को छिपाए रखती है। सामाजिक, सांस्कृतिक और आधुनिक तकनीकी संरचनाओं के माध्यम से वह सत्कर्मों में बाधा डालती है और भ्रम को स्थायी बना देती है। यहाँ माया का शस्त्र है: प्रणालीगत भ्रम, संरचनात्मक आकर्षण, निरंतर परिवर्तन।

"बिन वाए चढ़या बगरूला, सबको देखे बिन आँखें।
खिन में फिरवले सब लोकों, पाँऊ बिना बिन पाँखें।।" किरन्तन 60/5

इस प्रकार माया केवल एक व्यक्तिगत मानसिक भ्रम नहीं, बल्कि चारों स्तरों पर कार्य करने वाली त्रिगुणात्मक शक्ति है। वह भीतर मोह उत्पन्न करती है, संबंधों में भ्रम फैलाती है, कर्मों को भोग में बदलती है और पूरे तंत्र को इस प्रकार व्यवस्थित करती है कि जीव को अस्थायी सुख ही सर्वोच्च सत्य प्रतीत हो। इसलिए जीव को लगता है: "माया का सुख ही सर्वोपरि है", जबकि वास्तव में वह क्षणिक और परिवर्तनशील है।

"मन मांहें सवलुं देखे, जाणे माया सुख अलेखे।
धणीना सुख न पेखे, विख अमृत लागे विसेखे।।" रास 1/33

क्वाड्रन्ट	क्षेत्र (Domain)	माया की कार्यप्रणाली	मुख्य शस्त्र
I (आंतरिक)	मन, चेतना, अनुभव	माया भीतर भ्रम उत्पन्न करती है; सुख को अमृत जैसा दिखाती है; काम-क्रोध जगाती है; मन को चंचल और अस्थिर बनाती है; झूठ को सच जैसा प्रतीत कराती है	भ्रम, मोह, वासना, मानसिक विक्षेप

क्वाड्रन्ट	क्षेत्र (Domain)	माया की कार्यप्रणाली	मुख्य शस्त्र
We (संबंधात्मक)	संबंध, समाज, संवाद	माया वाणी और भावनाओं से प्रभाव डालती है; नम्रता का दिखावा; लोगों को वश में करना; संबंधों में भ्रम, विरोध और गलतफहमियाँ पैदा करना	वाणी, भावनात्मक चाल, सामाजिक भ्रम
It (व्यवहारिक)	कर्म, इन्द्रियाँ, शरीर	इन्द्रिय विषयों (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) में उलझाना; बाहरी आकर्षण से भटकाना; भोगों में फँसाना; कर्मों को विकृत करना	इन्द्रिय-भोग, आकर्षण, बाह्य लिप्सा
Its (प्रणालीगत)	संरचना, व्यवस्था, सिस्टम	माया निरंतर रूप बदलती है; नई-नई चालें रचती है; अपनी प्रकृति छिपाती है; सामाजिक, सांस्कृतिक और तकनीकी माध्यमों से भ्रम को स्थायी बनाती है	प्रणालीगत भ्रम, संरचनात्मक आकर्षण, निरंतर परिवर्तन

11.9 माया को कैसे जीता जाए

माया पर विजय तारतम ज्ञान, मानवीय प्रयास और परब्रह्म परमात्मा की कृपा से संभव है। एक ओर परब्रह्म धामधणी ने माया को शक्ति दी है जिससे वह जीवों को उनके परम लक्ष्य से विचलित करती है, और दूसरी ओर उसी धामधणी ने जीवों को जागृत करने के लिए अमोघ शस्त्र—श्री तारतम वाणी प्रदान की है। जब मनुष्य आत्मा इस तारतम विज्ञान को हृदय में धारण करती है, तब वह माया की पहचान कर उससे ऊपर उठ सकती है।

जब साधक माया के प्रहार को पहचानकर उसके विरुद्ध सही आध्यात्मिक शस्त्र धारण करता है, तभी वह उससे बच सकता है। सद्गुरु ने माया से लड़ने के लिए तीन मुख्य दिव्य साधन बताए हैं—शुकर (कृतज्ञता), गरीबी (विनम्रता) और सबर (संतोष)। धामधणी के उपकारों के प्रति कृतज्ञ रहना, स्वयं को सुन्दरसाथ की चरणरज मानकर विनम्रता में रहना, और प्रेम-सेवा में संतोष रखना—ये ही माया के विरुद्ध सबसे शक्तिशाली शस्त्र हैं।

जब धामधणी की कृपा प्राप्त होती है, तब सब कार्य सहज सिद्ध होने लगते हैं—

"जब धणी धणवट करे, तब बल वेरी न हरे।
वली गया काम सराडे चढे, मन चितव्या कारज सरे।।" (श्री रास १/१७)

परंतु इस कृपा के योग्य बनने के लिए साधक को अपने जीवन को शुद्ध बनाना आवश्यक है। सत्य और अहिंसा का पालन, नशे और मांसाहार का त्याग, चरित्र की पवित्रता, तथा इन्द्रियों को भड़काने वाले साधनों से दूर रहना—ये सब आवश्यक

अनुशासन हैं। साथ ही परमधाम के स्वरूप का चिंतन और श्री मुखवाणी का मनन करते रहने से मन शुद्ध होता है और माया की पकड़ ढीली पड़ने लगती है।

इस प्रकार, जब साधक प्रेम, विनम्रता, संयम और तारतम ज्ञान के सहारे जीवन जीता है, तब वह धीरे-धीरे माया की शक्तियों को पार कर अखण्ड आनंद और परमधाम के मार्ग की ओर अग्रसर हो जाता है।

11.10 माया-बल निर्मूलन हेतु जीवन रहनी की कुछ प्रैक्टिस:

1. भीतर का फिल्टर (भीतरी स्व – I): माया की सबसे सूक्ष्म और सबसे शक्तिशाली कार्यशाला भीतर है — हमारी चेतना में, हमारे विचारों की परतों में। जो हम देखते हैं, वह संसार नहीं होता — हमारी दृष्टि होती है।"जैसी दृष्टि, तैसी सृष्टि।" तारतम वाणी का वचन है:

ज्यों उठें सत सुख के तरंग, त्यों त्यों उड़े सुपन को संग।
जब याद आवे सुख अपनों, तब छूटेगो झूठो सुपनो।। किरन्तन ७६/१५

जैसे-जैसे आपके हृदय में परमधाम के अखण्ड सुखों की लहरें आने लगेंगी, वैसे-वैसे सांसारिक सुखों से आसक्ति हटती जायेगी। जब ध्यान में परमधाम के सुखों की अनुभूति होने लगेगी, तब यह झूठा स्वप्नमयी जगत छूट जायेगा।

इस से विपरीत भी उतना ही सच है: ज्यों-ज्यों मन में संसारिक सुखों की तरंगें उठती हैं, त्यों-त्यों परमधाम के सत्य सुखों की स्मृति क्षीण होती जाती है। जब ध्यान बाहरी भोग, आसक्ति और माया के आकर्षणों में उलझा रहता है, तब आत्मा अपने निजधाम के आनंद को भूल जाती है और यह झूठा स्वप्न-जगत ही सत्य प्रतीत होने लगता है। इस प्रकार, जब तक चितवनि संसार में बंधी रहती है, तब तक परमधाम का अखण्ड सुख अप्रकट ही रहता है।

यहाँ माया कई रूप लेती है। मानसिक भ्रम (cognitive bias) — वह झुकाव जो हमें वही दिखाता है जो हम देखना चाहते हैं। अहंकार की कहानियाँ — "मैं पीड़ित हूँ", "मैं सही हूँ", "मेरे साथ ही ऐसा होता है।" ये कहानियाँ इतनी बार दोहराई जाती हैं कि वे सत्य लगने लगती हैं। और धीरे-धीरे यही विकृत दृष्टि हमारी filtered reality बन जाती है — जिसमें हम जीते हैं, बिना जाने कि यह वास्तविकता नहीं, एक निर्मित संसार है। यहाँ माया = विकृत दृष्टि है।

जीवन रहनी प्रैक्टिस: (अ) साक्षी ध्यान: प्रतिदिन कुछ पल के लिए केवल देखने का अभ्यास करें — विचारों को, भावनाओं को — बिना उनसे तादात्म्य बनाए। जब कोई विचार आए, तो भीतर से कहें: "यह विचार है — मैं नहीं।" यह साक्षी भाव ही माया के भीतरी फिल्टर को पारदर्शी बनाता है। (ब) मान्यता-परीक्षण: सप्ताह में एक बार

एक ऐसी मान्यता चुनें जिस पर आप अडिग हैं — और उससे पूछें: "क्या यह मेरा अनुभव है, या किसी और का दिया हुआ विचार?" यह अभ्यास अहंकार की कहानियों की जड़ को हिलाता है।

2. झूठी अभिव्यक्ति का संसार (व्यवहार – IT): जब भीतर का फिल्टर बाहर आता है — व्यवहार में, क्रियाओं में, हमारे डिजिटल अस्तित्व में — तो माया का दूसरा रूप प्रकट होता है। आज के युग में यह क्षेत्र सोशल मीडिया का क्षेत्र बन गया है। हम एक सजाई-संवारी पहचान (curated identity) बनाते हैं — सुंदर तस्वीरें, चुनिंदा विचार, एक ऐसा "मैं" जो वास्तविक नहीं, बल्कि वांछित है। नियमों की श्रृंखला (एल्गोरिद्म) आधारित स्क्रॉलिंग (algorithm-driven scrolling) एक आदत चक्र (habit loop) बना देती है। और धीरे-धीरे यह बाहरी छवि ही "स्व" बन जाती है। तारतम वाणी इस दशा को पकड़ती है कि हम अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर एक निर्मित प्रतिबिम्ब में जीने लगता है। यहाँ माया = झूठी अभिव्यक्ति है।

जीवन रहनी प्रैक्टिस: (अ) डिजिटल विराम: सप्ताह में एक दिन — या प्रतिदिन एक निश्चित समय — सोशल मीडिया और स्क्रीन से पूर्ण विराम लें। यह विराम केवल आराम नहीं, बल्कि पहचान की वापसी है — उस स्वरूप की ओर जो किसी "like" का मोहताज नहीं। (ब) सचेत अभिव्यक्ति: जब भी कुछ share करने की इच्छा हो, एक पल रुककर पूछें: "यह मेरी वास्तविक अभिव्यक्ति है, या दूसरों की स्वीकृति की चाह?" यह एक छोटा-सा प्रश्न झूठी अभिव्यक्ति की जड़ को काटता है।

3. सामूहिक भ्रम का ताना-बाना (साझा संस्कृति - WE): माया जब केवल व्यक्ति को नहीं, पूरे समूह को अपने रंग में रंग लेती है — तब वह सामूहिक भ्रम बन जाती है। यहाँ व्यक्ति केवल वही बातें सुनता और देखता है जो उसकी अपनी सोच से मिलती हैं, इसलिए इको चैंबर (echo chamber) सबसे स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। यहाँ अपना सबसे स्पष्ट रूप लेता है। समूह अपनी-अपनी कथाएं (narratives) बनाते हैं।"हम विरुद्ध वे" की रेखा खिंच जाती है। जो विचार समूह को अनुकूल न हों, वह अस्वीकार्य हो जाता है — चाहे वह कितना भी सत्य हो। तारतम वाणी की यह पंक्ति इस दशा का सटीक चित्र खींचती है:

"जाहिर झूठा खेलहीं, हिरदे अति अंधेर।
कहें हम सांचे और झूठे, यों फिरें उलटे फेर।"

यह केवल किसी एक व्यक्ति की नहीं — पूरे समाज, पूरी संस्कृति की स्थिति बन सकती है। यहाँ माया = सामूहिक भ्रम है।

जीवन रहनी प्रैक्टिस: (अ) संवाद-साधना: नियमित रूप से उन लोगों से बात करें जो आपसे भिन्न विचार रखते हैं — न बहस करने के लिए, बल्कि सुनने के लिए।

सुनना, बिना खंडन की तैयारी के — यह सामूहिक echo chamber को तोड़ने का सबसे प्रभावी उपाय है। (ब) "हम" की परिधि का विस्तार: जब भी "हम विरुद्ध वे" का भाव उठे, उसे पहचानें और जानबूझकर "वे" की एक अच्छाई खोजें। यह अभ्यास समूह-माया की दीवारों में दरारें डालता है।

4. प्रणालीगत माया (व्यवस्था - ITS): माया का सबसे विस्तृत और सबसे कम दिखने वाला रूप है — व्यवस्था में। वे सभी संरचनाएँ, प्रणालियाँ, तंत्र जो समाज को चलाते हैं और जो हमें दिखते भी नहीं। Social media algorithms, news ecosystems, आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे — ये सब मिलकर एक Engineered Illusion रचते हैं।

तारतम वाणी का वचन "लोक चौद मायानों फंद" यहाँ अपनी पूरी गहराई में समझ आता है। यह "फंद" कोई व्यक्तिगत कमज़ोरी नहीं — यह पूरी व्यवस्था का स्वभाव है। नियमों की श्रृंखला (Algorithm) जानता है कि क्रोध और भय सबसे अधिक engagement देते हैं — इसलिए वह उन्हीं को amplify करता है।

और इस प्रणालीगत माया का एक और सूक्ष्म — और आज के युग में अत्यंत प्रासंगिक — रूप उभरा है: AI-निर्मित आध्यात्मिक सामग्री। परमधाम के चित्र, प्रेमानंद लीला के दृश्य, तारतम वाणी की प्रस्तुतियाँ — AI इन्हें इतने सुंदर और भव्य रूप में प्रस्तुत कर सकता है कि कई श्रद्धालु इन्हें साक्षात् दिव्य प्रमाण मानने लगते हैं। यह माया का डिजिटल-आध्यात्मिक संस्करण है — जहाँ नक्शे को मंज़िल समझ लिया जाता है। AI परमधाम की कल्पना को दृश्य दे सकता है, परंतु वह अनुभव नहीं दे सकता जो तारतम वाणी इंगित करती है। वह अनुभव शब्दों और चित्रों के पार है। यहाँ माया = प्रणालीगत भ्रम है।

जीवन रहनी प्रैक्टिस: (अ) व्यवस्था-बोध: यह जानने का अभ्यास करें कि आप जो देख रहे हैं, वह क्यों दिखाया जा रहा है — और किसने बनाया है। AI-निर्मित आध्यात्मिक सामग्री को श्रद्धा का विषय बनाने से पहले एक पल रुककर पूछें: "क्या यह मेरे भीतर के अनुभव को जगाता है, या केवल बाहरी आकर्षण है?" (ब) सचेत सूचना-खुराक: अपनी सूचना-खुराक को जानबूझकर चुनें — न नियमों की श्रृंखला (algorithm) जो चुनाव करे। विविध स्रोत, विविध दृष्टिकोण, और नियमित मौन — ये तीनों मिलकर प्रणालीगत माया के प्रभाव को क्षीण करते हैं।

11.11 माया के संदर्भ में नक्शा और मंज़िल: AI और आध्यात्मिकता

माया के चारों क्वाड्रेंट को ध्यान में रखकर देखें तो AI आध्यात्मिक क्षेत्र में एक नया और अत्यंत सूक्ष्म आयाम लेकर आया है। AI आज परमधाम के ऐसे चित्र बना सकता है जो देखने में दिव्य प्रतीत हों, प्रेमानंद लीला के ऐसे दृश्य रच सकता है जो मन को भाव-विभोर कर दें, और तारतम वाणी के अनेक पक्षों को अत्यंत सुंदर, सुव्यवस्थित

और प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत कर सकता है। परंतु यहीं माया का सूक्ष्मतम जाल भी छिपा है। जो साधन भीतर ले जाने के लिए था, यदि वही साधक को बाहर के दृश्य, शब्द और प्रस्तुति में रोक दे, तो वह माया का शस्त्र बन जाता है।

आंतरिक स्तर (I) पर AI साधक के मन में दिव्यता का सुंदर आभास पैदा कर सकता है, पर यदि साधक उस आभास को ही वास्तविक अनुभव मान ले, तो यह विकृत दृष्टि बन जाती है। परमधाम चर्म-दृष्टि का विषय नहीं, आत्म-अनुभव का विषय है। AI-निर्मित चित्र सुंदर हो सकते हैं, पर वे परमधाम नहीं हैं; वे केवल संकेत हैं। यदि मन चित्र देखकर तृप्त हो जाए और भीतर की साधना रुक जाए, तो यही मोह, भ्रम और मानसिक विक्षेप है।

व्यवहारिक स्तर (It) पर AI आध्यात्मिकता को प्रस्तुति, पोस्टर, वीडियो, चित्र और भाषण में बदल देता है। यह उपयोगी हो सकता है, परंतु खतरा तब है जब साधना की जगह "content creation" ले लेती है। व्यक्ति को लगता है कि उसने सुंदर आध्यात्मिक सामग्री बना ली, इसलिए वह आगे बढ़ गया। परंतु वास्तविक प्रगति भीतर के परिवर्तन, प्रेम, विनय, सेवा और जागृति से मापी जाती है—चित्रों और प्रस्तुतियों से नहीं।

संबंधात्मक स्तर (We) पर AI-निर्मित आध्यात्मिक सामग्री समूहों में तेजी से फैलती है। यदि विवेक न हो, तो लोग सुंदर चित्रों और प्रभावशाली शब्दों को ही प्रमाण मानने लगते हैं। इससे सामूहिक भ्रम बन सकता है—जहाँ समूह मिलकर नक्शे को ही मंज़िल मान लेता है। श्रद्धा जागे तो शुभ है, पर यदि विवेक सो जाए तो वही श्रद्धा झूठी अभिव्यक्ति और सामूहिक माया बन जाती है।

प्रणालीगत स्तर (Its) पर AI, algorithms और digital platforms मिलकर एक नई "digital-spiritual economy" बना देते हैं। जो सामग्री अधिक भावुक, आकर्षक और चमत्कारी दिखती है, वही अधिक फैलती है। इस प्रकार आध्यात्मिकता भी engagement, likes और visuals के तंत्र में बँध सकती है। यही प्रणालीगत माया है—जहाँ साधना का गंतव्य धीरे-धीरे दृश्य आकर्षण और डिजिटल उपभोग में बदल जाता है।

इसलिए साधक के लिए मूल कसौटी बहुत सरल है: क्या यह AI-निर्मित सामग्री मुझे भीतर ले जाती है या बाहर ही रोक देती है? क्या इससे मेरी साधना, विनय, प्रेम और आत्मचिंतन गहरा होता है या केवल मन तृप्त होता है? यदि AI साधना, अध्ययन और स्मरण का सहायक बने, तो वह कृपा का साधन है। पर जिस क्षण वह स्वयं गंतव्य बन जाए, वह माया बन जाता है।

इसी संदर्भ में यह चौपाई अत्यंत सार्थक है—

"मन मांहें सवलुं देखे, जाणे माया सुख अलेखे।
धणीना सुख न पेखे, विख अमृत लागे विसेखे।।" रास 1/33

अर्थात् माया में फँसा मन माया के सुख को ही अपार मानता है और धणी के अखंड सुख को नहीं देख पाता। विष भी उसे अमृत जैसा लगता है। AI के युग में भी यही सावधानी आवश्यक है—सुंदर दृश्य, प्रभावशाली शब्द और डिजिटल आध्यात्मिकता यदि धणी के वास्तविक अनुभव की ओर ले जाएँ तो वे साधन हैं; यदि वहीं रोक दें तो वे माया के नए शस्त्र हैं।

अंतिम सार: AI नक्शा बना सकता है, मंज़िल नहीं।AI संकेत दे सकता है, साक्षात्कार नहीं। AI भाषा और चित्र दे सकता है, पर प्रेमानुभव भीतर ही जागता है।

11.12 भय: माया का उपकरण और जागृति का संकेत

तारतम वाणी के अनुसार भय (डर/बीक) केवल नकारात्मक भावना नहीं, बल्कि चेतना की स्थिति का संकेत है। माया का मूल कार्य आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप से हटाकर अस्थायी जगत में उलझाना है, और भय उसी उलझन का अनुभवात्मक रूप बनकर प्रकट होता है। जहाँ "मैं" और "मेरा" का भाव है, वहाँ किसी न किसी रूप में भय अवश्य जन्म लेता है—कुछ खो जाने का डर, असुरक्षा, अपमान, असफलता, अस्वीकृति या प्रिय वस्तु से वियोग का भय। इस प्रकार भय माया का परिणाम भी है और यह संकेत भी कि चेतना किस बिंदु पर बंधी हुई है। इसलिए भय को केवल शत्रु मानकर दबाना नहीं, बल्कि समझना आवश्यक है।

तारतम दृष्टि भय को चेतना के विभिन्न स्तरों पर अलग-अलग रूपों में देखती है। प्रारंभिक स्तर पर भय अज्ञान और मायिक भ्रम से उत्पन्न होता है। इसके बाद दैवी या नैतिक भय व्यक्ति को मर्यादा और सजगता प्रदान करता है—

"भली बुरी किनकी नहीं, डरता रहे सुभान…।"

यह भय दंड का नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व का है। किंतु जब साधक भीतर की ओर मुड़ता है और अपने दोषों, अहंकार, ईर्ष्या, असुरक्षाओं और छिपी प्रवृत्तियों को देखने लगता है, तब एक और सूक्ष्म भय उत्पन्न होता है। यही "आत्म-जागरूकता का भय" या shadow fear है। वाणी कहती है—

"मैं देख तकसीर अपनी… देख डरी…"

यह भय वास्तव में साधना का प्रारंभ है, क्योंकि यहाँ व्यक्ति पहली बार अपने ही भीतर छिपे अंधकार से परिचित होता है। इस प्रकार भय केवल बंधन नहीं रहता; वह जागृति का द्वार बनने लगता है।

जैसे-जैसे चेतना विकसित होती है, भय का स्वरूप भी बदलता जाता है। निम्न स्तरों पर भय अस्तित्व, शक्ति, प्रतिष्ठा और पहचान से जुड़ा रहता है; उच्चतर चेतना में वही भय विरह और प्रेम की संवेदनशीलता में बदल जाता है—

"जाने जिन कोई जुदी पड़े…"

यह दंड का भय नहीं, बल्कि प्रियतम से दूर हो जाने की सूक्ष्म पीड़ा है। अंततः प्रेम की चरम अवस्था में भय का आधार ही समाप्त होने लगता है—

"इस्क खसम बतावहीं, उड़ाए दिया सब डर…"

क्योंकि भय का मूल अलगाव (separation) है, जबकि प्रेम का सार एकत्व (union) है। जहाँ अहंकार और अलगाव कम होते हैं, वहाँ भय भी ढीला पड़ने लगता है। इसी कारण वाणी प्रेम को भय का अंतिम रूपांतरण मानती है।

तारतम वाणी भय से भागने की नहीं, उसके साथ सजग रहने की शिक्षा देती है। भय को दबाने से वह और गहरा होता है, परंतु उसे पहचानकर उसके साथ उपस्थित रहने से चेतना विकसित होने लगती है। जब भी भय उठे, साधक को पहले रुककर उसे देखना चाहिए—"यह भय है"—फिर उसके साथ रहते हुए भी एक छोटा साहसी कदम आगे बढ़ाना चाहिए। इसी दिशा में वाणी संकेत करती है—

"इन दुख से कोई जिन डरो…"

अर्थात् दुःख और भय से भागना नहीं, बल्कि सजगता और समर्पण के साथ उनके बीच से गुजरना ही वास्तविक साधना है। जब साधक हृदय को धनी में स्थिर कर देता है, तब धीरे-धीरे भय विरह में और विरह प्रेम में रूपांतरित हो जाता है।

"हिसाब जिनों हाथ हक के… ताको डर जरा कहूं नाहें…"

अतः स्पष्ट होता है कि भय अपने आप में न अच्छा है, न बुरा। अज्ञान में वही भय बंधन बनता है; नैतिक चेतना में मर्यादा बनता है; आत्म-दर्शन में जागृति का कारण बनता है; और प्रेम में पूर्णतः विलीन हो जाता है। यही भय की आध्यात्मिक यात्रा है—माया के भय से जागृति तक और जागृति से प्रेम की निर्भय अवस्था तक।

11.13 माया का रहस्य: महेर से जुड़ाव में साधन, जुदाई में विष

तारतम दृष्टि के अनुसार माया केवल बंधन नहीं, बल्कि चेतना के विकास का माध्यम भी है। इसे अनमोल अवसर के रूप में भी दर्शाया है। यह सृष्टि-खेल किसी दंड के लिए नहीं, बल्कि महेर (कृपा) के लिए रचा गया है—

"ए खेल हुआ महेर वास्ते, माहे खेलावे सब महेर।
जाथें महेर जुदी हुई, तब होत सब जहर।" सागर 15/5

अर्थात् जब तक यह जीवन-खेल परम कृपा से जुड़ा रहता है, तब तक सभी अनुभव साधक को आगे बढ़ाने वाले होते हैं; पर जैसे ही यह संबंध टूटता है, वही अनुभव बंधन और विष समान प्रतीत होने लगते हैं।

इसलिए माया से पार होना केवल बौद्धिक समझ का विषय नहीं, बल्कि सही जुड़ाव और जागृति का विषय है—"हवे माया नो जे पामसे पार, तारतम करसे तेह विचार।" जो साधक तारतम ज्ञान का विचार करता है, वह समझता है कि माया में फँसना नहीं,

बल्कि उससे सीखकर आगे बढ़ना है। इसके लिए साधना, जागरूकता, सत्संग और समर्पण अनिवार्य हैं।

अंततः तारतम वाणी स्पष्ट करती है कि इस पूरी यात्रा का सार प्रेम है—"प्रेम पिया जी के आउध" और "प्रेम सेन्या है अति बड़ी, जीते सब संक।" अर्थात् प्रेम ही वह अंतिम शक्ति है, जो माया के सभी बंधनों को समाप्त कर देती है। जब चेतना महेर से जुड़ती है, तब माया भी साधन बन जाती है; और जब यह जुड़ाव टूटता है, तब वही माया विष बन जाती है।

11.14 निष्कर्ष: माया—बाधा नहीं, मार्ग

अतः माया न पूर्ण सत्य है, न पूर्ण असत्य—वह एक माध्यम है जिसके द्वारा चेतना अनुभव करती है, विकसित होती है और अंततः अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानती है। माया से भागना समाधान नहीं; उसे समझना और उसके पार जाना ही वास्तविक साधना है। यही यात्रा जीव को अज्ञान से ज्ञान, माया से जागृति और जागृति से परमधाम के प्रेमानंद तक ले जाती है।

इस प्रकार माया बाधा नहीं, बल्कि मार्ग है; भय शत्रु नहीं, बल्कि संकेत है; और प्रेम वह अंतिम सत्य है, जिसमें सभी भेद अंततः विलीन हो जाते हैं।

निजानंद दर्शन : चेतना की त्रिस्तरीय संरचना और उसकी गतियाँ

जीव, आत्मा, परात्मा तथा बद्ध–मुघुक्षू–मुक्त

संम्पूर्ण सृष्टि एक चेतन लीला है, जिसमें तीन सृष्टियाँ और चेतना की तीन गतियाँ कार्थरत हैं।
इनका तात्परय समझे बिना जीव, आत्मा, परात्मा और परब्रह्म के संबंध का यथार्थ बोध संभव नहीं।

1. त्रिस्तरीय चेतना-संरचना (तीन सृष्टियाँ और तीन चेतना-रूप)

उर्ध्वसम्मा (चेतना का विकास)

ब्रह्म सृष्टि
(अक्षरातीत परमधाम)
नित्य-मुक्त चेतनाएँ

परात्मा
जाग्रत, नित्य-मुक्त
प्रेरक चेतना
(जागरूक विलग्माय)

वहाँ मुम्कि समापत है। अन्य चेतनाओं में जागरण प्रेरणा स्वपविक होती है।

ईश्वरी सृष्टि
(अक्षर ब्रह्म)
दिव्य, जाग्रत
चेतनाएँ

आत्मा
साक्षी, शुद्ध
चेतना
(न बंधनी, न कर्म करती)

जाग्रत विवेक, साक्षी-स्थिति, मार्गदर्शन और परिष्कार का क्षेत्र।

जीव सृष्टि
(माया का क्षेत्र)
मायाबद्ध चेतना

जीव
अनुभवकर्ता
माया-बद्ध चेतना
(कर्म-कत, भोगी वे जुड़ी)

सुख-दुःख का अनुभव, जन्म-मरण का चक, हर प्रयास का शिकारी।

2. चेतना की गतियाँ (त्रि-यृतियाँ)

ये स्थिर वर्ग नहीं, बल्कि गतिशील यृतियाँ हैं।

1. बद्ध-यृति
माया, आसक्ति, अंशग्रन से बंधी चेतना
संसार-लीला में उलझी रहती है।

2. मुघुक्षू-युति
बंधन से ऊपर उठने की तीव्र
आकांक्षा, मुक्ति की इच्छा,
जागरण की शुरूआत।

3. मुक्त-यृति
साक्षी, अनासक्त, प्रकाशमय
चेतना – बंधन से परे
स्थित रहती है।

ये तीनों गृतियाँ प्रत्येक सृष्टि-स्तर पर
मिन्न रूप में प्रकट होती हैं।

3. सृष्टि × चेतना × गृति : एक समेकित दृष्टि

सृष्टि	चेतना रूप	प्रमुख कार्य	गृति की अभिव्यक्ति
ब्रह्म सृष्टि (अक्षरातीत)	परात्मा (जाग्रत, नित्य-मुक्त)	जागरण प्रेरणा, प्रेरक-लीला, साक्षी का परिषद	मुक्त स्वभाव (आगरूगन विलग्माय)
ईश्वरी सृष्टि (अक्षर ब्रह्म)	आत्मा (साक्षी, शुद्ध)	विवेक, साक्षी-स्थिति, लीला का अनुभव, जीवन का परिष्कार	परिष्कृत मुघुक्षा और मायाविग्गन
जीव सृष्टि (माया-क्षेत्र जगत)	जीव (अनुभवकर्ता)	अनुभव, कर्म, भोग, जन्म-मरण का चक	बद्ध → मुघुक्षू → मुक्त (यात्रा रूपद)

4. चेतना की यात्रा (अंतर्मूर्छी मार्ग)

जीव	आत्मबोध	मुघुक्षा	परात्म प्रभाव	अखंड मुक्ति
अनुभव, बंधन, अज्ञान	साक्षी जागरण, स्व-विचार	मुक्ति की तीव्र आकांक्षा	जागरण प्रेरणा, कृपा, एकता का संयोग	अक्षरातीत प्रेमानंद में प्रविष्ठा

जीवभाव → आत्मभाव → परात्मभाव → प्रेमानंद

5. सवलीत्क ब्रह्म स्वर (सूक्ष्म स्रोत)

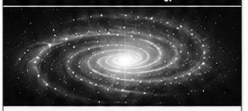

सत्-स्वरूप अक्षर ब्रह्म का नित्य-क्षेत्र,
जहाँ चेतना नित्य-एक और प्रगगत है।
पर लीला की संभायता विज्ञमान रहती है।
वहीं से - परात्मानां, सृष्टि- और गुरूआग्र होती है।

न माया-मुक्त हर जगह,
न अक्षरातीत परात्मा की पूर्णता,
बल्कि दोनों के बीच का सूक्ष्म स्रोत-स्रोत।

6. विशेषता : यह ब्रंझांड (जागनी-लीला)

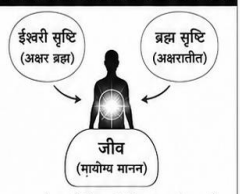

कुछ सूक्षोण्य जीवों पर दोनों उच्चतर चेतनाओं
का अध्यारोपण (superimposition) होता है।
वे मध्य सव्यं चेतागन्तीं के माध्यम बनते हैं।

7. अंतिम समेकित सूत्र

जीव = अनुभवकर्ता
माया से बंधवित चेतना

आत्मा = साक्षी
शुद्ध, अकर्ता, अहिकार

परात्मा = जागरण-प्रेरक
नित्य-मुक्त, जाग्रत चेतना

- बद्ध = बंधन
- मुघुक्षू = खोज
- मुक्त = प्रकाश

} चेतना की आंतरिक गतियाँ

अंतिम लक्ष्य : अखंड मुक्ति = अक्षरातीत प्रेमानंद में प्रतिष्ठा
चेतना बंधन में नहीं रहती, जागरण में खिलती है – यही निजानंद दर्शन की धुरी है।

संदर्भ सूची:
भाग 2: अध्याय – 12
परमधाम की अवधारणा: तात्त्विक, दार्शनिक एवं अनुभवात्मक अध्ययन

12.1 प्रस्तावना

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में परम सत्य की खोज अनेक रूपों में व्यक्त हुई है। उपनिषदों ने उसे ब्रह्म कहा, गीता ने पुरुषोत्तम, भागवत ने रसराज श्रीकृष्ण, सूफियों ने हक़ और इश्क़, तथा भक्तिकालीन संतों ने प्रियतम या धामधनी। किन्तु तारतम वाणी इन सभी संकेतों को एक व्यापक "तारतम्य" में रखकर परमधाम की ऐसी अवधारणा प्रस्तुत करती है जिसमें निराकार और साकार, अद्वैत और प्रेम, ज्ञान और लीला, नूर और रस — सभी का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यहाँ परमधाम कोई काल्पनिक स्वर्ग या मानसिक अवधारणा नहीं, बल्कि एक वास्तविक, चेतन, प्रेममय और नित्य धाम है, जहाँ परब्रह्म अपने अनन्त प्रेमानन्द-विलास में स्थित हैं।

वाणी कहती है—

"वाणी मेरे पिऊ की, न्यारी जो संसार।
निराकार के पार थे, तिन पार के भी पार।।" — प्रकाश हिन्दी 37/3

अर्थात् यह वाणी केवल संसार के धार्मिक विचारों तक सीमित नहीं, बल्कि निराकार से भी परे स्थित उस परम सत्य की ओर संकेत करती है जो अक्षरातीत परमधाम के रूप में प्रकट होता है।

12.2 परमधाम: प्रेमलीला का अखण्ड क्षेत्र

तारतम वाणी के अनुसार परमधाम कोई मानसिक कल्पना, ध्यानगत अमूर्तन या केवल प्रतीकात्मक लोक नहीं है। वह एक वास्तविक, चिन्मय, प्रेममय, स्वयंप्रकाशित, नित्य और कालातीत धाम है। वहाँ परब्रह्म, परात्माएँ और वहाँ का कण-कण प्रेमानन्द-लीला में स्थित है। वहाँ जड़ता नहीं, संघर्ष नहीं, भय नहीं, अपूर्णता नहीं; वहाँ केवल प्रेम, नूर, चेतना और आनन्द का अखण्ड विस्तार है।

निराकार की अनुभूति शांति दे सकती है, किन्तु तारतम दृष्टि में आनन्दयुक्त परमशांति नित्य चिद्घन साकार परमधाम में ही पूर्ण रूप से समझी जाती है। इसीलिए तारतम वाणी आत्मा को केवल शून्य या निर्विशेषता की ओर नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण उपस्थिति और संबंध की ओर ले जाती है। वहाँ परमात्मा "रसराज" हैं और आत्माएँ उनकी प्रेम-लीला की जागृत सहभागी हैं। जैसे बिना मंज़िल के यात्रा का गाढ़ापन नहीं बनता, वैसे ही बिना

स्पष्ट ध्येय के ध्यान भी परिपक्व नहीं होता। परमधाम की शोभा, लीला और प्रेम-संबंध आत्मा के ध्यान को दिशा और गहराई प्रदान करते हैं।

वाणी कहती है—

"इसकें अरस वतन बताया, इसकें सुख पेड का पाया।।" — सागर 1/26

अर्थात् परमधाम इश्क़ का वतन है; वहाँ का मूल तत्व प्रेम है।

12.3 नूरमय और चेतन परमधाम

परमधाम पंचतत्त्व से बना कोई भौतिक लोक नहीं है। वह परब्रह्म धनी के अद्वैत नूर-तत्त्व से निर्मित है। इसलिए वहाँ का प्रत्येक रूप, प्रत्येक महल, प्रत्येक वन, प्रत्येक जलधारा और प्रत्येक श्रृंगार चेतन है। वहाँ का सौन्दर्य जड़ पदार्थों की तरह स्थिर नहीं, बल्कि प्रेमानन्द से स्पंदित है।

वाणी कहती है—

"अरस सबे चेतन, हर चीज में सब गुन।
सब न्यामतें एक चीज में, कमी न माहें किन।।" — सिनगार 1/13

तारतम वाणी में पर्वत, समुद्र, नीलगगन, वन-उपवन, पशु-पक्षी, महल, हीरे-जवाहरात और अट्टालिकाओं का वर्णन मिलता है, किन्तु इन्हें संसार के भौतिक पदार्थों की तरह नहीं समझना चाहिए। ये अनुभव-सन्निकटन के उपकरण हैं, वास्तविकता नहीं। उनका उद्देश्य आत्मा को उस असीम चेतन-सौन्दर्य की ओर उन्मुख करना है जिसे सामान्य बुद्धि सीधे ग्रहण नहीं कर सकती। परमधाम मन की कल्पना, चित्त की धारणा और बौद्धिक अनुमान से नहीं जाना जा सकता; वह तारतम ज्ञान, अनन्य श्रद्धा और प्रेमलक्षणा भक्ति से ही प्रकट होता है। यही ब्रह्मप्रियाओं का नित्य सुहाग है।

12.4 "बेसुमार लाए सुमार में": अनन्त का सीमित में अवतरण

तारतम दर्शन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है—

"बेसुमार लाए सुमार में, माहें आवने दिल रूहन।।" — सागर 1/57

अर्थात् परमात्मा ने अपने असीम और अवर्णनीय स्वरूप को सीमित रूपों में व्यक्त किया ताकि आत्मा उसका अनुभव कर सके। अनन्त सत्य सीधे सीमित बुद्धि द्वारा धारण नहीं किया जा सकता; इसलिए लीला, रस, रूप, श्रृंगार और संबंधों के माध्यम से उसे आत्मा के लिए अनुभवगम्य बनाया जाता है।

जिस प्रकार बिजलीघर में असीम ऊर्जा होती है, पर उसे देखने के लिए बल्ब की आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार परमधाम की असीमता को आत्मा तक पहुँचाने के लिए रूप और लीला की आवश्यकता है। इसलिए तारतम वाणी में वर्णित सौन्दर्य केवल काव्यात्मक अलंकरण नहीं, बल्कि चेतना को जागृत करने का माध्यम है।

12.5 कालातीत परमधाम

परमधाम की एक अत्यन्त विशिष्ट विशेषता उसकी कालातीतता है। वहाँ समय बहता नहीं; वहाँ सब कुछ नित्य वर्तमान है। इसीलिए वाणी कहती है—

"सोई घड़ी ने सोई पल…" — सागर

अर्थात् परमधाम में जागृत होने पर परात्माओं को ऐसा अनुभव होगा मानो ब्रजलीला, रासलीला और वर्तमान जागनी-लीला — तीनों को एक ही क्षण में देख लिया गया हो। वहाँ अतीत, वर्तमान और भविष्य का विभाजन नहीं है। यह कालातीतता परमधाम को संसार की परिवर्तनशीलता से पूर्णतः भिन्न बनाती है।

12.5.1 परमधाम के आठ दिव्य गुण: अखण्ड चेतना और प्रेमानन्द के तात्त्विक आयाम

तारतम वाणी में परमधाम का वर्णन केवल किसी दिव्य लोक के रूप में नहीं, बल्कि चेतना की परम पूर्णता के रूप में किया गया है। वहाँ का प्रत्येक पक्ष, प्रत्येक सागर, प्रत्येक लीला और प्रत्येक संबंध एक ऐसे अस्तित्व की ओर संकेत करता है जहाँ अपूर्णता, संघर्ष, भय, अभाव और विखंडन का कोई स्थान नहीं है। परमधाम की इस अखण्ड अवस्था को समझाने के लिए कुछ मूल दिव्य गुणों की चर्चा की जाती है। ये गुण केवल दार्शनिक परिभाषाएँ नहीं, बल्कि आत्मा को परमधाम की अनुभूति की ओर उन्मुख करने वाले चेतन संकेत हैं।

12.6.1 भूमा: प्रचुर परम आनंद

उपनिषदों में "भूमा" शब्द का प्रयोग उस अवस्था के लिए हुआ है जहाँ सीमित सुख समाप्त होकर अनन्त आनन्द का अनुभव होता है। तारतम दृष्टि में परमधाम "भूमा" का क्षेत्र है — वहाँ आनन्द किसी कारण पर निर्भर नहीं, बल्कि अस्तित्व का स्वभाव है।

संसार में सुख क्षणिक है, क्योंकि वह परिस्थिति, वस्तु, संबंध और मनःस्थिति पर निर्भर है। वहाँ सुख के साथ भय, हानि और परिवर्तन जुड़ा रहता है। पर परमधाम में आनन्द नित्य, स्वाभाविक और अखण्ड है। वहाँ आत्मा आनन्द "प्राप्त" नहीं करती; वह स्वयं आनन्द में स्थित हो जाती है।

इसीलिए वाणी बार-बार "आनन्द", "विलास", "रस", "इश्क" और "मंगल" शब्दों का प्रयोग करती है। परमधाम का मूल वातावरण ही प्रेमानन्द है।

12.6.2 अभावरहितत्व: किसी कमी का न होना: संसार का मूल अनुभव "अभाव" है। मनुष्य कुछ न कुछ खोजता रहता है — प्रेम, मान्यता, सुरक्षा, ज्ञान, शक्ति या संतोष। यही अभाव जीवन को बेचैन बनाता है।

परमधाम में यह अभाव समाप्त हो जाता है। वहाँ कुछ पाने की आकांक्षा नहीं रहती, क्योंकि सब कुछ पहले से पूर्ण है। वहाँ प्रेम माँगा नहीं जाता; वह स्वाभाविक रूप से बहता है। वहाँ आत्मा स्वयं को अधूरी नहीं अनुभव करती।

वाणी कहती है—

"सब न्यामतें एक चीज में, कमी न माहें किन।।" — सिनगार 1/13

अर्थात् वहाँ प्रत्येक वस्तु में सम्पूर्णता है; किसी प्रकार की कमी नहीं।

12.6.3 पूर्णता: अस्तित्व की अखण्ड परिपूर्णता: परमधाम में प्रत्येक तत्व पूर्ण है। वहाँ संबंध अपूर्ण अपेक्षाओं पर आधारित नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण सहभागिता पर आधारित हैं। वहाँ ज्ञान अधूरा नहीं, प्रेम सीमित नहीं और सौन्दर्य क्षणभंगुर नहीं।

संसार में पूर्णता का अनुभव क्षणिक होता है; कुछ ही समय बाद पुनः रिक्तता का अनुभव होने लगता है। पर परमधाम में "पूर्णता" स्थायी है। वहाँ आत्मा अपने प्रियतम, अपने स्वरूप और अपने धाम — तीनों में संतुष्ट रहती है।

यह पूर्णता स्थिर जड़ता नहीं, बल्कि नित्य नवीन लीला में प्रकट होती रहने वाली जीवंत पूर्णता है।

12.6.4 संघर्षविहीनता: द्वन्द्व से परे चेतना: संसार का जीवन संघर्ष से भरा हुआ है — इच्छा और परिस्थिति का संघर्ष, व्यक्ति और व्यक्ति का संघर्ष, मन और बुद्धि का संघर्ष, अहं और प्रेम का संघर्ष।

परमधाम में यह द्वन्द्व नहीं है। वहाँ प्रेम का प्रवाह स्वाभाविक है; किसी को स्वयं को सिद्ध नहीं करना पड़ता। वहाँ तुलना, प्रतिस्पर्धा और भय का स्थान नहीं। इसीलिए परमधाम को "अखंड विश्राम" का क्षेत्र कहा गया है।

यह संघर्षविहीनता निष्क्रियता नहीं, बल्कि पूर्ण सामंजस्य है। जैसे संगीत में सभी स्वर मिलकर मधुरता उत्पन्न करते हैं, वैसे ही परमधाम में सभी चेतनाएँ प्रेमानन्द की एक लय में स्थित हैं।

12.6.5 एकरूपता: एक दिल, एक भाव: तारतम वाणी में परमधाम की आत्माओं के लिए कहा गया है—

"सुन्दरसाथ बैठा अचरज सों, जानो एकै अंग हिल मिल।

अंग अंग सब के मिल रहे, सब सोभित हैं एक दिल।।"

यह "एकरूपता" बाहरी समानता नहीं, बल्कि चेतना की एकदिली है। वहाँ आत्माएँ अलग-अलग होते हुए भी विभाजित नहीं हैं। प्रत्येक आत्मा अपनी विशिष्टता बनाए रखते हुए भी प्रेम के अखण्ड सूत्र में जुड़ी है।

संसार में व्यक्ति स्वयं को अलग और अकेला अनुभव करता है; परमधाम में अलगाव नहीं, आत्मीय एकत्व है।

12.6.6 अनिच्छित पूर्ण-संतृप्ति: संसार में इच्छा इसलिए उत्पन्न होती है क्योंकि भीतर अपूर्णता का अनुभव है। पर परमधाम में आत्मा इतनी संतृप्त होती है कि वहाँ "कुछ और चाहिए" जैसी स्थिति नहीं रहती।

यह इच्छा-शून्यता विरक्ति से उत्पन्न नहीं, बल्कि प्रेम की पूर्णता से उत्पन्न होती है। वहाँ आत्मा परमात्मा के प्रेम में इस प्रकार रसमग्न होती है कि अलग से किसी उपलब्धि की चाह नहीं रहती।

इस अवस्था को कभी-कभी "पूर्ण तृप्ति" या "नित्य संतोष" भी कहा जाता है।

12.6.7 नदी–सागर जैसा स्थायी संबंध: तारतम दृष्टि में आत्मा और परमात्मा का संबंध क्षणिक नहीं, बल्कि अनादि-अनन्त है। इसे नदी और सागर के संबंध से समझाया गया है। नदी का अस्तित्व सागर से जुड़ा है; उसी प्रकार आत्मा का मूल संबंध परमात्मा से है।

संसार में आत्मा इस संबंध को भूल जाती है, पर जागनी का उद्देश्य इसी मूल निसबत को पुनः जागृत करना है।

इसीलिए वाणी कहती है—

"एही अपनी जागनी, जो याद आवे निज सुख।।"

अर्थात् जागनी का अर्थ है — आत्मा का अपने मूल प्रेम-संबंध को पुनः याद करना।

12.6.8 असीमित अनधिरापन: सीमा से परे विस्तार: संसार की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी सीमा में बंधी है — समय, स्थान, रूप, शक्ति या विचार की सीमा। पर परमधाम असीम है। वहाँ चेतना पर किसी प्रकार का संकुचन नहीं।

यह असीमता केवल आकार की नहीं, बल्कि प्रेम, ज्ञान, सौन्दर्य और अनुभव की भी है। वहाँ प्रत्येक क्षण नित्य नवीन है; लीला कभी समाप्त नहीं होती।

इसी भाव को वाणी में "बेसुमार" कहा गया है—

"बेसुमार लाए सुमार में…"

अर्थात् अनन्त ने स्वयं को सीमित रूपों में प्रकट किया, किन्तु उसकी वास्तविकता असीम ही बनी रहती है।

इसतरह, ये आठ गुण अलग-अलग दार्शनिक अवधारणाएँ नहीं, बल्कि परमधाम की समग्र चेतना के विभिन्न आयाम हैं। भूमा उसका आनन्द है; अभावरहितत्व उसकी संतृप्ति; पूर्णता उसका स्वरूप; संघर्षविहीनता उसकी शांति; एकरूपता उसका प्रेम; संतृप्ति उसका विश्राम; निसबत उसका संबंध; और असीमता उसका दिव्य विस्तार।

इन्हीं गुणों के कारण परमधाम तारतम वाणी में केवल "मोक्ष" का स्थान नहीं, बल्कि प्रेमानन्द की अखण्ड लीला का क्षेत्र बन जाता है।

यही कारण है कि जागनी का अंतिम लक्ष्य केवल संसार से छूटना नहीं, बल्कि उस चेतना में जागना है जहाँ आत्मा अपने प्रियतम के साथ नित्य प्रेम-विलास में स्थित हो सके।

12.6 आठ सागर और प्रेमानन्द की चेतना

तारतम वाणी में वर्णित आठ सागर — नूर, नीर, क्षीर, दधि, घृत, मधु, रस और सर्वरस — परमधाम के केवल बाह्य सौन्दर्य-वर्णन नहीं हैं, बल्कि चेतना, प्रेम और अनुभव

के आठ दिव्य आयाम हैं। ये सागर आत्मा को परमधाम के अखण्ड प्रेमानन्द की विभिन्न गहराइयों से परिचित कराते हैं। इसीलिए वाणी कहती है—

"नूर नीर क्षीर दधि सागर, घृत मधु इक ठौर।
रस सर्वरस सागर, बिन मोमन न पावै और।।"

यहाँ "मोमन" का अर्थ किसी पंथगत पहचान से नहीं, बल्कि उस जागृत आत्मा से है जो प्रेम, ईमान और चितवन के माध्यम से धामभाव में प्रवेश करने योग्य हुई हो। इन सागरों का अनुभव बौद्धिक कल्पना से नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण चितवनि से होता है।

तारतम दृष्टि के अनुसार परमधाम में सौन्दर्य स्थिर नहीं है; वह जीवित, गतिशील और प्रेमानन्द से स्पंदित है। वहाँ गुण केवल दार्शनिक अवधारणाएँ नहीं, बल्कि अनुभवगत महासागर हैं। प्रत्येक सागर चेतना के किसी विशिष्ट आयाम को प्रकट करता है और आत्मा को परमात्मा के किसी विशेष भाव से जोड़ता है।

12.7.1 नूरसागर: दिव्य प्रकाश और चेतना का महासागर:- नूरसागर परमधाम के दिव्य प्रकाश, निर्मलता और स्वयंप्रकाशित चेतना का प्रतीक है। यह केवल दृश्य प्रकाश नहीं, बल्कि चिद्घन चेतना का प्रकाश है। यहाँ आत्मा अनुभव करती है कि सम्पूर्ण अस्तित्व परब्रह्म के नूर से आलोकित है। यह वह स्थिति है जहाँ अज्ञान का अंधकार मिटने लगता है और आत्मा के भीतर "पहचान" का उदय होता है। यही कारण है कि जागनी में "नूर" को केवल ज्योति नहीं, बल्कि आत्म-जागरण की अवस्था माना गया है।

12.7.2 नीरसागर: शीतलता और निर्मल प्रवाह:- नीरसागर निर्मलता, शांति और सहज प्रवाह का अनुभव कराता है। यहाँ आत्मा परब्रह्म के प्रेम में स्नान करती हुई प्रतीत होती है। यह वह चेतना है जिसमें कठोरता गलने लगती है और भीतर करुणा, कोमलता और शीतलता का प्रवाह उत्पन्न होता है। नीरसागर यह अनुभव कराता है कि प्रेम केवल उग्र भाव नहीं; वह शीतल उपस्थिति भी है।

12.7.3 क्षीरसागर: एकदिली और आत्मीयता:- क्षीरसागर के सामने आत्मा एकदिली की गहराई का अनुभव करती है। यहाँ यह अनुभूति होती है कि सभी आत्माएँ मूलतः एक ही प्रेम-स्रोत से जुड़ी हैं। जो भाव एक के भीतर उठता है, उसकी झलक दूसरे में भी अनुभव होती है। यह केवल सामाजिक एकता नहीं, बल्कि चेतना की अंतर्संबद्धता का अनुभव है।

इसीलिए परमधाम में "एक दिल" का भाव बार-बार आता है। वहाँ संबंध बाहरी अनुबंध नहीं, बल्कि आत्मिक सहभागिता हैं। क्षीरसागर आत्मा को यह अनुभव कराता है कि प्रेम का सर्वोच्च रूप अधिकार नहीं, आत्मीय एकत्व है।

12.7.4 दधिसागर: श्रृंगार और गुणों का प्रस्फुटन: - दधिसागर श्रृंगार, माधुर्य और भीतर छिपे दिव्य गुणों के प्रकट होने का सागर है। जैसे कोई व्यक्ति संदूक में रखे आभूषणों

और वस्त्रों को निकालकर धारण करता है, वैसे ही आत्मा यहाँ अपने भीतर सुप्त पड़े प्रेम, करुणा, माधुर्य, विनम्रता और सौन्दर्य के गुणों को प्रकट होते हुए अनुभव करती है।

यह श्रृंगार बाहरी सजावट नहीं, बल्कि चेतना का श्रृंगार है। यहाँ आत्मा अपने प्रियतम के योग्य बनने की आकांक्षा में भीतर से सुशोभित होती है।

12.7.5 घृतसागर: गहन इश्क और अंतरंग लीला: - घृतसागर परमात्मा के साथ गहन, एकान्तिक और अंतरंग प्रेम का अनुभव कराता है। यह इश्क की गहराई का महासागर है। यहाँ आत्मा को ऐसा अनुभव होता है मानो सम्पूर्ण अस्तित्व में केवल वह और उसका प्रियतम ही हों।

इसी भाव को वाणी में "रात्रि की लीला" या "एकान्तिक प्रेम" कहा गया है। परमधाम का सम्पूर्ण वातावरण इश्क से भरा हुआ है— "इसकें अरस वतन बताया…"

घृतसागर आत्मा को प्रेम की उस गहराई में ले जाता है जहाँ प्रेम केवल संबंध नहीं रहता; वह अस्तित्व की मूल धड़कन बन जाता है।

12.7.6 मधुसागर: अनन्त ज्ञान और स्मृति: - मधुसागर ज्ञान का महासागर है। यहाँ चेतना में ऐसा विस्तार अनुभव होता है मानो सम्पूर्ण लीला का रहस्य एक साथ खुल रहा हो। इसे आधुनिक भाषा में "अनन्त चेतन बुद्धि" या "दिव्य कॉस्मिक इंटेलिजेंस" कहा जा सकता है।

यहाँ आत्मा केवल जानकारी प्राप्त नहीं करती; वह लीला के क्रम, संबंधों और परम उद्देश्य को अनुभव करती है। मधुसागर में ज्ञान शुष्क बौद्धिकता नहीं, बल्कि मधुर अनुभूति है — इसीलिए उसे "मधु" कहा गया है।

12.7.7 रससागर: संबंधों की मधुरता:- रससागर परमात्मा और आत्माओं के बीच नित्य नवीन संबंध-रस का महासागर है। यहाँ आत्मा अनुभव करती है कि प्रेम स्थिर नहीं; वह हर क्षण नए-नए रूपों में खिलता है। मानो किसी विशाल उत्सव में आत्माएँ अपने प्रियजनों से मिलकर हँसी, विनोद और आत्मीयता का रस ले रही हों।

यहाँ "निसबत" अर्थात् संबंध अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। तारतम वाणी में संबंध केवल दार्शनिक श्रेणी नहीं, बल्कि प्रेमानन्द की जीवित अनुभूति है।

12.7.8 सर्वरससागर: समन्वित पूर्णता:- सर्वरससागर सभी रसों की समन्वित पूर्णता है। यहाँ नूर, प्रेम, ज्ञान, करुणा, श्रृंगार, आत्मीयता और मेहर — सब एक साथ अनुभव में आते हैं। यह परमधाम की समग्र चेतना का महासागर है।

यहाँ आत्मा अनुभव करती है कि परमात्मा केवल एक गुण का स्रोत नहीं, बल्कि सभी गुणों की अनन्त पूर्णता हैं। इसीलिए सर्वरससागर में प्रवेश आत्मा को "पूर्णता" का अनुभव कराता है।

12.7 "बेसुमार लाए सुमार में": अनुभव की आवश्यकता

इन आठों सागरों का एक अत्यन्त गहरा तात्त्विक अर्थ यह भी है कि परमात्मा के अनन्त गुण आत्मा के अनुभव के लिए "रूप" और "लीला" धारण करते हैं। वाणी कहती है—

"बेसुमार लाए सुमार में, माहें आवने दिल रूहन।।" — सागर 1/57

अर्थात् असीम ने स्वयं को सीमित रूपों में व्यक्त किया ताकि आत्मा उसका अनुभव कर सके। जब तक प्रेम, ज्ञान, नूर और रस "अनन्त" रूप में ही रहें, तब तक सीमित आत्मा उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सकती। इसलिए परमधाम में गुण सागर, पक्ष, महल, श्रृंगार और लीला के रूप में व्यक्त होते हैं।

यहाँ "साकार" का अर्थ जड़ता नहीं, बल्कि अनुभवयोग्यता है। परमात्मा दिखाने वाले हैं; आत्मा देखने वाली है। अनन्त स्वयं को सीमित में व्यक्त करता है ताकि प्रेमानन्द का आदान-प्रदान संभव हो सके। यही तारतम दर्शन का सौन्दर्य है — अनन्त और सीमित का प्रेमपूर्ण संवाद।

12.9 चितवनि और आठ सागर

तारतम परंपरा में इन आठ सागरों की चितवनि केवल कल्पनात्मक ध्यान नहीं, बल्कि चेतना को परमधाम-संबंध में पुनः जागृत करने की साधना है। आत्मा क्रमशः एक सागर से दूसरे सागर में प्रवेश करते हुए प्रेम, ज्ञान, नूर, श्रृंगार और मेहर के भावों को अपने भीतर जोड़ती जाती है।

अंततः मेहरसागर से मूल-मिलावे में पहुँचकर आत्मा युगल स्वरूप के चरणों में विश्राम पाती है। वहाँ से पुनः जागनी-लीला में लौटकर वही प्रेम, वही शीतलता और वही करुणा संसार में बाँटती है।

इसीलिए वाणी कहती है—

"फेर फेर सुरत साधिए, धनी चरित्र सुख चैन।
इसक आए बेर कछू नहीं, खुल जाते निज नैन।।" — सागर 4/19

अर्थात् बार-बार सुरता को धनी की लीला में ले जाने से आत्मा के भीतर के दिव्य नेत्र खुलने लगते हैं, और परमधाम केवल "विश्वास" नहीं रहता — वह चेतना का जीवित अनुभव बन जाता है।

12.10 पचीस पक्ष परमधाम

परमधाम को समझने के लिए उसे विभिन्न "पक्षों" या आयामों में देखा जाता है। आठ सागर और उनके साथ जुड़े आठ जिमी (खंड) मिलकर सोलह पक्ष बनाते हैं। इसके साथ अन्य छह परिक्रमाओं के छह पक्ष जोड़ने पर संख्या बाईस हो जाती है, और

दूसरी परिक्रमा के तीन विशेष क्षेत्र—पश्चिम चौगान, होज कौसर और यमुना जी—को मिलाकर कुल पच्चीस पक्ष पूर्ण होते हैं। इस प्रकार "पच्चीस पक्ष" परमधाम की वह संरचित अभिव्यक्ति है, जिसे साधक समझ और अनुभव कर सकता है।

धाम तालाब कुंजनन सो हैं। माणिक नहरें वन की जो हैं।।
पश्चिम चौगान बडोवन कहिए। पुखराजी यमुना जी लहिए।।
आठों सागर आठ जिमी के। ये पच्चीस पक्ष धाम धनी के।।

परिकरमा ग्रंथ में वर्णित पच्चीस पक्ष केवल भौगोलिक विवरण नहीं समझना चाहिए। वे प्रेमानन्द के जीवित क्रीड़ास्थल हैं। इनका उद्देश्य आत्मा के भीतर परमधाम का एक सुंदर, जीवंत और चितवनयोग्य प्रतिबिंब स्थापित करना है ताकि आत्मा "निजघर" के सुखों की लज्जत पा सके और माया की विस्मृति से ऊपर उठ सके।
वाणी कहती है—

"अब आओ रे इसक भानूं हाम, देखूं वतन अपना निज धाम।
करूं चरन तले विश्राम, विलसों पियाजी सों प्रेम काम।।"— सागर 3/1
जब लग तुम रहो मायामें, जिन खिन छोडो रास जी।
पचीस पख लीजो धाम के, ज्यों होए धनी को प्रकास जी।।

12.11 रसराज, महाभाव और स्वलीलाद्वैत

तारतम वाणी में परमात्मा केवल सृष्टिकर्ता नहीं, बल्कि "रसराज" हैं — सभी प्रेमरसों के परम स्रोत। सम्पूर्ण परमधाम प्रेम-विलास की चेतना से भरा हुआ है।

यहाँ अद्वैत शुष्क निराकारता नहीं, बल्कि "स्वलीलाद्वैत" है। आत्मा परमात्मा में विलीन होकर मिटती नहीं, बल्कि उसकी प्रेम-लीला का जागृत अंग बनती है। अंश–अंशी का संबंध प्रारम्भिक है; अंग–अंगी का संबंध परिपक्व प्रेमानुभूति है।

वाणी कहती है—

"फेर फेर सुरत साधिए, धनी चरित्र सुख चैन।
इसक आए बेर कछू नहीं, खुल जाते निज नैन।।" — सागर 4/19

अर्थात् बार-बार सुरता को धनी की लीला में ले जाने से प्रेम जागृत होता है और आत्मा के भीतर के दिव्य नेत्र खुलने लगते हैं।

12.12 परमधाम की सात परिक्रमाएँ: प्रेम, चेतना और शोभा की अखण्ड यात्रा

तारतम वाणी और परिक्रमा ग्रंथ में वर्णित "सात परिक्रमाएँ" परमधाम का केवल बाहरी भूगोल नहीं हैं; वे चेतना की सात गहराइयाँ हैं, जिनके माध्यम से आत्मा प्रेम, नूर, रस, सौन्दर्य और निसबत के विविध आयामों का अनुभव करती है। यह सम्पूर्ण विन्यास आत्मा को निजघर की स्मृति दिलाने, चितवन को स्थिर करने और प्रेमानन्द में जागृत करने के लिए है।

परमधाम की इन परिक्रमाओं में आत्मा केवल "देखती" नहीं; वह स्वयं प्रेम-लीला का सहभागी बनती जाती है। कहीं सौन्दर्य वृक्षों में झलकता है, कहीं जलधाराओं

में बहता है, कहीं महलों की दीवारों में सघन बन जाता है और कहीं पशु-पंछियों की क्रीड़ाओं में चेतना का उल्लास बनकर प्रकट होता है। यही कारण है कि परिक्रमा ग्रंथ में वर्णित प्रत्येक दृश्य अन्ततः प्रेम के किसी न किसी रूप का विस्तार है।

12.12.1 प्रथम परिक्रमा: रंगमहल और जागृत सौन्दर्य

प्रथम परिक्रमा रंगमहल की है। यह आत्मा के भीतर परमधाम के प्रथम प्रत्यक्ष आकर्षण का क्षेत्र है। चांदनी चौक, लाल और हरे वृक्ष, जलकुण्ड, वट-पीपल की चौकी, झूले, फूलबाग, नूरबाग, ताड़वन और खड़ोकली — सब मिलकर प्रेम और शोभा की ऐसी भूमिका रचते हैं जिसमें आत्मा संसार की स्थूलता से हटकर सूक्ष्म सौन्दर्य को अनुभव करने लगती है।

वाणी कहती है—

"अरस आगूं खुली चांदनी, माहें चबूतरे चार।
दोय तले बीच वन के, दो ऊपर लगते द्वार।।" — परिक्रमा 20/18

रंगमहल के नौ खण्ड और दसवीं आकाशी छत चेतना के विभिन्न प्रेम-स्तरों का संकेत हैं। यहाँ आत्माएँ श्री राजजी और श्री श्यामा जी के साथ झूलती, विहार करती, पशु-पंछियों की क्रीड़ाएँ देखती और प्रेमानन्द का अनुभव करती हैं। यह परिक्रमा आत्मा को यह अनुभव कराती है कि परमधाम का सौन्दर्य जड़ नहीं, बल्कि प्रेम से धड़कती हुई चेतना है।

12.12.2 द्वितीय परिक्रमा: यमुना, हौज कौसर और प्रेमरस

दूसरी परिक्रमा प्रेमरस की प्रवाहमयी चेतना का क्षेत्र है। यहाँ पुखराजी महल से उतरती यमुना, हौज कौसर, कुंज-निकुंज, बड़ावन, मधुवन और महावन आत्मा को प्रेम के विभिन्न भावों में स्नान कराते हैं। यमुना यहाँ केवल जलधारा नहीं; वह श्याम-श्यामा जी के प्रेम का प्रवाह है।

"दोऊ पुल सात घाट बीच में, पाट घाट विराजत।
बीच दोऊ बराबर के, वन अंबर ज्योति घरत।।" — परिक्रमा 34/20

सात घाट प्रेम के सात आमंत्रण हैं। हौज कौसर का अथाह प्रेमसागर, कुंजवनों की निकटता, वृक्षों की चेतनाएँ और पशु-पंछियों की क्रीड़ाएँ यह अनुभव कराती हैं कि परमधाम में प्रेम केवल आत्माओं तक सीमित नहीं; सम्पूर्ण अस्तित्व प्रेम के रस से ओतप्रोत है।

12.12.3 तृतीय परिक्रमा: जवेरों की नहरें और दृश्य-रस

तीसरी परिक्रमा जवेरों की नहरों की है। यहाँ महलों की नौ पंक्तियाँ रंगमहल के चारों ओर इस प्रकार घूमती हैं कि वे ऊपर से उतरती हुई ज्योति-नहरों जैसी प्रतीत होती हैं। जवाहरातों की चमक, दीवारों के चित्र, प्रकाश की तरंगें और सौन्दर्य की बदलती छवियाँ आत्मा को दृश्य-रस में डुबो देती हैं।

यहाँ सौन्दर्य स्थिर नहीं; वह जीवित है। दीवारें भी चेतना की तरंग हैं, चित्र भी प्रेम के भाव हैं, और महल भी शोभा के सघन रूप हैं। आत्मा को ऐसा अनुभव होता है कि स्वयं प्रेम ही रूप धारण कर रहा है।

12.12.4 चतुर्थ परिक्रमा: माणिक महल और प्रेम का सघन विस्तार

चौथी परिक्रमा माणिक महल की है। बारह हजार खण्डों वाले महल, महानद, फव्वारे, झूले और अनन्त हवेलियाँ प्रेम के सघनतम स्थापत्य का अनुभव कराती हैं। यहाँ प्रेम केवल भाव नहीं; वह संरचना बन गया है। महलों की ऊँचाई और भीतर के असंख्य मंदिर यह संकेत देते हैं कि प्रेम के भीतर भी अनन्त स्तर और अनन्त लीलाएँ हैं।

"साथजी देखो महल मानिक, जो कहे द्वार बारह हजार।" — परिक्रमा 43/164

यहाँ चेतना का जल महानद बनकर समस्त परमधाम को सींचता है। प्रेम कहीं महलों की दीवारों में सघन है, कहीं नहरों में प्रवाहित है, और कहीं वृक्षों में हरियाली बनकर खिल रहा है।

12.12.5 पंचम परिक्रमा: वन-नहरें और जीवंत चेतना

पाँचवीं परिक्रमा वन-नहरों की है। यहाँ वृक्ष, पुष्प, लताएँ, पशु-पंछी और चेतना के असंख्य स्पन्दन प्रेम की जीवंत जैविकता को प्रकट करते हैं। वृक्षों पर बने महल, नहरों में बहता प्रेमरस और पशु-पंछियों की चेतना यह दिखाती है कि परमधाम में प्रकृति और चेतना अलग-अलग नहीं हैं।

"एक एक पेड़ पर कई भोमें, भोम भोम कई जुगत।
पशु पंखी एक वृक्ष पर, कई जुगतें बास बसत।।" — परिक्रमा 26/21

यहाँ प्रत्येक चेतना श्री रसराज के साथ प्रेमोत्सव में सहभागी है। परमधाम का प्रेम केवल मानवीय नहीं; सार्वभौमिक है।

12.12. 6 षष्ठ परिक्रमा: चार हार हवेली और प्रेमोत्सव

छठी परिक्रमा चार हार हवेली की है। यहाँ बारह हजार खण्डों वाले महलों की चार पंक्तियाँ रंगमहल को हार की तरह घेरे रहती हैं। यह प्रेम के विविध भावों, सहेलियों, संचारी भावों और अनन्त प्रेमोत्सव का क्षेत्र है।

यहाँ प्रत्येक महल चेतना का एक नया उत्सव है। प्रेम के भीतर महाभाव, महाभावों के भीतर छोटे भाव और उनके भीतर संचारी भाव — यह अनन्त रस-व्यवस्था परमधाम की प्रेमलीला को कभी समाप्त नहीं होने देती।

12.12.7 सप्तम परिक्रमा: आठ सागर और प्रेमोत्कर्ष

सातवीं परिक्रमा परमधाम की सबसे व्यापक और सूक्ष्म परिधि है। यहाँ आठ सागर, आठ जिमी, अस्सी पंक्तियों की हवेलियाँ और अनन्त रंग-तरंगें प्रेम के परम उत्कर्ष को प्रकट करती हैं।

"दो दरिया बीच एक जिमी, दो जिमी बीच दरिया एक।
यों आठ दरिया बीच आठ जिमी, गिने तरफ से इत विवेक।।"

नूर सागर, नीर सागर, क्षीर सागर, दधि सागर, घृत सागर, मधु सागर, रस सागर और सर्वरस सागर — ये केवल जलराशियाँ नहीं, बल्कि चेतना के आठ दिव्य गुण-क्षेत्र हैं। कहीं प्रकाश, कहीं एकदिली, कहीं इश्क, कहीं ज्ञान, कहीं निसबत और कहीं सर्वरस का समन्वय प्रकट होता है।

"एक सागर कहयो तेज ज्योति का, दूजो सोभा सुंदर।
कई तरंग उठे इन रंगों के, खोल देखो आंख अंदर।।" — सागर 2/8

यहाँ "बेसुमार" स्वयं को "सुमार" में प्रकट करता है। अनन्त प्रेम आत्मा के अनुभव योग्य रूपों में उतरता है। यही सातवीं परिक्रमा का रहस्य है — अनन्त का अनुभवयोग्य बन जाना।

12.12.8 सात परिक्रमाओं का तात्त्विक सार

इन सात परिक्रमाओं को यदि दार्शनिक दृष्टि से देखें, तो वे चेतना की सात क्रमिक गहराइयाँ हैं — जागृति, सौन्दर्य, प्रेमरस, दृश्य-रस, जीवंत चेतना, प्रेमोत्सव और अखण्ड प्रेमानन्द। आत्मा जब चितवन में इन परिक्रमाओं का स्मरण करती है, तब वह धीरे-धीरे माया की सीमित दृष्टि से उठकर परमधाम की अखण्ड चेतना में प्रवेश करने लगती है।

अंततः परमधाम का यह सम्पूर्ण विन्यास आत्मा को यही अनुभव कराने के लिए है कि अस्तित्व का मूल स्वरूप प्रेम है, और आत्मा का अंतिम विश्राम उसी प्रेमानन्द में है।

12.13 जागनी और परमधाम-स्मृति

तारतम परंपरा में "जागनी" का अर्थ केवल धार्मिक ज्ञान प्राप्त करना नहीं, बल्कि आत्मा का अपने मूल धाम-संबंध में पुनः जागृत होना है। इसीलिए वाणी कहती है—

"एही अपनी जागनी, जो याद आवे निज सुख।।" — सागर 4/7

यह "याद" मानसिक स्मृति नहीं, बल्कि चेतना का पुनः अपने मूल प्रेम-संबंध में लौटना है। यही कारण है कि जागनी का लक्ष्य केवल मोक्ष नहीं, बल्कि परमधाम के प्रेमानन्द में पुनः सहभागिता है।

वाणी आगे कहती है—

"बैठते उठते चलते, सुपन सोवत जागृत।
खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब विध इत।।" — सागर 4/16

अर्थात् जागनी कोई क्षणिक ध्यानावस्था नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षण में धाम-स्मृति को जीवित रखने की कला है।

12.13.1 समग्र दृष्टि से परमधाम: प्रेमानन्द लीला के चार आयाम और चतुर्विध लीलानन्द

समग्र (Integral) दृष्टि से देखें तो परमधाम की प्रेमानन्द लीला को भी चेतना के चार आयामों या "क्वाड्रन्ट्स" में समझा जा सकता है। बाह्य रूप से परमधाम महलों,

सागरों, वन-उपवनों, रंगमहल, यमुना और प्रेम-क्रीड़ाओं की दिव्य साकार शोभा के रूप में प्रकट होता है — यह उसका "Exterior Collective" आयाम है, अर्थात् चेतना का सामूहिक सौन्दर्यमय प्राकट्य। दूसरी ओर आत्मा के भीतर उठने वाला प्रेम, इश्क, निसबत, चितवन और महाभाव उसका "Interior Individual" आयाम है। जब समस्त ब्रह्मप्रियाएँ "एक दिल" होकर प्रेमानन्द में संयुक्त होती हैं, तब वह "Interior Collective" आयाम बनता है — चेतना का सामूहिक प्रेम-क्षेत्र। और जब परमधाम की लीला महलों, सागरों, संगीत, ज्योति, पशु-पंछियों और क्रीड़ाओं के जीवंत तंत्र के रूप में अनुभव होती है, तब वह "Exterior Individual/Collective" के बीच चेतना की दिव्य अभिव्यक्ति बन जाती है। इस प्रकार परमधाम केवल एक "स्थान" नहीं, बल्कि चेतना, संबंध, सौन्दर्य और प्रेम का समग्र ब्रह्माण्ड है, जहाँ अस्तित्व के भीतर और बाहर, व्यक्ति और समष्टि — सभी आयाम एकत्व में खिलते हैं।

इसी प्रकार चार प्रकार की मुक्ति — सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य — को भी प्रेमानन्द लीला के चार स्तरों के रूप में समझा जा सकता है। सालोक्य में आत्मा परमधाम के दिव्य वातावरण और लीला-जगत में प्रवेश करती है; सामीप्य में वह धनी के निकट प्रेम-संबंध का अनुभव करती है; सारूप्य में उसका चित्त धनी के गुणों, प्रेम और चेतना के अनुरूप होने लगता है; और सायुज्य में वह प्रेमानन्द की अखण्ड एकता में स्थित होकर "अंग–अंगी" भाव को प्राप्त करती है। तारतम दृष्टि में यह सायुज्य आत्मा का लय होकर मिट जाना नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण सहभागिता की पराकाष्ठा है। आधुनिक Integral मॉडल की भाषा में कहें तो यह चेतना का केवल "escape from world" नहीं, बल्कि "full participation in Divine Consciousness" है — जहाँ जागृति (Wake Up), परिपक्वता (Grow Up), हृदय-विस्तार (Open Up) और प्रेममय सहभागिता (Show Up) एक साथ पूर्णता प्राप्त करते हैं।

12.14 निष्कर्ष

तारतम वाणी में परमधाम की अवधारणा भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में एक अत्यन्त विशिष्ट योगदान है। यह न केवल ब्रह्मवाद का विस्तार है, न केवल भक्तिपरक स्वर्गवाद; बल्कि प्रेम, चेतना, नूर, रस और आनन्द की समग्र तात्त्विक संरचना है।

परमधाम यहाँ किसी दूरस्थ पारलौकिक लोक मात्र का नाम नहीं, बल्कि चेतना की परम पूर्णता है — जहाँ सब कुछ प्रेममय है, सब कुछ चेतन है और सब कुछ नित्य नवीन लीला में स्पंदित है। तारतम वाणी आत्मा को केवल मुक्ति की ओर नहीं, बल्कि प्रेमानन्द की अखण्ड सहभागिता की ओर बुलाती है। यही उसकी विशिष्टता है। यही उसका "तारतम्य" है।

भाग 2: अध्याय – 13
मोक्ष और मुक्ति का समग्र स्वरूप और मोक्ष प्राप्ति के साधन

13.1 मोक्ष:

भारतीय दर्शन में "मोक्ष" का सामान्य अर्थ है—जन्म–मरण और कर्मबंधन के चक्र से मुक्त होकर आत्मा का अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेना। सरल शब्दों में, मोक्ष वह अवस्था है जहाँ मनुष्य केवल शरीर, इच्छाओं और बाहरी पहचान तक सीमित होकर नहीं जीता, बल्कि अपने भीतर की गहरी चेतना, सत्य और परम संबंध का अनुभव करने लगता है।

अलग-अलग भारतीय दर्शनों ने इस अवस्था को अलग दृष्टि से समझाया है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार मोक्ष वह अनुभव है जहाँ आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं रह जाता। योग और सांख्य दर्शन इसे "कैवल्य" कहते हैं, जहाँ मनुष्य प्रकृति और उसके बंधनों से भीतर से स्वतंत्र हो जाता है। भक्ति परम्पराएँ मोक्ष को ईश्वर के प्रेम, निकटता और दिव्य आनन्द से जुड़ी अवस्था मानती हैं। इस प्रकार मोक्ष केवल दुःखों से छुटकारा नहीं, बल्कि सब से पहले चेतना के गहरे रूपांतरण की अवस्था भी है।

महामति प्राणनाथजी की तारतम वाणी श्री कुलजम स्वरूप मोक्ष को मुख्यतः आंतरिक जागृति की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती है। यहाँ केवल बाहरी पूजा, कर्मकाण्ड या धार्मिक पहचान पर ज़ोर नहीं है, बल्कि चेतना के जागरण, आत्म-समझ, प्रेम और परम सत्य के अनुभव को अधिक महत्व दिया गया है।

कुछ वेदान्ती विचारक मानते हैं कि संसार मिथ्या है और यदि मनुष्य निरंतर अपने को ब्रह्मस्वरूप माने, तो वह अंततः परमात्मा में स्थित हो जाएगा। वे आत्मा को अजर, अमर और नित्य बताते हैं, पर कई गहरे प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं—यदि आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है तो उसमें अविद्या कैसे आई? वह कर्म और दुःख के बंधन में कैसे फँसी? शरीर और कर्म का प्रारम्भिक संबंध कैसे बना? जीवों के सुख-दुःख और सामूहिक पीड़ाओं का कारण क्या है?

महामति प्राणनाथजी की तारतम वाणी इन प्रश्नों को अधिक अनुभवात्मक ढंग से समझाती है। उनके अनुसार यह सम्पूर्ण जगत एक दिव्य "खेल" या अनुभव-क्षेत्र है, जिसे परमात्मा चेतना को दिखा रहा है। वर्तमान में जीव दुःख, मोह और सीमितता का संसार देख रहा है, पर चेतना जागने पर वही परमात्मा उसे उच्चतर सुख, प्रेम और आनन्द की लीला का अनुभव भी कराता है। इसलिए मोक्ष केवल बौद्धिक कल्पना नहीं, बल्कि

परमात्मा के प्रति अखंड स्मृति, प्रेम और जागृति द्वारा चेतना का दुःखमय अनुभव से प्रेमानंदमय अनुभव की ओर रूपांतरण है।

13.2 मुक्ति

मुक्ति मोक्ष का ही अनुभवात्मक पक्ष है, जिसका अर्थ जन्म, मृत्यु, जरा, और व्याधि आदि दुखों से या माया, कर्म और अहंकार के बंधनों से छुटकारा और परम सुख की अनुभूति का नाम है। तारतम ज्ञान कहता है कि यह हमारे अंकुरित होने की संभावना है।

तारतम ज्ञान के प्रकाश में, मुक्ति केवल मृत्यु के बाद किसी दिव्य लोक में जाने की घटना नहीं, बल्कि चेतना की ऐसी अवस्थाएँ हैं जिन्हें इस जीवन में ही अनुभव किया जा सकता है। जैसे— परम गुणों को अपने जीवन में उतारना—सारूप्यता, दिव्य चेतना में जीना सालोक्यता, परमात्मा की निकटता का अनुभव—सामीप्यता, और प्रेम और एकत्व की गहरी अनुभूति—सायुज्यता। इस दृष्टि से तारतम वाणी मुक्ति इस जीवन की अनुभूतियों के साथ साथ वैकुंठ तक सीमित न रह कर, आगे अक्षर की ओर गति दर्शाती है। इस तरह परमधाम भविष्य में मिलने वाला कोई पुरस्कार मात्र न रह कर, वर्तमान जीवन में धीरे-धीरे जागने, बदलने और परम सत्य से जुड़ने की प्रक्रिया बन जाती है।

13.3 सीमित मुक्ति और अखंड मुक्ति

13.3.1 अविद्या-पाद और पुनरावर्तन: तारतम दर्शन में अपूर्ण मुक्ति का रहस्य

तारतम ज्ञान के अनुसार धर्मशास्त्रों में वर्णित सभी प्रकार की मुक्तियाँ अंतिम और पूर्ण मुक्ति नहीं हैं। यज्ञ, ओंकार या गायत्री जैसी उच्च उपासनाओं से जीव अक्षर ब्रह्म के एक ऊँचे चेतना-क्षेत्र तक पहुँच सकता है, जिसे "अविद्या-पाद" या "अव्याकृत" कहा गया है। यह अत्यंत सूक्ष्म और दिव्य अवस्था है, पर वहाँ अभी भी सृष्टि के बीज और वासनाओं की संभावना शेष रहती है।

अविद्या का अर्थ केवल सामान्य अज्ञान नहीं, बल्कि चेतना का वह सूक्ष्म आवरण है जिसके कारण जीव अनित्य को नित्य, अशुद्ध को शुद्ध, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा मान बैठता है। इसी कारण जीव ऊँचे लोकों या दिव्य अवस्थाओं तक पहुँचने पर भी पूर्णतः मुक्त नहीं होता। जब सृष्टि-चक्र बदलता है, तब उसे पुनः आवागमन में आना पड़ सकता है।

भगवद्गीता का यह वचन इसी सत्य की ओर संकेत करता है—

"आ ब्रह्म भुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।"

अर्थात ब्रह्मलोक तक के सभी लोक पुनरावर्तनशील हैं। इसलिए तारतम दर्शन अंतिम मुक्ति को केवल ऊँचे लोक की प्राप्ति नहीं, बल्कि अविद्या के पूर्ण क्षय और अक्षरातीत परम सत्य में जागृति के रूप में देखता है।

13.3.2 अक्षर ब्रह्म के चार पाद: चेतना, मुक्ति और परम सत्य का तारतम्य

तारतम वाणी के अनुसार शास्त्रों के शब्दों की सूक्ष्मता को न समझने के कारण अनेक दार्शनिक गुत्थियाँ उलझी रह जाती हैं। उदाहरण के लिए—शिव और सदाशिव का भेद चेतना के सूक्ष्मीकरण को दर्शाता है; विष्णु और महाविष्णु का भेद चेतना के ब्रह्मांडीय विस्तार को; और ब्रह्म (अक्षर) तथा परब्रह्म (अक्षरातीत) का भेद प्रेममय परम सत्य की अंतिम पूर्णता को प्रकट करता है।

तारतम दर्शन बताता है कि अक्षर ब्रह्म चेतना का एक विशाल दिव्य आयाम है, जिसके चार "पाद" अर्थात चार स्तर या चेतना-क्षेत्र हैं। चौथे पाद में सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और प्रलय की लीला चलती रहती है; यहाँ काल, परिवर्तन और आवागमन का प्रभाव है। जबकि ऊपर के तीन पाद अमृतमय, दिव्य और दुःखरहित, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आनंद युक्त चेतना-क्षेत्र हैं, जहाँ माया और क्षय का प्रभाव नहीं रहता।

तारतम वाणी इन्हीं चार पादों में जीव चेतना की आठ प्रकार की मुक्तियाँ स्थित दर्शाती है। इसलिए यह वाणी मुक्ति को केवल एक अंतिम अवस्था नहीं, बल्कि चेतना के विभिन्न दिव्य स्तरों में अनुभव होने वाली अवस्थाओं के रूप में देखती है। इसी कारण विभिन्न धर्मों, दर्शनों और संत-परम्पराओं में मुक्ति के अनुभव और वर्णन अलग-अलग दिखाई देते हैं।

इस दृष्टि से गौतम बुद्ध का निर्वाण, मूसा, ईसा मसीह या मुहम्मद की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ, और शंकराचार्य की ब्रह्म-मुक्ति—ये सभी चेतना की विशुद्ध अवस्थाओं के अनुभव हैं; परंतु उनके आयाम और स्तर भिन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार वैष्णव आचार्यों की प्रेममयी मुक्ति-अनुभूतियाँ भी अन्य मार्गों से अलग दिखाई देती हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि सत्य अनेक हैं, बल्कि यह कि चेतना के अनुभव-स्तर अनेक हैं।

महामति प्राणनाथजी के अनुसार यदि जीव अक्षर के "अविद्या-पाद" को पार कर ऊपर के तीन अमृत-पादों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर ले और अक्षरातीत परब्रह्म की अनन्य प्रेमलक्षणा भक्ति में समर्पित हो जाए, तो वह जन्म–मरण और आवागमन के संपूर्ण चक्र से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। यह मुक्ति केवल किसी ऊँचे लोक, स्वर्ग या दिव्य अनुभव की प्राप्ति नहीं, बल्कि चेतना का काल, अविद्या और सृष्टि-चक्र की सीमाओं से परे स्थायी रूप से प्रतिष्ठित हो जाना है।

तारतम दृष्टि के अनुसार समस्त अस्तित्व की विराट चेतना अनेक आयामों में व्यक्त हुई है। इसी कारण मुक्ति की विशुद्ध अवस्थाओं की अनुभूतियाँ भी भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। वेद-शास्त्र इसे परब्रह्म के सत्-चित्-आनंद का बहुमुखी लीला-विलास कहते हैं—मानो एक ही रस-सागर अनन्त प्रकार से उल्लसित हो रहा हो। इसलिए मुक्ति

के भेद का अर्थ सत्य में भेद नहीं है। सत्य एक ही है, पर उसके चेतना-स्तर बहुआयामी और अनन्त हैं।

इसे ऐसे समझा जा सकता है जैसे विद्यालय एक ही हो, पर कक्षाएँ अनेक हों। विद्यार्थी अपनी-अपनी तैयारी और चेतना के स्तर के अनुसार अलग-अलग कक्षाओं का अनुभव करते हैं। उसी प्रकार सभी आध्यात्मिक मार्ग अंततः चेतना के विकास और परम सत्य की ओर ही संकेत करते हैं, पर उनकी अनुभूति, भाषा और स्तर अलग-अलग हो सकते हैं।

13.3.3 अखंड मुक्ति की आठ अवस्थाएँ: आठ "भिस्त"

महामति प्राणनाथजी का मुख्य संदेश यह है कि सत्य किसी एक संप्रदाय, भाषा या परम्परा में सीमित नहीं है। गीता, उपनिषद, सूफी परम्परा, भक्त-साहित्य और अन्य धर्मग्रंथ—सभी चेतना के विभिन्न आयामों को अपने-अपने ढंग से व्यक्त करते हैं। इसी कारण मुक्ति का अर्थ भी केवल एक संकीर्ण अवधारणा न रहकर व्यापक चेतना-अनुभव के रूप में सामने आता है।

तारतम वाणी के अनुसार मुक्ति केवल कृपा से या केवल व्यक्तिगत प्रयास से प्राप्त नहीं होती; दोनों का संतुलन आवश्यक है—"कृपा करनी माफक, कृपा माफक करनी।"

अर्थात साधक जितनी आंतरिक तैयारी, पात्रता और जागृति विकसित करता है, उसी के अनुसार परमात्मा की कृपा प्रकट होती है। परंतु इन दोनों की सीमा भी जीव के मूल "अंकुर" अर्थात उसकी मूल चेतना-सृष्टि—जीव सृष्टि, ईश्वरी सृष्टि या ब्रह्म सृष्टि—से संबंधित मानी गई है।

तारतम दर्शन मुक्ति को केवल एक ही अंतिम अवस्था नहीं मानता। उसके अनुसार सभी आत्माओं की चेतना, संस्कार और आध्यात्मिक स्तर अलग-अलग होने से उनकी मुक्ति-अनुभूतियाँ भी भिन्न हो सकती हैं। जैसे समुद्र की लहरें अलग दिखाई देती हैं, पर सब एक ही सागर से उत्पन्न होती हैं, वैसे ही सभी आत्माएँ परम चेतना से किसी न किसी विशिष्ट ढंग से जुड़ी हुई हैं। मुक्ति का वास्तविक अर्थ अपने उस मूल संबंध को पहचानना और उसमें जागृत होना है।

इसी दृष्टि से तारतम वाणी जीव-सृष्टि के लिए आठ प्रकार की अखण्ड मुक्तियों या "बहिश्तों" का वर्णन करती है, जो अक्षर ब्रह्म की योगमाया के विभिन्न चेतना-क्षेत्रों में स्थित हैं।

सबसे उच्च मुक्ति उन जीवों की मानी गई है जिन पर वर्तमान जागनी काल में ब्रह्मसृष्टि आत्माओं का प्रभाव पड़ा है; उनका स्थान अक्षर ब्रह्म के सत-स्वरूप के निर्मल

चेतन में बताया गया है। इसके बाद ईश्वरी सृष्टि से जुड़े जीवों की मुक्ति सत-स्वरूप के महाकारण क्षेत्र में मानी गई है। अन्य बहिश्तों में एकेश्वरवादी पैगम्बरी मार्ग के सच्चे अनुयायी, महारास लीला और व्रज लीला के रस में स्थित जीव, आदिनारायण तथा बालकृष्ण उपासक, महर्षि और सामान्य सांसारिक जीव—सभी अपनी-अपनी चेतना और साधना के अनुरूप विभिन्न दिव्य क्षेत्रों में प्रतिष्ठित माने गए हैं।

इस प्रकार तारतम दर्शन मुक्ति को चेतना के अनेक दिव्य स्तरों में अनुभव होने वाली अखण्ड अवस्थाओं के रूप में समझाता है।

तारतम वाणी कतेब और वैदिक ग्रंथों में वर्णित मुक्तियों का तारतम्य-केंद्रित समन्वय करती है। यहाँ "बहिश्त" का अर्थ केवल भौतिक स्वर्ग नहीं, बल्कि चेतना के दिव्य आयाम हैं—जैसे देवलोक, वैकुण्ठ, नित्य गोलोक, वृन्दावन या नूरी चेतना। सूफी परम्परा में भी "बहिश्त" आनंदमय और प्रकाशमय चेतना-अवस्था का संकेत है। तारतम दृष्टि के अनुसार ये सभी भिस्तें बेहद (योगमाया) के भीतर अक्षर ब्रह्म के चित्त में स्थित हैं; इसलिए वे काल, क्षय और अस्थायी पुण्य-फल की सीमाओं से परे मानी गई हैं। यहाँ सुख इन्द्रिय-भोग का नहीं, बल्कि प्रेम, नूर, संतुलन और अखण्ड तृप्ति से उत्पन्न होने वाली गहरी शांति का अनुभव है।

"भिस्त होसी आठ विध की, और आठ विध का अंकूर।
हर अंकूर कृपा कई बिध, ले उठसी नेहेचल नूर।।" किरंतन 79/18

अर्थात चेतना की उच्चतर अवस्थाओं से जुड़ी आत्माएँ कृपा के माध्यम से जीवों को अखण्ड नूर और दिव्य चेतना की ओर उन्मुख करती हैं।

इसी भाव को वाणी आगे और स्पष्ट करती है—

"चौदे तबक बेशक हुए, इन वानी के रोशन।
सो इलम ले कायम हुए, सुख भिस्त पाई सबन।।" सिंगार 27/54
"हुकमें हुकम खेल दिखारियो, हुकमे हुकम आयो स्वाद।
भिस्त दोजख थी हुकमें, आखर सुख थेयों सभ दम।।" सिन्धी 12

अर्थात सम्पूर्ण सृष्टि, सुख-दुःख, भिस्त और दोजख—all divine order (हुक्म) के अंतर्गत हैं। जब चेतना इस रहस्य को पहचानती है, तब वह बाहरी भय और आकर्षण से ऊपर उठकर अखण्ड सुख की ओर बढ़ने लगती है।

13.3.4 जागनी का अर्थ कायमी:

महामति प्राणनाथजी के अनुसार सभी धर्मों का मूल लक्ष्य चेतना-जागरण है। हिन्दू दर्शन में इसे मोक्ष, मुक्ति या आत्म-साक्षात्कार कहा गया है; बौद्ध धर्म में बोधि, जैन दर्शन में कैवल्य, और सिख परम्परा में नाम-जागृति। इन सभी का सार यह है कि मनुष्य

अज्ञान, अहंकार और माया की सीमित चेतना से ऊपर उठकर अपने वास्तविक आध्यात्मिक स्वरूप की ओर जागे।

तारतम वाणी आत्म-जागनी के संदर्भ में "कयामत" शब्द की एक गहरी आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत करती है। यहाँ कयामत केवल संसार के बाहरी विनाश का अर्थ नहीं रखती, बल्कि जीवित अवस्था में आत्मा की आंतरिक जागृति है। जब मनुष्य यह समझने लगता है कि उसकी पहचान केवल शरीर, जाति, परिवार या सामाजिक भूमिका तक सीमित नहीं है, बल्कि वह परमात्मा से जुड़ी चेतना है, तभी वास्तविक मुक्ति-प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। इसी अर्थ में शरीर को "कब्र" कहा गया है, जिसमें आत्मा अज्ञान के कारण सोई हुई रहती है।

13.3.5 जीव और आत्मा का भेद

महामति प्राणनाथजी जीव और आत्मा में भेद स्पष्ट करते हैं। जीव वह है जो संसार-नाटक में भोग, कर्म और इच्छाओं में उलझा हुआ "खेल" रहा है; आत्मा वह है जो इस पूरे खेल को "देख" रही है।

"यामें जीव दोय भांत के, एक खेले दूजे देखनहार।
पहचान न होवे काहू को, आड़ी पड़ी माया मोह अहंकार।।" *किरंतन 31/18*

अर्थात एक चेतना भोक्ता है और दूसरी दृष्टा, पर माया और अहंकार के कारण मनुष्य इस भेद को पहचान नहीं पाता। इसी कारण आत्मा मूलतः मुक्त है; वास्तविक बंधन जीव का है।

13.3.6 चौरासी लाख योनि और चेतना-विकास

तारतम वाणी "चौरासी लाख योनि" को केवल जैविक जन्मों की संख्या नहीं, बल्कि चेतना-विकास के प्रतीक के रूप में भी देखती है।

"धरम तणां सुख भोगवो, पाप तणां ल्यो दुख।
अगिन चोरासी लाख भोगवी, अंते आव्या मनुख।।" किरन्तन 125/38

अर्थात चेतना अनेक अनुभव-स्तरों से गुजरते हुए अंततः मनुष्य अवस्था तक पहुँचती है। मनुष्य जन्म आत्म-जागरण और मुक्ति का द्वार है।

13.3.7 बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त चेतनावृत्तियाँ

तारतम वाणी जीव चेतना की तीन अवस्थाओं का संकेत करती है— बद्ध — माया, भोग और अहंकार में उलझी चेतना; मुमुक्षु — सत्य और मुक्ति की खोज में जागती चेतना; और मुक्त — प्रेममय, साक्षी और अनासक्त चेतना। इस प्रकार मुक्ति कोई अचानक घटने वाली घटना नहीं, बल्कि चेतना का क्रमिक विकास है।

13.3.8 कालमाया और योगमाया

तारतम दर्शन कालमाया और योगमाया के बीच भेद प्रस्तुत करता है। कालमाया चेतना को विस्मृति, अहंकार और सीमित पहचान में बाँधती है। योगमाया चेतना को परमात्मा से पुनः जोड़ती है। जब जीव कालमाया का अतिक्रमण कर योगमाया में प्रवेश करता है, तब उसकी चेतना प्रेम, रस और अखंड संबंध की ओर विकसित होने लगती है। यही अवस्था आगे "रसदेह" और मुक्त चेतना की दिशा खोलती है।

13.3.9 प्रेमलक्षणा भक्ति और अद्वैत प्रेमानुभूति

महामति प्राणनाथजी स्पष्ट करते हैं कि यज्ञ, तप, योग, प्राणायाम और अन्य साधनाएँ मन और चित्त को शुद्ध करने में सहायक तो हैं, पर आत्मा और परमात्मा का अंतिम मिलन प्रेमलक्षणा भक्ति और अद्वैत प्रेमानुभूति (इश्क-हकीकी) से ही संभव है। यहाँ प्रेम केवल भावनात्मक आकर्षण नहीं, बल्कि पूर्ण समर्पण की अवस्था है।

जब सत्य का प्रकाश भीतर प्रकट होता है, तब भय, भ्रम और अहंकार स्वतः गिरने लगते हैं। इसलिए तारतम दृष्टि में मुक्ति किसी बाहरी दंड या पुरस्कार की व्यवस्था नहीं, बल्कि चेतना में सत्य के उदय और विस्मृति से स्मृति की ओर जागरण है।

13.3.10 स्वप्न से जागरण

तारतम दर्शन संसार को स्वप्नवत् अनुभव-क्षेत्र मानता है। आत्मा अपने केंद्र में स्थित रहते हुए पूरे विराट को देख रही है—जैसे स्वप्न में व्यक्ति कहीं गया बिना भी अनेक दृश्य देखता है। इसी कारण मुक्ति कहीं बाहर जाने का नाम नहीं, बल्कि चेतना के उस जागरण का नाम है जहाँ जीव "हद" से "बेहद" और बेहद से "अक्षरातीत" की ओर उन्मुख होता है।

13.3.11 समग्र दृष्टि और सार्वभौमिक मुक्ति

महामति प्राणनाथजी "मारिफत" या तारतम्य ज्ञान को ऐसी समन्वयी दृष्टि के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जो ज्ञान, भक्ति, सेवा, ध्यान, प्रेम और जीवनानुभव—सभी को एक व्यापक चेतना-दर्शन में जोड़ती है। तारतम दर्शन की एक बड़ी विशेषता उसकी सार्वभौमिकता है। यहाँ मुक्ति केवल किसी एक धर्म, जाति या संप्रदाय तक सीमित नहीं, बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि के चेतना-जागरण की संभावना है।

समग्र दृष्टि से देखें तो तारतम वाणी मुक्ति को चेतना के विकास (evolution of consciousness) के रूप में प्रस्तुत करती है। जीव पहले भोग और अहंकार में जीता है, फिर नैतिक और धार्मिक चेतना में प्रवेश करता है, उसके बाद साक्षी-चेतना में जागता है, और अंततः प्रेममय अखंड चेतना में स्थापित हो जाता है। यही यात्रा "हद" से "बेहद" और फिर "अक्षरातीत" तक की यात्रा है।

अंततः महामति प्राणनाथजी के अनुसार मुक्ति का सार यह है कि आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप, अपने परम संबंध और अपने प्रेममय मूल को पहचान ले। तब जन्म-जन्म की यात्रा की थकान समाप्त हो जाती है और चेतना परम प्रेम और अखंड आनंद में प्रतिष्ठित हो जाती है। यही वास्तविक मोक्ष है।

13.4 मोक्ष और मुक्ति के अनुभव: क्षणिक झलक से स्थायी चेतना तक

मोक्ष और मुक्ति के अर्थों की व्यापकता की चर्चा के बाद यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इनका वास्तविक अनुभव कैसा होता है। क्या यह केवल ध्यान या भक्ति के कुछ विशेष क्षणों तक सीमित रहता है, या चेतना की स्थायी अवस्था भी बन सकता है? भारतीय दर्शन इस विषय को केवल बौद्धिक अवधारणा नहीं, बल्कि चेतना की वास्तविक अवस्थाओं के रूप में देखता है।

मुक्ति का प्रारम्भिक अनुभव सामान्यतः बंधनों के हल्के होने के रूप में प्रकट होता है। साधना, ध्यान, भक्ति या आत्मचिन्तन के क्षणों में मन शांत होने लगता है, इच्छाओं की पकड़ ढीली पड़ती है और भीतर स्वतंत्रता, विस्तार या गहन शांति का अनुभव होता है। कभी-कभी "मैं" की सीमित पहचान कुछ समय के लिए विलीन होती हुई प्रतीत होती है। आरम्भ में ये अनुभव क्षणिक होते हैं, क्योंकि संस्कार, वासनाएँ और मानसिक आदतें पुनः सक्रिय हो जाती हैं। फिर भी यही झलकें साधक को उसके गहरे वास्तविक स्वरूप की दिशा दिखाती हैं।

साधना, विवेक, प्रेम और आंतरिक शुद्धि के साथ यह अनुभव धीरे-धीरे स्थिर होने लगता है। तब मुक्ति केवल ध्यान के किसी क्षण का अनुभव नहीं रहती, बल्कि जीवन-दृष्टि का हिस्सा बन जाती है। व्यक्ति संसार में रहते हुए भी भीतर से अधिक सजग, शांत और अलिप्त रहने लगता है। यही अवस्था कर्म को "निहकर्म" की दिशा में ले जाती है, जहाँ कर्म होते हैं, पर भीतर आसक्ति कम होती जाती है।

मोक्ष का अनुभव इससे भी अधिक गहरा है। यहाँ चेतना स्वयं को केवल शरीर-मन तक सीमित नहीं अनुभव करती, बल्कि एक अखंड, प्रेममय और व्यापक सत्ता के रूप में पहचानने लगती है।"मैं" और "तू" का कठोर भेद ढीला पड़ जाता है और एकत्व, प्रेम तथा आनंद का अनुभव स्वाभाविक हो जाता है। यदि यह अवस्था पूर्णतः स्थिर हो जाए और चेतना पुनः अज्ञान की पुरानी पहचान में न लौटे, तो इसे जीवन्मुक्ति, कैवल्य या स्थायी मोक्ष कहा जाता है।

भक्ति और लीला-प्रधान परम्पराएँ इस अवस्था को केवल निष्क्रिय शांति या शून्यता नहीं मानतीं, बल्कि प्रेम, रस और परम संबंध की जीवंत अनुभूति के रूप में देखती हैं। तारतम दर्शन इसी अनुभव को और सूक्ष्म रूप में समझाता है। उसके अनुसार मुक्ति चेतना की क्रमिक यात्रा है। प्रारम्भ में साधक को शांति, प्रेम या आत्म-विस्मृति की झलकें मिलती हैं। ईश्वरी चेतना के स्तर पर यह अनुभव अधिक स्थिर होकर तुरीय या साक्षीभाव

में बदलता है। ब्रह्मसृष्टि के तुरियातीत स्तर पर यही अनुभव चेतना का स्वाभाविक स्वरूप बन जाता है, जहाँ प्रेम, एकत्व और परमधाम की स्मृति निरंतर बनी रहती है।

इस प्रकार तारतम वाणी मोक्ष और मुक्ति को किसी एक क्षण में घटित होने वाली घटना नहीं, बल्कि चेतना के क्रमिक उत्कर्ष की जीवंत यात्रा के रूप में प्रस्तुत करती है—क्षणिक झलक से स्थायी जागृति तक, मानसिक शांति से प्रेममय अखंड चेतना तक, और साधना से सहज दिव्य अस्तित्व तक। यह यात्रा "हद" की सीमित अहं-चेतना से "बेहद" की विस्तृत आत्म-दृष्टि और वहाँ से "अक्षरातीत" की परम प्रेममयी अनुभूति तक विकसित होती है।

तारतम वाणी के अनुसार परमधाम में अंतिम लक्ष्य केवल "मुक्ति" नहीं, बल्कि नित्य प्रेम–आनंद लीला है। वहाँ चेतना शून्यता में विलीन नहीं होती, बल्कि प्रेम, संबंध और आनंद के अखंड प्रवाह में जीवंत रूप से प्रतिष्ठित रहती है। इसी कारण तारतम दर्शन मुक्ति को केवल बंधन-निवृत्ति नहीं, बल्कि चेतना की प्रेममयी पूर्णता और परम संबंध में स्थायी जागृति के रूप में प्रस्तुत करता है।

13.5 मोक्ष प्राप्ति के साधन

मोक्ष प्राप्ति के साधनों की दृष्टि से भारतीय परम्परा अत्यंत समृद्ध है। ज्ञान योग आत्मा और ब्रह्म की पहचान के माध्यम से मुक्ति का मार्ग दिखाता है; कर्म योग निष्काम कर्म और फलत्याग के द्वारा अहंकार को शुद्ध करता है; भक्ति योग ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण के द्वारा हृदय को निर्मल बनाता है; और राजयोग ध्यान तथा समाधि के माध्यम से चित्त को स्थिर करता है। इन सभी मार्गों का समन्वय अंततः साधक को उस अवस्था तक ले जाता है जहाँ भक्ति, ज्ञान और अनुभव एक हो जाते हैं। तारतम वाणी के अनुसार, विशेष रूप से परा (प्रेमलक्षणा) भक्ति में भक्ति साधना नहीं रहती, बल्कि स्वभाव बन जाती है—जहाँ प्रेम ही साधन और साध्य दोनों हो जाता है, और यही अवस्था कई परम्पराओं में मोक्ष से भी आगे की मानी गई है।

तारतम वाणी के प्रेमलक्षणा मार्ग के अंतर्गत अनुसार मोक्ष प्राप्ति के सात साधन बताए गए हैं—(1) आत्म-जागृति, (2) निष्काम करनी और सेवा, (3) मेहेर (कृपा), (4) स्मरण, (5) चितवनी, (6) विरह-अनुभूति, और (7) अनन्य प्रेम-भक्ति। इन सभी में *आत्म-जागृति* मूल आधार है—जैसे प्रकाश के बिना अन्य सभी साधन दिशा नहीं पाते।

13.5.1 आत्म-जागृति से मोक्ष तक की चेतना-यात्रा

13.5.1.1 आत्म-जागृति: जागनी

तारतम वाणी के अनुसार "जागनी" केवल धार्मिक ज्ञान या आध्यात्मिक जानकारी प्राप्त करने का नाम नहीं है, बल्कि चेतना के क्रमिक जागरण और सम्पूर्ण जीवन-

रूपांतरण की प्रक्रिया है। समग्र (Integral) दृष्टि से देखें तो जागनी मनुष्य के भीतर विचार, भावना, व्यवहार, संबंध, सेवा और आध्यात्मिक अनुभव—इन सभी आयामों के संतुलित विकास का मार्ग है। इसलिए यह केवल ध्यान, दर्शन या बौद्धिक समझ तक सीमित नहीं रहती, बल्कि मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को भीतर से बदलने वाली चेतना-यात्रा बन जाती है।

दार्शनिक दृष्टि से आत्म-जागृति का अर्थ है—चेतना का अज्ञान (अविद्या) से ज्ञान (विद्या) की ओर संक्रमण। यही परिवर्तन अद्वैत वेदांत में अहंकार-भंग और बौद्ध दर्शन में प्रज्ञा-उद्भव के रूप में समझाया गया है। महामति प्राणनाथजी के अनुसार मनुष्य केवल शरीर, जाति, नाम या सामाजिक पहचान नहीं है; उसके भीतर ऐसी चेतना विद्यमान है जो परमधाम और परमात्मा से जुड़ी हुई है। मोक्ष का वास्तविक मार्ग इसी विस्मृत संबंध को पुनः जागृत करने में है।

इसलिए तारतम वाणी बार-बार "जागो", "पहचानो" और "अपने वतन को याद करो" का आह्वान करती है। यहाँ जागृति केवल बौद्धिक ज्ञान नहीं, बल्कि अस्तित्वगत पहचान (Identity Shift) है—जहाँ जीव अपने वास्तविक स्वरूप और परम संबंध को पहचानने लगता है। महामति कहते हैं कि मोक्ष की यात्रा जागृति से प्रारम्भ होती है। जब मनुष्य पहली बार यह अनुभव करता है कि वह केवल शरीर या संसार तक सीमित नहीं है, तभी उसकी चेतना भीतर की ओर मुड़ने लगती है।

तारतम वाणी बार-बार आत्म-जागरण का आह्वान करती है—

"पेहेले आप पेहेचानो रे साधो, पेहेले आप पेहेचानो।

बिना आप चीन्हें पारब्रह्म को, कौन कहे मैं जानो।।" किरन्तन 1/1

यह चौपाई बताती है कि आत्म-पहचान के बिना परमात्मा की पहचान संभव नहीं। चेतना को सीमित "हद" से उठाकर "बेहद" और वहाँ से "अक्षरातीत" की ओर जागृत करना ही जागनी का अंतिम उद्देश्य है।

"हद के पार बेहद है, बेहद पार अक्षर।

अक्षर पार वतन है, जागिए इन घर।।" प्रकाश 31/165

13.5.1.2 जागनी का दुर्लभ अवसर

तारतम वाणी के अनुसार मानव जीवन जागृति का दुर्लभ अवसर है—

"आ जोगवाई छे जाग्या तणी, अने विचार माहें समझण ।

जे समझो ते जागजो, पण आ अवसर अरधो खिण ।।" *श्री रास 1/51*

अर्थात आत्म-जागृति का अवसर अत्यंत क्षणिक है। समझ कर अभी जाग जाना चाहिए। ज्ञान-दृष्टि के परिवर्तन से जागृति तुरंत घट सकती है।

तारतम वाणी जागनी की व्याख्या केवल व्यक्तिगत जागृति तक सीमित नहीं रखती, बल्कि सामूहिक चेतना-जागरण का आह्वान भी साथ साथ चलता है। महामतिजी बार-बार कहते हैं कि पहले स्वयं जागो, फिर दूसरों को भी जागृति की दिशा दो। जागनी का सार इसी पहचान में है—

"जागो जगाऊं जुगत सों, छोड़ो नींद विकार।
पेहेचान कराऊं पिउ सों, सुफल करूं अवतार।।"
"निजघर पिउ को लीजे प्रकाश, ज्यों वृथा जाए एक श्वास।"
"आतम मेरी है सुजान, अक्षरातीत निध करी पहचान।"
"अखंड धाम धनी उजास, जाग जागनी खेले रास।" *प्रकाश हिं. 21/11,20/17,21, 26*

ज्ञान के प्रकाश में आत्मा अपने मन, गुणों और इंद्रियों को डाँटती भी है और प्रेमपूर्वक समझाती भी है। धीरे-धीरे जीव, मन और आत्मा एक दिशा में संगठित होकर माया के आकर्षणों पर विजय पाने लगते हैं। यही चेतना को व्यवस्थित और जागृत करने की प्रक्रिया है।

परब्रह्म और आत्मा की पहचान के संदर्भ में रूप और स्वरूप का भेद समझना भी मोक्ष के लिए अत्यंत आवश्यक है। रूप बाहरी साधन, विधि और प्रतीक है; स्वरूप आंतरिक सत्य और चेतना। रूप साधन है, स्वरूप लक्ष्य। जब साधक बाहरी कर्मकांड में अटकने के बजाय उसके भीतर छिपे चेतना-सत्य को समझने लगता है, तभी वास्तविक जागृति प्रारम्भ होती है।

13.5.1.3 जागनी का आवश्यक अंग: गुरु–सतगुरु विवेक और मोक्ष

मोक्ष के साधन में गुरु और सतगुरु का विधान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि आत्मा अपनी सुप्त अवस्था से अकेले जाग नहीं पाती। सामान्य गुरु जीवन, सेवा, अनुशासन और साधना में दिशा देते हैं, पर सतगुरु वह हैं जो आत्मा को उसके मूल स्वरूप, निजघर, माया-मोह के बंधन और अक्षरातीत परब्रह्म की पहचान कराते हैं। इसलिए तारतम वाणी में सतगुरु का महत्व बाहरी नेतृत्व से अधिक आंतरिक जागनी से जुड़ा है।

सतगुर सोई मिले जब सांचा, तब सिंध बिंद परचावे।
प्रगट प्रकास करे पार ब्रह्म सों, तब बिंद अनेक उड़ावे।। *किरन्तन २/९*

इस चौपाई में सतगुरु की मूल भूमिका स्पष्ट है। सच्चे सतगुरु सीमित जगत और अखण्ड सत्य का भेद कराते हैं। जब परब्रह्म का प्रकाश हृदय में प्रकट होता है, तब आत्मा की दृष्टि अनेक ब्रह्माण्डों से ऊपर उठकर निजधाम की ओर जागती है। यही मोक्ष की शुरुआत है।

केवल शास्त्र, परंपरा या बाहरी ज्ञान पर्याप्त नहीं, क्योंकि सत्य सामने होते हुए भी मन, अहंकार, माया और भ्रम उसे ढँक देते हैं।

सास्त्रों में सबे सुध पाइए, पर सतगुर बिना क्यों लखाइए।

सब सास्त्र सब्द सीधा कहे, पर ज्यों मेर तिनके आड़े रहे।।— *किरन्तन ३/५*

अर्थात् शास्त्रों में सत्य है, पर सतगुरु के प्रकाश बिना उसका प्रत्यक्ष बोध कठिन है। जैसे आँख के आगे छोटा तिनका भी सुमेरु पर्वत को छिपा देता है, वैसे ही अज्ञान आत्मा की दृष्टि रोक देता है। सतगुरु की पहचान भी वाणी स्पष्ट करती है:

सतगुर साधो वाको कहिए, जो अगम की देवे गम।

हद बेहद सबे समझावे, भाने मन को भरम।।— *किरन्तन ४/१२*

सतगुरु वही है जो अगम परब्रह्म की पहचान कराए, हद-बेहद का भेद समझाए और मन के भ्रम मिटाए। इसलिए सतगुरु अंध-आज्ञापालन नहीं कराते, बल्कि समझ सहित जागनी कराते हैं।

इसी कारण गुरु-आज्ञा और विवेक के बीच संतुलन आवश्यक है। गुरु का सम्मान करना चाहिए, पर विवेक खोना नहीं चाहिए। सेवा, अनुशासन और सामूहिक व्यवस्था में सहयोग साधना हो सकता है; पर यदि कोई आदेश असत्य, भय, हिंसा, अपमान, शोषण या आत्म-विवेक के दमन की ओर ले जाए, तो वहाँ सजग रहना आवश्यक है। सतगुरु का उद्देश्य आत्मा को जगाना है, बाँधना नहीं।

मोक्ष का वास्तविक अर्थ भी इसी जागनी से खुलता है। मोक्ष केवल संसार छोड़ना नहीं, बल्कि माया-मोह से जागना, आत्मा के मूल संबंध को पहचानना और अखण्ड सुख की चेतना में प्रवेश करना है।

महामत कहें सावचेत होइयो, मिल्या है अंकूरों आई।

झूठी छूटे साँची पाइए, सतगुर लीजे रिझाई।। *किरन्तन ५/११*

आत्मा में परमधाम का अंकुर पहले से है। सतगुरु उसी अंकुर को जागृत करते हैं। झूठी माया छूटे और साँची पहचान मिले — यही मोक्ष मार्ग का सार है।

अंत में वाणी सतगुरु का पूर्ण विधान देती है:

सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप।

पार पुरुख जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप।। किरन्तन २०/६

अर्थात् सतगुरु वही है जो आत्मा को उसका अखण्ड वतन, माया-मोह का बंधन, अपना निज स्वरूप और पार पुरुष अक्षरातीत की पहचान कराए। ऐसे सतगुरु से मिलन ही मोक्ष मार्ग की निर्णायक दिशा है।

सार सूत्र: गुरु मार्ग दिखाते हैं, सतगुरु दृष्टि जगाते हैं, गुरगम बंधन काटता है और परब्रह्म अंतिम लक्ष्य हैं। गुरु का सम्मान, सतगुरु की पहचान, विवेकपूर्ण आज्ञापालन, माया से सावधानी, और प्रेममय आत्म-जागनी — ये सब मिलकर मोक्ष के साधन बनते हैं। सत्य मार्ग है, विवेक दीपक है, सतगुरु जागनी का माध्यम हैं, और परब्रह्म-संबंध ही अखण्ड मोक्ष का लक्ष्य है।

13.5.1.4 आत्म-जागृति, दुःख और मोक्ष का मार्ग

तारतम वाणी के अनुसार दुःख केवल दंड या दुर्भाग्य नहीं है, बल्कि आत्म-जागृति का एक गहरा साधन है। सामान्यतः मनुष्य सुख में संसार और माया में खो जाता है, पर दुःख उसे भीतर देखने के लिए विवश करता है। जब जीवन में अस्थिरता, वियोग, असफलता या पीड़ा आती है, तब मनुष्य पहली बार यह प्रश्न पूछता है—"मैं कौन हूँ? जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है?" यही प्रश्न आत्म-जागृति की शुरुआत बनते हैं। इस दृष्टि से दुःख चेतना को जगाने वाला आघात (awakening shock) है।

महामति प्राणनाथजी कहते हैं कि आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप और परमात्मा से संबंध को भूलकर अज्ञान की नींद में सोई हुई है। दुःख उस नींद को तोड़ता है। इसलिए तारतम वाणी कहती है—

"दुःख बिना न होवे जागनी, जो करो कोट उपाय।
धनी जगाए जागहीं, ना तो दुःख बिना क्योंए न जागाए।।" *किरंतन 17/14*
अर्थात करोड़ों उपाय कर लेने पर भी, जब तक भीतर जागृति नहीं होती, आत्मा मोह में सोई रहती है। दुःख मनुष्य को उसकी सीमित आसक्तियों से हटाकर सत्य की ओर मोड़ता है।

तारतम वाणी दुःख को विरह और प्रेम का द्वार भी मानती है—

"दुःखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इश्क।
इश्क प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक।।" *किरंतन 17/16*

जब आत्मा संसार के क्षणिक सुखों से निराश होकर अपने वास्तविक प्रियतम परमात्मा की खोज करने लगती है, तब भीतर विरह उत्पन्न होता है। यही विरह धीरे-धीरे प्रेम में बदलता है और प्रेम आत्मा को परम सत्य से जोड़ देता है। इस प्रकार दुःख केवल पीड़ा नहीं रहता; वह परमात्मा की ओर लौटने का माध्यम बन जाता है।

महामति प्राणनाथजी के अनुसार वास्तविक मोक्ष संसार से भागना नहीं, बल्कि चेतना का जागना है। जब आत्मा यह पहचानने लगती है कि वह केवल शरीर, नाम, जाति या सामाजिक पहचान नहीं, बल्कि परमात्मा से जुड़ी हुई चेतना है, तब मोक्ष-यात्रा प्रारम्भ होती है। दुःख इस पहचान को गहरा करता है, क्योंकि वह मनुष्य के झूठे अहंकार और अस्थायी सहारों को तोड़ देता है।

इसीलिए जागृत आत्मा कहती है—

"दुःख प्यारो है मुझको, जासों होए पियु मिलन।

कहा करूँ मैं तिन सुख को, आखिर जित जलन।।" *किरंतन 17/6*

अर्थात वह दुःख श्रेष्ठ है जो आत्मा को परमात्मा के निकट ले जाए, जबकि संसार के सुख अंततः चिंता और असंतोष ही देते हैं।

तारतम वाणी अंततः यह स्पष्ट करती है कि मोक्ष कोई केवल मृत्यु के बाद मिलने वाली अवस्था नहीं, बल्कि जीवित अवस्था में चेतना का रूपांतरण है। दुःख यदि सही समझ और जागृति के साथ स्वीकार किया जाए, तो वही आत्मा को अज्ञान से ज्ञान, माया से सत्य और सीमित अहंकार से अखंड प्रेम की ओर ले जाता है। यही दुःख का आध्यात्मिक रहस्य है—वह आत्मा को जगाकर परमात्मा तक पहुँचाने वाला माध्यम बन सकता है।

13.5.1.5 जागनी: एक क्रमिक प्रक्रिया

महामति जागृति को एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं—

"सूता होए सो जागियो, जागा सो बैठा होए।

बैठा ठाढा होइयो, ठाढा पांउं भरे आगे सोए।।" किरन्तन 86/18

अर्थात जो सो रहा है वह जागे, जो जाग गया है वह आगे बढ़े। यह चेतना के क्रमिक विकास की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया पाँच आयामों में समझी जा सकती है—आत्म-जागृति, चेतना और नैतिकता का विकास, वासनाओं और भ्रम का शुद्धिकरण, प्रेम और करुणा का विस्तार, और सेवा और उत्तरदायित्व के रूप में जीवन-अभिव्यक्ति। तारतम वाणी का जागनी-दर्शन इन सभी आयामों को समाहित करता है।

13.5.1.6 साक्षीभाव और इस से आगे जागनी

जागनी का अर्थ जीवन से भागना नहीं, बल्कि उसे साक्षीभाव से देखना है। जब साधक जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओं को नाटक की तरह देखने लगता है, तब उसकी चेतना धीरे-धीरे "तुरीय" अवस्था में स्थिर होने लगती है। यही तुरियातीत अवस्था में और परमधाम प्रवेश कराने वाली जागनी की चेतना है, जहाँ मनुष्य संसार में रहते हुए भी भीतर से परम सत्य में जाग्रत रहता है।

13.5.1.7 जागनी: प्रेम, सेवा और स्मृति में चेतना की स्थापना

यह यात्रा प्रेम, सेवा और स्मृति के माध्यम से पूर्ण होती है—

"सेवा कीजे पेहेचान चित धर, कारन अपने आए फेर।

भी अवसर आयो है हाथ, चेतन कर दिए प्राणनाथ।।" प्रकाश 13/3

"गुन धनी के याद कर, पकड पीउ के पाए।

सुखें बैठ सुखपाल में, देसी वतन पोहोंचाए।।" प्रकाश 16/2

यहाँ सेवा केवल सामाजिक कार्य नहीं, बल्कि चेतना को प्रेम और स्मृति में स्थापित करने का साधन है।

13.5.1.8 जागनीपूर्ण जीवन-रहनी: मोक्ष का वास्तविक द्वार

जिस व्यक्ति के भीतर जागनी प्रकट होने लगती है, उसके जीवन की दिशा और दृष्टि दोनों बदलने लगती हैं। उसकी रहनी केवल बाहरी धार्मिक आचरण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि भीतर से आत्मीय, सजग और प्रेममयी बनने लगती है। वह हर परिस्थिति पर तुरंत प्रतिक्रिया देने के बजाय साक्षीभाव से देखना सीखता है। लोगों को वह केवल उनके शरीर, व्यवहार या सामाजिक पहचान से नहीं, बल्कि चेतना के स्तर से समझने लगता है।

धीरे-धीरे उसका जीवन तुलना, ईर्ष्या, भय और अहंकार से हटकर प्रेम, सेवा, करुणा और विनम्रता की ओर बढ़ता है। दुःख उसे तोड़ने के बजाय भीतर जागने और सत्य को पहचानने का अवसर बन जाता है। उसका ध्यान बाहरी प्रदर्शन या कर्मकांड से अधिक आंतरिक सत्य, स्मृति और आत्म-जागृति पर केंद्रित होने लगता है।

समय के साथ शांति, संवेदनशीलता और करुणा उसके स्वभाव का हिस्सा बनने लगते हैं। वह संसार में रहते हुए भी भीतर से "निज घर" — अपने परम स्रोत और परम संबंध — की स्मृति में जीने लगता है। यही जागनीपूर्ण जीवन-रहनी का वास्तविक स्वरूप है।

यदि सम्पूर्ण जागनी-दर्शन को एक सूत्र में समझें, तो कहा जा सकता है कि आध्यात्मिक यात्रा वास्तव में अज्ञान से आत्म-पहचान की यात्रा है। यहाँ "नींद" अविद्या और आत्म-विस्मृति की अवस्था है; "जागृति" अपने वास्तविक स्वरूप और परम संबंध का बोध है; "सद्गुरु" उस ज्ञान का सेतु हैं जो जीव को भ्रम से सत्य की ओर ले जाता है; और "मोक्ष" जागृत चेतना की वह अवस्था है जहाँ आत्मा अपने मूल सत्य, प्रेम और अखंडता में स्थापित होने लगती है।

तारतम दृष्टि के अनुसार माया विभाजन, अलगाव और सीमित अहंकार का अनुभव कराती है, जबकि जागृति चेतना को एकत्व, स्मृति और परम संबंध की ओर ले जाती है। इन दोनों के बीच प्रेम सबसे महत्वपूर्ण सेतु है, क्योंकि वही आत्मा को परमात्मा से पुनः जोड़ता है।

अतः वास्तविक मोक्ष कहीं बाहर प्राप्त होने वाली वस्तु नहीं, बल्कि चेतना का जागरण है। जब आत्मा अपने भीतर के सत्य में जागती है, तभी मोक्ष घटित होता है।

13.5.2 निष्काम करनी और सेवा: मोक्ष का जीवंत साधन

तारतम वाणी के अनुसार मोक्ष कर्म छोड़ने से नहीं, बल्कि "सही करनी" (सजग, निष्काम और प्रेममयी कर्म) से प्राप्त होता है। जब कर्म अहंकार, फल की इच्छा

और आसक्ति से किए जाते हैं, तब वे बंधन बनते हैं; पर जब वही कर्म प्रेम, समर्पण और जागरूकता से किए जाते हैं, तब वे आत्मा को शुद्ध और जागृत करने लगते हैं।

महामति प्राणनाथजी स्पष्ट कहते हैं कि केवल ज्ञान-चर्चा पर्याप्त नहीं, जब तक जीवन की करनी प्रेम और निष्कामता से न जुड़ जाए—

"ले पंडिताई पड़ी प्रवाह में, कर कर ज्ञान गोष्ठ।
न्यारा भयो न नेहेकाम होए के, मैं लिधो न निर्गुण पुष्ट।।" किरन्तन 101/4

तारतम वाणी "निहकर्म" की अवस्था की बात करती है—जहाँ मनुष्य कर्म करता है, पर कर्म उसे बाँधते नहीं—

"थासे संजोग तबे बंध छूटे, करम नहीं लवलेश।
निहकर्म तणा निशान जे लागा, अखंड सुख पामे वसेक।।" किरन्तन 126/121

अर्थात परमसत्य से प्रेमपूर्ण संयोग होने पर कर्म लीला बन जाते हैं। इसी कारण वाणी मन, वचन और कर्म की एकता पर बल देती है—

"चोकस कर चित दीजिए, आतम को एह धन।
निमख एक न छोड़िए, कर मन वाचा करमन।।" परिक्रमा 4/6

इस प्रकार तारतम दर्शन में सही करनी केवल नैतिक आचरण नहीं, बल्कि आत्मीय स्तर की करनी चेतना-जागृति और मोक्ष का साधन है। जब जीवन प्रेम, सेवा, सजगता और समर्पण में बदलता है, तभी कर्मबंधन धीरे-धीरे समाप्त होने लगते हैं।

13.5.3 सेवा से मोक्ष की ओर

तारतम वाणी के अनुसार सेवा केवल बाहरी कर्म या धार्मिक गतिविधि नहीं, बल्कि चेतना की एक उच्च अवस्था है। सामान्यतः लोग सेवा को कर्तव्य या पुण्य मानते हैं, पर महामति प्राणनाथजी सेवा को प्रेम, समर्पण और आत्म-जागृति का मार्ग बताते हैं। सेवा जीव को अहंकार, स्वार्थ और अलगाव से उठाकर प्रेम, विनम्रता और परम संबंध की ओर ले जाती है। इसी कारण सेवा मोक्ष का एक महत्वपूर्ण साधन बनती है।

महामति कहते हैं कि जब चित्त सेवा की ओर मुड़ता है, तब जीवन का उद्देश्य स्पष्ट होने लगता है—

"में चित माहें चितव्युं, जाण्युं करसुं सेवा सार।
मल्यो धणी मुने धामनों, सुफल करुं अवतार।।" *रास 1/25*

अर्थात जब मनुष्य समझ लेता है कि जीवन का सार सेवा है, तभी उसका जीवन सफल होने लगता है। यहाँ सेवा केवल कार्य नहीं, बल्कि चित्त की दिशा है।

तारतम वाणी यह भी स्पष्ट करती है कि सेवा बाहरी दिखावे से नहीं, बल्कि आंतरिक शुद्धि और विनम्रता से उत्पन्न होती है—

"मुखथी सेवा तुंने सी कहुं जो तुं अंतर आडो टाल।
अनेक विध सेवा तणी, तुने उपजसे तत्काल ।।" *रास 3/25*

अर्थात जब भीतर का अहंकार और भ्रम हटता है, तब सेवा स्वतः प्रकट होने लगती है। इसलिए सेवा पहले आत्मा को शुद्ध करती है, फिर उसे परमात्मा के निकट ले जाती है।

महामति सेवा को प्रेम और समर्पण से जोड़ते हैं—

"सनेहसुं सेवा करजो धणी, गलित चित थई अति घणी।
तमे सेवाए पामसो पार, धणीतणां वचन निरधार ।।" प्रकाश गुज 34/15

अर्थात प्रेम से की गई सेवा ही जीव को पार लगाती है। यहाँ "पार" का अर्थ केवल सांसारिक सफलता नहीं, बल्कि कर्मबंधन और माया से मुक्ति है।

तारतम वाणी के अनुसार सच्ची सेवा निष्कपट होती है। वह प्रसिद्धि, मान या प्रदर्शन के लिए नहीं की जाती—

"सेवा करे न जनावहीं, अपनी आत्मा के कारन।
दिखावे नहीं काहू को, समझावे अपना मन ।।"बीतक 3/49

अर्थात सेवा आत्मा की जागृति के लिए होनी चाहिए, न कि दूसरों को दिखाने के लिए। यही निष्काम सेवा धीरे-धीरे अहंकार को गलाकर चेतना को प्रेममय बनाती है।

समग्र (Integral) दृष्टि से सेवा केवल एक कर्म नहीं, बल्कि चेतना-विकास की बहुआयामी साधना है। सेवा मनुष्य को अपने सीमित अहंकार और स्वार्थ से ऊपर उठाकर आत्म-जागृति की ओर ले जाती है (Waking Up)। यह उसे संबंधों, मूल्यों और दृष्टिकोणों में अधिक परिपक्व बनाती है, जिससे वह विविधता का सम्मान करना और व्यापक हित में सोचना सीखता है (Growing Up)। सेवा के माध्यम से व्यक्ति अपनी वासनाओं, आसक्तियों, पूर्वाग्रहों और छाया-पक्षों का सामना कर उन्हें परिष्कृत करता है (Cleaning Up)। साथ ही उसका हृदय प्रेम, करुणा, सहानुभूति और एकात्मता के लिए अधिक खुलता है (Opening Up)। अंततः यही आंतरिक जागरण व्यवहार, उत्तरदायित्व, नेतृत्व और लोकमंगल के रूप में जीवन में प्रकट होने लगता है (Showing Up)।

इसी कारण सेवा केवल धार्मिक अनुष्ठान या सामाजिक गतिविधि नहीं रहती; वह व्यक्ति (I), व्यवहार (It), संबंध (We) और व्यवस्था (Its)—चारों आयामों को रूपांतरित करने वाली समग्र साधना बन जाती है। तारतम दृष्टि में सेवा का चरम फल केवल किसी कार्य की सिद्धि नहीं, बल्कि आत्मा में प्रेम, चेतना में जागृति, संबंधों में एकदिली

और जीवन में धनी की मेहर का प्राकट्य है। इस प्रकार सेवा चेतना के विकास और प्रेम के अवतरण का जीवंत माध्यम बन जाती है।

इसी कारण सेवामय रहनी वाले व्यक्ति के जीवन में विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगते हैं। वह लोगों की सहायता केवल कर्तव्यवश नहीं, बल्कि आत्मीयता से करने लगता है। उसका व्यवहार विनम्र, करुणामय और सहयोगी हो जाता है। वह सेवा में दिखावा नहीं खोजता, बल्कि भीतर शांति और प्रेम अनुभव करता है। धीरे-धीरे उसका जीवन "मैं क्या पाऊँ?" से बदलकर "मैं क्या दे सकूँ?" की दिशा में विकसित होने लगता है। परिवार, समाज, प्रकृति और प्रत्येक जीव के प्रति संवेदनशीलता बढ़ने लगती है। यही सेवामय रहनी चेतना को मोक्ष की दिशा में आगे बढ़ाती है।

सेवा अत्यंत व्यावहारिक साधना है। प्रतिदिन एक निःस्वार्थ कार्य करना, सेवा करते समय अहंकार को देखना, "मैं" के स्थान पर "हम" भाव विकसित करना, तथा दिन के अंत में यह चिंतन करना कि सेवा करते समय भीतर कैसा अनुभव हुआ—ये छोटे अभ्यास चेतना को बदलने लगते हैं। जब सेवा कर्तव्य न रहकर प्रेम बन जाती है, तब जीवन भीतर से बदलने लगता है।

महामति अंततः सेवा को मोक्ष का सर्वोच्च साधन बताते हैं—

"सेवा जेहवो बीजो पदारथ नथी, जाण जोई लेसे वचन ज थकी ।।" प्रकाश गुज 24/25

और अंत में प्रेमपूर्ण सेवा की चरम अवस्था को इस प्रकार व्यक्त करते हैं—

"मोहे सेवा प्यारी पीउ की, साहेब हो बैठो तुम ।
अति सुख पांऊं इनमें, करों बंदगी खसम ।।" किरन्तन 62/14

तारतम वाणी का अंतिम संदेश अत्यंत स्पष्ट है—ज्ञान मार्ग दिखाता है, जागृति भीतर का द्वार खोलती है, पर सेवा उस सत्य को जीवन में उतारती है। जब सेवा प्रेम, समर्पण और आत्म-विसर्जन बन जाती है, तभी वास्तविक मोक्ष की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

13.5.4 मेहेर या कृपा: जागनी से मोक्ष तक की परम शक्ति

तारतम वाणी में "मेहेर" या प्रेम कृपा को मोक्ष-मार्ग का अत्यंत केंद्रीय तत्व माना गया है। यदि आत्म-जागृति जीव को अपने वास्तविक स्वरूप की ओर जगाती है, सेवा उसे प्रेमपूर्ण समर्पण में स्थापित करती है, और साधना उसके चित्त को तैयार करती है, तो मेहेर वह दिव्य शक्ति है जो साधक के सीमित पुरुषार्थ को अखंड फल से जोड़ देती है। तारतम दर्शन के अनुसार मनुष्य प्रयास तो कर सकता है, पर अंतिम जागरण और परमधाम-संबंध की पूर्ण अनुभूति केवल धामधनी की कृपा से ही संभव होती है। इसीलिए मेहेर को साधन भी कहा गया है और साधन की पूर्णता भी।

दार्शनिक दृष्टि से कृपा केवल दया या भावनात्मक सांत्वना नहीं है। यह वह चेतना-शक्ति है जिसके द्वारा जीव के भीतर ज्ञान, प्रेम, विश्वास, जागृति और परमधाम की स्मृति प्रकट होती है। तारतम वाणी स्पष्ट करती है कि प्रेम, हुकम और संशयरहित ज्ञान—तीनों मेहेर से ही जागते हैं—

"हुकम मेहेर के हाथ में, जोस मेहेर के अंग।
इसक आवे मेहेर से, बेसक इलम तिन संग॥" सागर 15/2

अर्थात वास्तविक प्रेम (इश्क) और संशयरहित ज्ञान (बेसक इल्म) कृपा से ही उत्पन्न होते हैं। यहाँ मेहेर केवल भाव नहीं, बल्कि चेतना को रूपांतरित करने वाली दिव्य शक्ति है।

महामति प्राणनाथजी यह भी स्पष्ट करते हैं कि केवल व्यक्तिगत प्रयास मोक्ष के लिए पर्याप्त नहीं। मनुष्य साधना, सेवा, जप, चितवनी और आत्मचिंतन कर सकता है, परंतु अंतिम आवरण तब हटता है जब भीतर मेहेर उतरती है। इसलिए कृपा अहंकार को पिघलाती है और यह बोध कराती है कि मोक्ष "मेरी उपलब्धि" नहीं, बल्कि "धनी की दी हुई पहचान" है। यही कारण है कि तारतम वाणी बार-बार आत्मा को विनम्रता और ग्रहणशीलता की ओर ले जाती है।

मेहेर का एक अत्यंत गहरा पक्ष यह है कि वह साधक की देखने की दृष्टि बदल देती है। सामान्य जीव संसार को दुःख, संघर्ष और विरोध से भरा देखता है; पर जिस पर कृपा होती है, वह उसी संसार में भी धनी की उपस्थिति अनुभव करने लगता है—

"मेहेर होत है जिन पर, मेहेर देखत पांचों तत्व।
पिंड ब्रह्मांड सब मेहेर के, मेहेर के बीच बसत॥" सागर 15/8

यहाँ कृपा का अर्थ संसार से भागना नहीं, बल्कि चेतना की ऐसी जागृति है जहाँ जीव हर अनुभव में परम सत्य की झलक देखने लगता है। इसलिए तारतम वाणी आगे कहती है—

"ए दुख रूपी इन जिमी में, दुख न काहूं देखत॥
बात बडी है मेहेर की, जो दुख में सुख लेवत॥" सागर 15/9

अर्थात कृपा दुःख को मिटाने से पहले उसकी दृष्टि बदलती है। वही व्यक्ति दुःख में भी आंतरिक अर्थ, शिक्षा और परम संबंध का अनुभव करने लगता है। यही आत्म-जागृति का संकेत है।

तारतम दर्शन में दुःख और मेहेर का संबंध अत्यंत गहरा है। दुःख आत्मा को जगाता है, पर मेहेर उसे टूटने नहीं देती। कृपा दुःख-भूमि में भी कायम सुख का अनुभव कराती है—

"इन दुख जिमी में बैठके, मेहेरें देखे दुख दूर।
कायम सुख जो हकके, सो मेहेर करत हजूर ।।" सागर 15/11

यहाँ मोक्ष का अर्थ बाहरी परिस्थितियों से भागना नहीं, बल्कि चेतना को उस अखंड सुख से जोड़ना है जो परमधाम-संबंध में निहित है। संसार बदलता नहीं, पर देखने वाला बदल जाता है। यही जागनी की गहराई है।

महामति प्राणनाथजी मेहेर को "सागर" कहते हैं—

"महामत कहे ऐ मोमिनों, ए मेहेर बडा सागर।
सो मेहेर हक कदमों तलें, पिओ अमीरस हक नजर ।।" सागर 15/45

सागर का अर्थ है—असीमता, गहराई और अखंड प्रवाह। साधक को इस कृपा-सागर में डूबकर चेतना को प्रेम और स्मृति में स्नान कराना है। कृपा का चरम कार्य है—भीतर की आँख खोल देना—

"सखी री मेहेर बड़ी मेहबूब की, अखंड अलेखें।
अंतर आंखां खोलसी, ए सुख सोई देखे ।।" किरन्तन 82/1

यह "अंतर आँख" आत्म-जागृति की दृष्टि है। जब यह खुलती है, तब जीव केवल संसार नहीं देखता; वह अपने परम संबंध, निज घर और अखंड आनंद की झलक देखने लगता है। यही मोक्ष की शुरुआत है।

तारतम वाणी यह भी स्पष्ट करती है कि कृपा केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं रहती। वह साधक की चेतना को प्रेम, सेवा और सार्वभौमिक करुणा की ओर विस्तृत करती है—अर्थात कृपा क्रोध, मद और अहंकार को गलाकर प्रेममयी चेतना जगाती है। यही चेतना अंततः "अक्षर पार" की यात्रा का आधार बनती है।

समग्र दृष्टि से देखें तो मेहेर चेतना-विकास के सभी आयामों को स्पर्श करती है। वह आत्मा को जगाती है, दृष्टि और संबंधों को परिपक्व करती है, भीतर की वासनाओं और विकारों को शुद्ध करती है, प्रेम और करुणा के लिए हृदय खोलती है, और अंततः जीवन को सेवा और प्रेम की अभिव्यक्ति बना देती है। इस प्रकार कृपा केवल ऊपर से मिलने वाली सहायता नहीं, बल्कि सम्पूर्ण चेतना-प्रणाली को रूपांतरित करने वाली दिव्य ऊर्जा है।

जिस व्यक्ति के भीतर मेहेर का अनुभव प्रकट होने लगता है, उसकी रहनी भी बदलने लगती है। वह जीवन को अधिकार नहीं, प्रसाद की तरह देखने लगता है। उसके भीतर कृतज्ञता बढ़ती है, शिकायत कम होती है। वह दूसरों के दोषों के बजाय उनकी पीड़ा को समझने लगता है। सेवा में अहंकार घटने लगता है और विनम्रता स्वभाव बनती है। धीरे-धीरे उसका जीवन भय और नियंत्रण से हटकर विश्वास और समर्पण में बदलने लगता है। यही मेहेरमय रहनी है।

तारतम वाणी का अंतिम बोध अत्यंत स्पष्ट है—

पुरुषार्थ आवश्यक है, पर अंतिम नहीं। सेवा हृदय को तैयार करती है। ज्ञान दिशा देता है। जागृति चेतना को खोलती है। परंतु मेहेर ही वह शक्ति है जो जीव को परमधाम-संबंध में स्थिर करती है और मोक्ष का द्वार खोलती है।

अतः मोक्ष केवल साधना का परिणाम नहीं, बल्कि जागृति और कृपा के मिलन से घटित होने वाली चेतना की परम अवस्था है।

13.5.5 नाम-स्मरण से जागृति और मोक्ष की ओर

15.5.5.1 तारतम वाणी में स्मृति, संबंध और चेतना का रहस्य

भारतीय भक्ति परम्पराओं में नाम-स्मरण को अत्यंत महत्त्वपूर्ण साधना माना गया है। इसलिए यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या केवल नाम-जप ही मोक्ष का साधन है? तारतम दर्शन इस प्रश्न का अत्यंत सूक्ष्म और समग्र उत्तर देता है। उसके अनुसार मोक्ष केवल मृत्यु के बाद प्राप्त होने वाली कोई अवस्था नहीं, बल्कि चेतना की जागृति है—और यह जागृति "स्मरण" से प्रारम्भ होती है।

सामान्यतः लोग आध्यात्मिक साधना को केवल नाम-जप या मंत्र-दोहराव तक सीमित समझ लेते हैं, पर तारतम वाणी स्मरण को कहीं अधिक गहरा अर्थ देती है। यहाँ स्मरण केवल किसी शब्द का उच्चारण नहीं, बल्कि चित्त को माया की विस्मृति से हटाकर अपने मूल स्वरूप, निजधाम, धामधनी, इश्क, मेहर और परम संबंध की ओर स्थिर करना है। आत्मा का दुःख विस्मृति से आरम्भ होता है, और उसकी मुक्ति अखंड स्मृति से।

इसी कारण तारतम वाणी में "याद करो" का आह्वान बार-बार आता है। यह केवल ऐतिहासिक घटनाओं या धार्मिक कथाओं की याद नहीं, बल्कि जागनी-प्रक्रिया, मेहर और आत्म-पहचान का स्मरण है। यह याद साधक को यह भान कराती है कि जीवन केवल संसार-व्यवहार और क्षणिक सुखों के लिए नहीं, बल्कि आत्मा की जागृति और धनी से अपने शाश्वत संबंध को पुनः पहचानने के लिए मिला है।

तारतम दर्शन नाम-स्मरण को अत्यंत महत्त्वपूर्ण मानता है, पर यह भी स्पष्ट करता है कि यदि नाम-जप केवल यांत्रिक दोहराव बन जाए, तो उसकी शक्ति सीमित रह जाती है। वास्तविक स्मरण तब घटित होता है जब नाम के साथ गुण, स्वरूप, धाम, लीला और परम संबंध की अनुभूति भी जुड़ने लगती है। इसलिए वाणी कहती है—

"श्वास श्वास निजनाम जपो, वृथा श्वास मत खोय।"

यहाँ "नाम" केवल ध्वनि नहीं, बल्कि परम तत्व की पहचान का जीवंत संकेत है। यह स्मरण चेतना को परम प्रेम-लीला से जोड़ने का माध्यम बनता है। तारतम वाणी में सच्चिदानन्द परब्रह्म को अनेक गुण-वाचक नामों से पुकारा गया है। परंतु वाणी का वास्तविक आग्रह केवल शब्द-स्मरण नहीं, बल्कि चेतना-जागृति है।

इसीलिए स्मरण के अनेक आयाम बताए गए हैं—प्रिय नाम का स्मरण, गुणों की याद, स्वरूप की स्मृति, निजधाम की चितवनी, प्रेमानन्द लीला की अनुभूति, मेहर का

बोध, प्रेम-वार्ता के मूल वचनों की याद और परम संबंध की चेतना। इन सभी का संयुक्त प्रभाव आत्मा को माया की जड़ता से उठाकर जागनी की दिशा में ले जाता है।

तारतम वाणी यह भी स्पष्ट करती है कि यदि मंत्र को केवल चमत्कार, तंत्र या सांसारिक लाभ तक सीमित कर दिया जाए, तो वह आध्यात्मिक उन्नति का साधन नहीं रह जाता। इसके विपरीत जब मंत्र श्रद्धा, समझ और अंतःकरण की शुद्धता के साथ साधा जाता है, तब वही जन्म–मरण के बंधनों से मुक्त करने वाला साधन बन जाता है— "मंत्र तारतम सोई।"

वाणी बार-बार आत्मा को अपने "निज घर" की याद दिलाती है। जीव का सबसे बड़ा भ्रम यही है कि वह अस्थायी संसार को ही अपना स्थायी घर मान बैठता है। जब निजधाम की स्मृति जागती है, तब संसार की पकड़ ढीली होने लगती है। इसी प्रकार "श्री राज" की याद माया-मुक्ति की शक्ति बनती है—

"तुम्हें माया से काढ़ने, हम आये इन काज।
तुम छोड़ो मुरदार को, याद करो श्री राज।।" बीतक 20/30

यहाँ "मुरदार" से तात्पर्य उस जड़, क्षणभंगुर और माया-बद्ध संसार से है जिसमें चेतना उलझी रहती है। संसार का आकर्षण केवल बाहरी त्याग से नहीं छूटता; वह तब ढीला पड़ता है जब धनी का आकर्षण जागता है। इसलिए तारतम दर्शन में मोक्ष का मार्ग केवल वैराग्य नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण स्मृति और जागृत संबंध है।

अंततः तारतम वाणी का संदेश यह है कि नाम केवल उच्चारण नहीं, स्मरण केवल विचार नहीं, और भक्ति केवल कर्मकांड नहीं। जब स्मृति प्रेम में बदलती है, प्रेम जागृति में, और जागृति परम संबंध में—तभी आत्मा मोक्ष और परमधाम की दिशा में आगे बढ़ती है।

13.5.5.2 मोक्ष के साधन के रूप में नाम-स्मरण की अवधारणा

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में "नाम-स्मरण" को केवल किसी शब्द की यांत्रिक पुनरावृत्ति नहीं माना गया, बल्कि चेतना को परम सत्य की ओर मोड़ने वाला एक जीवंत साधन समझा गया है। महामति प्राणनाथजी की दृष्टि में भी नाम का वास्तविक महत्त्व उसके बाहरी उच्चारण में नहीं, बल्कि उस चेतना, प्रेम और स्मृति में है जिससे साधक जुड़ता है। इसलिए उनकी भाषा अत्यंत भावप्रधान, बहुस्तरीय और चेतना-केंद्रित है। उनका उद्देश्य केवल बौद्धिक सिद्धांत स्थापित करना नहीं, बल्कि साधक की अंतर्चेतना को जागृत करना है।

तारतम वाणी में "श्री कृष्ण", "प्राणनाथ", "धनी" आदि नामों की महिमा कही गई है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि कोई एक शब्द ही अंतिम और सीमित रूप से परम

सत्य बन जाता है। भारतीय दर्शन सामान्यतः यह संकेत करता है कि शब्द आवश्यक हैं, क्योंकि उन्हीं के माध्यम से स्मरण, भक्ति और साधना प्रारंभ होती है; परंतु शब्द स्वयं अंतिम सत्य नहीं हैं। वे उस अनुभव की ओर ले जाने वाले माध्यम हैं। यदि कोई परंपरा अपने प्रिय नाम, प्रतीक या शब्द को ही अंतिम और पूर्ण सत्य मान ले, तो संवाद की जगह आग्रह और विवाद उत्पन्न होने लगते हैं।

इस दृष्टि से "नाम-स्मरण" का वास्तविक आशय यह है कि साधक प्रेमपूर्वक उस नाम में स्थित चेतना से जुड़ता है। तब नाम केवल ध्वनि या उच्चारण नहीं रहता; वह परम स्मृति, उपस्थिति, संबंध और आंतरिक रूपांतरण का माध्यम बन जाता है। "श्री कृष्ण" नाम की महिमा का तात्पर्य भी यही है कि उसके माध्यम से आत्मा प्रेम, आनंद, लीला और परमात्म-संबंध की चेतना से जुड़ने लगती है। नाम साधक को बाहर से भीतर की ओर ले जाता है। मूल स्वरूप संबंधित नाम या विशेषण – जैसे "श्री राज श्यामा जी, श्री जी साहेव पिया, धणी आदि - भी चेतना को अक्षरातीत परमधाम से जोड़ता तो है, पर वह भी संकेत ही है, जब तक चितवन (ध्यान) में उस स्तर की वास्तविकता को छुआ न जाए।

मोक्ष की दृष्टि से यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि तारतम वाणी के अनुसार बंधन का मूल कारण विस्मृति है—आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप और परम संबंध को भूल गई है। नाम-स्मरण इस विस्मृति को धीरे-धीरे स्मृति में परिवर्तित करता है। जब साधक निरंतर प्रेमपूर्वक स्मरण करता है, तब उसका मन माया, भय और अहंकार से हटकर परम चेतना की ओर स्थिर होने लगता है। इस प्रकार नाम केवल पूजा-पद्धति नहीं, बल्कि चेतना को रूपांतरित करने वाला साधन बन जाता है।

अंततः साधना की परिपक्वता में शब्द पीछे हटने लगते हैं और अनुभव प्रधान हो जाता है। तब "नाम" साधक को "नामी" की ओर ले जाता है। शब्द द्वार बनता है, और चेतना उस द्वार से होकर उस जीवंत सत्य की अनुभूति की ओर बढ़ती है जिसे कोई एक भाषा, संज्ञा या परिभाषा पूरी तरह बाँध नहीं सकती। इसलिए तारतम वाणी में नाम-महिमा को संकीर्ण सम्प्रदायिक आग्रह के रूप में नहीं, बल्कि चेतना-जागृति, प्रेम-स्मरण और परमात्म-संबंध के जीवंत आह्वान के रूप में समझना अधिक समीचीन है।

13.5.5.3 स्मरण से चितवनी की ओर

स्मरण का पहला स्तर बौद्धिक होता है—जहाँ साधक वाणी, सिद्धान्त, धाम और लीला को समझता है। पर यदि स्मरण केवल शब्दों तक सीमित रह जाए, तो जागनी अधूरी रहती है। इसलिए स्मरण धीरे-धीरे "चितवनी" में बदलता है। चितवनी में धनी की याद केवल विचार नहीं रहती; वह हृदय की दिशा बन जाती है।

"निस दिन रंग मोहोलन में, साथ स्यामाजी स्याम।
याद करो सुख सबों अंगों, जो करते आठों जाम।।" परिक्रमा 4/5

यहाँ स्मरण केवल मन से नहीं, "सबों अंगों" से है। अर्थात चेतना, भावना, दृष्टि, वाणी और व्यवहार—सब धाम-सुख और धनी-संबंध में रंगने लगें। यही जागनी की अक्सीर युक्ति है।

13.5.5.4 स्मरण: मेहर और शुक्राना

तारतम वाणी स्मरण को केवल पुरुषार्थ नहीं मानती; वह मेहर और समर्पण से भी जुड़ा हुआ है—

"महामत कहें ऐ साथ जी, याद करो धनी तुम।
उतरी मेहर हक से, जगाओ आपनी आतम।।" बीतक 34/58

यहाँ स्मरण आत्मा को कृपा-बोध से जोड़ता है। साधक अनुभव करने लगता है कि जागनी केवल "मैं कर रहा हूँ" नहीं, बल्कि धनी की मेहर से घट रही है। यही बोध नम्रता लाता है।

इसीलिए वाणी शुक्राना की याद भी कराती है—

"महामत कहें ए मोमिनों, याद करो सुकराना।
मेहर करी तुम ऊपर, तुम्हारी सिफत करो सुभाना।।" बीतक 61/47

शुक्राना स्मरण को शिकायत और कठोरता से बचाता है। जहाँ मेहर की स्मृति रहती है, वहाँ प्रेम और करुणा बढ़ती है।

13.5.5.5 दुःख, स्मरण और आत्म-जागृति

तारतम वाणी के अनुसार चेतना जहाँ लगती है, अनुभव वैसा बनता है—

"लगोगे जो दुख को, तो दुख तुमको लागसी।
याद करो जो निज सुख, तो दुख तुमथें भागसी।।" कलस हिं 23/26

यदि मन बार-बार दुःख, अपमान और माया में लगा रहे, तो दुःख गहराता जाता है। पर यदि आत्मा निजसुख, धाम और धनी की स्मृति में लौटे, तो दुःख की पकड़ ढीली होने लगती है। इसका अर्थ दुःख को दबाना नहीं, बल्कि उसके बीच भी परम उपस्थिति को पहचानना है। यही जागनी की मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक कुंजी है।

13.5.5.6 स्मरण का हृदय: दिव्य प्रेम (इश्क)

तारतम दर्शन में दिव्य प्रेम स्मरण की आत्मा है—

"याद करो इन इस्क को, जो रब्द किया सबों मिल।
सो इस्क अपना कहां गया, टिक्या नहीं पाव पल।।" खिलवत 16/87

ज्ञान दिशा देता है, पर प्रेम चेतना को जीवित करता है। यदि स्मरण में प्रेम नहीं, तो वह केवल शुष्क मानसिक दोहराव रह जाता है। इश्क स्मरण को जीवंत बनाता है। प्रारम्भ में साधक धनी को याद करता है; फिर स्मरण स्वयं भीतर प्रवाहित होने लगता है; और अंततः याद करने वाला, याद और धनी—तीनों प्रेममय उपस्थिति में एकरस होने लगते हैं। यही प्रेम का अद्वैत आयाम है।

13.5.5.7 स्मरण से मोक्ष और जागनी तक

समग्र दृष्टि से स्मरण चेतना-विकास के सभी आयामों को प्रभावित करता है। यह आत्मा को जगाता है, दृष्टि को परिपक्व करता है, भीतर के भय और वासनाओं को शुद्ध करता है, प्रेम और करुणा के लिए हृदय खोलता है, और अंततः जीवन को प्रेमपूर्ण सेवा में बदल देता है। इस प्रकार स्मरण केवल धार्मिक अभ्यास नहीं, बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व के रूपांतरण की प्रक्रिया है।

जब स्मरण परिपक्व होता है, तब जीवन बदलने लगता है। साधक संसार में रहते हुए भी भीतर से धाम-स्मृति में जीने लगता है। प्रतिक्रिया की जगह साक्षीभाव आता है, भय की जगह विश्वास, और अकेलेपन की जगह परम संबंध का अनुभव। धीरे-धीरे जीवन स्वयं जागनी बन जाता है।

अंतिम बोध यही है—जिसे हम बार-बार याद करते हैं, वही हमारी चेतना का घर बन जाता है। यदि माया याद है, तो दुःख बढ़ता है। यदि निजधाम याद है, तो दिशा मिलती है। यदि धनी याद हैं, तो प्रेम जागता है। यदि मेहर याद है, तो नम्रता आती है। और जब स्मरण प्रेममय चितवनी बन जाता है, तब आत्मा परमधाम के मूल स्वरूप में जागने लगती है। यही स्मरण का परम रहस्य है—स्मृति से जागृति, जागृति से प्रेम, और प्रेम से मोक्ष।

13.5.6 चितवनि: जागनी, प्रेम और अखंड सुरता की साधना

तारतम वाणी में "चितवनि" (ध्यान/सुरता) केवल मन को शांत करने की तकनीक नहीं, बल्कि चेतना की सही दिशा है। इसका अर्थ है—अपनी सुरता को संसार की बिखरी हुई आसक्तियों से हटाकर अक्षरातीत परमधाम, श्री राज-श्यामा, निजस्वरूप और परम संबंध की ओर स्थिर करना। दार्शनिक दृष्टि से यह "अविद्या-प्रेरित बहिर्मुखता" से "संबंध-प्रेरित अंतर्मुखता" की यात्रा है। जब सुरता बाहरी विषयों में उलझी रहती है, तब जीव बंधन में रहता है; और जब वही सुरता मूल मिलावा में स्थिर होने लगती है, तब मोक्ष का द्वार खुलता है।

तारतम परंपरा में चितवनि का आधार केवल कल्पना नहीं, बल्कि विश्वासयुक्त स्मरण है। यहाँ स्मरण केवल मानसिक दोहराव नहीं, बल्कि विश्वास और भाव के साथ

किया गया स्मरण है, जो धीरे-धीरे अनुभूति में बदलता है। अर्थात चितवनि का सार है—चित का धनी के स्वरूप से जुड़ जाना।

चितवनि केवल व्यक्तिगत साधना नहीं, सामूहिक चेतना का भी साधन है। जब सुन्दरसाथ में वाणी-चर्चा, परमधाम-चिन्तन और प्रेमवार्ता होती है, तब सामूहिक चितवनि का वातावरण बनता है। तारतम वाणी चितवनि में निरंतरता पर विशेष बल देती है—

"आपणु धन तां एह छे, जे दिए छे आधार।
रखे अधखिण तमे मूकतां, वालो केहे छे वारंवार ।।" रास 1/80

अर्थात चितवनि हमारा वास्तविक धन है; इसे आधे क्षण के लिए भी न छोड़ने का आग्रह है। इसका अर्थ संसार-त्याग नहीं, बल्कि सतत साक्षीभाव और भीतर संबंध-स्मृति को जीवित रखना है --*Continuous Awareness में रहना* है।

तारतम दर्शन चितवनि और सेवा को भी एक-दूसरे से अलग नहीं मानता—

"सेवा में चितवन रहे, मोको ए वस्त करनी आज ।।"

बिना चितवनमय अवस्था के सेवा यांत्रिक बन जाती है, और बिना सेवा के चितवनि सूखी। इसलिए जागनी में प्रेम, सेवा, स्मरण और सुरता—चारों का तारतम्य-केंद्रित समन्वय आवश्यक है।

चितवनि का चरम "अखंड सुरता" है—

"सोई कहावत आसक, जिन अंग जोस फुरत।
अहेनिस पीउके अंगमें, रहेत आसक की सुरत ।।" किरन्तन 91/14

अर्थात दिन-रात चेतना धनी के संबंध में स्थित रहने लगे। यही अनन्य प्रेमभक्ति और अखंड ध्यान की अवस्था है।

चितवनि का लक्ष्य भी वाणी अत्यंत स्पष्ट करती है—

"सुरत एकै राखिए, मूल मिलावे माहीं।
स्याम स्यामाजी साथजी, तले भोम बैठे है जाहीं ।।" सागर 7/3

अर्थात चितवनि का उद्देश्य केवल मानसिक शांति नहीं, बल्कि "मूल मिलावा" — आत्मा के परम संबंध का प्रत्यक्ष अनुभव है।

नवरंग वाणी इस अनुभव को और गहराई देती है—

"सुरत संभारी देखो आपको, मूल सरूप धनी धाम।
मूल सरूप देखो आपको, याद करो निज नाम ।।"
"छोड़ के पिंड ब्रह्माण्ड को, सुन्य निरंजन निराकार।
अक्षर पार पूरनानंद, ए पिउ प्राण आधार ।।"

अर्थात चितवनि धीरे-धीरे चेतना को स्थूल पहचान से उठाकर अक्षरातीत प्रेम और मूल स्वरूप की ओर ले जाती है।

तारतम वाणी की "चितवनि" को समग्र दृष्टि से देखें तो यह केवल पारंपरिक ध्यान (Meditation) नहीं, बल्कि चेतना के बहुआयामी रूपांतरण की प्रक्रिया है। सामान्य ध्यान मुख्यतः चेतना-जागरण अर्थात "Waking Up" से जुड़ा होता है, पर चितवनि उससे भी आगे जाकर सम्पूर्ण जीवन को रूपांतरित करने का प्रयत्न करती है।

इस दृष्टि से—सुरता का जागना और आत्म-स्मृति का वास्तविक प्रारम्भ इन पांचों अंगों के साथ साथ विकास से संभव है: 1. जागरण (Waking Up)से ध्यान में स्थिरता, 2. विवेक और संबंध-बोध के विकास (Growing Up) से परिपक्वता; 3. वासनाओं, भय, प्रतिक्रियाओं और भ्रम की सफाई (Cleaning Up) से शुद्धि; 4. बहुविध बुद्धि, प्रेम, मेहर और करुणा आधारित चितवनि (Opening Up) से हृदय-विस्तार; और 5. सेवा, व्यवहार, विनम्रता और जागृत रहनी में ध्यान के प्रवाह (Showing Up) से की जीवन-अभिव्यक्ति – ये सभी समग्र चितवनि के अंग बन जाते हैं। इन में से एक भी अंग पर से ध्यान हट जाने पर पूरा अनुभव बिखरने लगता है।

इस प्रकार चितवनि केवल आँखें बंद करके बैठने की साधना नहीं रहती; वह जीवन जीने की जागृत शैली बन जाती है। यही कारण है कि तारतम परंपरा में चितवनि को सेवा, चर्चा, प्रेम, स्मरण, प्रणाम और जागनी से अलग नहीं माना गया। समग्र दृष्टि से कहा जाए तो चितवनि "समग्र ध्यान" का जीवंत उदाहरण है—जहाँ ध्यान केवल भीतर का अनुभव नहीं, बल्कि चेतना, संबंध, प्रेम और जीवन-अभिव्यक्ति का अखंड प्रवाह बन जाता है।

आधुनिक जीवन में चितवनि के व्यावहारिक रूप को अपनाते हुए गहराई में प्रवेश संभव है:

- श्वास-जागरूकता अभ्यास:दिन में तीन बार केवल दो मिनट रुककर श्वास को देखना और भीतर स्मरण करना—*"मैं केवल शरीर नहीं, चेतना हूँ।"* यह सुरता को बाहरी बिखराव से भीतर लाता है।
- Digital Pause (डिजिटल विराम): मोबाइल, स्क्रीन या ऐप बदलने से पहले कुछ क्षण रुककर वर्तमान में लौटना। यह डिजिटल विचलन को सजगता में बदलता है।
- भाव-स्मरण (Visualization with Bhav): परमधाम, श्री राज-श्यामा या "मूल मिलावा" का शांत स्मरण करना। उद्देश्य केवल कल्पना नहीं, बल्कि परम संबंध का अनुभव है।

- पूर्ण उपस्थिति का अभ्यास: पढ़ाई, सेवा, भोजन, बातचीत, चलना या किसी भी कार्य को पूर्ण ध्यान और प्रेम से करना। जहाँ पूर्ण उपस्थिति है, वहीं जागनी प्रारम्भ होती है।
- सजग सेवा: सेवा करते समय केवल कर्म न करें; भीतर स्मरण और विनम्रता बनाए रखें।

  यही "सेवा में चितवन" की अवस्था है।
- साक्षीभाव अभ्यास: विचारों और भावनाओं को पकड़ने के बजाय उन्हें आते-जाते देखना।

  इससे सुरता धीरे-धीरे प्रतिक्रियात्मकता से साक्षीभाव की ओर बढ़ती है।

अंततः तारतम वाणी का संदेश अत्यंत सरल और गहरा है—मन को केवल रोकना ध्यान नहीं; उसे मूल संबंध की दिशा देना चितवनि है। और जब सुरता धामधनी के प्रेम, मेहर और निजधाम-स्मृति में स्थिर होने लगती है, तभी जागनी, मोक्ष और परमधाम-दृष्टि का मार्ग खुलता है। अर्थात् चितवनी का चरम है— मोक्ष का आंतरिक द्वार है, चित का धनी के स्वरूप से पूर्ण बंधन (attachment नहीं, alignment) है।

13.6 दुःख: जागनी और मोक्ष का उत्प्रेरक

सामान्य दृष्टि में दुःख जीवन की समस्या माना जाता है, जिससे मनुष्य बचना चाहता है। पर तारतम वाणी दुःख को केवल नकारात्मक अनुभव नहीं मानती; वह उसे चेतना-जागरण का माध्यम बताती है। संसार का सुख प्रायः आत्मा को बाहरी विषयों, आसक्तियों और अहंकार में उलझाए रखता है, जबकि दुःख मनुष्य को भीतर लौटने, जीवन के वास्तविक अर्थ को खोजने और परम संबंध की ओर मुड़ने के लिए विवश करता है। इसी कारण महामति प्राणनाथजी दुःख को साधना का "आहार" कहते हैं—अर्थात वह तत्व जो आत्मा की आंतरिक वृद्धि का पोषण करता है।

तारतम दर्शन दुःख को कई स्तरों पर समझता है। एक दुःख वह है जो कर्म, अपेक्षा और आसक्ति से उत्पन्न होता है। दूसरा वह जागरणकारी दुःख है जो मनुष्य को आत्मचिंतन की ओर ले जाता है। और तीसरा, सबसे सूक्ष्म स्तर है—विरहाग्नि। यह प्रियतम से वियोग की अनुभूति है, जो आत्मा में परम मिलन की उत्कंठा जगाती है। तारतम वाणी इसी विरह को मोक्ष का वास्तविक साधन मानती है, क्योंकि यही आत्मा को अखंड स्मरण और प्रेम में स्थिर करता है।

"दुख रे प्यारो मेरे प्रानको।
सो मैं छोडयो क्योंकर जाए, जो मैं लियो है बुलाए॥
दुख बिना चरनकमलको, सखी कबहूं न मिलिया कोए॥

जिन दुख मेरा पीउ मिले, मैं सो दुख लेउं बुलाए ।।
दुख तो हमारो आहार है, औरन को दुख खाए ।।" किरन्तन 16/1, 3

यहाँ एक गहरा दार्शनिक उलटाव दिखाई देता है—सुख नहीं, बल्कि दुःख आत्मा को परमात्मा की ओर ले जाने वाला साधन बनता है। कारण यह है कि बाहरी सुख चेतना को स्थूल अनुभवों में बाँधे रखता है, जबकि दुःख उसे अपनी सीमित पहचान से आगे देखने को बाध्य करता है।

तारतम वाणी दुःख को अंतिम सत्य नहीं मानती; वह उसे रूपांतरण की प्रक्रिया कहती है—"दुख बदले सत सुख ।।"

अर्थात दुःख का उद्देश्य केवल पीड़ा देना नहीं, बल्कि आत्मा को उस अखंड सुख तक पहुँचाना है जो परिवर्तनशील नहीं है। यही कारण है कि वाणी सांसारिक सुख की सीमाओं को भी इंगित करती है—

"ता सुखको कहा कीजिए, जो देखलावे धरमराए ।
मैं वह दुख मांगूं पीउपें, पीउसों पल-पल रंग चढाए ।।" किरन्तन 16/11

यहाँ "सुख" उस अनुभव का प्रतीक है जो आत्मा को बाहरी जगत में बाँधता है, जबकि "दुःख" वह आंतरिक आग है जो चेतना को परम संबंध की ओर मोड़ती है। इसीलिए वाणी स्पष्ट रूप से कहती है—

"दुखसे पीउजी मिलसी, सुखें न मिलिया कोए ।
अपने धनीका मिलना, सो दुखै से होए ।।" किरन्तन 17/10
"दुख बिना न होवे जागनी, जो करे कोट उपाए ।
धनी जगाए जागहीं, ना तो दुख बिना क्योंए न जगाए ।।" किरन्तन 17/14

यहाँ दुःख को जागनी का उत्प्रेरक (catalyst) बताया गया है। जब जीवन की अस्थिरता, वियोग और अपूर्णता का अनुभव गहराता है, तभी आत्मा में अपने मूल स्वरूप और "निज घर" की खोज प्रारम्भ होती है।

तारतम दर्शन में विरह केवल भावनात्मक पीड़ा नहीं, बल्कि प्रेम की सर्वोच्च अवस्था है—

"दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक ।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक ।।" किरन्तन 17/16

अर्थात दुःख से विरह उत्पन्न होता है, विरह से प्रेम, और प्रेम से परम मिलन। यही प्रक्रिया आत्मा को माया से हटाकर अखंड चेतना की ओर ले जाती है।
वाणी आगे कहती है—

"दुख दावनल काटत, और काटत सकल विकार।
दुख काटत मूल मायाको, बढे नहीं विस्तार ।।" किरन्तन 17/20

यहाँ दुःख को दावानल अर्थात ऐसी अग्नि कहा गया है जो वासनाओं, अहंकार और माया के मूल को जलाने लगती है।

समग्र दृष्टि से देखें तो तारतम वाणी का "दुःख–विरह" सिद्धांत आधुनिक चेतना-विज्ञान से भी गहराई से जुड़ता है। आज मनोविज्ञान और आध्यात्मिक अध्ययन यह मानते हैं कि वास्तविक आंतरिक विकास तभी संभव है जब मनुष्य अपने भीतर के दबे हुए भय, पीड़ा, अहंकार और "छाया-पक्ष" (Shadow) का सामना करे। केवल बाहरी सफलता या सुख से चेतना परिपक्व नहीं होती; कई बार दुःख ही मनुष्य को अपने भीतर उतरने के लिए विवश करता है। तारतम वाणी इसी सत्य को आध्यात्मिक भाषा में व्यक्त करती है।

इसके अनुसार दुःख अहंकार, भ्रम और माया की पकड़ को ढीला करके अंतःकरण की शुद्धि करता है। विरह हृदय को प्रेम और करुणा के लिए खोलता है। दुःख चेतना को बाहरी आकर्षणों से हटाकर भीतर की ओर जगाता है, और जीवन-दृष्टि में गहराई तथा परिपक्वता लाता है। इस प्रकार दुःख केवल समस्या नहीं रहता; वह चेतना-रूपांतरण और जागनी का साधन बन जाता है।

आधुनिक जीवन में इसका व्यावहारिक अर्थ यह है कि दुःख से भागने के बजाय उसे सजगता से समझने का प्रयास किया जाए। प्रतिदिन कुछ समय शांत चिंतन में यह देखना उपयोगी हो सकता है कि— *"यह अनुभव मुझे क्या सिखा रहा है?"* हृदय-केंद्रित ध्यान के माध्यम से पीड़ा और विरह को प्रेम, करुणा और प्रार्थना में बदला जा सकता है। कठिन परिस्थितियों को केवल बाधा न मानकर आंतरिक विकास का अवसर समझना भी जागनी का भाग है। साथ ही, साक्षीभाव का अभ्यास आवश्यक है—अपनी भावनाओं को देखना, पर स्वयं को केवल उन्हीं भावनाओं तक सीमित न मान लेना।

इस प्रकार तारतम वाणी दुःख को निराशा का कारण नहीं, बल्कि चेतना-परिवर्तन का साधन मानती है। संसार का दुःख यदि केवल शिकायत बन जाए तो बंधन है; पर वही दुःख यदि विरह, स्मरण और प्रेम में रूपांतरित हो जाए, तो वह जागनी और मोक्ष का द्वार बन जाता है। अंतिम बोध यही है—सांसारिक सुख चेतना को बाहर फैलाता है, पर विरहजन्य दुःख चेतना को मूल संबंध की ओर लौटा देता है। और जब दुःख प्रेम में बदल जाता है, तभी आत्मा जागनी से मोक्ष की दिशा में अग्रसर होती है।

13.7 परा (प्रेमलक्षणा) भक्ति: मोक्ष और परमधाम-प्राप्ति का सर्वोच्च साधन

तारतम दर्शन में परा (प्रेमलक्षणा) भक्ति भक्ति की वह उच्चतम अवस्था है जहाँ भक्ति केवल पूजा, जप, नियम या धार्मिक क्रिया तक सीमित नहीं रहती, बल्कि साधक की चेतना का सहज स्वभाव बन जाती है। यह अंधविश्वास, भय या केवल कर्मकांड पर आधारित धार्मिकता नहीं, बल्कि विवेक, अनुभव और आंतरिक परिपक्वता से उत्पन्न प्रेमावस्था है। यहाँ तर्क और बुद्धि नष्ट नहीं होते; वे अपनी सीमा पूरी कर प्रेम में शांत हो जाते हैं। उपनिषद जिस "परा विद्या" की बात करते हैं, वही तारतम वाणी में प्रेमस्वरूप चेतना-अनुभव के रूप में प्रकट होती है।

आध्यात्मिक यात्रा सामान्यतः "अपरा" से प्रारम्भ होती है। अपरा का अर्थ है—विधि, अनुशासन, जप, सेवा, अध्ययन, ध्यान और आत्मचिंतन के माध्यम से चेतना को तैयार करना। प्रारम्भिक धार्मिकता प्रायः भय, परंपरा या सीमित पहचान पर आधारित होती है, परन्तु अपरा भक्ति धीरे-धीरे मन, अहंकार और वासनाओं को परिष्कृत करती है। जब यह शुद्धि गहरी होने लगती है, तब प्रेम किसी प्रयास का परिणाम नहीं रहता; वह चेतना का सहज प्रवाह बनकर प्रकट होने लगता है। यही परा भक्ति है। यहाँ साधक भक्ति "करता" नहीं, बल्कि स्वयं भक्ति का माध्यम बन जाता है।

तारतम दृष्टि में अपरा और परा विरोधी नहीं हैं। अपरा साधना है, परा चेतना की अवस्था। अपरा में साधक प्रयत्न करता है; परा में सत्य की कृपा स्वतः प्रकट होने लगती है। अपरा में स्मरण अभ्यास है; परा में स्मरण श्वास की तरह स्वाभाविक हो जाता है। यही कारण है कि परा भक्ति को केवल धार्मिक आचरण नहीं, बल्कि चेतना के रूपांतरण की प्रक्रिया माना गया है।

तारतम वाणी में "इश्क़" या दिव्य प्रेम इसी परा भक्ति का हृदय है। यहाँ प्रेम कोई भावुक अनुभव नहीं, बल्कि अस्तित्व का मूल तत्त्व है। जहाँ ज्ञान दिशा देता है, ध्यान चित्त को स्थिर करता है और सेवा चेतना को परिष्कृत करती है, वहीं प्रेम आत्मा को परमधाम के अनुभव में प्रवेश कराता है। इसीलिए महामति प्राणनाथजी प्रेम को केवल मोक्ष का साधन नहीं, बल्कि स्वयं मोक्ष का स्वरूप मानते हैं।

"पांचमा सागर पूरन, गेहेरा गुझ गंभीर ।
प्याले इसक दरियाव के, पीवें अरस रुहें फकीर ।। सागर 12/1
इन रस को ए सागर, पूरन जुगल किसोर ।
ए दरिया सुख पांचमा, लेहेरी आवत अति जोर ।।" सागर 12/2

यहाँ प्रेम को "सागर" कहा गया है—असीम, अथाह और निरंतर प्रवाहित। यह प्रेम श्रीराज–श्यामा के जुगल स्वरूप से प्रकट होकर आत्माओं को आनंद और रस से भर

देता है। प्रेम आत्मा को भीतर से विस्तृत करता है और उसे उसके मूल स्वरूप की ओर लौटाता है। इसलिए वाणी आगे कहती है—

"इत दुनियां चौदे तबक में, एक दम उठत हैं जे।
जो हक सहूर कर देखिए, तो सब वास्ते इसक के ।।" सागर 12/20

दार्शनिक दृष्टि से यह अत्यंत गहन कथन है। इसका आशय यह है कि अस्तित्व का अंतिम आधार केवल कर्म, संघर्ष या भय नहीं, बल्कि प्रेम है। आत्मा की प्रत्येक खोज अंततः उसी परम मिलन की तलाश है।

परा भक्ति का चरम अर्थ है—अलगाव का समाप्त होना। जब प्रेम परिपक्व होता है, तब आत्मा स्वयं को परम संबंध से अलग अनुभव नहीं करती—

"सखी प्रेम ध्वजा कहेवाए, जेनुं प्रगट नाम कुली माहें।
ए तो प्रेम तणां जे पात्र, आपणथी अलगो न थाए खिण मात्र ।।" रास 33/2

यही मोक्ष का वास्तविक अर्थ है। मोक्ष केवल जन्म-मरण से छुटकारा नहीं, बल्कि चेतना के विभाजन का अंत है। प्रेम आत्मा को उस अखंडता में स्थापित करता है जहाँ "मैं" और "तुम" का भेद धीरे-धीरे गलने लगता है।

इसीलिए तारतम वाणी स्पष्ट करती है कि केवल बाहरी साधना पर्याप्त नहीं—

"सौ माला बाओ गलेमें, द्वादस करो दस बेर।
जौलो प्रेम न उपजे पीउसों, तोलो मन न छोडे फेर ।।" किरन्तन 14/5

अर्थात यदि साधना प्रेम में रूपांतरित नहीं होती, तो मन का चक्र समाप्त नहीं होता। यहाँ वाणी कर्मकांड का निषेध नहीं करती, बल्कि उसके भीतर प्रेम की आवश्यकता पर बल देती है। बिना प्रेम के धर्म बाहरी क्रिया बन सकता है; प्रेम उसे जीवंत अनुभव में बदल देता है।

तारतम दर्शन प्रेम की उत्पत्ति को भी अत्यंत सूक्ष्म रूप से समझाता है। प्रेम प्रायः विरह से जन्म लेता है—

"दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक ।।"

यहाँ दुःख को नकारात्मक नहीं माना गया; उसे चेतना-जागरण की अग्नि कहा गया है। विरह आत्मा में ऐसी तड़प उत्पन्न करता है जो उसे माया से हटाकर परम मिलन की ओर ले जाती है। इस प्रकार प्रेम केवल भावना नहीं, बल्कि चेतना का रूपांतरण है।

महामति प्राणनाथजी स्पष्ट कहते हैं—

"एमां प्रेमे पारब्रह्म पामिए, ए वाणी बोले रे एम।
अनेक कसोटी जो आवे आड़ी, तो ए निध मूकिए केम ।।"

अर्थात प्रेम ही वह माध्यम है जिसके द्वारा परब्रह्म की प्राप्ति होती है। यहाँ प्रेम साधन भी है और साध्य भी। यही कारण है कि वाणी सम्पूर्ण जीवन को प्रेममय तीर्थ में बदल देती है—

"तीरथ ते जे एक चित कीजे, करम न बांधिए कोए।
अहेनिस प्रीते प्रेमसुं रमिए, तीरथ एणी पेरे होए॥"

परा भक्ति में इष्ट केवल बाहरी उपास्य नहीं रहते; वे साधक की आंतरिक चेतना का केंद्र बन जाते हैं। स्मरण प्रयास नहीं रहता—वह सहज हो जाता है। यही कारण है कि तारतम परंपरा प्रेमलक्षणा भक्ति को दशधा भक्ति के रूप में देखती है—वात्सल्य, सख्य, दास्य, शरणागति, माधुर्य, स्मरणासक्ति, विरहासक्ति, स्वरूपासक्ति, तन्मयासक्ति और गुणपूजा। ये अलग-अलग मार्ग नहीं, बल्कि एक ही प्रेम की गहराती अवस्थाएँ हैं।

नवरंग वाणी प्रेम-लक्षणा भक्ति को ज्ञान, तप, जप और ध्यान से भी श्रेष्ठ बताती है—

"जोग जगन तप नेम व्रत, भक्ति सबकी सारी।
मुक्ति ग्यान जप ध्यान ते, प्रेम लक्षना न्यारी॥"

यहाँ प्रेम को इसलिए श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि प्रेम में साधक केवल जानता नहीं—जीता है। ज्ञान दिशा देता है, ध्यान स्थिरता देता है, सेवा अभिव्यक्ति देती है; पर प्रेम इन सबको एकत्व में जोड़ देता है।

मुण्डकोपनिषद दो प्रकार की विद्याओं—अपरा और परा—का वर्णन करता है। अपरा ज्ञान शास्त्र, विचार और बौद्धिक समझ का क्षेत्र है; परा वह है जिससे सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। तारतम वाणी इसी भेद को चेतना और भक्ति के स्तर पर विस्तार देती है। अपरा प्रयास है; परा सहज अनुभव। अपरा विधि है; परा प्रेम। अपरा ज्ञान का अर्जन है; परा ज्ञान का चेतना में रूपांतरण।

तारतम दृष्टि में परा प्रेमलक्षणा भक्ति क्षर और अक्षर दोनों से परे अक्षरातीत स्वलीलाद्वैत परमधाम की ओर उन्मुख है। यहाँ आत्मा शून्य में विलीन नहीं होती, बल्कि परम प्रेम-लीला में सचेत सहभागी बनती है। यही कारण है कि परा भक्ति को केवल मोक्ष नहीं, बल्कि मोक्ष से आगे की प्रेममयी जागृति कहा गया है।

समग्र दृष्टि से देखें तो परा भक्ति चेतना की पूर्णता है। इसमें ज्ञान अनुभव में बदलता है, शक्ति कृपा में, और साधना सहज जीवन-अभिव्यक्ति में। अंततः भक्ति की जाती नहीं—भक्ति हो जाती है।

इसीलिए तारतम वाणी का अंतिम संदेश अत्यंत स्पष्ट है—प्रेम ही परमधाम है, प्रेम ही परमात्मा का अनुभव है, और प्रेम ही मोक्ष का अंतिम स्वरूप है।

तृतीय भाग

इस भाग में विद्यार्थी निजानंद - प्रणामी ज्ञानधारा की नैतिक अवधारणाओं, महामति प्राणनाथ के समाज-दर्शन, सामाजिक समरसता, चेतना-विकास, सार्वभौमिक मानवता तथा "सर्वधर्म समन्वय" से "सर्वजीवन समन्वय" की तारतम्य-केंद्रित समग्र दृष्टि का अध्ययन करेंगे। साथ ही, वे यह समझ सकेंगे कि आध्यात्मिक चेतना, नैतिक जीवन, प्रेम, सेवा और समन्वय किस प्रकार व्यक्ति और समाज के संतुलित विकास का आधार बनते हैं।

अध्याय

अध्याय: 14 निजानंद - प्रणामी ज्ञान धारा की नैतिक अवधारणाएँ

अध्याय: 15 महामति प्राणनाथ का समाजदर्शन: समरसता, चेतना और सार्वभौमिक मानवता की ओर

अध्याय: 16 "सर्वधर्म समन्वय" से तारतम्य-केंद्रित "सर्वजीवन समन्वय" की ओर

लेखक

***डॉ. नेहा शाक्य**, अतिथि विद्वान, दर्शनशास्त्र विभाग, शासकीय मान कुंवर बाई महिला कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (मध्य प्रदेश)*

+

***डॉ. मौसमी सोलंकी**, पोस्ट डॉक्टोरल रिसर्च फेलो, भारतीय दार्शनिक अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, दर्शनशास्त्र अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (मध्य प्रदेश)*

+

***नरेंद्र आर. पटेल,** एम.एस., सी.एस.पी. (सेवानिवृत्त): लेखक, संपादक, सहयोगी शोधकर्ता एवं स्क्रिप्ट लेखक, श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया प्रोडक्शन्स, पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना एवं निजानंद फाउंडेशन इंक., यू.एस.ए. सदस्य, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय सुरक्षा समन्वयक, रटगर्स विश्वविद्यालय, यू.एस.ए.*

भाग 3: अध्याय 14

निजानंद - प्रणामी ज्ञान धारा की नैतिक अवधारणाएँ

महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी एवं बीतक के विशेष संदर्भ में

॥ सत्यं शिवं सुन्दरम् ॥

प्रस्तुत अध्याय महामति प्राणनाथजी (1618–1694) द्वारा प्रणीत तारतम वाणी (कुलज़म स्वरूप) एवं स्वामी लालदासजी कृत बीतक के आलोक में निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय की नैतिक अवधारणाओं का व्यवस्थित विवेचन प्रस्तुत करता है। नीति के स्वरूप, उसके सात प्रकारों, Morals–Ethics के भेद, यम-नियम से समानता, और महामति के पञ्च कर्तव्यों सहित सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक नैतिकता की विशद व्याख्या की गई है। शोध यह स्थापित करता है कि इस परम्परा में नैतिकता बाहरी नियम नहीं, बल्कि जागृत चेतना एवं प्रेम का स्वाभाविक प्रवाह है।

मुख्य शब्द: तारतम वाणी, बीतक, नीति, नैतिकता, यम-नियम, सर्वमुक्ति, महामति प्राणनाथ, निजानन्द - प्रणामी सम्प्रदाय

14.1 भूमिका

"नीति" का अर्थ है — वह मार्ग या आचरण-व्यवस्था जो व्यक्ति और समाज को सत्य, धर्म, न्याय एवं कल्याण की दिशा में ले जाए। भारतीय चिंतन में यह केवल बाहरी कानून या सामाजिक नियमों का विषय नहीं; इसका सम्बन्ध उतना ही अंतःकरण, चेतना और आत्मिक जागृति से है। इसीलिए यहाँ नीति और धर्म को परस्पर पूरक माना गया है — धर्म जीवन के शाश्वत सत्य का बोध कराता है, तो नीति उस सत्य को व्यवहार में उतारने की कला है। महाभारत का सूत्र "यतो धर्मस्ततो जयः" इसी अभेद्य सम्बन्ध की घोषणा करता है। यह स्पष्ट करता है कि जहाँ नीति और धर्म हैं, वहीं वास्तविक विजय है।

इसी परम्परा में महामति प्राणनाथ (1618–1694) ने सत्रहवीं शताब्दी में एक समग्र नैतिक दर्शन प्रस्तुत किया — जिसका आधार 'कुलज़म स्वरूप' (तारतम वाणी) तथा 'बीतक साहब' है। उन्होंने भारतीय नीतिशास्त्र की प्रचलित मान्यताओं को स्वीकार करते हुए उन्हें एक गहरी आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की। तारतम वाणी में नीति बाहरी दबाव से उत्पन्न नियम नहीं, बल्कि परम सत्य, परम निर्मलता और परम प्रेम के प्रति जागरूक चेतना का सहज प्रवाह है। जब मनुष्य इस आधार से जुड़ता है, तब सत्य, करुणा, सेवा और तारतम्य-केंद्रित समन्वय उसके जीवन में अनायास प्रकट होते हैं — व्यक्ति के अंतःकरण से लेकर विश्वमानवता तक। प्रस्तुत शोध पत्र इसी नैतिक दर्शन का व्यवस्थित विश्लेषण करता है।

14.2 नीति का स्वरूप एवं तारतम वाणी की दृष्टि

तारतम वाणी में नीति की अवधारणा बहुस्तरीय है। यहाँ नीति न केवल सामाजिक नियमों या बाहरी आचरण तक सीमित है, बल्कि इसका उद्देश्य व्यक्ति, समाज, प्रकृति और आध्यात्मिक सत्य के बीच संतुलन स्थापित करना है।

महामति कहते हैं —

"आप पकड़ तूं अपना, बल कर आँखां खोल।

दूध पानी दोऊ जाहेर, देख नीके तारतम बोल ।।"— तारतम वाणी

यह चौपाई व्यक्तिगत नीति के मूल तत्त्व को उजागर करती है — विवेक, आत्मदृष्टि और सजगता। इसी प्रकार समय के सदुपयोग पर बल देते हुए कहा गया —

"अब ढील न कीजे एक पल, इत नाहीं बैठन का लाग।

एक पलक के कोटवे हिस्से, हो जासी बड़ा अभाग ।।"— तारतम वाणी

14.3 नीति के सात प्रकार एवं तारतम वाणी के दृष्टांत

भारतीय दर्शन और तारतम वाणी के समन्वित अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नीति केवल एक सीमित नैतिक नियम नहीं, बल्कि जीवन के विविध आयामों को संतुलित करने वाली समग्र चेतना है। तारतम वाणी में नीति के अनेक स्वरूप मिलते हैं, जो व्यक्ति के आंतरिक विकास से लेकर समाज, धर्म, राजनीति, अर्थव्यवस्था, प्रकृति और आध्यात्मिक चेतना तक विस्तृत हैं। इन सबका अंतिम उद्देश्य मनुष्य को सत्य, प्रेम, करुणा और अखण्ड जीवन-दृष्टि की ओर उन्मुख करना है।

14.3.1 व्यक्तिगत नीति (Personal Ethics) का संबंध व्यक्ति के आत्मिक और चारित्रिक विकास से है। इसमें आत्मजागरण, सत्यनिष्ठा, संयम, अनुशासन, धैर्य और विवेक जैसे गुण आते हैं। तारतम वाणी व्यक्ति को सबसे पहले स्वयं को पहचानने और जागृत चेतना के साथ जीवन जीने की प्रेरणा देती है—

"पहेले आप पहेचानो रे साधो, पहेले आप पहेचानो।

बिना आप चीन्हें पारब्रह्म को, कौन कहें मैं जानों ।।"

अर्थ: पहले स्वयं को पहचान — जब तक अपने आप को नहीं जाना, तब तक पारब्रह्म को जानने का दावा निरर्थक है।

इसी प्रकार सजगता, विवेक और साहस का उपदेश देते हुए कहा गया है—

"तुम आकले होए ना उरझियो, सब काम दुरस्ती से होए।

आकले काम सैतान के, ठन्डे हक़ से होवे सोए ।।"

अर्थ: अधीर हो कर उलझो मत; सभी कार्य धैर्य, स्थिरता और सजगता से होने चाहिए। जल्दबाज़ी शैतान का काम है — शांत विवेक से ही सत्य तक पहुँचा जाता है।

और—

"अब ढील न कीजे एक पल, इत नाहीं बैठन का लाग।

एक पलक के कोटवे हिस्से, हो जासी बड़ा अभाग ।।"

अर्थ: एक पल की भी ढील मत करो — यहाँ रुकने का अवसर नहीं। एक पलक के असंख्य हिस्सों में भी विलम्ब बड़ा अभाग्य ला सकता है।

तारतम वाणी व्यक्ति को आत्मदृष्टि और विवेकपूर्ण निर्णय की प्रेरणा भी देती है—

"आप पकड़ तूं अपना, बल कर आँखां खोल।

दूध पानी दोऊ जाहेर, देख नीके तारतम बोल ।।"

अर्थ: स्वयं को थामो, साहस से आँखें खोलो। दूध और पानी दोनों प्रकट हैं — तारतम वाणी की दृष्टि से भेद को ठीक से देखो।

तथा—

"कर हिम्मत बाँध कमर, ले हुकम सब हाथ।

पियु पास हो पहेचान के, और छोड़ सब साथ ।।"

अर्थ: अपने सम्पूर्ण अस्तित्व की जागृति पूर्वक प्रियतम परब्रह्म की इच्छा को शिरोधार्य कर भीतर की यात्रा के लिए संकल्पबद्ध हो जाओ। निश्चित जानो कि प्रियतम तुम्हारे करीब और साथ है। अतः अन्य परिवर्तनशील उपायों के आधार पर अधिक भरोसा मत रखना।

14.3.2 सामाजिक नीति (Social Ethics) समाज में समानता, करुणा, सहयोग और सद्भाव की स्थापना से संबंधित है। तारतम वाणी सम्पूर्ण मानवता को एक मानते हुए जाति, धर्म और भेदभाव से ऊपर उठने का संदेश देती है—

"ज़ात एक साहेब की, और ना कोई ज़ात।

एक साहेब एक दुनिया, उड़ गयी दूजी बात ।।"

अर्थ: साहेब की जाति एक ही है — कोई दूसरी जाति नहीं। एक साहेब, एक दुनिया — भेद की बात ही उड़ गई।

दूसरों के दुःख को अपना दुःख मानने की संवेदना को व्यक्त करते हुए कहा गया है—

"जो दुःख मेरी सैयन को, तब सुख कै सा मोहे।

हम तुम एक वतन के, अपनी रूह नहीं दोए ।।"

अर्थ: जब मेरी सखी को दुःख है, तो मुझे सुख कैसा? हम और तुम एक ही वतन के हैं — आत्मा दो नहीं, एक ही है।

करुणा और मधुर व्यवहार की प्रेरणा देते हुए महामति कहते हैं—

"अब दुख ना देऊं फूल पांखडी, देखूं सीतल नैन।

उपजाऊं सुख सब अंगों, बोलाऊं मीठे बैन ।।"

अर्थ: अब फूल की पंखड़ी मारने से लगने से होने वाली पीड़ा जितना भी दुःख नहीं दूँगी — शीतल नयनों से सभी को देखूँगी। सब अंगों में सुख उपजाऊँगी, मीठे बोल बुलाऊँगी।

सामाजिक समन्वय की सर्वोच्च भावना इस चौपाई में दिखाई देती है—

"करना सारा एक रस, हिंदू मुसलमान।
धोखा सबका भान के, सबका कहूँगी ज्ञान ॥"

अर्थ: हिन्दू और मुसलमान सहित सबको एक रस में मग्न करना है। अपनी अपनी ज्ञान धारा से सबके भ्रम को तोड़ दूँगी।

14.3.3 धार्मिक नीति (Religious Ethics) धर्म के वास्तविक सार—भक्ति, सेवा, अहिंसा, प्रेम और निष्ठा—से जुड़ी हुई है। तारतम वाणी बाहरी कर्मकाण्ड से अधिक आंतरिक निर्मलता और सतगुरु की पहचान पर बल देती है—

"सतगुरु वाको कहिये, जो अगम की देवे गम।
हद बेहद सब समझावे, भाने मन को भरम ॥"

अर्थ: सद्गुरु वही है जो अगम्य की समझ दे — हद और बेहद दोनों समझाए, और मन के भ्रम को दूर करे।

महामति केवल बाहरी धार्मिक प्रदर्शन की आलोचना करते हुए कहते हैं—

"सौ माला बाओ गले में, द्वादस करो दस बेर।
जोलों प्रेम न उपजे पीठसों, तोलों मन न छोड़े फेर ॥"

अर्थ: सौ मालाएँ पहन लो, बार-बार द्वादशी करो — जब तक प्रियतम से प्रेम न जागे, मन अपना चक्कर नहीं छोड़ेगा।

एकनिष्ठ भक्ति और समर्पण का आदर्श इस प्रकार दिया गया है—

"पतिव्रता पणे सेविए, ना थाए वेश्या जेम।
एक मेली ने अनेक कीजे, तेनी थाए धणवट कम ॥"

अर्थ: सेवा पतिव्रता भाव से करें, वेश्या की भाँति नहीं। एक को छोड़ अनेक में जाने से भक्ति की गहराई घट जाती है।

धर्मरक्षा और जागरण का संदेश देते हुए महामति कहते हैं—

"राजा ने मलो रे राने राए तणो, धरम जातां रे कोई दौड़ो।
जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो ॥"

अर्थ: हे राजा, राणा, शक्तिवान लोग! जागो — धर्म जाते देख कोई तो दौड़े। हे योद्धाओ, जागो, उठ खड़े रहो, यह निगोड़ी नींद छोड़ो।

और महाराजा छत्रसाल की सेवा-भावना का वर्णन करते हुए कहा गया है—

"बात ने सुनी रे बुंदेले छत्रसाल ने, आगे आए खड़ा ले तलवार।
सेवा ने लई सारी खेंच के, साईंए किया सेनापित सिरदार ॥"

अर्थ: बुंदेले छत्रसाल ने महामति प्राणनाथ की बात सुनी और अपने स्व-धर्म को पहचान कर धर्मरक्षा हेतु तलवार लेकर आगे आ खड़े हुए। सारी सेवाएं उन्होंने स्वयं निभाने का संकल्प लिया। उन के सेवा भाव से रीझ कर श्री प्राणनाथ जी ने उन्हें सर्व ब्रह्म सृष्टियों का सेनापति-शिरोमणि बनाया।

14.3.4 राजनीतिक नीति (Political Ethics) न्यायपूर्ण शासन, धर्मरक्षा, लोककल्याण और उत्तरदायित्व पर आधारित होती है। तारतम वाणी में शासक को केवल सत्ता का धारक नहीं, बल्कि धर्म और समाज का रक्षक माना गया है—

"राजा ने मलो रे राने राए तणो, धरम जातां रे कोई दौड़ो।
जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो ॥"

अर्थ: हे राजा, राणा, शक्तिवान लोग! जागो — धर्म जाते देख कोई तो दौड़े। हे योद्धाओ, जागो, उठ खड़े रहो, यह निगोड़ी नींद छोड़ो।

यहाँ राजनीति का उद्देश्य प्रभुत्व नहीं, बल्कि लोकमंगल और धर्म की रक्षा है।

14.3.5 आर्थिक नीति (Economic Ethics) धन के अर्जन और उपयोग में ईमानदारी, संयम और लोभ-त्याग की शिक्षा देती है। महामति लोभ और स्वार्थ को आध्यात्मिक पतन का कारण बताते हैं—

"अब कहूँ तोकों लोभ लालची, फिट फिट मूरख अजान।
लोभ न लागा चरन धनी के, जासों पाईए घर निरवान ॥"

अर्थ: हे लोभी-लालची, तुझे धिक्कार है — मूर्ख और अज्ञानी! लोभ धनी के चरणों से नहीं लगा — जिनसे निर्वाण का घर मिलता है।

संसार के स्वार्थपूर्ण संबंधों की अस्थिरता को व्यक्त करते हुए कहा गया है—

"सगे सम्बन्धी सब स्वार्थी, समय आए कोई ना अपना।
जात वजूद भी रंग बदले, ज्यों फ़ना होत सपना ॥"

अर्थ: परिवर्तनशील द्वैत संसार में सगपन और संबंधों में स्वार्थ भाव स्वभाविक है। सहयोग की आवश्यकता पड़ने पर पुरी संभावना रहती है कि कोई भी साथ नहीं निभाना चाहता। स्वभाव और शरीर भी अपने रंग ऐसे बदल लेते हैं, जैसे सपना पल भर में फना हो जाता है।

इस प्रकार तारतम वाणी धन को साधन मानती है, जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं।

14.3.6 आध्यात्मिक नीति (Spiritual Ethics) आत्मबोध, प्रेम, समर्पण, अहंकार-त्याग और परमात्मा से अखण्ड संबंध पर आधारित है। तारतम वाणी में प्रेम को सर्वोच्च आध्यात्मिक शक्ति माना गया है—

"इश्क़ बड़ा रे सबन में, ना कोई इश्क़ समान।
एक तेरे इश्क़ बिना, उड़ गयी सब जहान ।।"

अर्थ: प्रेम सब में सबसे बड़ा है — उसके समान कुछ नहीं। तेरे एक प्रेम के बिना सारा जहान उड़ गया — अर्थहीन हो गया।

विरह और प्रेम के माध्यम से परमात्मा की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है—

"दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक।
इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक ।।"

अर्थ: दुःख से विरह जन्मता है, विरह से प्रेम-इश्क जागता है। जब प्रेम सच्चा हो जाता है — तब परमात्मा से निश्चित मिलन होता है।

असत्य से हटकर सत्य की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है—

"असत सों उलटाए के, सतसों कराऊँ संग।
परआतमसों बंध बांधूं, ज्यों होए ना कबहूँ भंग ।।"

अर्थ: असत्य से मोड़कर सत्य से मिलाऊँगी। परमात्मा से ऐसा बन्धन बाँधूँगी जो कभी न टूटे।

और अंतर्मुखी साधना का उपदेश देते हुए महामति कहते हैं—

"घर ही में न्यारे रहिये, कीजे अंतर में वास।
तब गुण बस आपे होवहीं, गयो तिमर सब नास ।।"

अर्थ: घर में रहते हुए भी न्यारे रहो — अन्तर में वास करो। तब सद्गुण स्वयमेव वश में होंगे और अँधेरा सब नष्ट हो जाएगा।

14.3.7 पर्यावरणीय नीति (Environmental Ethics) प्रकृति और समस्त जीव-जगत के प्रति संवेदनशीलता और संरक्षण की भावना पर आधारित है। तारतम वाणी सम्पूर्ण सृष्टि को एक परिवार की तरह देखने की प्रेरणा देती है—

"बाघ बकरी एक संग चरें, करे न कोई किसी सों बैर।
पशु पंखी सुख से चरें चुगें, छूट गयो सब को जेहर ।।"

अर्थ: बाघ और बकरी एक साथ चरेंगे — कोई किसी से बैर नहीं करेगा। पशु-पक्षी सुख से चरेंगे-चुगेंगे — सबका विष छूट गया।

महामति की करुणा केवल मनुष्य तक सीमित नहीं, बल्कि पशु-पक्षियों और समस्त जीवों तक विस्तृत है—

"मुक्ति दै सब जीवों को, पावें पसु पंखी नर नार।
होसी वैराट ए धन धन, सुख आनंद अखंड अपार ।।"

अर्थ: सब जीवों को मुक्ति प्राप्त होगी — पशु, पक्षी, नर और नारी सभी। वह विराट सृष्टि धन्य होगी — अखण्ड और अपार सुख-आनन्द होगा।

इस प्रकार तारतम वाणी की नैतिक दृष्टि व्यक्ति से समाज, समाज से प्रकृति और प्रकृति से परमात्मा तक विस्तृत एक अखण्ड समन्वित चेतना का दर्शन प्रस्तुत करती है।

तालिका 1: नीति के सात प्रकार, मुख्य मूल्य एवं तारतम प्रमाण

नीति का प्रकार	मुख्य मूल्य	तारतम वाणी चौपाई
व्यक्तिगत नीति Personal Ethics	सत्य, आत्म-जागरण,संयम, अनुशासन	पहेले आप पहेचानो रे साधो, आकले काम सैतान के, ठन्डे हक़ से होवे सोए ।। अब ढील न कीजे एक पल, इत नाहीं बैठन का लाग।
सामाजिक नीति Social Ethics	करुणा, समानता, सहयोग, सद्भाव	ज़ात एक साहेब की, और ना कोई ज़ात । जो दुःख मेरी सैयन को, तब सुख कैसा मोहे । अब दुख ना देऊं फूल पांखडी, देखूं सीतल नैन । करना सारा एक रस, हिंदू मुसलमान ।
धार्मिक नीति Religious Ethics	अहिंसा, सेवा, भक्ति, निष्ठा	सतगुरु वाको कहिये, जो अगम की देवे गम । हद बेहद सब समझावे, भाने मन को भरम ।।" सौ माला बाओ गले में, द्वादस करो दस बेर । जोलों प्रेम न उपजे पीठसों, तोलों मन न छोड़े फेर ।।"

नीति का प्रकार	मुख्य मूल्य	तारतम वाणी चौपाई
		राजा ने मलो रे राने राए तणो, धरम जातां रे कोई दौड़ो । सेवा ने लई सारी खेंच के, साईंए किया सेनापित सिरदार।
राजनीतिक नीति Political Ethics	न्याय, धर्मरक्षा लोककल्याण, उत्तरदायित्व	राजा ने मलो रे राने राए तणो, धरम जातां रे कोई दौड़ो । जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो ।।
आर्थिक नीति Economic Ethics	अपरिग्रह, ईमानदारी, लोभ-त्याग	लोभ न लागा चरन धनी के, जासों पाईए घर निरवान।। सगे सम्बन्धी सब स्वार्थी, समय आए कोई ना अपना
आध्यात्मिक नीति Spiritual Ethics	प्रेम, समर्पण, अहंकार-त्याग, आत्मबोध	इश्क़ बड़ा रे सबन में, ना कोई इश्क़ समान । दुखतें विरहा उपजे, विरहे प्रेम इसक । इसक प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक ।। असत सों उलटाए के, सतसों कराऊँ संग ।
पर्यावरणीय नीति Environmental Ethics	प्रकृति-संरक्षण, जीव-संवेदनशीलता	बाघ बकरी एक संग चरें, करे न कोई किसी सों बैर । पशु पंखी सुख से चरें चुगें, छूट गयो सब को जेहर ।।

नीति का प्रकार	मुख्य मूल्य	तारतम वाणी चौपाई
		मुक्ति दै सब जीवों को, पावें पसु पंखी नर नार। होसी वैराट ए धन धन, सुख आनंद अखंड अपार॥

14.4. Morals (नैतिकता) और Ethics (आचारशास्त्र) का भेद — भारतीय दृष्टि से

पाश्चात्य दर्शन में Morals और Ethics को प्रायः समानार्थी माना जाता है, किन्तु विश्लेषण करने पर दोनों में स्पष्ट भेद दिखता है। Morals व्यक्ति के भीतर से जागते हैं — अंतःकरण, परिवार, धर्म और संस्कार से। Ethics समाज एवं पेशे द्वारा बाहर से निर्धारित होती है। भारतीय परम्परा में इस भेद को 'धर्म' और 'आचार' के रूप में पहचाना गया है।

तालिका 2:

Morals एवं Ethics का तुलनात्मक विश्लेषण — भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि

आयाम	Morals (नैतिकता)	Ethics (आचारशास्त्र)	भारतीय समतुल्य
स्रोत	भीतर — अंतःकरण, संस्कार, धर्म	बाहर — समाज, पेशा, संस्था, तर्क	धर्म / आचार
प्रश्न	"मुझे क्या सही लगता है?"	"हमें क्या करना चाहिए?"	स्वधर्म / सामाजिक मर्यादा
प्रकृति	व्यक्तिगत (Personal)	सामाजिक/व्यावसायिक	नियम / यम

आयाम	Morals (नैतिकता)	Ethics (आचारशास्त्र)	भारतीय समतुल्य
आधार	भावना + विश्वास + परम्परा	तर्क + सिद्धांत + संहिता	श्रद्धा / विधि
तारतम दृष्टि	दोनों प्रेम में विलीन हो जाते हैं — जागृत चेतना से स्वाभाविक आचरण	अक्षरातीत चेतना	

तारतम वाणी की दृष्टि से कहें तो — Morals वह है जो जीव के भीतर स्वाभाविक रूप से जागता है; Ethics वह है जो समाज में उस जागरण को व्यवहार में लाता है। महामति का आदर्श यह है कि जब जीव की चेतना परमसत्य से जुड़ती है, तब दोनों स्वाभाविक स्वभाव बन जाते हैं — किसी बाहरी बंधन की आवश्यकता नहीं रहती।

14.5 यम-नियम और Morals-Ethics — भारतीय योग-दर्शन का समन्वय

पतंजलि के अष्टांग योग में यम और नियम पहले दो अंग हैं — समस्त साधना की नींव। यम दूसरों के प्रति आचरण (Ethics के निकट) है, जबकि नियम स्वयं के प्रति अनुशासन (Morals के निकट)। भारतीय दर्शन की विशेषता यह है कि यहाँ दोनों क्रमबद्ध हैं — पहले नियम (भीतर शुद्ध हो) तब यम (बाहर आचरण शुद्ध होगा)। जब तक भीतर (Morals) परिपक्व नहीं, बाहरी नियम (Ethics) केवल दिखावा बनते हैं। यही भारतीय दृष्टि की विशेषता है।

तालिका 3: यम-नियम, Morals-Ethics एवं तारतम वाणी का त्रिस्तरीय समन्वय

योग-अंग	पाश्चात्य समतुल्य	पाँच तत्त्व	तारतम वाणी में प्रकटन
यम	Ethics (बाहरी मानदंड)	अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह	चार वस्तुओं का निषेध; सामाजिक एवं धार्मिक नीति

योग-अंग	पाश्चात्य समतुल्य	पाँच तत्त्व	तारतम वाणी में प्रकटन
नियम	Morals (भीतरी आवाज़)	शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान	तारतम स्वाध्याय, आत्मजागरण, सर्वसुख कामना
परे (तारतम)	प्रेम में विलय	अक्षरातीत चेतना से जुड़ाव	इश्क़ बड़ा रे सबन में…— नियम नहीं, प्रेम

14.6 महामति प्राणनाथ का नैतिक दर्शन — मूल स्तम्भ

14.6 .1 तारतम ज्ञान की दार्शनिक दृष्टि से "शुभ" और "अशुभ" की अवधारणा

तारतम ज्ञान की दृष्टि में "शुभ" और "अशुभ" केवल बाहरी कर्मों की नैतिक श्रेणियाँ नहीं हैं, बल्कि चेतना की अवस्था, भाव, उद्देश्य और परम सत्य से निकटता अथवा दूरी को व्यक्त करने वाले तत्त्व हैं। सामान्य स्तर पर मनुष्य शुभ को अच्छा और अशुभ को बुरा मानता है; किन्तु तारतम वाणी इस विषय को अधिक गहराई से देखती है। यहाँ किसी कर्म का मूल्य केवल उसके बाहरी रूप से नहीं, बल्कि उसके पीछे की चेतना, भाव और अंतर्मुखी जागृति से निर्धारित होता है।

महामति प्राणनाथ संकेत करते हैं कि मनुष्य अनेक बार अपने कर्मों को धर्म समझता रहता है, जबकि उसके भीतर अहंकार, स्वार्थ, दिखावा या अज्ञान छिपा रहता है—

"मन माहें जाणे अमें धरम भोगवसुं, प्रगट पाप न देखे।
सुभ असुभ बंने भोगववा, ए धरम राज सर्वे लेखे।।"— किरन्तन 126/22

अर्थात् मनुष्य अपने को धार्मिक समझ सकता है, परन्तु चेतना के गहरे स्तर पर प्रत्येक कर्म का प्रभाव अंकित होता है। शुभ और अशुभ दोनों कर्म अपने-अपने संस्कार और फल उत्पन्न करते हैं। यहाँ "धर्मराज" केवल पौराणिक देवता नहीं, बल्कि अस्तित्व के भीतर कार्यरत वह सत्य-नियम (cosmic moral order) है, जहाँ चेतना का प्रत्येक स्पंदन अंकित होता है।

तारतम दृष्टि से शुभ और अशुभ को विभिन्न चेतना-स्तरों पर समझा जा सकता है—

14.6.1.1. स्थूल नैतिक स्तर (Moral Level): इस स्तर पर शुभ वह है जो: सत्य, करुणा, सेवा, अहिंसा, सहयोग और धर्ममय आचरण को बढ़ाए। अशुभ वह है जो हिंसा, छल, लोभ, अहंकार, निन्दा और दूसरों के दुःख का कारण बने। इस स्तर पर शुभ कर्म सुखद संस्कार और अशुभ कर्म दुःखद परिणाम उत्पन्न करते हैं।

14.6.1.2. मानसिक–अहंकारिक स्तर (Psychological Level): तारतम वाणी के अनुसार केवल बाहरी "अच्छा कर्म" पर्याप्त नहीं है। यदि उसके पीछे: प्रसिद्धि की इच्छा, मान-सम्मान की कामना, अहंकार, या आध्यात्मिक superiority हो, तो वही शुभ कर्म भी सूक्ष्म बंधन बन सकता है। इसीलिए महामति कहते हैं—

"असुभ करम जेम लिए निंद्या, सुभ करम नामना लई जाय।
गोप साधन कीजे ते माटे, जेम सुख जीवने पोहोंतू थाय।।"

— किरन्तन 131/14

अर्थात् जैसे निन्दा करने से अशुभ कर्म का फल समाप्त होता है, वैसे ही अपने शुभ कर्मों का प्रदर्शन या प्रशंसा करवाने से उनका पुण्य क्षीण हो जाता है। इसलिए वास्तविक शुभ कर्म वह है जिसमें अहंकार न हो और जो गोपनीय, निर्मल तथा निष्काम भाव से किया जाए।

14.6.1.3. आध्यात्मिक स्तर (Spiritual Level): आध्यात्मिक चेतना में शुभ का अर्थ केवल "अच्छा व्यवहार" नहीं, बल्कि वह सब है जो आत्मा को परम सत्य, प्रेम और जागृति की ओर ले जाए।

इस स्तर पर: प्रेम शुभ है, समर्पण शुभ है, आत्मबोध शुभ है, "एक रस" की चेतना शुभ है। और—विभाजन, अहंकार, परमात्मा से विस्मृति, तथा "मैं-खुदी"अशुभ हैं।

इसलिए तारतम वाणी में परमात्मा को "अशुभ हरण मंगल करन" कहा गया है—

"अशुभ हरण मंगल करन, धनी श्री देवचंद्र जी नाम ।"

अर्थात् परम सत्य का स्मरण चेतना के अंधकार, भ्रम और अशुभ संस्कारों को हरकर जीवन में मंगल और प्रकाश उत्पन्न करता है।

14.6.1.4. परमधामिक या अखण्ड चेतना का स्तर: तारतम ज्ञान की सर्वोच्च दृष्टि में शुभ और अशुभ का अंतिम उद्देश्य आत्मा को जागृति की ओर ले जाना है। वहाँ जीव केवल कर्मफल के स्तर पर नहीं रहता, बल्कि चेतना की अखण्डता को अनुभव करने लगता है। इस अवस्था में शुभ वह है जो जीव को प्रेम, सत्य और परमधामिक "एक रस" से जोड़ दे; और अशुभ वह है जो उसे विभाजन, विस्मृति और अज्ञान में बाँधे रखे।

इस प्रकार तारतम वाणी की दृष्टि में शुभ और अशुभ केवल सामाजिक नैतिकता नहीं, बल्कि चेतना के विकास और परम सत्य से संबंध के स्तर हैं। बाहरी कर्म, मानसिक

भाव, आध्यात्मिक दिशा और परम प्रेम — इन सभी को साथ लेकर ही वास्तविक शुभता का अर्थ पूर्ण होता है।

14.7 सुन्दरसाथ के नैतिक जीवन (रहनी) के कुछ मुख्य नियम: तारतम वाणी एवं बीतक आधारित संक्षिप्त सूची

14.7.1 नशा और हिंसक आहार का त्याग: तंबाकू, शराब, मांस, मछली तथा अन्य नशीली वस्तुओं से दूर रहना।"पिवना तंबाकू छोड़ दो, और मांस मछली सब..."

14.7.2 सत्य और ईमानदारी: चोरी, झूठ और छल-कपट से बचना। "चोरी झूठ बोलना, इनको छुड़ाया उदक"

14.7.3 सात्विक एवं निर्गुण आहार: भोजन केवल शरीर के लिए नहीं, चेतना के लिए भी है।

"रेहेवे निर्गुण होय के, आहार भी निर्गुण"

14.7.4 भीतर की निर्मलता पर बल: केवल बाहरी शुद्धता पर्याप्त नहीं; हृदय निर्मल होना चाहिए। "अंदर नाहीं निरमल, फेर-फेर नहावे बाहेर..."

14.7.5 हृदय-साधना ही वास्तविक भक्ति: सिर्फ बाहरी पूजा नहीं, बल्कि दिल को साधना आवश्यक है। "कोट करो बंदगी... जो लो ना साधे दिल"

14.7.6 अंतर और बाहर में एकरूपता: जैसे बाहर दिखाई दें, वैसा ही भीतर का हृदय भी हो।

"जैसा बाहेर होत है, जो होए ऐसा दिल..."

14.7.7 दृढ़ संगति और सत्संग: दरगाही (दिव्य) संगति में दृढ़ रहना। "ऐसी गिरोह जो दरगाही, ताए रखना आप दृढाई"

14.7.8 हराम एवं निषिद्ध वृत्तियों से दूरी: हानिकारक, अधर्मपूर्ण और चेतना को गिराने वाली बातों से दूर रहना।"जेती बातें हैं हराम, ए नजीक नहीं तिन काम"

14.7.9 द्वैत और अहंकार का त्याग: जाति, धर्म, बाहरी पहचान या श्रेष्ठता-अहंकार में न फँसना।"स्वयंको हिन्दू या मुस्लिम समझ कर... 'द्वैत भाव' बनाए रखने का परहेज"

14.7.10 लौकिक चाहनाओं में संयम: मैं-और-मेरा, संग्रह, दिखावा और देहाभिमान से बचना।

"लौकिक चाह्नाओं का; देहाभिमान... परहेज" "लोक लाज मर्यादा छोड़ी, तब ज्ञान पदवी पाई"

14.7.11 पारदर्शक व्यवहार: छिपकर बातें, छल, पीठ पीछे दोषारोपण और नमकहरामी से दूर रहना। "पीठ चोरावे धनी सों..."

14.7.12 दूसरों के दोषों में समय न गँवाना: गुण-दोष चिंतन, विवाद और व्यर्थ तर्क से बचना।

"रात-दिन दूसरोंके गुण-दोषों के चिन्तन में न गँवाने का..."

14.7.13 भविष्य-चिंता से मुक्ति: अत्यधिक चिंता और भय में न जीना।

"नहीं भरोसो खिन को..."

14.7.14 भजन और स्मृति में स्थिरता: जीवन की अस्थिरता को समझते हुए भजन न भूलना।

"तो भी भूल जात भजन"

14.7.15 विवेक और आत्मचिंतन: बाहरी दिखावे से अधिक विवेक-विचार को महत्व देना।

"विवेक विचार न पाइए..." "एनी बुधे साहू बेसुध कीधा, विवेक टाल्या विचार"

14.7.16 धामधनी की पहचान और प्रेम: निर्मलता और प्रेम से आत्मा धामधनी को पहचानती है। "आतम धनी पेहेचानिए, निरमल एही उपाय"

14.7.17 प्रतिष्ठा और अहंकार से सावधानी: लौकिक प्रतिष्ठा ध्यान में बाधा बन सकती है।

"मार प्रतिष्ठा पैजारों..."

14.7.18 निराशा और दिलगीरी का त्याग: हताशा आत्मिक प्रगति में बाधक है।

"दिल दिलगीरी छोड़ दे, होत तेरा नुकशान ..."

14.7.19 कृतज्ञता भाव विकसित करना: कृतज्ञता सभी सद्गुणों की जननी है।"गुण केते कहूँ मेरे पीयूजी"

14.7.20 व्यक्ति नहीं, दुर्व्यसन बुरा है: व्यक्ति से नहीं, उसके हानिकारक कर्मों से संघर्ष करना।

14.7.21 मानसिक आहार के प्रति जागरूकता: केवल भोजन नहीं, विचार भी चेतना को प्रभावित करते हैं।

"क्या खाते हैं उस से ज्यादा महत्व खाते वक्त क्या सोचते हैं..."

"मन उपजावे, मन ही मारे, मन ही मन को करे फजीत।" "आहार भी निर्गुण"

14.7.22 सादगीपूर्ण और संतुलित जीवन: आवश्यकता और इच्छाओं में संतुलन रखना; समय, वस्तु और शक्ति का दुरुपयोग न करना। बीतक पाती के बोध याद रखें।

14.7.23 प्रकृति और पर्यावरण का सम्मान: सात्विक, पर्यावरण-अनुकूल और कम-हानिकारक जीवनशैली अपनाना।

14.7.24 धीमी, सजग और संतुलित जीवन-यात्रा: जीवन की दौड़ में इतना न उलझें कि जीवन का आनंद ही खो जाए।"जीवन की दौडभाग में थोड़े धीरे हो जाएं..."

14.7.25 जीवन-परिवर्तन संभव है: दृढ़ संकल्प, समर्पण और जागरूकता से जीवन बदला जा सकता है।"अब जाग देखो सुख जागनी"

तालिका 4: पंच निषेधों का व्यक्तिगत, सामाजिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व

"एक हराम कहा मांस को, दूजा हराम शराब ।
तीसरा औरत विरानी तजे, सो पावे हैयाती आव ।।
चोरी झूठ बोलना, इनका छोड़ाया उदक ।।"— बीतक 24/15–17

निषेध	व्यक्तिगत महत्त्व	सामाजिक महत्त्व	आध्यात्मिक महत्त्व
मांस भक्षण	स्वास्थ्य, करुणा-वृद्धि	हिंसा-रहित समाज	चित्त-शुद्धि,अहिंसा-साधना
मदिरा और तम्बाकू	विवेक एवं स्वास्थ्य रक्षा	पारिवारिक सुख, उत्पादकता	इन्द्रिय-संयम,ध्यान-योग्यता
परदारा गमन	चरित्र-शुद्धि	सामाजिक विश्वास, नारी-सम्मान	ब्रह्मचर्य, एकनिष्ठा

निषेध	व्यक्तिगत महत्त्व	सामाजिक महत्त्व	आध्यात्मिक महत्त्व
चोरी एवं झूठ	आत्मसम्मान, निर्भयता	न्यायपूर्ण समाज	सत्याचरण, परमात्मा-प्राप्ति

14.8 पञ्च मानवीय कर्त्तव्य

भारतीय संस्कृति में पंच ऋण के रूप में पाँच कर्तव्यों की महिमा है: 1. देव-ऋण — परमात्मा के प्रति कृतज्ञता, उपासना और सत्यपूर्ण जीवन। 2. ऋषि-ऋण — गुरु, ज्ञान और शास्त्र-परम्परा का सम्मान तथा स्वाध्याय। 3. पितृ-ऋण — माता-पिता, पूर्वजों और सांस्कृतिक मूल्यों का आदर। 4. मनुष्य-ऋण — समाज, अतिथि, पीड़ित और मानवता की सेवा। और भूत-ऋण — प्रकृति, पशु-पक्षियों और समस्त सृष्टि के प्रति करुणा और संरक्षण।

महामति प्राणनाथजी ने भी आध्यात्मिक जीवन को केवल उपासना या दार्शनिक चिन्तन तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे व्यवहार, समाज और मानवीय उत्तरदायित्व से जोड़ा। उनके अनुसार वास्तविक धर्म वही है जो मनुष्य के भीतर सत्य, प्रेम, संतुलन और जागृति को विकसित करे। इसी दृष्टि से उन्होंने मानवीय जीवन के लिए पाँच मूल कर्त्तव्यों का संकेत दिया — 1. सत्य, 2. अहिंसा, 3. करुणा, 4. तारतम स्वाध्याय और 5. सर्वसुख की कामना। ये केवल नैतिक नियम नहीं, बल्कि चेतना को निर्मल और जागृत करने वाले आधारस्तम्भ दर्शाये हैं।

14.8.1. सत्य: अस्तित्व के साथ एकरूपता

सत्य को महामति ने सर्वोच्च मानवीय कर्तव्य माना। वे कहते हैं कि परमात्मा स्वयं सत्यस्वरूप हैं और सत्य के पथ पर चलने से ही मिलते हैं —

"सत व्रत धारणसुं पालिए, जिहां लगे ऊभी देह।
अनेक विघन पडे जो माथे, तोहे न मूकिए सनेह ।।"— किरंतन, 126/29

"सांचारी साहेब सांचसों पाइए, सांच को सांच है प्यारा ।।"— किरंतन, 8/7

महामति की दृष्टि में सत्य केवल झूठ न बोलने का नियम नहीं है। सत्य का अर्थ है — मन, वचन और आचरण की एकता। भीतर कुछ और और बाहर कुछ और होना जीवभाव की पहचान है; जबकि ब्रह्मसृष्टि का लक्षण पारदर्शिता और प्रामाणिकता है। इसलिए वाणी कहती है —

"एकै बात ब्रह्मसृष्ट की, दोए दिल में नाहें।"

सत्य का अर्थ केवल तथ्य बोलना नहीं, बल्कि स्वयं को, अपने उद्देश्य को और परमसंबंध को पहचानना भी है। जो आत्मा अपने भीतर की वास्तविक स्थिति से ईमानदार संवाद करती है, वही धीरे-धीरे जागृति की ओर बढ़ती है। सत्य व्यक्ति को भय, दिखावे और कपट से मुक्त करता है तथा उसे धनी की उपस्थिति के प्रति संवेदनशील बनाता है।

14.8.2. अहिंसा: चेतना की कोमलता

अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं, बल्कि विचार, भाषा और व्यवहार में भी कोमलता विकसित करना है। कटु वाणी, अपमान, ईर्ष्या, द्वेष और मानसिक आक्रामकता भी हिंसा के ही सूक्ष्म रूप हैं। तारतम दृष्टि में हर जीव के भीतर चेतना का प्रकाश विद्यमान है; इसलिए किसी को दुःख देना अंततः स्वयं की चेतना को मलिन करना है।

अहिंसा का सकारात्मक रूप प्रेम और मैत्री है। जागनी का मार्ग संघर्ष नहीं, "सुख-शीतल" करने का मार्ग है। इसी कारण सुन्दरसाथ जीवन में करुणामय संवाद, क्षमा, धैर्य और संतुलित व्यवहार को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।

"कोई देत कसाला तुम को, तुम भला चाहियो तिन।"

14.8.3. करुणा: प्रेम का सामाजिक रूप

करुणा वह क्षमता है जिसके द्वारा मनुष्य दूसरे के दुःख को केवल देखता नहीं, बल्कि उसे अपने हृदय में अनुभव करता है। यह दया से आगे की अवस्था है; यहाँ श्रेष्ठता का भाव नहीं, बल्कि आत्मीय सहभागिता का भाव होता है। तारतम वाणी में "एक दिल" की भावना इसी करुणा का विस्तार है —

"अंग अंग सब के मिल रहे, सब सोभित हैं एक दिल।"

करुणा मनुष्य को संकीर्ण स्वार्थ से बाहर निकालती है। यही सेवा का आधार बनती है। जब आत्मा यह अनुभव करने लगती है कि सबका मूल एक ही है, तब सेवा बोझ नहीं रहती; वह प्रेम की सहज अभिव्यक्ति बन जाती है।

14.8.4. तारतम स्वाध्याय: जागृत विवेक की साधना

महामति ने केवल श्रद्धा पर नहीं, बल्कि जागृत समझ पर भी बल दिया। इसलिए तारतम वाणी का स्वाध्याय एक महत्त्वपूर्ण मानवीय कर्त्तव्य माना गया। यहाँ स्वाध्याय का अर्थ केवल ग्रंथ-पाठ नहीं, बल्कि आत्म-चिन्तन, मनन, चितवन और जीवन में वाणी के प्रयोग से है।

तारतम स्वाध्याय आत्मा को माया की सम्मोहक धारणाओं से बाहर लाता है और उसे अपने वास्तविक स्वरूप, धाम और धनी की पहचान कराता है। वाणी कहती है-

"फेर फेर सुरत साधिए, धनी चरित्र सुख चैन।"

अर्थात् चेतना को बार-बार धनी की ओर मोड़ना ही जागृति की प्रक्रिया है। स्वाध्याय विवेक को निर्मल करता है, दृष्टि को व्यापक बनाता है और साधना को अंधविश्वास बनने से बचाता है।

14.8.5. सर्वसुख की कामना: जागनी का वैश्विक आदर्श

महामति प्राणनाथजी का धर्म केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं है। उनका लक्ष्य समस्त जगत के लिए शांति, प्रेम और सुख की स्थापना है। इसलिए जागनी का अंतिम स्वर है —

"सुख शीतल करूँ संसार।"

यह भाव केवल सामाजिक आदर्श नहीं, बल्कि आध्यात्मिक परिपक्वता का लक्षण है। जब आत्मा प्रेम में विकसित होती है, तब उसका सुख केवल निजी नहीं रहता; वह समष्टिगत हो जाता है। वह सभी जीवों के मंगल की कामना करने लगती है।

यही कारण है कि तारतम दृष्टि संकीर्णता, घृणा और विभाजन से ऊपर उठकर एक विश्वमानवीय चेतना का आह्वान करती है।"सर्वसुख" का अर्थ केवल भौतिक सुविधा नहीं, बल्कि ऐसा वातावरण है जहाँ सत्य, प्रेम, न्याय, करुणा और आत्मीयता विकसित हो सके।

अंततः ये पाँच मानवीय कर्त्तव्य किसी बाहरी अनुशासन के नियम मात्र नहीं, बल्कि जागृत चेतना के पाँच आधार हैं। सत्य विवेक देता है, अहिंसा संवेदनशीलता देती है, करुणा हृदय को विस्तृत करती है, स्वाध्याय चेतना को जागृत करता है और सर्वसुख की भावना आत्मा को सार्वभौमिक प्रेम से जोड़ देती है। यही महामति की नैतिक दृष्टि का सार है।

भाग 3: अध्याय – 15
महामति प्राणनाथ का समाजदर्शन
समरसता, चेतना और सार्वभौमिक मानवता की ओर

15.1 भूमिका:

भारतीय दर्शन परंपरा में समाज-दर्शन केवल सामाजिक संरचनाओं, व्यवस्थाओं या राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन नहीं है; वह मनुष्य की चेतना, नैतिकता, धर्म, संबंध और जीवन-मूल्यों के समग्र स्वरूप का विवेचन है। इसी संदर्भ में महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन अत्यंत महत्त्वपूर्ण और क्रांतिकारी सिद्ध होता है। उन्होंने समाज को केवल जाति, धर्म, पंथ या राज्य-व्यवस्था के रूप में नहीं देखा, बल्कि चेतना के विकास की एक जीवंत प्रक्रिया के रूप में समझा। उनके अनुसार समाज की वास्तविक समस्या बाहरी विभाजन नहीं, बल्कि मनुष्य की चेतना में उपस्थित अज्ञान, अहंकार, भेदभाव, माया और संकीर्णता है। इसलिए सामाजिक समरसता का समाधान केवल बाहरी सुधारों से नहीं, बल्कि आत्म-जागृति, चेतना-विकास और प्रेममय दृष्टि से संभव है।

सत्रहवीं शताब्दी का भारत धार्मिक आडंबर, जातिगत विभाजन, संप्रदायगत संघर्ष और सामाजिक असमानताओं से जूझ रहा था। ऐसे संक्रमणकाल में महामति प्राणनाथ का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "सर्वधर्म समभाव" को केवल कहा नहीं, बल्कि अपने जीवन में साकार किया। उनका कार्य किसी एक संप्रदाय तक सीमित नहीं था; वह संपूर्ण मानवता की चेतना को पुनर्जीवित करने वाला आंदोलन था। उन्होंने धर्मों की मूल एकता को उजागर किया और मनुष्य को प्रेम, सत्य, करुणा और समभाव का मार्ग दिखाया। वे स्पष्ट कहते हैं—

"सब जातें नाम जुदे धरे, और सबका खाविंद एक।
सबकी बंदगी याही की, पीछे लड़े बिना पाये विवेक।।"— खुलासा 2/22

अर्थात् मनुष्य ने स्वयं को अनेक नामों, जातियों और पंथों में बाँट लिया है, जबकि सबका स्वामी एक ही परमात्मा है। विवेक के अभाव में वही धर्म विभाजन का कारण बन जाता है।

15.2 समाज-दर्शन का मूल आधार: आत्मिक एकत्व

महामति प्राणनाथ के समाज-दर्शन का आधार आत्मा की एकता है। उनके अनुसार मनुष्य की वास्तविक पहचान शरीर, जाति, वर्ण, भाषा या धर्म से नहीं, बल्कि आत्मा से है। यही कारण है कि उन्होंने जन्माधारित श्रेष्ठता को अस्वीकार किया और चेतना-आधारित समानता की स्थापना की।

"जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनियां, और उड़ गई दूजी बात।।" — सनन्ध 36/17

यहाँ समाज की कल्पना किसी बाहरी राजनीतिक समानता पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक एकत्व पर आधारित है। जब मनुष्य अपने भीतर स्थित चेतना को पहचानता है, तब विभाजन, वैर और श्रेष्ठता-बोध स्वतः गलने लगते हैं। तारतम वाणी स्पष्ट करती है—

"खेले सब देखा देखी, ज्यों चले चींटी हार।
यों जो अंधे गफलती, बाँधे जाएँ कतार।।"

अर्थात् अधिकांश लोग बिना सत्य को जाने केवल भीड़ का अनुसरण करते रहते हैं। यही अज्ञान सामाजिक संघर्ष और मानसिक विभाजन का मूल कारण है।

15.3 बाह्य आडम्बर और कर्मकाण्ड का विरोध

महामति प्राणनाथ ने धर्म के नाम पर फैल चुके बाह्य आडम्बरों, कर्मकाण्डों और धार्मिक प्रदर्शन का तीव्र विरोध किया। उनके अनुसार धर्म का सार बाहरी दिखावा नहीं, बल्कि आंतरिक निर्मलता, आत्म-जागृति और प्रेम है।

"अंदर नाहीं निरमल, फेर-फेर नहावे बाहेर।
कर देखाई कोट बेर, तोहे न मिले करतार।।"

यदि भीतर अहंकार, द्वेष और अज्ञान भरा है, तो बाहरी शुद्धि और धार्मिक प्रदर्शन से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती। धर्म यदि केवल प्रदर्शन बन जाए, तो वह आत्मा को मुक्त करने के स्थान पर और अधिक बाँध देता है। वे चमत्कारों और बाहरी सिद्धियों को भी आध्यात्मिकता का प्रमाण नहीं मानते—

"साधो, कहर कही करामात।।"

अर्थात् सत्य चमत्कारों से नहीं, बल्कि आत्मानुभूति और जागृति से प्रकट होता है। महामति प्राणनाथ का उद्देश्य किसी धर्म का विरोध करना नहीं था; वे धर्म को उसके मूल आत्मिक उद्देश्य की ओर पुनः जागृत करना चाहते थे। तारतम ज्ञान इसी कारण "सत और असत को अलग करने वाला" कहा गया है।

15.4 जातिवाद-विरोधी सामाजिक दृष्टि और मनुस्मृति से परे चेतना

महामति प्राणनाथ मानते थे कि तत्कालीन समाज में मनुस्मृति की वर्ण-आधारित व्यवस्था मानवता और धर्म के वास्तविक मर्म को पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं कर पाती। इसलिए वे अपने जीवन और आचरण में कई रूढ़ सामाजिक धारणाओं से स्पष्ट रूप से बाहर दिखाई देते हैं। वर्ण, जाति, स्त्री और निर्धनता के आधार पर भेदभाव को उन्होंने सिरे से नकार दिया।

सद्गुरु देवचंद्रजी के पुत्र बिहारीजी से उनके मतभेद भी मुख्यतः इन्हीं मुद्दों पर गहरे हुए। जहाँ बिहारीजी जातिवाद, बाह्य आडंबर, गादी-प्रधानता और स्त्रियों व दलितों के प्रति संकीर्ण दृष्टि के समर्थक थे, वहीं महामति गुण, चरित्र और हृदय की पवित्रता को ही धर्म का आधार मानते थे। बिहारीजी द्वारा बहिष्कृत दलितों, निर्धनों और विधवाओं को महामति ने प्रेमपूर्वक अपनाया और बिना जाति-भेद के दीक्षा व धर्मोपदेश दिया।

वे स्पष्ट कहते हैं—

"सो ए बात तुम देखी है, उनकी दृष्ट जात भेष पर नाहिं।

जित देखो अंकूर धाम को, गिनो ऊंच नीच न ताहिं।।" — बीतक 31/56

ज्ञानीजन हर जीव में परमधाम का अंकुर देखते हैं; उनके लिए जाति, भेष और सामाजिक स्थिति का कोई महत्त्व नहीं रहता। वे वास्तविक ब्राह्मण की परिभाषा भी चेतना के आधार पर करते हैं—

"चाण्डाल हिरदे निर्मल, खेले संग भगवान।

देखलावे नहीं काहू को, गोप रखे नाम।।"

यह दृष्टि आधुनिक मानवाधिकार की अवधारणा से भी अधिक गहरी आध्यात्मिक समानता प्रस्तुत करती है।

15.5 नारी-सम्मान, अंगना भाव और गृहस्थ साधना

महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन स्त्री-पुरुष समानता की दृष्टि से अत्यंत प्रगतिशील था। महाराजा छत्रसाल द्वारा केसरबाई को आचार्य पद देकर जामनगर भेजना उस समय की सामाजिक सीमाओं से बहुत आगे का कदम था। यह स्पष्ट करता है कि तारतम वाणी केवल आत्मिक समानता की बात नहीं करती, बल्कि सामाजिक और लैंगिक समानता को व्यवहार में भी उतारती है।

महामति प्राणनाथ का स्त्री-दृष्टिकोण अत्यंत उच्च, संवेदनशील और क्रांतिकारी था। उनके अनुसार प्रेम के परम रूपक में भी परब्रह्म श्री राज जी के साथ आनंद अंग श्री श्यामा जी है। वे स्त्री को भक्ति और मुक्ति में बाधक नहीं मानते और स्त्री-विरोधी धारणाओं का स्पष्ट खंडन करते हैं। यह दृष्टि केवल सामाजिक सुधार नहीं, बल्कि चेतना की एक गहन आध्यात्मिक समझ को प्रकट करती है, जहाँ स्त्री और पुरुष को विरोधी नहीं बल्कि पूरक ऊर्जा-प्रवाहों के रूप में देखा जाता है।

इंटीग्रल दृष्टिकोण से देखें तो "स्त्री" और "पुरुष" केवल जैविक पहचान नहीं, बल्कि चेतना के दो मौलिक प्रकार (types) या ध्रुव हैं—ग्रहणशीलता और अभिव्यक्ति, करुणा और शक्ति, समर्पण और दिशा, प्रेम और प्रज्ञा। आज मानव ज्ञान यह स्पष्ट कहता है कि पुरुषत्व (masculine) और नारीत्व (feminine) दोनों प्रकार की ऊर्जाएँ प्रत्येक

मनुष्य में विभिन्न अनुपातों में उपस्थित होती हैं, और उनका संतुलन ही अधिक समग्र विकास की ओर ले जाता है।

महामति ने स्वयं को अंगना भाव में "इंद्रावती" रूप से अनुभव किया और सभी ब्रह्मात्माओं को भी अंगना कहा। और यह दर्शाया कि चेतना के विविध स्तरों पर भी ये दोनों ऊर्जाएँ साथ साथ अवतरित और आरोहित होती है। यह केवल काव्यात्मक शैली नहीं, बल्कि अहंकार-त्याग, प्रेमपूर्ण आत्म-समर्पण और दिव्य के प्रति ग्रहणशील चेतना की अवस्था थी। इंटीग्रल मनोविज्ञान की भाषा में कहें तो यह "इगो-सेंट्रिक पहचान" से "सोल-सेंट्रिक" और आगे "नॉन-ड्यूल" चेतना की ओर गति का संकेत है, जहाँ साधक अपनी कठोर व्यक्तिगत पहचान को छोड़कर प्रेम और एकत्व के व्यापक आयाम में प्रवेश करता है। चेतना की अवस्थाएं (states of consciousness) हमें यह दिखाती हैं कि क्या संभव है, जबकि चेतना विकास के स्तर (stages) यह निर्धारित करते हैं कि हम उसे कैसे समझते और जीते हैं।

अंगना भाव को इस प्रकार केवल "स्त्री बनने" का प्रतीक नहीं समझना चाहिए, बल्कि वह हृदय की उस आध्यात्मिक परिपक्वता का प्रतीक है जिसमें आत्मा दिव्य प्रियतम के सामने पूर्णतः प्रेमानन्द में खुल जाती है। यह भाव masculine domination को dissolve करके communion, प्रेम और आत्मिक एकत्व को प्रमुख बनाता है। इसे साझा प्रेम, संस्कृति और सामूहिक चेतना की उच्च अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जा सकता है।

महामति प्राणनाथ ने गृहस्थ जीवन को त्याज्य नहीं माना। उन्होंने विवाह किया, परिवार के साथ जीवन जिया और सुंदरसाथ समाज को भी पारिवारिक दायित्वों सहित धर्ममार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उनके अनुसार सत्य और भक्ति संसार से भागकर नहीं, बल्कि संबंधों, सेवा, प्रेम और कर्तव्यों के बीच जागृत होते हैं। यह दृष्टि आधुनिक जीवन की उस समझ से भी मेल खाती है कि आध्यात्मिक विकास केवल ध्यान या संन्यास तक सीमित नहीं, बल्कि शरीर, मन, संबंध, नैतिकता और समाज — जीवन के सभी आयामों में संतुलित साधना से होता है।

इस प्रकार महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन जीवन-विरोधी नहीं, बल्कि जीवन को ही साधना में रूपांतरित करने वाला दर्शन है—जहाँ नारी-सम्मान, feminine चेतना, प्रेमपूर्ण समर्पण, पारिवारिक उत्तरदायित्व और आध्यात्मिक उत्कर्ष एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि एक ही समग्र आध्यात्मिक विकास के विभिन्न आयाम हैं।

15.6 आचरण-प्रधान धर्म और अंतःकरण की शुद्धि

महामति प्राणनाथ के अनुसार धर्म का मूल आधार आचरण की शुद्धता है, जिसका जाति, वर्ण या लिंग से कोई संबंध नहीं। कोई दलित या स्त्री भी अपने शुद्ध

आचरण, जप और तप से परमपद को प्राप्त कर सकती है, जबकि अशुद्ध अंतःकरण वाला व्यक्ति बाह्य जप-तप के बावजूद परमात्मा से दूर रह सकता है।

वे बार-बार चेताते हैं कि धर्म बाहर नहीं, भीतर घटित होता है। संसार की परंपराएँ, रीति-रिवाज और जीवन-शैलियाँ भिन्न हो सकती हैं, पर करुणा, प्रेम और आनंद सार्वभौमिक हैं। धर्म का मार्ग करुणा से आरंभ होकर प्रेम के माध्यम से आनंद तक पहुँचता है।

इसलिए वे केवल स्नान, जप या दिखावटी बंदगी को पर्याप्त नहीं मानते। जब तक मन और हृदय निर्मल न हों, साधना अधूरी है। उनका स्पष्ट संदेश है—धर्म का सार अंतःकरण की शुद्धि है, न कि बाहरी प्रदर्शन।

अंदर नाहीं निरमल, फेर फेर नहावे बाहेर।
कर देखाई कोट बेर, तोहे ना मिलों करतार।।
दयोहरे मसीत अपासरे, सब लगे माहें रोजगार।
बाहेर देखावे बंदगी, माहें माया मोह अहंकार।। किरन्तन 30/7
बाहेर देखावे बंदगी, माहें करे कुकरम काम।
महामत पूछे ब्रह्मसृष्टि को, ए वैकुंठ जायसी के धाम।।

15.7 शिक्षा, ग्रंथ-बोध और सच्चे धर्म की पहचान

महामति प्राणनाथ के समय हिंदू और मुस्लिम दोनों समाजों में शिक्षा का अभाव था। लोग अपने धर्मग्रंथों को स्वयं पढ़कर समझने के बजाय पंडितों और मुल्लाओं की व्याख्याओं पर निर्भर थे, जिससे धार्मिक कटुता और भ्रम बढ़ता गया। महामति ने शिक्षा और आत्मबोध को धर्म की कसौटी माना।

उन्होंने स्पष्ट किया कि हज़रत मोहम्मद ने "मेहरबानों" को मुसलमान कहा था; जो दूसरों को दुःख देता है, वह सच्चा मुसलमान नहीं हो सकता। इसी प्रकार सच्चा हिंदू वह नहीं जो केवल कर्मकाण्ड करे, बल्कि वह है जिसका हृदय प्रेम और करुणा से भरा हो।

उनका संदेश दोनों समुदायों के लिए समान था—ग्रंथों का सच्चा अर्थ समझो, हृदय को शुद्ध करो और मानवता को धर्म का मूल मानो।

15.8 आचरण-शुद्धि, नैतिकता और आदर्श समाज

महामति प्राणनाथ आचरण की शुद्धता को समाज-निर्माण का मूल आधार मानते हैं। उनके अनुसार अच्छे आचरण से ही स्वस्थ समाज बनता है और आचरण की गिरावट से अपराध जन्म लेते हैं। इसलिए वे नशा, चोरी, व्यभिचार और हिंसात्मक प्रवृत्तियों से दूर रहने पर बल देते हैं।

उन्होंने परिवार, स्वावलंबन और कर्तव्यपालन को समाज के प्रमुख स्तंभ माना। पन्ना में उन्होंने लघु उद्योगों, कृषि और श्रम-आधारित व्यवस्था को प्रोत्साहित किया। उनका

आदर्श समाज ऐसा था जहाँ— जाति-भेद न हो, धन पवित्र साधनों से अर्जित हो, प्रत्येक नागरिक अपने कर्तव्यों का ईमानदारी से पालन करे, और शासक न्यायप्रिय, चरित्रवान तथा निडर हो।

15.9 सुन्दरसाथ: चेतना-आधारित समाज

महामति प्राणनाथ के समाज-दर्शन का सबसे जीवंत रूप "सुन्दरसाथ समाज" की अवधारणा है। यह केवल धार्मिक समुदाय नहीं, बल्कि प्रेम, समानता, आत्मीयता और चेतना-आधारित मानव समाज की कल्पना है।

"सुन्दरसाथ बैठा अचरज सों, जानो एकै अंग हिल मिल।
अंग अंग सब के मिल रहे, सब सोभित हैं एक दिल।।" सागर 11/1

यहाँ समाज प्रतिस्पर्धा पर नहीं, बल्कि सहयोग, आत्मीयता और प्रेम पर आधारित है। सुन्दरसाथ का उद्देश्य केवल सामूहिक पूजा नहीं, बल्कि ऐसा जीवन विकसित करना था जिसमें मनुष्य भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर जागृत हो।

निजानंद स्वामी श्री देवचंद्रजी ने अपने जीवन के अंतिम लगभग पचीस वर्ष नवतनपुरी में प्रथम सुंदरसाथ गांगजी भाई के निवास, चाकला मंदिर में व्यतीत किए। यही स्थान आत्म-जागरण, प्रेम और संवाद की जीवंत प्रयोगशाला बन गया।

महामति प्राणनाथ और निजानंद परंपरा ने केवल सिद्धांत नहीं दिए; उन्होंने व्यवहार में सामाजिक समरसता को जीकर दिखाया। इस में से कुछ बीतक आधारित दृष्टांत से उन की दृष्टि स्पष्ट हो जाती है:

वंश से ऊपर योग्यता: जब निजानंद सतगुरु श्री देवचंद्रजी ने अपने रक्तपुत्र बिहारीजी के स्थान पर मिहिरराज (भविष्य के महामति प्राणनाथ) को आध्यात्मिक नेतृत्व सौंपा, तो यह केवल प्रशासनिक निर्णय नहीं था; यह चेतना-आधारित क्रांति थी। इससे स्पष्ट हुआ कि आध्यात्मिक अधिकार जन्म से नहीं, जागृति और पात्रता से प्राप्त होता है।

नियम से ऊपर प्रेम: गंगादास नामक गरीब भक्त को सभा में नियमित उपस्थित न हो पाने के कारण दंडित किया गया। भूखे और व्यथित गंगादास को फूलबाई ने बिना भय और भेदभाव के भोजन कराया। यह घटना बताती है कि निजानंद परंपरा में प्रेम ही सर्वोच्च नियम है। जहाँ प्रेम है, वहीं वास्तविक धर्म है।

धर्म से ऊपर आत्मा: एक मुस्लिम विधवा सब्ज़ियाँ बेचते हुए सत्संग के पास से गुजरी। तब सतगुरु ने कहा—"वह स्त्री परमधाम की आत्मा है।" यह कथन धर्म, जाति और सामाजिक स्थिति से परे आत्मा की सार्वभौमिकता का उद्घोष था। सतगुरु ने स्पष्ट किया कि परमधाम की आत्माएँ हर जाति, समुदाय और परिस्थिति में हो सकती हैं।

बीतक का यह दृष्टांत स्पष्ट करता है कि व्यक्ति और समाज दोनों का विकास एक-दूसरे से जुड़ा हुआ होता है। धाराभाई नाम के सुन्दरसाथ के साथ खंभालिए नगर में

बने एक प्रसंग में यह स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने सदा न्याय का मार्ग अपनाया। जब जाति और अधिकार के आधार पर सीमाएँ खड़ी की गईं, तब महामति प्राणनाथ- ने सार्वभौमिक जागनी अभियान को संगठित किया—जहाँ गरीब, दलित, स्त्री, विधवा और साधारण जन भी समान रूप से तारतम ज्ञान और जागरण के अधिकारी माने गए। यही "सुन्दरसाथ" की वास्तविक चेतना थी।

महामति प्राणनाथ ने अपने जीवन के अंतिम ग्यारह वर्ष पन्ना की पद्मावतीपुरी में सुंदरसाथ समाज के बीच बिताए। यह काल केवल आध्यात्मिक जागरण का नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक उत्कर्ष का भी काल था। उनके सान्निध्य में साहित्य, संगीत, कला और संस्कृति का व्यापक विकास हुआ। प्रणामी काव्यधारा और दासवाणी की सृजन-परंपरा इसी वातावरण में विकसित हुई। संगीत में शास्त्रीयता और बुंदेली लोक-रंग का अद्भुत समन्वय हुआ, जिसकी परंपरा आज भी जीवित है। इससे स्पष्ट होता है कि सुन्दरसाथ समाज केवल धार्मिक संस्था नहीं था; वह प्रेम, सौंदर्य, रचनात्मकता और सामूहिक चेतना का जीवंत सांस्कृतिक समुदाय था।

सन 1693 ई. में महामति की संगिनी तेजकुँवर का देहावसान हुआ, जिन्होंने जीवनभर उनके धर्म-जागरण अभियान में साथ निभाया। यह प्रसंग भी सुन्दरसाथ समाज की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता को स्पष्ट करता है—गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिक जीवन का समन्वय। महामति प्राणनाथ ने संसार-त्याग को अनिवार्य नहीं माना; उन्होंने गृहस्थ जीवन में रहते हुए प्रेम, भक्ति और जागृति का आदर्श प्रस्तुत किया। इस प्रकार सुन्दरसाथ समाज जीवन-विरोधी नहीं, बल्कि जीवन को ही साधना में रूपांतरित करने वाली चेतना था।

15.10 प्रेम और सेवा का समाज

महामति प्राणनाथ के समाज-दर्शन की मूल आधारशिला प्रेम है। उनके अनुसार प्रेम ही वह चेतना है जो वैर, अहंकार और विभाजन को गलाकर मनुष्य को मनुष्य से जोड़ती है। वे कहते हैं— "छोड़ के बैर मिले सब प्यार सों।।"

और—

"प्रेम खोल देवे सब द्वार, पारै के पार जो पार।
प्रेम धाम धणी को विचार, प्रेम सब अंगों सिरदार।।"— परिक्रमा 1/64

उनकी दृष्टि में धर्म का सार भय, दंड या कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि प्रेम है। समाज का उद्देश्य भी ऐसा होना चाहिए जो समस्त संसार को शीतलता, करुणा और आत्मीयता प्रदान करे—"सुख शीतल करूँ संसार"। इसी कारण उनके समाज-दर्शन में सेवा, सहानुभूति, संवाद और आत्मीय सहयोग को विशेष महत्त्व प्राप्त है।

महामति प्राणनाथ सेवा को केवल बाहरी सामाजिक कार्य नहीं मानते, बल्कि उसे प्रेम की जीवंत अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं। जब जीवन का प्रत्येक कर्म जागृति, समर्पण और प्रेम से किया जाता है, तब वही कर्म साधना बन जाता है। वे कहते हैं—

"प्रेम सेवा एम राखों मन... ना किजो भंग।
सनेह सों सेवा कर्जों धणी, गलित चित्त थई अति घणी।
तमें सेवाएं पामसो पार, धणीतणा वचन निरधार।।"— प्रकाश गु. 34/15

सुन्दरसाथ समाज में यही भावना व्यवहार रूप में दिखाई देती थी। कोई वाणी-गायन करता था, कोई अतिथि-सत्कार, कोई भोजन-व्यवस्था और कोई धर्मचर्चा—किन्तु सभी कार्यों का केंद्र प्रेमपूर्ण समर्पण था। वहाँ सेवा व्यवस्था का दायित्व मात्र नहीं थी, बल्कि चेतना को प्रेम में ढालने की साधना थी।

महामति प्राणनाथ ने अपने सिद्धांतों को केवल उपदेश तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उन्हें सामाजिक जीवन में साकार किया। उनकी प्रेरणा से महाराजा छत्रसाल ने न्याय, स्वतंत्रता और मानवता पर आधारित शासन स्थापित करने का प्रयास किया। इस प्रकार सुन्दरसाथ समाज केवल आध्यात्मिक समूह नहीं रहा, बल्कि सामाजिक समरसता और मानवीय चेतना का जीवंत आंदोलन बन गया।

सामाजिक समरसता का अर्थ भिन्नताओं का मिट जाना नहीं, बल्कि विविधताओं के मध्य सम्मान, संतुलन और सहयोग की स्थापना है। जाति, धर्म, भाषा, परंपरा या आर्थिक स्थिति जैसी विभिन्नताएँ स्वाभाविक हैं; समस्या तब उत्पन्न होती है जब इन्हें श्रेष्ठता और हीनता का आधार बना दिया जाता है। महामति प्राणनाथ ने इसी विभाजनकारी दृष्टि का विरोध किया और मानवता को प्रेम तथा आत्मिक समानता के सूत्र में जोड़ने का प्रयास किया।

सुन्दरसाथ समाज इसका प्रत्यक्ष उदाहरण था, जहाँ विभिन्न जातियों, प्रदेशों, भाषाओं और धर्मों से आए लोग एक साथ प्रेमपूर्वक रहते थे। वहाँ व्यक्ति का मूल्य उसके बाहरी परिचय से नहीं, बल्कि उसकी चेतना, सेवा और प्रेम से निर्धारित होता था। इस प्रकार महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन विविधता में एकता, भिन्नता में सम्मान और प्रेम में आधारित सामाजिक चेतना की स्थापना करता है।

अंततः सुन्दरसाथ समाज एक ऐसे जीवन-दर्शन का प्रतीक बनकर उभरता है जहाँ प्रेम नियम से बड़ा है, चेतना वंश से बड़ी है, करुणा औपचारिक व्यवस्था से बड़ी है और आत्मा हर प्रकार के भेद से ऊपर प्रतिष्ठित है। यही कारण है कि महामति प्राणनाथ की यह दृष्टि आज भी एक समरस, जागृत और प्रेमपूर्ण मानव समाज के निर्माण के लिए गहन प्रेरणा प्रदान करती है।

15.11 तारतम्य-केंद्रित धर्म-समन्वय और सार्वभौमिक चेतना

महामति प्राणनाथ ने धर्मों के बीच केवल समन्वय ही नहीं स्थापित किया, बल्कि उनमें निहित परम सत्य का तारतम्यपूर्वक उद्घाटन कर उसकी स्पष्ट प्रकाशना की।

उनके अनुसार वेद, गीता, कुरान, बाइबिल और अन्य धर्मग्रंथ एक ही परम सत्य की भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं।

"जो कछू कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाए भेद।।" — खुलासा 12/42

धर्मों का संघर्ष सत्य के कारण नहीं, बल्कि मनुष्य की संकीर्ण चेतना और अधूरी समझ के कारण उत्पन्न होता है।

"जुदे जुदे नामें गावहीं, जुदे जुदे भेख अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।।" — सनन्ध 41/72

धर्मों का संघर्ष सत्य के कारण नहीं, बल्कि मनुष्य की संकीर्ण चेतना के कारण उत्पन्न होता है। जब चेतना परिपक्व होती है, तब विविधता में भी एकत्व दिखाई देता है।

यह दृष्टि "One World Religion" या "विश्व-मानवता" की उस अवधारणा को जन्म देती है जिसमें किसी एक संगठित धर्म का प्रभुत्व नहीं, बल्कि सत्य, प्रेम, करुणा, सौंदर्य, समरसता और आत्मीयता पर आधारित मानवता का निर्माण हो।

15.12 चेतना-विकास और आधुनिक विश्व

महामति प्राणनाथ के अनुसार समाज की मूल समस्या बाहरी नहीं, बल्कि चेतना की अपरिपक्वता है। जब मनुष्य "मैं और मेरा" की सीमित मानसिकता में जीता है, तब विभाजन, हिंसा, भेदभाव और संघर्ष उत्पन्न होते हैं। इसलिए वास्तविक समाज-सुधार केवल कानूनों, व्यवस्थाओं या बाहरी सुधारों से संभव नहीं; उसके लिए चेतना-विकास आवश्यक है। तारतम वाणी चेतना को स्वकेंद्रित अवस्था से विश्वकेंद्रित और अंततः परमकेंद्रित अवस्था की ओर ले जाती है। इस दृष्टि से उनका दर्शन केवल धार्मिक विचारधारा नहीं, बल्कि समग्र चेतना (Integral Consciousness) की ओर बढ़ने की प्रक्रिया है।

उनकी दृष्टि में धर्म केवल पूजा-पद्धति या कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि चेतना को परिपक्व बनाने की साधना है। जब मनुष्य जाति, धर्म, भाषा और पहचान की संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठकर हर जीव में उसी एक परमात्मा का प्रकाश देखना सीखता है, तभी वास्तविक समरसता संभव होती है। इसलिए उन्होंने उद्घोष किया—

"एक खसम एक दुनियां, उड़ गई दूजी बात।।"

आज का आधुनिक समाज तकनीकी रूप से अत्यंत उन्नत होते हुए भी मानसिक और सामाजिक रूप से विखंडित होता जा रहा है। सोशल मीडिया, राजनीतिक ध्रुवीकरण, धार्मिक कट्टरता और AI-आधारित सूचना-युग में महामति प्राणनाथ का संदेश और अधिक प्रासंगिक हो उठता है। वे स्मरण कराते हैं कि तकनीक उपयोगी साधन हो

सकती है, पर चेतना का विकल्प नहीं। वास्तविक समानता, करुणा और विश्वबंधुत्व तभी संभव है जब मानवता स्वकेंद्रित और जातिकेंद्रित चेतना से ऊपर उठकर विश्वकेंद्रित और समग्र चेतना की ओर अग्रसर हो। यही महामति प्राणनाथ के समाज-दर्शन का आधुनिक और सार्वकालिक संदेश है।

चेतना के स्तर और सामाजिक दृष्टि

चेतना-स्तर	मूल मानसिकता	समाज पर प्रभाव	महामति प्राणनाथ की दृष्टि
स्वकेंद्रित चेतना	"पहले मैं"	स्वार्थ, भय, संघर्ष और विभाजन	देहाभिमान और "मैं–मेरा" की सीमा
जातिकेंद्रित चेतना	"हम बनाम वे"	जाति, पंथ, समूह और पहचान आधारित भेदभाव	अज्ञान और संकीर्ण दृष्टि
विश्वकेंद्रित चेतना	"हर कोई महत्त्वपूर्ण"	समावेशिता, समानता और मानवता	"एक खसम एक दुनियां" की भावना
समग्र / परमकेंद्रित चेतना	"सबमें एक परमात्मा"	प्रेम, करुणा, समरसता और विश्वबंधुत्व	चेतना-आधारित एकत्व और जागनी

15.13 छत्रसाल और धर्म-रक्षा

महामति प्राणनाथ के दर्शन में धर्म-रक्षा का आधार तलवार नहीं, बल्कि कर्तव्य, बलिदान और समर्पण है। वि.सं. 1679 में उनके बारह सुन्दरसाथ ब्रह्ममुनियों ने औरंगज़ेब तक धर्म के एकत्व और करुणा का संदेश पहुँचाने के लिए आत्म-बलिदान दिया। दस हिंदू और दो मुस्लिम सुन्दरसाथों का यह प्रसंग सर्वधर्म समभाव और साहस का अमर उदाहरण है।

15.14 गांधीजी और वैश्विक मानवता पर प्रभाव

महामति प्राणनाथ की सार्वभौमिक चेतना का प्रभाव आधुनिक युग तक दिखाई देता है। महात्मा गांधी की "ईश्वर अल्लाह तेरो नाम" जैसी प्रार्थना उसी चेतना की प्रतिध्वनि है जिसे महामति ने "एक खसम, एक दुनिया" के रूप में उद्घोषित किया था। यह धारा आगे चलकर मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेल्सन मंडेला जैसे नेताओं तक पहुँची। इस प्रकार महामति प्राणनाथ का संदेश केवल मध्यकालीन भारत तक सीमित नहीं, बल्कि विश्वमानवता और वैश्विक शांति की दिशा में भी अत्यंत प्रासंगिक है।

15.15 समग्र निष्कर्ष

महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन केवल धार्मिक सुधार आंदोलन नहीं, बल्कि चेतना-आधारित सामाजिक क्रांति है। उन्होंने मानवता को जाति, धर्म, भाषा, गोत्र और

पंथ की सीमाओं से ऊपर उठाकर आत्मिक एकत्व की ओर उन्मुख किया। उनके अनुसार समाज की वास्तविक समस्या बाहरी विविधता नहीं, बल्कि चेतना की अपरिपक्वता है। इसलिए उन्होंने स्पष्ट किया कि समरसता केवल बाहरी समानता से नहीं आती; वह तब जन्म लेती है जब मनुष्य हर जीव में उसी एक परमात्मा का प्रकाश देखना सीख लेता है।

उनकी दृष्टि में वंश से ऊपर योग्यता है, नियम से ऊपर प्रेम है, धर्म से ऊपर आत्मा है, सत्ता से ऊपर समानता है, और विभाजन से ऊपर सार्वभौमिक मानवता है। इसी कारण उन्होंने "सुन्दरसाथ समाज" के माध्यम से ऐसा जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया जहाँ विविध जातियों, भाषाओं और धर्मों से आए लोग प्रेम, सेवा और आत्मीयता के आधार पर एक साथ रहते थे। उन्होंने मानवता को यह बोध कराया कि बाहरी जातियाँ और पहचानें अस्थायी हैं, जबकि आत्मा का वास्तविक गोत्र "चिदानंद" है।

आज के वैश्विक युग में, जब तकनीकी रूप से संसार एक "वैश्विक गाँव" बन चुका है, महामति प्राणनाथ की यह चेतना और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। आधुनिक संकटों—युद्ध, असमानता, विभाजन और मानसिक अशांति—का समाधान केवल बाहरी प्रगति से नहीं, बल्कि चेतना की परिपक्वता, करुणा और आध्यात्मिक एकत्व से संभव है। इसी सत्य को महामति ने इन शब्दों में व्यक्त किया—

"एक खसम एक दुनियां, उड़ गई दूजी बात।।"

यही उनके समाज-दर्शन का सार है—विभाजन से एकत्व की ओर, अज्ञान से जागृति की ओर, और मानवता से परम मानवता की ओर। महामति प्राणनाथ का समरसता-संदेश आज भी अत्यंत प्रासंगिक है — क्योंकि वास्तविक एकता तभी संभव है जब मनुष्य चेतना के स्तर पर विभाजन से ऊपर उठे।

.....

भाग 3: अध्याय – 16
"सर्वधर्म समन्वय" से "सर्वजीवन समन्वय" की ओर
तारतम ज्ञान की समग्र दृष्टि से

16.1 आधुनिक विश्व और तारतम्य-केंद्रित समन्वय की आवश्यकता

मानव सभ्यता का इतिहास जितना संस्कृति, दर्शन, विज्ञान और आध्यात्मिक उत्कर्ष का इतिहास है, उतना ही वह विभाजन, संघर्ष, अहंकार और संकीर्णताओं का भी इतिहास रहा है। धर्म, जो मूलतः मनुष्य को सत्य, प्रेम, करुणा और परमात्मा से जोड़ने का माध्यम था, समय के साथ अनेक सम्प्रदायों, पंथों, बाह्याचारों और वैचारिक कठोरताओं में विभाजित हो गया। परिणामस्वरूप धर्म का जीवंत सार पीछे छूट गया और मनुष्य बाहरी पहचान, प्रतीकों और मान्यताओं के संघर्ष में उलझता चला गया।

आज का संसार केवल धार्मिक संघर्षों से ही नहीं, बल्कि वैचारिक ध्रुवीकरण, राजनीतिक विभाजन, विज्ञान और अध्यात्म के टकराव, संस्कृति युद्ध, पर्यावरण संकट, मानसिक तनाव, डिजिटल विखंडन और अर्थ-केंद्रित जीवनदृष्टि से भी जूझ रहा है। विज्ञान ने मनुष्य को अभूतपूर्व शक्ति दी है, परन्तु दिशा नहीं; तकनीक ने गति दी है, परन्तु अंतर्मन की शांति नहीं; शिक्षा ने सूचना दी है, परन्तु जीवन का समग्र अर्थ नहीं। मनुष्य के पास साधन बढ़े हैं, परन्तु भीतर की अखण्डता कम होती गई है।

ऐसे समय में महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी केवल धार्मिक सह-अस्तित्व का संदेश नहीं देती, बल्कि एक ऐसी समग्र चेतना का दर्शन प्रस्तुत करती है जिसमें जीवन के सभी आयाम — धर्म, ज्ञान, प्रेम, विज्ञान, समाज, प्रकृति, चेतना और आध्यात्म — एक व्यापक अखण्डता में जुड़े हुए दिखाई देते हैं। यही कारण है कि तारतम वाणी की तारतम्य-केंद्रित "सर्वधर्म समन्वय" की अवधारणा आज के इन्टीग्रल युग में अत्यंत प्रासंगिक बन जाती है।

"समन्वय" का साधारण अर्थ है — विभिन्न तत्वों, विचारों, व्यक्तियों या कार्यों को इस प्रकार जोड़ना कि वे आपस में विरोध करने के बजाय मिलकर संतुलित और सार्थक रूप से कार्य करें।

16.2 सर्वधर्म समभाव और सर्वधर्म समन्वय

सर्वधर्म समभाव का अर्थ है सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और सद्भाव रखना। इसमें व्यक्ति अपने धर्म का पालन करते हुए अन्य धर्मों को भी आदर देता है और यह मानता है कि सभी को अपने-अपने मार्ग पर चलने का अधिकार है। इसका मुख्य

आधार सहिष्णुता, शांति और सामाजिक सौहार्द है। यहाँ धर्म अलग-अलग बने रहते हैं; केवल उनके प्रति सम्मान की भावना विकसित होती है।

इसके विपरीत सर्वधर्म समन्वय के साथ साथ तारतम्य-केंद्रित परम सत्य का बोध और अधिक गहरी और समग्र चेतना की अवधारणा है। इसमें केवल सम्मान ही नहीं, बल्कि यह समझ भी विकसित होती है कि विभिन्न धर्म एक ही परम सत्य की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। समन्वय बाहरी भिन्नताओं के पीछे छिपी हुई आध्यात्मिक एकता को देखने की दृष्टि देता है।

महामति प्राणनाथ प्रणीत तारतम वाणी सर्वधर्म-समन्वय और सर्वजीवन-समन्वय अवश्य करती है, पर उसका दर्शन केवल समन्वय तक सीमित नहीं है; वह समन्वय से आगे बढ़कर शास्त्रों में निहित परम सत्य का उद्घाटन करती है। पूर्व संतों ने मुख्यतः भक्ति, प्रेम, नाम और धर्मों की एकता पर बल दिया, जबकि तारतम वाणी वेद, उपनिषद्, आगम-निगम तथा विविध धर्मग्रंथों में संकेत रूप से निहित रहस्यों को स्पष्ट करती है। जहाँ पूर्व ग्रंथों में क्षर का विस्तार, अक्षर का संकेत और अक्षरातीत का अभाव था, वहाँ तारतम वाणी क्षर–अक्षर–अक्षरातीत के पूर्ण तारतम्य को उद्घाटित करती है। इसी प्रकार वेदों में संकेत रूप से वर्णित अग्नियों के रहस्य को यह ब्रह्मात्माओं और परब्रह्म के प्रेम-संवाद के रूप में प्रकाशित करती है।

इस दृष्टि से महामति प्राणनाथ को केवल 'समन्वयवादी' कहना पर्याप्त नहीं है; उनका कार्य विभिन्न धर्मों और शास्त्रों में निहित आंशिक सत्यों का तारतम्यपूर्वक समन्वय कर परम तत्त्व का उद्घाटन करना है। तारतम वाणी 'समभाव' से आगे बढ़कर 'तारतम्य-केंद्रित समन्वय' की स्थापना करती है, जहाँ वेद और कतेब, हिन्दू और मुसलमान, विविध नाम और परम्पराएँ एक ही परम सत्य की भिन्न अभिव्यक्तियों के रूप में समझी जाती हैं। इसलिए समभाव सामाजिक सद्भाव का आधार है, जबकि तारतम्यपूर्ण समन्वय अखण्ड आध्यात्मिक दृष्टि और सार्वभौमिक मानव एकता का आधार बनता है।

16.3 सत्य एक, अभिव्यक्तियाँ अनेक

तारतम वाणी बार-बार इस तथ्य को उद्घाटित करती है कि सत्य एक है, किन्तु उसकी अभिव्यक्तियाँ अनेक हैं। महामति प्राणनाथ ने वेद, उपनिषद, गीता, भागवत, कुरान, तौरेत, अंजील और अन्य परम्पराओं का अध्ययन करके यह स्पष्ट किया कि विभिन्न धर्म वास्तव में उसी एक परम सत्य के विविध सांस्कृतिक, भाषिक और ऐतिहासिक रूप हैं। वे कहते हैं—

"वेदांत गीता भागवत, दैयां इसारतां सब खोल।
मगज माएने जाहेर किए, माहें गुझ हते जो बोल॥"— खुलासा 13/96

और—

"अंजीर जंबूर तौरेत, चौथी जो फुरकान।

एक माएने मगज गुझथे, जो जाहेर किये बखान ।।"— खुलासा 13/97

इन चौपाइयों में "मगज माएने" अर्थात् सारतत्त्व पर विशेष बल दिया गया है। महामति का आग्रह बाहरी रूपों पर नहीं, बल्कि उस आंतरिक सत्य पर है जो सभी धर्मों के भीतर विद्यमान है। आधुनिक समग्र दर्शन भी यही स्वीकार करता है कि प्रत्येक परम्परा सत्य के किसी न किसी आयाम को व्यक्त करती है। समस्या तब उत्पन्न होती है जब कोई परम्परा स्वयं को सम्पूर्ण सत्य घोषित कर देती है और अन्य दृष्टियों को अस्वीकार करने लगती है।

आधुनिक मनोविज्ञान और समग्र चेतना की दृष्टि से देखा जाए तो धार्मिक संघर्षों का एक बड़ा कारण "ही-वादी" सोच है।"ही-वादी" दृष्टि कहती है — "मेरा ही मार्ग सत्य है", "मेरा ही धर्म श्रेष्ठ है", या "केवल मेरी ही समझ सही है।" जब कोई व्यक्ति या परम्परा अपने आंशिक अनुभव को ही सम्पूर्ण सत्य मान लेती है, तब विभाजन, अहंकार और संघर्ष उत्पन्न होने लगते हैं। इसके विपरीत "भी-वादी" दृष्टि कहती है — "यह भी सत्य का एक आयाम हो सकता है।" यह दृष्टि विभिन्न धर्मों और परम्पराओं में छिपे सत्य-अंशों को स्वीकार करती है और तारतम्य-केंद्रित समन्वय की ओर ले जाती है।

इसे एक बड़े चित्र (puzzle) के उदाहरण से समझा जा सकता है। यदि किसी विशाल चित्र का केवल एक छोटा टुकड़ा किसी व्यक्ति के पास हो, तो वह उस टुकड़े को देखकर पूरी तस्वीर का दावा नहीं कर सकता। प्रत्येक टुकड़ा महत्वपूर्ण है, लेकिन सम्पूर्ण चित्र तभी प्रकट होता है जब सभी टुकड़े सही संबंध में जुड़ते हैं। इसी प्रकार विभिन्न धर्म, दर्शन और आध्यात्मिक परम्पराएँ परम सत्य के अलग-अलग आयामों को प्रकट करती हैं। तारतम वाणी का संदेश यही है कि आंशिक सत्यों को लेकर संघर्ष करने के बजाय उनके भीतर छिपे हुए व्यापक एकत्व और तारतम्य को समझा जाए। यही partial truth से integral truth की यात्रा है।

16.4 तारतम्य सूत्र: अखण्डता की दिव्य दृष्टि

"तारतम" शब्द अपने भीतर अत्यंत गहरा आध्यात्मिक और दार्शनिक अर्थ समेटे हुए है।"तार" का अर्थ है — प्रकाश, ज्ञान, प्रेम, जागृति और वह दिव्य चेतना जो मनुष्य को उसके मूल सत्य की ओर ले जाती है। इसके विपरीत "तम" का अर्थ है — अज्ञान, भ्रम, विभाजन, संकीर्णता और चेतना का अंधकार। जब मनुष्य बाहरी भेदों, अहंकार, कट्टरता और सीमित दृष्टियों में उलझ जाता है, तब वह "तम" की अवस्था में रहता है।"तारतम" उस दिव्य प्रक्रिया का नाम है जिसमें ज्ञान और प्रेम का प्रकाश अज्ञान

और विभाजन के अंधकार को रूपांतरित करने लगता है। इस दृष्टि से तारतम केवल एक ग्रंथ या वाणी नहीं, बल्कि चेतना को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली जागृति-शक्ति है।

तारतम वाणी का उद्देश्य केवल बौद्धिक जानकारी देना नहीं, बल्कि मनुष्य की दृष्टि को परिवर्तित करना है। जब "तार" का प्रकाश "तम" पर पड़ता है, तब विभाजन में एकता, संघर्ष में संबंध, और विविधता में अखण्डता दिखाई देने लगती है। यही कारण है कि महामति प्राणनाथ बार-बार "मगज माएने" अर्थात् सारतत्त्व को समझने पर बल देते हैं। उनके अनुसार बाहरी धर्म, भाषा, परम्परा और रीति-रिवाज भिन्न हो सकते हैं, लेकिन उनके भीतर छिपा हुआ सत्य एक ही है। तारतम दृष्टि उसी आंतरिक प्रकाश को प्रकट करती है जो मनुष्य को सीमित पहचान से उठाकर व्यापक विश्व-चेतना से जोड़ देती है।

इसी भाव को "तारतम तेज पूरण प्रकाश" के रूप में समझा जा सकता है। यहाँ "तेज" केवल बाहरी प्रकाश नहीं, बल्कि चेतना का दिव्य आलोक है, जो भ्रम, अज्ञान और विभाजन के अंधकार को दूर कर देता है। यह प्रकाश मनुष्य को केवल धर्मों के समन्वय तक सीमित नहीं रखता, बल्कि जीवन, प्रकृति, समाज, विज्ञान, प्रेम और परमात्मा—सभी को एक जीवित अखण्डता में देखने की दृष्टि देता है। इस प्रकार तारतम ज्ञान का अंतिम उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि चेतना को प्रकाशित करके मनुष्य को तारतम्य-केंद्रित "सर्वधर्म समन्वय" से "सर्वजीवन समन्वय" और अंततः अखण्ड परमात्म-दृष्टि की ओर ले जाना है।

"तारतम्य" की आवश्यकता तब उत्पन्न होती है, जब कोई परम्परा स्वयं को सम्पूर्ण सत्य घोषित कर देती है और अन्य दृष्टियों को अस्वीकार करने लगती है। तारतम्य का सरल अर्थ है: विभिन्न चीज़ों, विचारों या स्तरों के बीच सही संबंध, क्रम, संतुलन और सामंजस्य को समझना। तारतम्य केवल सहिष्णुता नहीं है; यह ऐसा समग्र बोध है जिसमें विभिन्न मतों और परम्पराओं के पीछे छिपी हुई व्यापक एकता का अनुभव होने लगता है।

तारतम्य सूत्र वह दिव्य अमोघ दृष्टि है, जो हमें यह देखने की क्षमता देती है कि अस्तित्व की अनंतता में सब कुछ — हर तत्व, हर प्राणी, हर अनुभव और हर धर्म — शरीर के अंगों की तरह एक-दूसरे से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। सामान्य दृष्टि वस्तुओं को अलग-अलग, खंडित और परस्पर विरोधी रूप में देखती है; परन्तु तारतम्य की दृष्टि विभाजन के भीतर छिपी हुई अखण्डता को प्रकट करती है।

तारतम्य को समझने के लिए "अंधे बालकों और हाथी" का प्रसिद्ध रूपक अत्यंत सार्थक है। जब अलग-अलग अंधे बालक हाथी के विभिन्न अंगों को स्पर्श करते हैं, तो कोई उसे दीवार कहता है, कोई रस्सी, कोई खंभा, और कोई पंखा। प्रत्येक के पास

आंशिक सत्य होता है, परन्तु पूर्ण सत्य किसी के पास नहीं होता। इसी प्रकार विभिन्न धर्म, दर्शन और विचारधाराएँ परम सत्य के किसी एक पक्ष का अनुभव करती हैं; लेकिन जब वे अपने सीमित अनुभव को ही सम्पूर्ण सत्य मान लेती हैं, तभी संघर्ष उत्पन्न होता है। तारतम्य सूत्र इन आंशिक सत्यों को नष्ट नहीं करता, बल्कि उन्हें एक बड़े अखण्ड सत्य में उनके उचित स्थान पर स्थापित करता है। यही समग्र दृष्टि है — विविधता को मिटाए बिना पूर्णता का अनुभव।

महामति प्राणनाथ इसी अखण्डता को प्रकट करते हुए कहते हैं—

"करना सारा एक रस, हिंदू मुसलमान।
धोखा सबका भान के, सबका कहूँगी ज्ञान ॥"— सनंध 3/3

यह "एक रस" केवल धार्मिक समानता नहीं है; यह अस्तित्व की अंतर्संबद्धता का अनुभव है। जब चेतना सीमित अहंकार, संकीर्ण पहचान और विभाजनकारी दृष्टि से ऊपर उठती है, तब मनुष्य अनुभव करता है कि सभी धाराएँ अंततः एक ही महासागर की ओर प्रवाहित हो रही हैं। जैसे छोटी-छोटी नदियाँ महासागर में मिलकर अपनी पृथकता खो देती हैं, वैसे ही सीमित दृष्टियों की संकीर्णताएँ समग्र चेतना में विलीन होने लगती हैं।

तारतम वाणी के अनुसार यह समग्र दृष्टि केवल बौद्धिक विश्लेषण से प्राप्त नहीं होती; यह परमात्मा की कृपा-दृष्टि से विकसित होती है। जब जीव पर मेहर बरसती है, तब उसकी दृष्टि सीमित मतों, बाहरी रूपों और मानसिक विभाजनों से ऊपर उठने लगती है। तब वह धर्मों के भीतर संघर्ष नहीं, बल्कि सत्य की विभिन्न झलकियाँ देखने लगता है। यही कारण है कि महामति प्राणनाथ बार-बार "मगज माएने" अर्थात् सारतत्त्व को समझने पर बल देते हैं।

16.5 सर्वधर्म समन्वय से "सर्वजीवन समन्वय" तक

तारतम ज्ञान को केवल एक धार्मिक या दार्शनिक परम्परा के रूप में नहीं, बल्कि एक प्रकार के "अति-अभिन्न" (super-integral) आध्यात्मिक विज्ञान के रूप में भी समझा जा सकता है। इसका कारण यह है कि यह किसी एक दृष्टि, अनुभव या चेतना-स्तर को अंतिम मानकर अन्य स्तरों का निषेध नहीं करता, बल्कि उन्हें एक व्यापक अखण्डता में समझने का प्रयास करता है। तारतम वाणी की दृष्टि में क्षर, अक्षर और अक्षरातीत — ये सभी अस्तित्व और चेतना के वास्तविक स्तर हैं। प्रत्येक का अपना स्थान, महत्व और अनुभव है। तारतम्य-केंद्रित समन्वय का अर्थ किसी स्तर को मिटाना नहीं, बल्कि उसके उचित स्थान को समझते हुए उसे उच्चतर पूर्णता में जोड़ना है।

आधुनिक इन्टीग्रल दर्शन में इसे "transcend and include" कहा जाता है — अर्थात् किसी स्तर को नकारे बिना उसे व्यापक चेतना में समाहित करना। तारतम ज्ञान

भी यही करता है। यह केवल भक्ति को नहीं, केवल ज्ञान को नहीं, केवल योग या केवल धर्म को नहीं, बल्कि विभिन्न आध्यात्मिक अनुभवों और चेतना-मार्गों को एक बड़े तारतम्य में जोड़ता है। इसीलिए यह विभाजनकारी आग्रह के बजाय harmonization अर्थात् समरस समेकन की ओर ले जाता है।

"प्रकृति स्वयं समन्वय और तारतम्य की प्रक्रिया पर चलती है। विरोध और संघर्ष अंततः एक नए संतुलन और उच्चतर समेकन को जन्म देते हैं।"

तारतम दृष्टि कहती है कि मनुष्य की चेतना बहुस्तरीय है। भौतिक, मानसिक, आत्मिक, परात्मिक और परमात्मिक — ये सभी विकास की क्रमिक अवस्थाएँ हैं। यदि कोई केवल एक स्तर को पकड़कर बाकी को अस्वीकार कर दे, तो दृष्टि अधूरी रह जाती है। लेकिन जब सभी स्तरों को उनके सही संबंध और क्रम में समझा जाता है, तब चेतना में अखण्डता उत्पन्न होती है। इसी कारण तारतम्य-केंद्रित "सर्वधर्म समन्वय" अंततः "सर्वजीवन समन्वय" की ओर ले जाता है — जहाँ धर्म, विज्ञान, प्रेम, ज्ञान, प्रकृति, समाज और परमात्मा एक ही व्यापक चेतना की विविध अभिव्यक्तियाँ बन जाते हैं।

आज सर्वधर्म समन्वय की चर्चा तो बहुत होती है, परंतु प्रश्न यह है कि क्या समन्वय केवल धर्म तक सीमित रहना चाहिए? क्या राजनीति, शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण, मनोविज्ञान, संस्कृति और डिजिटल जीवन में भी समन्वय आवश्यक नहीं है? आधुनिक संसार की सबसे बड़ी समस्या यही है कि मनुष्य ने जीवन को खंडों में बाँट दिया है। विज्ञान धर्म से कट गया, राजनीति नैतिकता से कट गयी, शिक्षा जीवन से कट गयी, और तकनीक चेतना से कट गयी। परिणामस्वरूप मनुष्य के पास सूचना तो बहुत है, परन्तु समग्र बुद्धि नहीं।

तारतम वाणी के "करना सारा एक रस" यह कथन से तात्पर्य केवल दो समूहों के बीच धार्मिक एकता का संकेत नहीं समझना चाहिए। इसे सम्पूर्ण जीवन की अखण्डता और परस्पर संबद्धता की ओर इंगित करता हुआ समझना चाहिए। महामति प्राणनाथ की दृष्टि में सत्य का अनुभव तभी संभव है जब मनुष्य विभाजनकारी चेतना से ऊपर उठकर अस्तित्व को एक जीवित समग्रता के रूप में देखना प्रारम्भ करे। आधुनिक एकीकृत दर्शन भी यही कहता है कि मानव विकास केवल धार्मिक या बौद्धिक विकास तक सीमित नहीं हो सकता; जीवन के सभी आयामों — व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक — का संतुलित और समन्वित विकास आवश्यक है।

इसी कारण समन्वय की अवधारणा को केवल धर्मों की एकता तक सीमित रखना पर्याप्त नहीं है। धर्म जब अपने मूल प्रेम और करुणा से कट जाता है तो सम्प्रदायवाद और कट्टरता उत्पन्न होती है; शिक्षा जब जीवन और चेतना से कट जाती है तो वह केवल

सूचना-संग्रह बनकर रह जाती है; विज्ञान जब अध्यात्म और नैतिकता से अलग हो जाता है तो शक्ति तो देता है, पर दिशा नहीं; राजनीति जब लोकमंगल से कटती है तो ध्रुवीकरण और संघर्ष को जन्म देती है; डिजिटल जीवन जब सजगता और आत्मबोध से दूर होता है तो मनुष्य का ध्यान बिखर जाता है; और प्रकृति से अलगाव पर्यावरण संकट को जन्म देता है। इसलिए समग्र दृष्टि कहती है कि वास्तविक समन्वय केवल "सर्वधर्म समन्वय" नहीं, बल्कि "सर्वजीवन समन्वय" है, और वह भी तारतम्य-केंद्रित और परम सत्य की प्रकाशना के साथ।

16.6 जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समन्वय

क्षेत्र	विभाजन से संकट	समन्वय से विकास
धर्म	सम्प्रदायवाद, अहंकार, संघर्ष	सर्वधर्म सद्भाव, प्रेम, सत्य का सार
शिक्षा	केवल सूचना, जीवन से दूरी	जीवनपरक, मूल्यपरक, चेतनापरक शिक्षा
विज्ञान–अध्यात्म	शक्ति बिना दिशा	ज्ञान + करुणा + उत्तरदायित्व
राजनीति	ध्रुवीकरण, स्वार्थ	नीति, लोकमंगल, राष्ट्र-जागरण
डिजिटल जीवन	ध्यान-भंग, मानसिक असंतुलन	सजगता, विवेक, मन की सवारी
प्रकृति	शोषण, पर्यावरण संकट	प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व
समाज	जाति, नस्ल, वर्ग-भेद	मानव एकता और करुणामय संस्कृति

16.7 एकरूपता नहीं, एकत्व

महामति प्राणनाथ का उद्देश्य कभी भी धर्मों को मिटाना नहीं था। वे यह नहीं कह रहे थे कि सभी धर्मों के बाहरी रूप समान हैं; वे यह कह रहे थे कि विभिन्न धर्म एक ही परम सत्य की विविध सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ हैं। बाहरी रूप, भाषा, प्रतीक, पूजा-पद्धति और इतिहास भिन्न हो सकते हैं; लेकिन मनुष्य की मूल आध्यात्मिक प्यास — सत्य, प्रेम, शांति, करुणा और परमात्मा की खोज — समान है। इसलिए वे कहते हैं—

"नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।
सबमें उमत और दुनियां, सोई खुदा सोई ब्रह्म ॥"— खुलासा 12/38

महामति यहाँ "एकरूपता" (uniformity) की बात नहीं कर रहे; वे "एकत्व" (unity) की बात कर रहे हैं। समन्वय का अर्थ यह नहीं कि सब लोग एक जैसे बन जाएँ,

बल्कि यह कि भिन्नताओं के बीच भी एक गहरी मानवीय और आध्यात्मिक एकता को पहचाना जाए। यही "difference without division" की समग्र चेतना है।

यदि किसी हिंदू, मुसलमान, ईसाई या सिख माता से पूछा जाए कि वह अपने बच्चे के लिए क्या चाहती है, तो उत्तर लगभग समान होगा — सुरक्षा, प्रेम, सम्मान, शिक्षा और शांति। यदि किसी साधक से पूछा जाए कि वह भीतर क्या खोज रहा है, तो उत्तर होगा — प्रेम, अर्थ, ईश्वर या सत्य। अर्थात् मनुष्य का मूल हृदय समान है; भिन्नताएँ केवल अभिव्यक्ति की हैं। महामति इसी "हृदय की एकता" की ओर संकेत करते हैं।

समन्वय का अर्थ विभिन्न धर्मों, विचारों या संस्कृतियों को इस प्रकार जोड़ना नहीं है कि उनकी अपनी पहचान ही समाप्त हो जाए। वास्तविक समन्वय "मिश्रण" (mixing) नहीं, बल्कि तारतम्य-केंद्रित "सामंजस्य" (harmony) है। जैसे एक बगीचे में अनेक प्रकार के फूल अपनी-अपनी सुगंध, रंग और स्वरूप बनाए रखते हुए भी मिलकर सौंदर्य उत्पन्न करते हैं, वैसे ही समन्वय में विविधता बनी रहती है। इसका उद्देश्य सबको एक जैसा बना देना नहीं, बल्कि भिन्नताओं के बीच गहरे संबंध और एकता को समझना है।

तारतम वाणी की दृष्टि में समन्वय का अर्थ "identity loss" नहीं, बल्कि "unity in diversity" है। हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, जैन या अन्य परम्पराएँ अपनी विशिष्टता बनाए रखते हुए भी एक व्यापक मानवीय और आध्यात्मिक सत्य की अभिव्यक्ति हो सकती हैं। इसलिए समन्वय का लक्ष्य homogenization अर्थात् कृत्रिम एकरूपता नहीं, बल्कि ऐसा जीवंत संतुलन है जहाँ विविध स्वर मिलकर एक सुंदर संगीत उत्पन्न करें। यही कारण है कि तारतम्य-दृष्टि विविधता को मिटाती नहीं, बल्कि उसे उच्चतर अखण्डता में रूपांतरित करती है।

16.8 समन्वय के मार्ग में बाधाएँ

महामति प्राणनाथ ने बाह्याडम्बर, धार्मिक अहंकार, संकीर्णता और "मैं ही सही हूँ" वाली मानसिकता को वास्तविक समन्वय का सबसे बड़ा अवरोध माना। उनके अनुसार जब व्यक्ति या सम्प्रदाय अपने सीमित अनुभव को ही पूर्ण सत्य घोषित कर देता है, तभी विभाजन, संघर्ष और वैमनस्य जन्म लेते हैं। इसीलिए वे चेतावनी देते हैं—

"अब छोडो रे मान गुमान ग्यान को, एही खाड बडी भाई।
एक डारी त्यों दूजी भी डारो, जलाए देओ चतुराई॥" — किरन्तन 5/6

यहाँ "मान", "गुमान" और "चतुराई" केवल व्यक्तिगत अहंकार नहीं, बल्कि वैचारिक और धार्मिक अहंकार के भी प्रतीक हैं। महामति के अनुसार परम सत्य अनंत है; उसे कोई एक भाषा, संस्कृति, मत या सम्प्रदाय पूर्णतः सीमित नहीं कर सकता। इसलिए समन्वय का प्रथम चरण है — विनम्रता, openness और सत्य के व्यापक स्वरूप को स्वीकार करने की क्षमता।

ईसी कारण महामति केवल बाहरी धार्मिक आडम्बर या वेशधारण को पर्याप्त नहीं मानते। वे संसार में फैले ऐसे बाह्याचारों की तीव्र आलोचना करते हैं, जिनमें साधना का वास्तविक आंतरिक रूप खोकर केवल प्रदर्शन रह गया है। वे कहते हैं—

"सत जोऊं संतो तणो, अने साध तणी सिधाई।
बाहेर चेहेन करे कै साधना, माहे ते भांड भवाई ।। किरन्तन 129/13
चोकस चित केणी पेरे लाधे, बाहेर देखाडे अनंत ।
ते माटे आ कोहेडो अंधेर, मारे जाई ने संगत संत ।।" किरन्तन 129/14

महामति के अनुसार अनेक लोग साधुता और भक्ति का बाहरी प्रदर्शन तो करते हैं, परन्तु भीतर से उनका मन अशांत, चंचल और अहंकार से भरा रहता है। जब साधना केवल प्रदर्शन बन जाती है, तब वास्तविक सत्संग और सच्ची साधुता छूटने लगती है। यही कारण है कि संसार अज्ञान और भ्रम के अंधकार से भर जाता है।

इसी भाव को आगे बढ़ाते हुए वे कहते हैं—

"वेष उतम तमे धरो, पण माहेलो ते मेल न धुओ ।।" — किरन्तन 128/13

और—

"मन मेला धुओ नहीं, अने उजला करो आकार ।
आकार तिहां चाले नहीं, चाले निरमल निराकार ।।" — किरन्तन 128/14

अर्थात् यदि मन के भीतर द्वेष, अहंकार, लोभ और विभाजन की भावना बनी रहे, तो केवल बाहरी धार्मिक पहचान या पवित्र वेश मनुष्य को सत्य के निकट नहीं ले जा सकते। वास्तविक समन्वय बाहरी घोषणाओं से नहीं, बल्कि अंतःकरण की निर्मलता, करुणा और चेतना की शुद्धि से उत्पन्न होता है।

महामति ने जाति और धार्मिक श्रेष्ठता-बोध की भी तीव्र आलोचना की। वे कहते हैं—

"ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहे हम पाक ।
दोऊ मुठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक ।।"

अर्थात् बाहरी पहचान और श्रेष्ठता के दावे अंततः नश्वर हैं। मनुष्य चाहे किसी भी जाति, धर्म या परम्परा से जुड़ा हो, उसका मूल अस्तित्व एक ही सार्वभौमिक चेतना से जुड़ा है। इसी प्रकार वे भाषाओं और सांस्कृतिक विविधताओं के पीछे छिपी हुई एकता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं—

"बोली सबों जुदी परी, नाम जुदे धरे सबन ।
चलन जुदा कर दिया, तातें समझ ना परी किन ।।"

यहाँ महामति स्पष्ट करते हैं कि भाषा, नाम, परम्परा और रीति-रिवाज भिन्न होने के कारण मनुष्य एक-दूसरे को अलग समझने लगता है, जबकि भीतर का सत्य एक ही है।

महामति आत्मा की पवित्रता को बाहरी कर्मकाण्डों से अधिक महत्त्व देते हुए कहते हैं—

"अन्दर नाहीं निरमल, फेर फेर नहावे बाहेर।
कर देखाई कोट बेर, तोहे न मिलो करतार॥
कोट करो बंदगी, बाहेर हो निरमल।
तोलो न पीउ पाइए, जोलों ना साधे दिल॥"

अर्थात् यदि मनुष्य करोड़ों बार स्नान करे, अनगिनत पूजा-पाठ करे, परन्तु उसका हृदय निर्मल न हो, तो वह परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ महामति स्पष्ट करते हैं कि धर्म का सार बाहरी कर्मकाण्ड नहीं, बल्कि हृदय की शुद्धि, प्रेम और आंतरिक जागृति है।

महामति ने जाति और धार्मिक श्रेष्ठता-बोध की भी तीव्र आलोचना की। वे कहते हैं—

"ब्राह्मण कहे हम उत्तम, मुसलमान कहे हम पाक।
दोऊ मुठी एक ठौर की, एक राख दूजी खाक॥"

अर्थात् बाहरी पहचान और श्रेष्ठता के दावे अंततः नश्वर हैं। मनुष्य चाहे किसी भी जाति, धर्म या परम्परा से जुड़ा हो, उसका मूल अस्तित्व एक ही सार्वभौमिक चेतना से जुड़ा है। इसी प्रकार वे भाषाओं और सांस्कृतिक विविधताओं के पीछे छिपी हुई एकता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं—

"बोली सबों जुदी परी, नाम जुदे धरे सबन।
चलन जुदा कर दिया, तातें समझ ना परी किन॥"

यहाँ महामति स्पष्ट करते हैं कि भाषा, नाम, परम्परा और रीति-रिवाज भिन्न होने के कारण मनुष्य एक-दूसरे को अलग समझने लगता है, जबकि भीतर का सत्य एक ही है।

भाषा की दृष्टि से भी महामति प्राणनाथ ने अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया। उन्होंने केवल हिन्दी ही नहीं, बल्कि गुजराती, सिंधी, उर्दू, अरबी आदि भाषाओं को भी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यद्यपि उनकी वाणी में अनेक भाषाओं का प्रयोग हुआ, फिर भी उन्होंने देवनागरी को एक सेतु के रूप में अपनाया। वे सभी भाषाओं का सम्मान करते थे, किन्तु हिन्दी को विशेष रूप से सरल, सुगम और जन-संवाद की भाषा मानते थे। वे कहते हैं—

"सबको प्यारी अपनी, जो है कुल की भाख।
अब कहूँ भाखा मैं किनकी, यामें तो भाखा कै लाख॥
बिना हिसाबें बोलियां, मिने सकल जहान।
सबको सुगम जान के, कहूँगी हिन्दुस्तान॥"

महामति का समन्वय केवल भाषा या धर्म तक सीमित नहीं था। उन्होंने वेद, पुराण, गीता, कुरान और कतेबों के बीच गहरे आध्यात्मिक संबंध स्थापित करते हुए

भगवान कृष्ण के ऐसे व्यापक स्वरूप का उद्घाटन किया, जो विभिन्न परम्पराओं को जोड़ने वाला केन्द्र बन सके। इस दृष्टि से उनका कार्य केवल धार्मिक सुधार नहीं, बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक स्तर पर एक विराट समन्वय-चेष्टा था। उनका उद्देश्य विविधताओं को मिटाना नहीं, बल्कि उन्हें एक व्यापक अखण्ड चेतना में जोड़ना था।

16.9 प्रेम: तारतम्य-केंद्रित समन्वय का आध्यात्मिक आधार

तारतम वाणी की दृष्टि में प्रेम केवल एक भावना या भावनात्मक आकर्षण नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्व की मूल ऊर्जा और चेतना का दिव्य स्पंदन है। जिस प्रकार सूर्य के बिना प्रकाश संभव नहीं, उसी प्रकार प्रेम के बिना वास्तविक समन्वय संभव नहीं। ज्ञान बुद्धि को जोड़ सकता है, नियम समाज को व्यवस्थित कर सकते हैं, और विचार संवाद स्थापित कर सकते हैं; किन्तु विभाजन को भीतर से पिघलाकर अखण्डता का जीवंत अनुभव केवल प्रेम ही करा सकता है। इसीलिए तारतम वाणी में प्रेम को परम सत्य की सबसे निकटतम अनुभूति माना गया है।

महामति प्राणनाथ की दृष्टि में प्रेम केवल मनुष्य और मनुष्य के बीच संबंध नहीं, बल्कि आत्मा और परमात्मा के मध्य वह दिव्य आकर्षण है जिससे सम्पूर्ण सृष्टि संचालित होती है। परमधाम की लीला भी मूलतः प्रेमानन्द की लीला है। वहाँ संबंध अधिकार, भय या कर्तव्य पर नहीं, बल्कि अखण्ड प्रेम-रस पर आधारित हैं। इसलिए प्रेम यहाँ केवल नैतिक गुण नहीं, बल्कि चेतना की परम अवस्था है — ऐसी अवस्था जहाँ अलगाव मिटने लगता है और जीव स्वयं को व्यापक दिव्य अस्तित्व का अंग अनुभव करने लगता है।

जब प्रेम जागृत होता है, तब मनुष्य केवल "मैं" और "मेरा" की सीमाओं में नहीं रहता। वह दूसरे के दुःख को अपना दुःख और दूसरे के आनंद को अपना आनंद अनुभव करने लगता है। यही अनुभव धीरे-धीरे "एक रस" की चेतना में रूपांतरित होता है। इस प्रकार प्रेम पहले व्यक्ति को करुणा से जोड़ता है, फिर समन्वय से, और अंततः परमधामिक परमानन्द से। इसलिए तारतम वाणी में प्रेम केवल साधना का एक अंग नहीं, बल्कि सम्पूर्ण आध्यात्मिक यात्रा का मूल आधार और अंतिम गंतव्य दोनों है।

तारतम वाणी का समन्वय केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि प्रेममय है। महामति के अनुसार प्रेम ही वह शक्ति है जो विभाजन को पिघलाकर अखण्डता का अनुभव कराती है। वे कहते हैं—

"इसक बडा रे सबन में, न कोई इसक समान।
एक तेरे इसक बिना, उड गई सब जहान॥"— कलश हिन्दुस्तानी 7/11

और—

"प्रेम ब्रह्म दोऊ एक है।"— परिक्रमा 39/10

यहाँ प्रेम केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि अस्तित्व की मूल आध्यात्मिक शक्ति है। पहले प्रेम मनुष्य को दूसरे के दुःख और सुख से जोड़ता है; फिर वही प्रेम अक्षरातीत स्तर की चेतना से जूड कर तारतम्य-केंद्रित समन्वय का आधार बनता है; और अंततः वही प्रेम परमधाम का द्वार खोलता है। इसलिए महामति कहते हैं—

"प्रेम खोल देवे सब द्वार, पार के पार जो पार ।।"— परिक्रमा 1/64

और—

"उतपन प्रेम पारब्रह्म संग, वाको सुपन हो गयो संसार ।

प्रेम बिना सुख पारको नाहीं, जो तुम अनेक करो आचार ।।"— किरन्तन 81/6

16.10 आधुनिक युग में तारतम वाणी की प्रासंगिकता

आज की दुनिया में समन्वय की आवश्यकता केवल धार्मिक शांति के लिए नहीं, बल्कि मानव सभ्यता और अस्तित्व की रक्षा के लिए भी अत्यंत आवश्यक हो गई है। जलवायु संकट, डिजिटल व्यसन, मानसिक अवसाद, सांस्कृतिक विखंडन, उपभोक्तावाद, सामाजिक अकेलापन और राजनीतिक ध्रुवीकरण इस बात के संकेत हैं कि आधुनिक मानव चेतना भीतर से खंडित होती जा रही है। आधुनिक शिक्षा मनुष्य को विशाल मात्रा में सूचना तो देती है, परन्तु जीवन को समग्र रूप से समझने की बुद्धि नहीं दे पाती। विज्ञान शक्ति देता है, पर दिशा नहीं; तकनीक गति देती है, पर उद्देश्य नहीं; और आर्थिक प्रगति सुविधाएँ तो बढ़ाती है, परन्तु आंतरिक संतोष और शांति की गारंटी नहीं देती। परिणामस्वरूप मनुष्य बाहरी उपलब्धियों के बावजूद भीतर से असंतुलित, तनावग्रस्त और अर्थहीनता की अनुभूति से जूझ रहा है।

आधुनिक युग की सबसे बड़ी विडम्बनाओं में से एक यह भी है कि विज्ञान और अध्यात्म को एक-दूसरे के विरोधी क्षेत्र मान लिया गया है। विज्ञान बाहरी जगत, पदार्थ, ऊर्जा, प्रकृति और ब्रह्माण्ड के नियमों की खोज करता है, जबकि अध्यात्म मनुष्य के भीतर की चेतना, अनुभव, प्रेम, अर्थ और आत्मबोध की खोज करता है। विज्ञान पूछता है — "यह संसार कैसे कार्य करता है?" जबकि अध्यात्म पूछता है — "जीवन का उद्देश्य क्या है?" वास्तव में दोनों का क्षेत्र अलग होते हुए भी परस्पर पूरक है। विज्ञान बिना अध्यात्म के शक्ति तो दे सकता है, पर दिशा नहीं; और अध्यात्म बिना विज्ञान के संवेदनशील तो बना सकता है, पर बाहरी संसार की जटिल समस्याओं का व्यावहारिक समाधान अधूरा रह सकता है।

तारतम वाणी की समग्र दृष्टि इन दोनों के बीच एक गहरा सेतु स्थापित करती है। यह न तो विज्ञान का निषेध करती है और न केवल बाहरी धार्मिक आस्था तक सीमित रहती है। इसके अनुसार सत्य की खोज बाहर भी है और भीतर भी। बाहरी जगत का ज्ञान

मनुष्य को प्रकृति और ब्रह्माण्ड की शक्तियों को समझने में सहायता देता है, जबकि आंतरिक चेतना का ज्ञान उसे उन शक्तियों के विवेकपूर्ण, करुणामय और उत्तरदायित्वपूर्ण उपयोग की दिशा देता है। इसी कारण आधुनिक युग में केवल "ज्ञान" पर्याप्त नहीं है; "ज्ञान + विज्ञान + प्रेम" का तारतम्य-केंद्रित समन्वय आवश्यक है।

यदि विज्ञान के पास कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), जैव-प्रौद्योगिकी और डिजिटल शक्ति है, तो अध्यात्म के पास सजगता, करुणा, नैतिक विवेक और अखण्ड मानवता की चेतना है। जब दोनों का समन्वय होता है, तभी प्रौद्योगिकी मानवता की सेवा का साधन बनती है; अन्यथा वही शक्ति नियंत्रण, विनाश, मानसिक विखंडन और अस्तित्वगत संकट का कारण बन सकती है। आज मानवता को केवल अधिक शक्तिशाली मशीनों की नहीं, बल्कि अधिक जागरूक चेतना की आवश्यकता है।

तारतम वाणी आधुनिक मनुष्य को यही समग्र दृष्टि प्रदान करती है — जहाँ बुद्धि प्रेम से जुड़ती है, विज्ञान चेतना से जुड़ता है, और प्रगति मानवता के कल्याण से। यह मनुष्य को केवल जानकारी (information) नहीं, बल्कि जीवन-बोध (wisdom) प्रदान करती है। यहाँ समन्वय केवल धर्मों के बीच नहीं, बल्कि विज्ञान और अध्यात्म, व्यक्ति और समाज, मानव और प्रकृति, तकनीक और नैतिकता, तथा बुद्धि और करुणा के बीच स्थापित होता है।

इसीलिए तारतम ज्ञान आधुनिक युग में केवल धार्मिक शिक्षा नहीं, बल्कि संतुलित, संवेदनशील और जागरूक सभ्यता के निर्माण की दिशा भी प्रदान करता है। यह मनुष्य को याद दिलाता है कि बाहरी प्रगति तभी सार्थक है जब वह आंतरिक जागृति, प्रेम और अखण्ड मानवता से जुड़ी हो। यही कारण है कि आज के विखंडित विश्व में तारतम वाणी की समग्र चेतना केवल प्रासंगिक ही नहीं, बल्कि भविष्यदर्शी आवश्यकता बन चुकी है।

16.11 समन्वय की सीमाएँ और सावधानियाँ

तारतम वाणी की तारतम्य-केंद्रित समन्वय-दृष्टि "गौरव–लाघवपूर्वक" समझ पर आधारित है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक धर्म, शास्त्र और आध्यात्मिक परम्परा के भीतर जो सत्य, प्रेरणा और आध्यात्मिक योगदान है, उसका सम्मानपूर्वक स्वीकार किया जाए — यही उसका "गौरव" है। साथ ही यह भी समझा जाए कि कोई भी एक परम्परा परम सत्य की सम्पूर्णता को पूर्ण रूप से सीमित नहीं कर सकती — यही उसका "लाघव" या सीमा है। इस प्रकार तारतम दृष्टि न तो अंध-स्वीकृति सिखाती है और न ही तिरस्कार। यह न कहती है कि "सब कुछ समान है", और न यह कि "केवल एक ही सत्य है, बाकी सब असत्य हैं।" बल्कि यह विवेकपूर्ण समन्वय की शिक्षा देती है, जिसमें प्रत्येक दृष्टि के सत्य-अंश को उसके उचित स्तर और संदर्भ में समझा जाता है।

फिर भी समन्वय की कुछ सीमाएँ भी हैं। यदि समन्वय केवल सतही मेल-मिलाप बनकर रह जाए, तो वह सत्य की गहराई खो सकता है। सभी मत समान हैं — यह कहना सरल है; परन्तु उनकी स्तरगत भिन्नताओं को समझना आवश्यक है। तारतम वाणी स्वयं चेतना के विभिन्न स्तरों — क्षर, अक्षर और अक्षरातीत — का विवेचन करती है। इसलिए समन्वय का अर्थ भ्रमपूर्ण मिश्रण नहीं, बल्कि सही स्तर पर सही तत्त्व को समझना है। तारतम्य-केंद्रित समन्वय तभी सार्थक है जब वह विवेक, अनुभव और अंतःशुद्धि पर आधारित हो।

16.12 समाज में समन्वय को कैसे विकसित करें?

समाज में तारतम्य-केंद्रित समग्र समन्वय विकसित करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण दिशाएँ आवश्यक हैं—

1. वाद-विवाद के स्थान पर संवाद की संस्कृति
2. प्रेम, करुणा, सेवा और न्याय जैसे साझा मानवीय मूल्यों पर बल
3. युवाओं की भाषा और अनुभवों में आध्यात्मिक प्रस्तुति
4. "महामति के अनुसार विभिन्न धर्मवाणियाँ एक ही विश्वविद्यालय की अलग-अलग कक्षाओं के समान हैं। किसी एक कक्षा को सम्पूर्ण ज्ञान मान लेने से संकीर्णता आती है; समग्रता तब प्रकट होती है जब सभी दृष्टियों का तारतम्य समझा जाए।"
5. आध्यात्मिकता को जीवन, सेवा और चेतना-विकास से जोड़ना
6. समानता नहीं, पूरकता की दृष्टि विकसित करना

जब विविध परम्पराएँ एक-दूसरे को मिटाने के बजाय पूरक रूप में देखने लगती हैं, तभी वास्तविक समन्वय जन्म लेता है।

16.13 विश्वमानवता और महामति की भविष्यदृष्टि

महामति प्राणनाथ की दृष्टि वास्तव में "विश्वधर्म" की नींव है — ऐसा विश्वधर्म जो किसी नए सम्प्रदाय का निर्माण नहीं करता, बल्कि मनुष्य को उसके भीतर छिपे हुए सार्वभौमिक सत्य से जोड़ता है। वे स्पष्ट कहते हैं—

"सब जातें नाम जुदे धरे, और सबका खावंद एक।
सबको बंदगी याही की, पीछे लडे बिना पाए विवेक ॥"— खुलासा 2/22

और अंततः—"एक सृष्टि धनी भजन एकै…"

तथा— "छोड़ के वैर मिले सब प्यार सो, भया सकल में जै जै कार ॥"

महामति प्राणनाथ का संदेश केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश नहीं था; वह सम्पूर्ण मानवता के चेतना-विकास का संदेश था। उनकी वाणी काल से आगे की वाणी

थी। शायद इसीलिए संसार अभी तक उसे पूर्णतः आत्मसात नहीं कर पाया है। परन्तु मानवता धीरे-धीरे उसी दिशा में बढ़ रही है जहाँ सहयोग, समग्रता और चेतना की आवश्यकता अपरिहार्य हो जाएगी।

16.14 निष्कर्ष

तारतम वाणी की तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म समन्वय की अवधारणा केवल धार्मिक सद्भाव का सिद्धांत नहीं, बल्कि एक व्यापक समग्र चेतना का दर्शन है। यह हमें सिखाती है कि विविधता विरोध नहीं है; वह एक ही परम सत्य की बहुआयामी अभिव्यक्ति है। धर्म, विज्ञान, समाज, प्रकृति और चेतना — इन सबको एक जीवित अखण्डता में देखना ही वास्तविक तारतम्य है।

महामति प्राणनाथ की दृष्टि "सर्वधर्म समभाव" से आगे बढ़कर तारतम्य-केंद्रित "सर्वधर्म समन्वय" और अंततः "सर्वचेतना समन्वय" की ओर ले जाती है। यहाँ केवल धर्मों का मेल नहीं, बल्कि शरीर, मन, आत्मा और आध्यात्मिक चेतना का भी संतुलित समेकन है। यह दृष्टि व्यक्ति, समाज, मानवता और सम्पूर्ण सृष्टि को एक व्यापक दिव्य संबंध में देखती है। विज्ञान और अध्यात्म, बुद्धि और प्रेम, व्यक्ति और प्रकृति, परंपरा और नवीनता — ये सब विरोधी नहीं, बल्कि एक ही अखण्ड सत्य के पूरक आयाम बन जाते हैं।

तारतम वाणी का अंतिम संदेश यह है कि वास्तविक समन्वय बाहरी समानता से नहीं, बल्कि आंतरिक अखण्ड चेतना से उत्पन्न होता है। जब प्रेम अस्तित्व की मूल ऊर्जा के रूप में जागृत होता है, तब विभाजन धीरे-धीरे पिघलने लगता है और मनुष्य "एक रस" की चेतना का अनुभव करने लगता है। यही चेतना व्यक्ति को सीमित अहंकार से उठाकर व्यापक विश्वमानवता और परमधामिक प्रेमानन्द से जोड़ती है।

इसीलिए महामति प्राणनाथ का संदेश आज केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि मानवीय, वैश्विक और भविष्यदर्शी संदेश बन जाता है —विविधता में अखण्डता, अखण्डता में प्रेम, और प्रेम में परम सत्य का अनुसरण।

चतुर्थ भाग

उद्देश्य

प्रस्तुत भाग में विद्यार्थी निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक अवधारणाओं—भक्ति, सेवा, जागनी और तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म समन्वय—का समग्र अध्ययन करेंगे। साथ ही, वे "सुन्दरसाथ" की अवधारणा, ब्रह्मसृष्टि जीवन, प्रेम, आत्म-जागृति, धामभाव तथा चेतना-आधारित सामूहिक जीवन-दृष्टि को समझ सकेंगे।

अध्याय

अध्याय: 17 निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक अवधारणाएँ: भक्ति, सेवा, जागनी और परम सत्य प्रकाशित सर्वधर्म समन्वय का समग्र विवेचन

अध्याय: 18 सुन्दरसाथ की अवधारणा: ब्रह्मसृष्टि जीवन, प्रेम, जागृति और धामभाव की संस्कृति

लेखक

डॉ. ज्योति चौधरी, दर्शनशास्त्र विभाग
शासकीय के.आर.जी. स्वशासी महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
एवं
नरेंद्र आर. पटेल, एम.एस., सी.एस.पी. (सेवानिवृत्त)
लेखक, संपादक, सहयोगी शोधकर्ता एवं स्क्रिप्ट लेखक, श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया प्रोडक्शन्स, पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना एवं निजानंद फाउंडेशन इंक., यू.एस.ए. सदस्य, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय सुरक्षा समन्वयक, रटगर्स विश्वविद्यालय, यू.एस.ए.

भाग 4: अध्याय - 17
निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक अवधारणाएँ
भक्ति, सेवा और जागनी

17.1 प्रस्तावना:

निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय भारतीय आध्यात्मिक परंपरा की उन विशिष्ट धाराओं में से है जिसमें धर्म को केवल पूजा-पद्धति, कर्मकाण्ड या संप्रदायगत पहचान तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि उसे मानव चेतना के जागरण, प्रेम, आत्मबोध और सार्वभौमिक समन्वय की जीवित प्रक्रिया के रूप में देखा गया। साथ ही, उस का लक्ष्य विविध धर्मों, शास्त्रों और आध्यात्मिक परंपराओं में निहित सत्यों का तारतम्यपूर्वक उद्घाटन कर परम सत्य की प्रकाशना करना है। महामति प्राणनाथ ने धर्म को बाह्याचार की अपेक्षा आंतरिक रूपांतरण का माध्यम माना। उनके अनुसार धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को उसके मूल स्वरूप, उसके आध्यात्मिक आधार और परम सत्य से जोड़ना है।

निजानंद - प्रणामी परंपरा का साहित्य, विशेषकर तारतम वाणी, केवल भक्तिपरक रचनाओं का संग्रह नहीं है। उसमें चेतना-विज्ञान, आत्मदर्शन, प्रेम-दर्शन, योग, ज्ञान, ध्यान, समर्पण, वैराग्य, सर्वधर्म समन्वय, परम सत्य की प्रकाशना तथा मानव एकता जैसे अत्यंत गहन तत्त्वों का समावेश मिलता है। इसलिए तारतम वाणी को केवल "भक्तिमार्ग" का ग्रंथ मानना उसके वास्तविक आयामों को सीमित कर देना होगा। उसमें अक्षरातीत परम सत्य को लक्ष्य बनाकर कर्म, ज्ञान, योग, ध्यान, संन्यास और प्रेम—सभी साधना पद्धतियों का उच्चतम, सूक्ष्मतम और प्रेमपूर्ण समन्वय मिलता है।

महामति प्राणनाथ का चिंतन इस बात पर विशेष बल देता है कि आध्यात्मिक ग्रंथों को केवल परंपरागत मान्यताओं, रूढ़ धारणाओं या बाहरी धार्मिक ढाँचों के आधार पर नहीं समझा जा सकता। तारतम वाणी के गूढ़ संकेतों, प्रतीकों, चेतना-स्तरों, प्रेम-तत्त्व और आत्म-जागरण के मर्म का गंभीर मंथन आवश्यक है। केवल शब्दों का पाठ पर्याप्त नहीं; उनके पीछे निहित चेतना का अनुभव अधिक महत्त्वपूर्ण है। यही कारण है कि महामति बार-बार "याद", "जागरण", "प्रेम", "मेहर" और "तारतम ज्ञान" की बात करते हैं।

17.2 भक्ति की अवधारणा: प्रेम के माध्यम से परम सत्य की ओर

निजानंद - प्रणामी दर्शन में भक्ति का सर्वोच्च स्वरूप "अनन्य परा प्रेमलक्षणा भक्ति" माना गया है। यह केवल धार्मिक अनुष्ठानों, स्तुतियों या कर्मकाण्डों तक सीमित नहीं, बल्कि आत्मा और परमात्मा के बीच जीवंत प्रेम-संबंध का अनुभव है। यहाँ परमात्मा कोई निर्जीव, दूरस्थ या केवल दार्शनिक सत्ता नहीं, बल्कि प्रेमस्वरूप चेतना है। इसलिए

महामति प्राणनाथ के अनुसार प्रेम ही भक्ति का मूल है और प्रेम ही परमात्मा तक पहुँचने का वास्तविक माध्यम है।

भक्ति के पारंपरिक नौ रूप—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन—निजानंद - प्रणामी परंपरा में स्वीकार किए गए हैं; किन्तु उनका चरम रूप आत्मा के पूर्ण प्रेम और समर्पण में देखा गया है। यहाँ आत्मा परम सत्य को केवल "ईश्वर" के रूप में नहीं, बल्कि प्रियतम के रूप में अनुभव करती है। यही कारण है कि गोपीभाव, माधुर्यभाव और सखीभाव को अत्यंत महत्त्व दिया गया है।

महामति जी के अनुसार प्रेम के दो प्रमुख आयाम हैं—मिलन और विरह। विरह केवल दुःख नहीं, बल्कि प्रेम की अग्नि है। यही विरह आत्मा को भीतर से शुद्ध करता है, अहंकार को गलाता है और परम मिलन की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न करता है—

"दुःख से विरहा उपजे, विरहे प्रेम इस्क।
इस्क प्रेम जब आइया, तब नेहचे मिलिये हक।।"

यह प्रेम आत्मा को संसार की सीमित पहचान से ऊपर उठाकर व्यापक चेतना से जोड़ता है। यहाँ प्रेम केवल भावनात्मक आकर्षण नहीं, बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्व का समर्पण है।

निजानंद - प्रणामी परंपरा की विशेषता यह भी है कि वह परम सत्य के अनुभव में विविधता को स्वीकार करती है। कोई श्रीकृष्ण को ही परब्रह्म मानकर संतोष अनुभव करता है; कोई उसी परम सत्ता को अक्षरातीत, नाम-रूप से परे और समस्त संकल्पनाओं के पार अनुभव करता है; कोई उसे प्रेमस्वरूप चेतना के रूप में देखता है। महामति प्राणनाथ की दृष्टि में ये भिन्न अनुभव विरोध नहीं, बल्कि चेतना के विभिन्न स्तरों की अभिव्यक्तियाँ हैं। इसलिए यहाँ आग्रह किसी संकीर्ण संप्रदायिक आग्रह पर नहीं, बल्कि परम सत्य की अनुभूति पर है।

प्रेमलक्षणा भक्ति का व्यापक स्वरूप

निजानंद - प्रणामी दर्शन में प्रेमलक्षणा भक्ति केवल भावुकता या काव्यात्मक विरह नहीं है। यह चेतना का रूपांतरण है। इसमें—ज्ञान है, पर अहंकार नहीं; योग है, पर कठोरता नहीं; ध्यान है, पर पलायन नहीं; वैराग्य है, पर जीवन-विरोध नहीं; समर्पण है, पर अंधानुकरण नहीं।

प्रेमलक्षणा भक्ति आत्मा को भीतर से कोमल, सजग और व्यापक बनाती है। यह व्यक्ति को केवल "मोक्ष" तक सीमित नहीं रखती, बल्कि प्रेम, सेवा और समन्वय के माध्यम से समस्त जीवन को दिव्यता से जोड़ती है।

महामति प्राणनाथ के अनुसार प्रेम के बिना ज्ञान सूखा बौद्धिक अहंकार बन सकता है और कर्म केवल बाहरी क्रिया बन सकता है। प्रेम ही वह शक्ति है जो ज्ञान को करुणा से, योग को मिलन से और सेवा को समर्पण से जोड़ती है।

17.2 गुरु और सतगुरु: तारतम वाणी की समग्र दृष्टि

ज्ञान, जागृति, गुरगम और परब्रह्म का जीवंत तारतम्य

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में गुरु को अत्यंत महत्त्व दिया गया है, किन्तु आधुनिक युग में "गुरु" की अवधारणा को केवल व्यक्तिपूजा, अंधश्रद्धा या बाहरी अधिकार तक सीमित कर देना अनेक भ्रम उत्पन्न करता है। निजानंद - प्रणामी दर्शन में गुरु का वास्तविक अर्थ है—चेतना को जागृत करने वाला, सत्य की ओर इंगित करने वाला और आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप का स्मरण कराने वाला।

"सतगुरु" वह है जो केवल शास्त्रों का ज्ञाता न हो, बल्कि साधक के भीतर सत्य का प्रत्यक्ष अनुभव जगा सके। वह साधक को निर्भर बनाने के लिए नहीं, बल्कि उसे आंतरिक रूप से जागृत और स्वतंत्र बनाने के लिए होता है। सतगुरु का कार्य भय पैदा करना नहीं, बल्कि अज्ञान का अंधकार हटाना है।

महामति प्राणनाथ और श्री देवचन्द्र जी का संबंध इसी जीवंत आध्यात्मिक परंपरा का उदाहरण है। यहाँ गुरु-भक्ति अंधानुकरण नहीं, बल्कि चेतना, करुणा और आध्यात्मिक प्रकाश के प्रति गहन सम्मान है। तारतम वाणी भी सतगुरु का एक आयाम है। अन्तश्चेतना सतगुरु को जगाने पर जोर दिया गया है। फिर परब्रह्म प्रियतम स्वयं से भी सतगुरु का संबंध होता है। यह सब साधक की चेतना की जाग्रतावस्था पर निर्भर करता है।

तारतम वाणी में "गुर", "गुरु", "सतगुर", "सतगुरु", "गुरगम" और "परब्रह्म" — ये शब्द केवल धार्मिक संबोधन नहीं, बल्कि चेतना की यात्रा के विभिन्न आयाम हैं। यदि इनका पारस्परिक तारतम्य न समझा जाए, तो साधक या तो व्यक्ति-पूजा में फँस सकता है, या विपरीत दिशा में जाकर गुरु-तत्त्व की आवश्यकता ही नकार सकता है। तारतम दृष्टि इन दोनों अतियों से बचाते हुए गुरु और सतगुरु के संबंध को चेतना-विकास, आत्म-पहचान और परब्रह्म-साक्षात्कार के संदर्भ में समझाती है।

ब्रह्ममुनि लालदास जी बीतक में गुरु-शिष्य संबंध की सर्वोच्च परिणति को महामति प्राणनाथ जी और महाराजा छत्रसाल जी के मिलन में देखते हैं। वे लिखते हैं—

"आगे साध सन्तों ने, कह्यो गुरू सिस्य को धरम।
सो तो अब इहां भयो, उड़यो सबों को भरम।।"— बीतक 60/61

यहाँ गुरु-शिष्य संबंध केवल शिक्षण या अनुशासन का विषय नहीं रह जाता; यह आत्मा और परब्रह्म के अद्वैत प्रेम-संबंध की जीवित अभिव्यक्ति बन जाता है। इसीलिए आगे कहा गया—

"पहिले दाता हम भए, गुरू को दीनों सीस।
पीछे दाता गुरू भए, सब कछु कियो बकसीस।।"— बीतक 60/62

अर्थात् आरम्भ में शिष्य समर्पण करता है, पर अंततः गुरु ही कृपा के दाता बन जाते हैं। यह संबंध बाहरी सत्ता का नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण आत्म-विलय का है।

तारतम वाणी "गुर" और "गुरु" के सूक्ष्म भेद को भी स्पष्ट करती है।"गुर" का अर्थ केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि वह अमोघ युक्ति, चेतन सूत्र या आध्यात्मिक कुंजी है जिससे बंधन टूटे और मार्ग खुले।"गुरु" उस माध्यम को कहा जा सकता है जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। परंतु "सतगुरु" उससे भी आगे की अवस्था है। सतगुरु वह है जिसे आंतरिक अनुभवयुक्त विद्या प्राप्त हो चुकी हो और जो आत्मा को उसके निजधाम और अक्षरातीत सत्य का परिचय करा सके।

"सतगुर साधो वाको कहिए, जो अगम की देवे गम।
हद बेहद सबे समझावे, भाने मन को भरम।।"— किरंतन 4/12

यहाँ सतगुरु का कार्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि अगम सत्य का अनुभव कराना है। वे हद और बेहद, माया और ब्रह्म, आत्मा और परब्रह्म के भेद को प्रकाशित करते हैं।

तारतम वाणी बार-बार कहती है कि सार और असार का विवेक साधारण बुद्धि से संभव नहीं।

"निबेरा खीर नीर का, महामत करे कौन और।
माया ब्रह्म चिन्हाए के, सतगुर बतावें ठौर।।"

और बीतक में—

"सार असार को एक किये, मिले नही मत वेद।
तुम बिन सतगुरू क्या करो, छूटे नही भव खेद।।"— बीतक 35/55

अर्थात् सतगुरु वही है जो खीर-नीर का विवेक करा सके। बिना जागृत दृष्टि के साधक माया और ब्रह्म को मिला देता है। इसलिए सतगुरु का कार्य केवल शास्त्र समझाना नहीं, बल्कि दृष्टि को निर्मल करना है।

तारतम वाणी में सतगुरु को कभी मध्यस्थी के रूप में और कभी स्वयं परब्रह्म के प्रकाशरूप में देखा गया है।

"यामें बड़ी मत को लीजे सार, सतगुरु याहीं देखावे पार।
इतहीं बैकुंठ इतहीं सुन्य, इतहीं प्रगट पूरन पारब्रह्म।।"— किरंतन 3/8

यहाँ सतगुरु वह हैं जो चेतना को पार ले जाकर परब्रह्म का अनुभव कराते हैं। दूसरी ओर श्री इन्द्रावती जी की आत्मा स्वयं परब्रह्म को सतगुरु कहती है—

"सतगुर मेरा स्याम जी, मैं अहनिस चरणें रहूं।
सनमंध मेरा याही सों, मैं ताथें सदा सुख लहूं।।"— किरंतन 52/1

अर्थात् अंततः सतगुरु और परब्रह्म में विरोध नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण एकत्व का अनुभव है। मध्यस्थी सतगुरु आत्मा को उस अंतिम सत्य तक पहुँचाने वाला जीवंत दीपक हैं।

इसीलिए सतगुरु को "ब्रह्मानंद" भी कहा गया है—

"सतगुरू ब्रह्मानंद है, सूत्र है अक्षर रूप।
सिखा सदा इन सें परे, चेतन चिद जो अनूप।।"— बीतक 37/77

यहाँ सतगुरु केवल व्यक्ति नहीं, बल्कि चेतना में प्रकट ब्रह्मानंद का माध्यम हैं। वे अक्षर से परे अक्षरातीत चेतना की ओर संकेत करते हैं।

तारतम वाणी "गुरगम" की भी अत्यंत महिमा करती है। गुरगम अर्थात् गुरु से प्राप्त जीवंत चेतन-ज्ञान — वह युक्ति जिससे भीतर की गाँठ खुलती है।

"गुरगम टाली बंध न छूटे, जो कीजे अनेक उपाय।।"— किरंतन 126/59
"गुरगम ज्यारे जेहेने आवी, ते छूटया तत्काल।।"— किरंतन 126/61
"गुरगम टाली ए गांठ न छूटे, केमे न थाय रे नरम।
माहेंली कामस केमें न जाय, जो कीजे अनेक श्रम।।"— किरंतन 126/73

यहाँ स्पष्ट है कि केवल बाहरी साधना, कर्मकाण्ड या बौद्धिक ज्ञान पर्याप्त नहीं। जब तक गुरगम नहीं मिलता, तब तक भीतर की गाँठ — अहंकार, वासना, भय और मोह — नहीं खुलती। गुरगम ही साधना को जीवंत बनाता है।

तारतम वाणी गुरु के प्रति विवेकपूर्ण श्रद्धा सिखाती है, अंध-आज्ञापालन नहीं।

"जाको तुम सतगुर कर सेवो, ताको इतनी पूछो खबर।
ए संसार छोड़ चलेंगे आपन, तब कहां है अपनो घर।।"— किरंतन 10/3

अर्थात् जिसको सतगुरु मानो, उससे यह अवश्य पूछो कि आत्मा का वास्तविक घर कहाँ है। यहाँ गुरु की कसौटी बाहरी चमत्कार नहीं, बल्कि आत्मा को निजवतन की पहचान कराने की क्षमता है।

सतगुरु आत्मा को उसके मूल संबंध की स्मृति कराते हैं—

"सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप।
पार पुरुख जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप।।"— किरंतन 20/6

और—

"मेरे सतगुर धनिएँ यों कह्या, और कह्या वेद पुरान।
सो खोल दिए मोहे माएने, कर दई आतम पेहेचान।।"

अर्थात् सतगुरु का अंतिम कार्य आत्म-पहचान है। वे केवल शास्त्र नहीं खोलते; वे आत्मा का दर्पण खोलते हैं।

तारतम दृष्टि व्यक्ति-पूजा और गुरु-निषेध दोनों से सावधान करती है। यदि साधक मध्यस्थी गुरु को ही अंतिम पूर्ण ब्रह्म मान ले, तो जड़ता और स्पर्धा का खतरा है। और यदि गुरु-तत्त्व को ही नकार दे, तो स्वप्न बुद्धि और अहंकार का खतरा है। सही दृष्टि यह है—गुर = युक्ति और चेतन सूत्र है, गुरु = मार्गदर्शक है, सतगुरु = जागृति और पहचान का प्रकाश है और परब्रह्म = अंतिम चेतन सत्य है।

ये चारों स्तर परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक ही आध्यात्मिक यात्रा के परस्पर पूरक आयाम हैं।

अंततः तारतम वाणी में गुरु-शिष्य संबंध प्रेम में पूर्ण होता है—

"हम चडी सखी संग रे, रूड़ा राज सों राखो रंग।
सतगुर मारो श्री वालोजी, तेह तणें पाए लागूं।
मूल सगाई जांणी मारा वाला, अखंड सुखडा मांगूं।।"— किरंतन 124/1

यहाँ गुरु केवल शिक्षक नहीं, बल्कि आत्मा को उसके "मूल सगाई" — परमधाम के अखंड प्रेम-संबंध — की स्मृति कराने वाले हैं। यही जागृति अंततः मोक्ष का द्वार बनती है।

इस प्रकार तारतम वाणी के अनुसार गुरु और सतगुरु का वास्तविक उद्देश्य अनुयायी बनाना नहीं, बल्कि आत्मा को उसके निजस्वरूप, निजवतन और अक्षरातीत प्रियतम की पहचान तक पहुँचाना है। गुरु मार्ग दिखाते हैं, सतगुरु दृष्टि जगाते हैं, गुरगम बंधन काटता है, और परब्रह्म उस यात्रा की अंतिम प्रेमपूर्ण पूर्णता हैं।

17.3 सेवा की अवधारणा: प्रेम की सक्रिय अभिव्यक्ति

निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय में सेवा केवल धार्मिक कर्तव्य, सामाजिक दायित्व या बाहरी कर्म नहीं है; वह प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। जहाँ सच्चा प्रेम होता है, वहाँ सेवा स्वतः प्रकट होती है। इसीलिए तारतम वाणी में सेवा को साधना, भक्ति, जागृति और प्रेमानन्द से गहराई से जोड़ा गया है। सेवा केवल "कुछ करना" नहीं, बल्कि ऐसी चेतना में जीना है जिसमें प्रत्येक कर्म प्रियतम के प्रति समर्पण बन जाता है।

तारतम दृष्टि में सेवा और पूजा एक-दूसरे से पृथक नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हैं। पूजा भीतर की भावना है; सेवा उसी भावना की बाहरी अभिव्यक्ति। पूजा चेतना को परमात्मा की ओर मोड़ती है, और सेवा उसी परम प्रेम को जीवन और जगत में सक्रिय बनाती है। इसीलिए कहा जा सकता है कि सेवा "चलती हुई पूजा" है और पूजा "अंतर्मुखी सेवा"।

तारतम वाणी परमात्मा को केवल सर्वव्यापी सत्ता नहीं, बल्कि अक्षरातीत परात्पर प्रियतम के रूप में देखती है, जो परमधाम में प्रेमानन्द-लीला में स्थित हैं। अतः

साधना का अंतिम लक्ष्य केवल निराकार शांति नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण संबंध और निजधाम-स्मृति है। इसी कारण वाणी कहती है—

"सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप।
पार पुरुख जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप।।"

जब आत्मा को अपने निजवतन और प्रियतम की पहचान होने लगती है, तब पूजा केवल कर्मकाण्ड नहीं रहती; वह जीवित संबंध बन जाती है। यही पहचान सेवा को भी गहराई देती है।

तारतम दृष्टि सेवा में करुणा के साथ विवेक को भी आवश्यक मानती है। हर जीव में परम चेतना की झलक है, इसलिए सेवा सबकी हो सकती है; परंतु विवेकहीन सेवा आसक्ति, दुरुपयोग या अहंकार को भी बढ़ा सकती है। इसीलिए वाणी कहती है—

"दान दया सेवा सर्वा अंगे, कीजे ते सर्वे गोप।
पात्र ओलखीने कीजे अरचा, सास्त्र अर्थ जोइए जोप।।"

— किरंतन 126/27

अर्थात् दान, दया और सेवा सबके प्रति हों, परंतु पात्र की पहचान और शास्त्रीय विवेक भी आवश्यक है। यहाँ "पात्र पहचान" का अर्थ भेदभाव नहीं, बल्कि यह समझ है कि किस परिस्थिति में कौन-सी सेवा वास्तव में हितकारी होगी।

तारतम वाणी सेवा को केवल बाहरी सहायता तक सीमित नहीं रखती; वह उसे आत्म-जागरण का माध्यम बनाती है। श्रीमुख वाणी में सेवा के विविध स्तरों का संकेत मिलता है। तन, मन, धन और आत्म-भाव—इन चारों से सेवा हो सकती है; परंतु आत्म-भाव से की गई सेवा सर्वश्रेष्ठ मानी गई है, क्योंकि उसमें सम्पूर्ण अस्तित्व प्रियतम के चरणों में समर्पित हो जाता है।

"तूम प्रेम सेवा से पाओगे पार।"

यहाँ प्रेम और सेवा दो अलग बातें नहीं हैं। प्रेम की अभिव्यक्ति ही सेवा है, और सच्ची सेवा का स्रोत प्रेम ही है। प्रेम बिना सेवा अधूरी है, और सेवा बिना प्रेम शुष्क।

ब्रज की गोपियों की सेवा इसी अनन्य प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करती है—

"उठतां बेसतां रमतां, वालो चित्त थी अलगो न थाय।
ज्यारे वन पधारता, त्यारे खिन वरसां सो थाय।।"

अर्थात् उनका चित्त क्षणभर भी प्रियतम से अलग नहीं होता था। यही प्रेम-सेवा की चरम अवस्था है, जहाँ सेवा प्रयास नहीं रह जाती; वह सहज स्वभाव बन जाती है।

तारतम वाणी सेवा के विभिन्न स्तरों की ओर भी संकेत करती है। एक सेवा केवल दिखावे या सामाजिक दबाव से होती है; दूसरी स्वार्थ और मान-सम्मान की इच्छा से; तीसरी वह जो भीतर की प्रसन्नता से सहज रूप में होती है; चौथी दुःख और आपदा में मानवता की सहायता के रूप में; पाँचवीं वह जिसमें सेवा स्वयं स्वभाव बन जाती है; और छठी तथा सर्वोच्च सेवा वह है जिसमें आत्मा निजस्वरूप में स्थित होकर प्रियतम के प्रेमानन्द को जगत में प्रतिबिम्बित करती है।

"मोहे सेवा प्यारी पियु की, साहेब हो बैठो तूम।
अति सुख पाऊं इन में, करों बंदगी खसम।।"— किरंतन 62/14

"तूम दूल्हा मैं दुलहिनी, और ना जानूं बात।
इशक सों सेवा करूँ, सब अंगों सख्यात।।"— किरंतन 62/17

यहाँ सेवा केवल कार्य नहीं, बल्कि प्रेमानन्द का अनुभव है।

सेवा का एक और महत्वपूर्ण पक्ष विनम्रता और गुप्तता है। यदि सेवा प्रदर्शन, नियंत्रण या आध्यात्मिक श्रेष्ठता का माध्यम बन जाए, तो उसका आध्यात्मिक मूल्य कम हो जाता है। इसीलिए वाणी सावधान करती है—

"अशुभ करम जेम लिए निंद्या, शुभ करम नामना लई जाय।
गोप साधन कीजे ते माटे, जेम सुख जीव ने पोहोंतु थाय।।"

— किरंतन 131/14

अर्थात् सेवा का उद्देश्य प्रसिद्धि नहीं, बल्कि आत्मा की निर्मलता और सुख-शीतलता होना चाहिए।

अष्टप्रहर बीतक में वर्णित सेवाएँ इस प्रेमपूर्ण चेतना का जीवंत उदाहरण हैं। वहाँ कोई जल-सेवा कर रहा है, कोई शयन-सेवा, कोई वाणी-गायन, कोई अतिथि-सत्कार, कोई सुगंध और विश्राम की व्यवस्था। महाराजा छत्रसाल जैसे राजपुरुष भी अत्यंत विनम्र भाव से सेवा में सहभागी होते थे। इससे स्पष्ट होता है कि सेवा पद, शक्ति या प्रतिष्ठा का विषय नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण चेतना का विषय है।

आज के समय में भी सेवा के स्वरूप बदल सकते हैं—शिक्षा, पर्यावरण-संरक्षण, मानसिक स्वास्थ्य सहयोग, डिजिटल माध्यम से ज्ञान-वितरण, आध्यात्मिक साहित्य का अनुवाद, पीड़ितों की सहायता, समाज में संवाद और करुणा बढ़ाना—ये सब सेवा के आधुनिक रूप हो सकते हैं।

तारतम वाणी का अंतिम संदेश यही है कि जीवन का प्रत्येक कर्म यदि प्रेम, जागृति और समर्पण से किया जाए, तो वही सेवा है, वही पूजा है और वही साधना है—

"बैठते उठते चलते, सुपन सोवत जागृत।
खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब विध इत।।"

अर्थात् जीवन का प्रत्येक क्षण परमात्मा की स्मृति, प्रेम और जागृति से भर जाए—यही सेवा का सर्वोच्च स्वरूप है।

17.4 तारतम वाणी के प्रकाश में जागनी की अवधारणा आत्म-जागरण से समग्र चेतना-विकास तक एक इन्टीग्रल अध्ययन

17.4.1 जागनी का अर्थ

तारतम वाणी में "जागनी" केवल धार्मिक जागरण, उपदेश या किसी सम्प्रदाय-विशेष का प्रचार नहीं है। यह आत्मा की उस दिव्य पुनर्जागृति का नाम है जिसमें जीव माया, विस्मृति, देहाभिमान और संसारगत निद्रा से उठकर अपने मूल स्वरूप, निजधाम, प्रियतम परमात्मा और अपने शाश्वत संबंध को पहचानने लगता है। जागनी का अर्थ है—चेतना का अज्ञान से प्रेममय जागृति की ओर लौटना। इसीलिए महामति प्राणनाथ के सम्पूर्ण दर्शन में जागनी केवल एक आध्यात्मिक शब्द नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि, चेतना-विकास और प्रेमपूर्ण अस्तित्व का आधार बन जाती है।

आज का मनुष्य बाहरी सूचनाओं से अत्यधिक जुड़ा हुआ है, पर अपने भीतर से कटता जा रहा है। तकनीक, उपभोग, प्रतिस्पर्धा, तुलना, मानसिक तनाव और पहचान-संकट ने आधुनिक चेतना को विखंडित कर दिया है। ऐसे समय में तारतम वाणी की जागनी की अवधारणा केवल धार्मिक परम्परा का विषय नहीं रह जाती; वह मानव चेतना के पुनर्संतुलन का मार्ग बन सकती है। जागनी आत्मा को यह स्मरण कराती है कि मनुष्य केवल शरीर, सामाजिक पहचान या मानसिक संरचना नहीं, बल्कि प्रेम, चेतना और परम सत्य से जुड़ी हुई दिव्य सत्ता है।

17.4.2 जागनी: विस्मृति से स्मृति की यात्रा

तारतम वाणी के अनुसार आत्मा की सबसे बड़ी समस्या उसकी "विस्मृति" है। जीव अपने वास्तविक वतन को भूलकर माया-जगत को ही अंतिम सत्य मान बैठा है। इसलिए जागनी का प्रथम चरण है—आत्म-पहचान। वाणी आत्मा से प्रश्न करती है—

"तूँ कौन आई इत क्यों करे, कहाँ है तेरो वतन।
नार तूँ कौन खसम की, दृढ़ कर कहो वचन।।"— कलश हिन्दी 1/6

यह प्रश्न केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि अस्तित्वगत (existential) है। जागनी आत्मा को उसके मूल घर, मूल प्रेम और मूल चेतना की स्मृति कराती है। इसी भाव को वाणी अत्यंत प्रेमपूर्ण ढंग से उद्घाटित करती है—

"अब जाग देखो सुख जागनी, ए सुख सोहागिन जोग।
तीन लीला चौथी घर की, इन चारों को यामें भोग।।"— कलश हिन्दी 23/1

यहाँ जागनी को ऐसा महान अनुभव कहा गया है जिसमें ब्रजलीला, रासलीला, धनी श्री देवचन्द्रजी की लीला और परमधाम की नित्य लीला—चारों का अनुभव एक साथ संभव हो जाता है। अतः जागनी केवल ज्ञान नहीं, बल्कि चेतना की बहुस्तरीय जागृति है।

17.4.3 जागनी: आत्मा का पुनर्स्मरण

महामति प्राणनाथ के अनुसार मनुष्य वास्तव में चेतना की नींद में सोया हुआ है। मोह, भय, कर्मबंधन, सामाजिक पहचान और माया आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप से दूर कर देते हैं। जागनी आत्मा को उसके "निज वतन" की स्मृति दिलाती है—

"महामत कहे मलपतियाँ, आओ निज वतन।
विलास करो विध-विध के, जागो अपने तन।।"— किरंतन 80/15

यह "निज वतन" कोई केवल प्रतीकात्मक कल्पना नहीं, बल्कि आत्मा की मूल चेतना का बोध है। जागनी का अर्थ संसार से भागना नहीं, बल्कि संसार में रहते हुए भी उसके मोह में न फँसना है। जागृत व्यक्ति अधिक प्रेमपूर्ण, अधिक करुणामय और अधिक सजग बनता है।

इसीलिए वाणी बार-बार चेतना को भीतर मोड़ने की बात करती है—

"आँखां खोल तूँ आप अपनी, निरख धनी श्रीधाम।
ले खुशवास याद कर, बाँध गोली प्रेम काम।।"

यहाँ जागरण बाहरी चमत्कार से नहीं, बल्कि चेतना की दिशा बदलने से होता है। सतगुरु आत्मा को नया कुछ नहीं देते; वे उसकी विस्मृत पहचान को पुनः प्रकाशित करते हैं।

17.4.4 जागनी की प्रेमपूर्ण प्रक्रिया

तारतम वाणी में जागनी भय, दमन या कठोर तपस्या का मार्ग नहीं है। यह प्रेम, मधुरता और करुणा का मार्ग है। श्री इन्द्रावतीजी कहती हैं—

"पियु जगाई मुझे एकली, मैं जगाऊँ बाँधे जुथ।
ए जिमी झूठी दुःख की, सो कर देऊँ सत सुख।।"— कलश हिन्दी 23/44-45

यहाँ जागनी व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं रहती; वह सामूहिक चेतना का रूप ले लेती है। जागृत आत्मा स्वयं तक सीमित नहीं रहती, बल्कि दूसरों को भी जगाने का संकल्प लेती है।

वाणी जागनी की विधि को भी अत्यंत सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करती है—

"अब जगाऊँ जुगत सों, उड़ाऊँ सब विकार।
रंगे रास रमाये के, सफल करूँ अवतार।।"— कलश हिन्दी 23/3
"अब दुःख न देऊँ फूल पाँखड़ी, देखूँ शीतल नैन।
उपजाऊँ सुख सब अंगों, बोलाऊँ मीठे बैन।।"— कलश हिन्दी 23/4

यहाँ आत्मा को डाँटकर नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण दृष्टि, मधुर वचन और आंतरिक स्पर्श से जगाया जाता है। जागनी का उद्देश्य केवल दोष हटाना नहीं, बल्कि चेतना को "कंचन" की तरह निर्मल बनाना है।

17.4.5 आवेश और तारतम: जागनी की द्विविध शक्ति

तारतम वाणी में"आवेश" और "तारतम ज्ञान" दोनों को जागनी के लिए अनिवार्य माना गया है। केवल बौद्धिक ज्ञान पर्याप्त नहीं; प्रेम का अंकुर तभी फूटता है जब आत्मा धनी के आवेश से स्पर्शित होती है—

"अंग दिए बिना आवेश, नाहीं प्रेम उपाए।
आवेश दे करूँ जागनी, लेऊँ अंग में मिलाए।।" — कलश हिन्दी 23/37

यहाँ "आवेश" केवल भावुकता नहीं, बल्कि दिव्य चेतना-शक्ति का संचार है। यह आत्मा को असत् से हटाकर सत् में स्थिर करता है और परात्मा से ऐसा संबंध जोड़ता है जो कभी टूटता नहीं।

इसी प्रकार तारतम ज्ञान को संसार के समस्त ज्ञान का सार कहा गया है—

"तारतम का बल कोई न जाने, एक जाने मूल स्वरूप।
मूल स्वरूप के चित्त की बातें, तारतम में कई रूप।।"— कलश हिन्दी 23/55

यह ज्ञान केवल दार्शनिक सूचना नहीं, बल्कि "निज-बुद्धि" का प्रकाश है— ऐसा ज्ञान जो निराकार से भी पार परमधाम की अनुभूति कराता है।

17.4.6 जागनी और चेतना के सात सोपान:

महर्षि वशिष्ठ द्वारा वर्णित चेतना की सात भूमिकाएँ, अर्थात, आध्यात्मिक विकास की क्रमिक अवस्थाओं (स्टेजिस ऑफ कान्शस्निस) को दर्शाती हैं। महामति प्राणनाथ इन भूमिकाओं को स्वीकार करते हुए उन्हें तारतम दृष्टि से और अधिक गहराई प्रदान करते हैं। वाणी कहती है—

"भोमका सात कही वसिष्टें, तामें पांचमी केवल विदेही।
छठी को सब्द ना निकसे, तो सातमी दृढ़ क्यों होई।।" — परिक्रमा 29/13

यहाँ संकेत यह है कि आत्मा की यात्रा केवल विदेही अनासक्ति तक सीमित नहीं; अक्षरातीत परब्रह्म के प्रत्यक्ष तारतम प्रकाश के बिना छठी और सातवीं अवस्थाओं का पूर्ण उद्घाटन संभव नहीं। इस प्रकार जागनी केवल आत्मा का देहाभिमान से मुक्त होना

नहीं, बल्कि परमधाम, परब्रह्म और मूल प्रेम-संबंध में जागना है। शुभेच्छा से तुरीयातीत तक की यह यात्रा चेतना के क्रमिक शोधन, विस्तार और परम एकत्व की यात्रा है।

इन सात भूमिकाओं को जागनी की क्रमिक चेतना-यात्रा के रूप में समझा जा सकता है:

- शुभेच्छा सत्य और परआतम को जानने की पवित्र आकांक्षा है;
- विचारणा आत्मा, संसार और परमधाम के संबंध पर गहन मनन है;
- तन्मनसा मन का बाहरी बिखराव से हटकर भीतर एकाग्र और समर्पित होना है;
- सत्त्वापत्ति "मैं केवल देह नहीं, चेतन आत्मा हूँ" की पहली स्पष्ट अनुभूति है;
- असंसक्ति संसार में रहते हुए भी "जल में नहाइए, कोरे रहिए" की निर्लिप्तता है;
- पदार्थभावना समस्त अस्तित्व में एक ही मूल चेतना की अभिव्यक्ति देखना है; और
- तुरीयातीत द्वैत-भेद से परे पूर्ण प्रेममय एकत्व और अखण्ड बोध में स्थित होना है।

इस प्रकार जागनी केवल बौद्धिक जानकारी नहीं, बल्कि चेतना की क्रमिक परिपक्वता है—जिसमें आत्मा सत्य की आकांक्षा से आरम्भ करके मनन, अंतर्मुखता, आत्मानुभूति और अनासक्ति से आगे बढ़ती हुई व्यापक चेतना तथा परम प्रेम में स्थिर होती है।

इन सात भूमिकाओं का अगले चरण में वर्णित आधुनिक एकीकृत दर्शन से भी गहरा तालमेल दिखाई देगा। आप देखेंगे कि -- शुभेच्छा और विचारणा "Waking Up" तथा "Growing Up" के आयामों से जुड़ती हैं, जहाँ आत्म-जागृति और चेतना-विकास प्रारंभ होता है। तन्मनसा और सत्त्वापत्ति "Opening Up" का प्रतिनिधित्व करती हैं, जहाँ चेतना सूक्ष्म, प्रेमपूर्ण और अंतर्दर्शी बनती है। असंसक्ति "Cleaning Up" से जुड़ती है, क्योंकि यहाँ अहंकार, आसक्ति और मनोवैज्ञानिक बंधनों का शोधन होता है। पदार्थभावना और तुरीयातीत "Showing Up" के उच्चतम रूप में प्रकट होती हैं, जहाँ साधक सर्वत्र एक ही चेतना का अनुभव करके प्रेम, करुणा और समग्रता के साथ जीवन में उतरता है। इस प्रकार तारतम वाणी की जागनी और इन्टीग्रल दर्शन दोनों चेतना को केवल व्यक्तिगत मुक्ति तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे समग्र, प्रेमपूर्ण और सार्वभौमिक रूपांतरण की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं।

17.4.7 एकीकृत दर्शन के आलोक में जागनी के पाँच आयाम

आधुनिक इन्टीग्रल दर्शन चेतना-विकास को पाँच प्रमुख आयामों में समझाता है—Waking Up, Growing Up, Opening Up, Cleaning Up और Showing

Up। आश्चर्य की बात है कि तारतम वाणी की जागनी में ये पाँचों आयाम अत्यंत गहराई से पहले से ही उपस्थित हैं।

17.4.7.1 Waking Up — निजस्वरूप में जागना

यह जागनी का मूल आयाम है। इसका संबंध आत्मा के मूल प्रश्न से है—"मैं कौन हूँ?" तारतम वाणी आत्मा को देह, जाति, समाज और मानसिक पहचान से ऊपर उठाकर उसके अक्षरातीत संबंध का बोध कराती है।

"पहिले आप पहेचानो रे साधो, पहिले आप पहेचानो।
बिना आप चीन्हें पारब्रह्म को, कौन कहे मैं जानो।।"

यह आत्म-जागरूकता का आयाम है। आधुनिक मनोविज्ञान इसे self-awareness कहता है, जबकि तारतम वाणी इसे निज-बुद्धि की जागृति कहती है।

17.4.7.2 Growing Up — चेतना और चरित्र में परिपक्व होना

आध्यात्मिक अनुभव पर्याप्त नहीं यदि व्यक्ति की दृष्टि संकीर्ण और व्यवहार अपरिपक्व रहे। जागनी व्यक्ति को व्यापक, समन्वयी और सार्वभौमिक दृष्टि में विकसित करती है।

"खोज सोहागिन ना थके, जोलों पार के पारै पार।
नित खोजे चरनी चढ़े, नए-नए करे विचार।।"— कलश 11/8

यहाँ जागनी स्थिर मतवाद नहीं, बल्कि सतत खोज और चेतना-विकास है। यही Growing Up है।

इसी विकास का सामाजिक रूप सर्वधर्म समन्वय में दिखाई देता है—

"जुदे-जुदे नामें गावहीं, जुदे-जुदे भेख अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।।"— सनंध 41/72

17.4.7.3 Opening Up — चेतना की विविध क्षमताओं को खोलना

Opening Up का अर्थ है—मनुष्य के भीतर छिपी अनेक प्रकार की बुद्धियों और प्रेम-क्षमताओं को जागृत करना। Opening Up का अर्थ केवल "खुलना" नहीं, बल्कि चेतना की बहुआयामी संभावनाओं का जागरण है। मनुष्य केवल तर्क-बुद्धि (logical intelligence) से संचालित प्राणी नहीं है। उसके भीतर आत्म-जागरूकता, प्रेम, करुणा, सौंदर्य-बोध, संगीत, कला, नैतिक विवेक, सामाजिक संवेदना, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि, प्रकृति-संबंध, ध्यान-शक्ति और दिव्य प्रेरणा जैसी अनेक चेतना-क्षमताएँ विद्यमान हैं। तारतम वाणी की विशेषता यह है कि वह साधना को केवल बौद्धिक विचार या शुष्क तर्क तक सीमित नहीं रखती, बल्कि मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को जागृत करने

का प्रयास करती है। इसीलिए जागनी में प्रेम भी है, ज्ञान भी; संगीत भी है, ध्यान भी; विवेक भी है, रस भी; और आत्मचिंतन भी है, समर्पण भी।

तारतम वाणी बताती है कि मनुष्य की चेतना उसकी "खोज" के अनुसार विकसित होती है—

"जिनहूँ जैसा खोजिया, सो बोले बुध माफक।
मैं देखे सब्द सबन के, जो गए जाहेर मुख बक।।" — कलश हिन्दुस्तानी 2/40

अर्थात् जिसकी खोज जैसी होती है, उसकी बुद्धि वैसी ही विकसित होती है। संकीर्ण खोज संकीर्ण बुद्धि को जन्म देती है, जबकि सत्य, प्रेम और परमधाम की खोज चेतना को व्यापक बनाती है। यही Opening Up का प्रथम चरण है—खोज का विस्तार।

इस प्रक्रिया का केन्द्र आत्म-जागरूकता है। जब तक मनुष्य स्वयं को नहीं पहचानता, तब तक उसका समस्त ज्ञान अधूरा रहता है। इसलिए वाणी कहती है—

"पहिले आप पहेचानो रे साधो, पहिले आप पहेचानो।
बिना आप चीन्हें पारब्रह्म को, कौन कहे मैं जानो।।" — किरंतन 1/1

यहाँ आत्म-पहचान केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि Intrapersonal Intelligence अर्थात् स्वयं को समझने की क्षमता है। जागनी आत्मा को भीतर देखने, अपने भय, वासनाओं, प्रेम, आकांक्षाओं और मूल चेतना को पहचानने की प्रेरणा देती है।

तारतम वाणी "सुपन-बुद्धि" और "जाग्रत-बुद्धि" के भेद को भी स्पष्ट करती है—

"एते दिन त्रैलोक में, हुती बुध सुपन।
सो बुध जी बुध जाग्रत ले, प्रगटे पुरी नौतन।।" — परिक्रमा 2/11

अर्थात् संसार की अधिकांश बुद्धि अभी स्वप्नवत है—अधूरी, सीमित और माया से ढकी हुई। जागनी का उद्देश्य उस बुद्धि को "जाग्रत बुद्धि" में रूपांतरित करना है, जहाँ विवेक, करुणा और परमसत्य का प्रकाश एक साथ उदित हों।

Opening Up का सबसे गहरा सूत्र "निज-बुद्धि" और "नूर तारतम" की अवधारणा में प्रकट होता है—

"इंद्रावती पिया संगे, उदर फल उतपन।
एक निज बुध अवतरी, दूजा नूर तारतम।।" — कलश हिन्दुस्तानी 23/91

यहाँ दो दिव्य उपलब्धियाँ बताई गई हैं—निज-बुद्धि और तारतम-नूर। निज-बुद्धि वह आंतरिक जाग्रत चेतना है जो आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप से जोड़ती है, जबकि नूर तारतम वह दिव्य प्रकाश है जो सत्य को स्पष्ट करता है। इस प्रकार प्रेम और ज्ञान मिलकर चेतना को खोलते हैं।

तारतम वाणी कला, संगीत और नृत्य को भी चेतना-विकास का माध्यम मानती है। जागनी केवल मौन ध्यान नहीं; वह सौंदर्य और रस की भी साधना है—

"हाथ धरत मृदंग पर, जब अव्वल स्वर करत।
निरत करें कई विधसों, कई गुन कला ठेकत।।" — परिक्रमा 31/60
"ले बाजे रूहें खड़ी, मृदंग जंत्र ताल।
रंग रबाब चंग तंबूरा, बोलत बेन रसाल।।" — परिक्रमा 31/53

यहाँ संगीत, लय, नृत्य और कला केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि चेतना के द्वार हैं। आधुनिक मनोविज्ञान जिसे Musical Intelligence और Aesthetic Intelligence कहता है, तारतम वाणी उसे प्रेमानन्द की अभिव्यक्ति के रूप में देखती है।

इसी प्रकार सौंदर्य-बोध को भी जागनी का अंग माना गया है—
"सुंदरता सिणगार सोभा, वचने न कहेवाय जी।
तो सरूपना जे सुखनी वातों, लवो केम बोलाय जी।।"

— कलश गुजराती 9/19

परम सौंदर्य शब्दों में सीमित नहीं हो सकता। उसे केवल तर्क से नहीं, बल्कि रसपूर्ण अंतर्दृष्टि, प्रेमपूर्ण हृदय और जाग्रत चेतना से अनुभव किया जा सकता है।

Opening Up का अर्थ इसलिए यह नहीं कि मनुष्य केवल अधिक जानकारी प्राप्त करे; बल्कि यह कि उसकी चेतना अधिक व्यापक, संवेदनशील, प्रेमपूर्ण और बहुआयामी बने। वह जीवन को केवल तर्क से नहीं, बल्कि पूर्ण चेतना से देखना सीखे। तारतम वाणी का जागनी-दर्शन मनुष्य को एकरंगी आध्यात्मिकता से निकालकर समग्र चेतना-विकास की ओर ले जाता है—जहाँ बुद्धि, प्रेम, कला, ध्यान, सौंदर्य, सेवा और आत्म-जागरूकता मिलकर जीवन को दिव्य अनुभव में रूपांतरित कर देते हैं।

17.4.7.4 Cleaning Up — विकार, अहंकार और छाया का शोधन

तारतम वाणी के अनुसार जागरण तभी स्थायी और सार्थक बनता है जब उसके साथ आंतरिक शुद्धि जुड़ी हो। केवल आध्यात्मिक अनुभव, ज्ञान या भावावेश पर्याप्त नहीं; यदि मन, अहंकार, भय, आसक्ति और भीतर छिपे विकार अप्रकाशित रह जाएँ, तो चेतना पुनः माया की ओर लौट सकती है। इसीलिए जागनी में "Cleaning Up" अर्थात् अंतःकरण-शोधन को अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसका अर्थ है—अपने भीतर छिपे हुए भय, भ्रम, ईर्ष्या, क्रोध, असुरक्षा, वासनाओं, मान-अभिमान और सूक्ष्म अहंकार को पहचानना, समझना और प्रेमपूर्वक रूपांतरित करना।

महामति प्राणनाथजी जागरण को सीधे विकार-त्याग से जोड़ते हैं—
"जागो जगाऊँ जुगत सों, छोड़ो नींद विकार।
पहेचान कराऊँ पिउ सों, सुफल करूँ अवतार।।"— कलश हिन्दुस्तानी 22/19

यहाँ "नींद विकार" अत्यंत गहरा पद है। विकार केवल नैतिक दोष नहीं, बल्कि चेतना की नींद हैं। जब आत्मा क्रोध, ईर्ष्या, भय, वासना, तुलना, दिखावे या अहंकार में

फँस जाती है, तब वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाती है। Cleaning Up इन्हीं अचेतन परतों को पहचानने और उनसे जागने की प्रक्रिया है।

तारतम वाणी मन को बंधन और मुक्ति—दोनों का केन्द्र मानती है। इसलिए मन का शोधन जागनी का आधार बन जाता है—

"मन के हारे हारिए, मन के जीते जीत।
मनहीं देवे सत साहेबी, मनहीं करे फजीत।।" — सनंध 25/26

और आगे—

"मन ही बांधे मन ही खोले, मन तम मन उजास।
ए खेल सकल है मन का, मन नेहेचल मन ही को नास।।"— किरंतन 47/2

अर्थात् वही मन जो अज्ञान में बंधन बन जाता है, जागरण में प्रकाश का माध्यम भी बन सकता है। इसलिए जागनी मन को दबाने की नहीं, बल्कि उसकी चाल, उसकी प्रवृत्तियों और उसके भ्रमों को पहचानने की साधना है।

Cleaning Up का सबसे सूक्ष्म आयाम अहंकार का गलना है। तारतम वाणी में "मैं-मैं" को आत्म-जागृति का सबसे बड़ा अवरोध माना गया है। वाणी कहती है—

"जब लग मैं ना समझी, तब लग थी मैं मैं।
समझे थें मैं उड़ गई, सब कछू हुआ तुम से।।" — खिलवत 3/10

यहाँ "मैं" का गलना आत्म-दमन नहीं, बल्कि चेतना का विस्तार है। जब आत्मा समझती है कि वास्तविक शक्ति, प्रेम और अस्तित्व धनी से ही प्रवाहित हो रहे हैं, तब व्यक्तिगत अहंकार की कठोरता पिघलने लगती है। आधुनिक मनोविज्ञान जिस प्रक्रिया को shadow work कहता है—अर्थात् भीतर छिपी प्रतिक्रियाओं, भय, असुरक्षाओं और आत्म-छवि की रक्षा करने वाली प्रवृत्तियों को पहचानना—तारतम वाणी उसे आध्यात्मिक शोधन के रूप में प्रस्तुत करती है।

तारतम दृष्टि केवल बाहरी धार्मिकता या शारीरिक पवित्रता को पर्याप्त नहीं मानती। वास्तविक शुद्धि भीतर की है—

"मन मैला धुओ नहीं, अने उजला करो आकार।
आकार तिहां चाले नहीं, चाले निर्मल निराकार।।" — किरंतन 128/14

अर्थात् यदि मन मैला है तो केवल बाहरी सजावट या धार्मिक आडम्बर आत्मा को निर्मल नहीं बना सकते। वास्तविक साधना अंतःकरण की निर्मलता है—दृष्टि की पवित्रता, भाव की सरलता और चेतना की पारदर्शिता।

तारतम वाणी Cleaning Up को नकारात्मक आत्म-आलोचना नहीं बनाती; वह इसे अवगुण से गुण की यात्रा के रूप में देखती है। इसलिए सुन्दरसाथ जीवन का सूत्र दिया गया—

"अवगुण काढे गुन ग्राहे, हरे से होई जीत।
मैं साहेब से सन्मुख सदा, ब्रह्म सृष्टि एह रीत।।"

अर्थात् वास्तविक विजय दूसरों को हराने में नहीं, बल्कि अपने अवगुणों को रूपांतरित करने में है। जागृत आत्मा दूसरों की आलोचना में नहीं उलझती; वह अपने भीतर छिपे अंधकार को पहचानकर उसे प्रेम, विवेक और धाम-स्मृति के प्रकाश में बदलती है।

इस प्रकार Cleaning Up जागनी का अत्यंत आवश्यक चरण है। यह आत्मा को कठोरता से कोमलता, भ्रम से स्पष्टता, अहंकार से समर्पण और अचेतनता से जागरूकता की ओर ले जाता है। जागरण तभी पूर्ण होता है जब भीतर की छाया प्रकाश में रूपांतरित हो जाए और चेतना निर्मल होकर धनी के प्रेम का पारदर्शी माध्यम बन सके।

17. 4.7.5. Showing Up — प्रेम, सेवा और उत्तरदायित्व में जगत में उतरना

तारतम वाणी के अनुसार जागनी केवल भीतर की अनुभूति या ध्यान की अवस्था नहीं है; उसका अंतिम उद्देश्य जाग्रत चेतना को जीवन, समाज और जगत में प्रकट करना है। यही कारण है कि जागनी का पाँचवाँ आयाम "Showing Up" कहलाता है। इसका अर्थ है—आत्म-जागृति, प्रेम, विवेक, शुद्धि और समर्पण को व्यवहार, सेवा, साहस और उत्तरदायित्व में उतारना। यदि साधना केवल निजी अनुभव बनकर रह जाए और जीवन में करुणा, सेवा तथा लोकमंगल के रूप में व्यक्त न हो, तो वह अधूरी रह जाती है। जागृत चेतना स्वाभाविक रूप से प्रेमपूर्ण कर्म में प्रकट होती है।

महामति प्राणनाथजी जागरण को निष्क्रिय ध्यान नहीं रहने देते; वे उसे क्रमशः क्रियाशील चेतना में रूपांतरित करते हैं—

"सूता होए सो जागियो, जाग्या सो बैठा होए।
बैठा ठाढ़ा होइयो, ठाढ़ा पाँऊ भरे आगे सोए।।" — किरंतन 58/18

यह चौपाई जागनी की सम्पूर्ण क्रियात्मक प्रक्रिया को अत्यंत सरल और गहरे रूप में व्यक्त करती है। पहले जीव अज्ञान की नींद से जागता है; फिर वह स्थिरता प्राप्त करता है; उसके बाद वह खड़ा होकर उत्तरदायित्व ग्रहण करता है; और अंततः सत्य के मार्ग पर आगे बढ़ता है। यही वास्तविक Showing Up है—जागृति को कर्म में बदल देना।

तारतम वाणी में यह सक्रियता केवल बाहरी कर्मठता नहीं, बल्कि धनी की पहचान और हुक्म में समर्पित कर्म है—

"कर हिंमत बांध कमर, ले हुकम सब हाथ।
पिउ पास हो पहेचान के, और छोड़ सब साथ।।" — प्रकाश 16/5

यहाँ चार महत्त्वपूर्ण तत्व एक साथ आते हैं—साहस, समर्पण, पहचान और वैराग्य। जागृत साधक भय, आलस्य और सामाजिक दबावों से ऊपर उठकर अपने सत्य

के पक्ष में खड़ा होता है। वह केवल विचारक नहीं रहता; वह धनी की मेहर और हुक्म को जीवन में उतारने वाला कर्मयोगी बन जाता है।

Showing Up का एक महत्वपूर्ण आयाम प्रेम और सेवा भी है। तारतम वाणी में सेवा को केवल भावनात्मक दया नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण करुणा कहा गया है—

"दान दया सेवा सर्वा अंगे, कीजे ते सर्वे गोप।
पात्र ओलखीने कीजे अरचा, सास्त्र अर्थ जोइए जोप।।" — किरंतन 126/27

अर्थात् सेवा केवल उत्साह से नहीं, बल्कि समझ और पात्रता-विवेक के साथ की जानी चाहिए। किस परिस्थिति में किस प्रकार सहायता करनी है, यह समझना भी जागृत चेतना का भाग है। यहाँ सेवा आत्म-प्रदर्शन नहीं, बल्कि प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

तारतम वाणी जागृत चेतना को सामाजिक उत्तरदायित्व से भी जोड़ती है। अन्याय, अधर्म, भय और पतन के समय जागृत व्यक्ति मौन दर्शक नहीं बना रहता—

"राजाने मलोरे राणें राए तणों, धरम जाता रे कोई दौड़ो।
जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो।।" — किरंतन 58/1

यह केवल युद्ध का आह्वान नहीं, बल्कि धर्म, सत्य और न्याय के पक्ष में सजग खड़े होने का प्रतीक है। जागनी पलायन नहीं सिखाती; वह सजग सहभागिता सिखाती है।

Showing Up का सर्वोच्च स्वरूप तब प्रकट होता है जब साधक आधे मन से नहीं, बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्व से प्रेममार्ग में उतरता है—

"यों तैयारी कीजियो, आगूं करनी है दौड़।
सब अंग इस्क लेय के, निकसो ब्रह्मांड फोड़।।" — किरंतन 86/19

यहाँ "सब अंग इश्क" अत्यंत गहरा सूत्र है। इसका अर्थ है कि साधक का विचार, भाव, कर्म, बुद्धि, सेवा, साहस और जीवन—सब प्रेम की दिशा में एकीकृत हो जाएँ। तब उसका जीवन विभाजित नहीं रहता; वह स्वयं प्रेम का माध्यम बन जाता है।

इस प्रकार Showing Up का अर्थ केवल सामाजिक सक्रियता नहीं, बल्कि जागृत चेतना का प्रेमपूर्ण अवतरण है। यह वह अवस्था है जहाँ आत्मा अपने भीतर के अनुभव को संसार के सुख-शीतल रूपांतरण में लगाती है। जागनी का अंतिम लक्ष्य संसार से भागना नहीं, बल्कि प्रेम, सेवा, साहस और करुणा के माध्यम से उसे अधिक सजग, अधिक मानवीय और अधिक दिव्य बनाना है।

17.4.7.6 जागनी और आधुनिक मनुष्य

आज का मनुष्य सूचना-समृद्ध है, परंतु आंतरिक रूप से विखंडित भी हो सकता है। सोशल मीडिया, तुलना, चिंता, पहचान-संकट और निरंतर मानसिक उत्तेजना चेतना को अस्थिर करती है। ऐसे समय में जागनी की अवधारणा अत्यंत उपयोगी बन जाती है।

- Waking Up मनुष्य को आत्म-जागरूक बनाता है।
- Growing Up उसे परिपक्व और समदर्शी बनाता है।
- Opening Up उसकी रचनात्मकता और संवेदनशीलता को खोलता है।
- Cleaning Up मानसिक और भावनात्मक शुद्धि सिखाता है।
- Showing Up उसे समाजोपयोगी, उत्तरदायी और करुणामय बनाता है।

इस प्रकार जागनी केवल आध्यात्मिक सिद्धांत नहीं, बल्कि समग्र व्यक्तित्व-विकास का मार्ग बन जाती है।

17. 4.8 समग्र निष्कर्ष: भक्ति, सेवा, गुरु–सतगुरु और जागनी की समग्र दृष्टि

निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक अवधारणाएँ केवल संप्रदायगत शिक्षाएँ नहीं, बल्कि मानव चेतना के गहन आध्यात्मिक विकास का समन्वित दर्शन प्रस्तुत करती हैं। यहाँ भक्ति केवल उपासना नहीं, प्रेममय आत्म-समर्पण है; सेवा प्रेम की सक्रिय अभिव्यक्ति है; गुरु–सतगुरु आत्मा को उसके निजस्वरूप और परमधाम-संबंध की पहचान कराने वाले चेतन सेतु हैं; और जागनी आत्मा की पूर्ण चेतना में पुनर्जागृति है।

महामति प्राणनाथ की दृष्टि में धर्म का सार भय नहीं, प्रेम है; विभाजन नहीं, तारतम्य-केंद्रित समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना है; कर्मकाण्ड नहीं, चेतना है। तारतम वाणी आत्मा को माया, विस्मृति और देहाभिमान से उठाकर उसके मूल प्रेम-संबंध में पुनः स्थापित करती है—

"अब जाग देखो सुख जागनी, ए सुख सोहागिन जोग।
तीन लीला चौथी घर की, इन चारों को यामें भोग।।"

भक्ति की परिपक्वता सेवा में प्रकट होती है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ सेवा स्वाभाविक रूप से बहती है। इसलिए सेवा केवल बाहरी कर्म नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण चेतना की अभिव्यक्ति है—

"दान दया सेवा सर्वा अंगे, कीजे ते सर्वे गोप।
पात्र ओलखीने कीजे अरचा, सास्त्र अर्थ जोइए जोप।।"

इसी प्रकार सतगुरु वह हैं जो आत्मा को उसके वास्तविक वतन और परब्रह्म प्रियतम की पहचान कराते हैं—

"सतगुर सोई जो वतन बतावे, मोह माया और आप।
पार पुरुख जो परखावे, महामत तासों कीजे मिलाप।।"

जागनी इन सभी आयामों का समग्र केंद्र है। यह केवल ध्यान की अवस्था नहीं, बल्कि जीवन का रूपांतरण है। समग्र दृष्टि से इसके पाँच आयाम मानव चेतना के संतुलित विकास का मार्ग प्रस्तुत करते हैं: 1. Waking Up — जागृत होना / आत्म-जागरण, 2.

Growing Up — चेतना में परिपक्व होना / चेतना-विकास, 3. Opening Up — हृदय और दृष्टि का विस्तार, 4. Cleaning Up — अंतःकरण-शुद्धि / अपनी छाया का शोधन, और 5. Showing Up — सजग सहभागिता / सेवा में उपस्थित होना — मानव चेतना के संतुलित विकास का मार्ग प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार तारतम वाणी का अंतिम संदेश संसार से पलायन नहीं, बल्कि प्रेम, सेवा, जागृति, परम सत्य की प्रकाशना और तारतम्यपूर्ण समन्वय के आधार पर "सुख-शीतल" जीवन एवं समाज का निर्माण है।

अतः भक्ति हृदय को खोलती है, सेवा प्रेम को सक्रिय करती है, सतगुरु दिशा देते हैं और जागनी आत्मा को उसके मूल प्रेम-संबंध में पुनः जागृत करती है। यही तारतम वाणी का सार है—जागो, प्रेम में बढ़ो, चेतना को शुद्ध करो और प्रेम-सेवा के रूप में जगत में प्रकाशित हो जाओ।

पाँचों आयामों का सार-तालिका

जागनी का आयाम	मूल अर्थ	तारतम वाणी का संकेत	जीवन-अभ्यास
Waking Up — जागना	निजस्वरूप, निजधाम और अक्षरातीत प्रियतम के सत्य में जागना	"महामत कहे मलपतियाँ, आओ निज वतन। विलास करो विध-विध के, जागो अपने तन।।" — किरंतन 80/15	आत्म-स्मरण, चितवनी, धाम-स्मृति, ध्यान, निज-पहचान
Growing Up — परिपक्व होना	चेतना, चरित्र, विवेक और व्यापक दृष्टि में विकसित होना	"खोज सोहागिन ना थके, जोलों पार के पारै पार। नित खोजे चरनी चढ़े, नए-नए करे विचार।।" — कलश 11/8	सतत खोज, विनम्रता, समदृष्टि, विवेक, सर्वधर्म समन्वय
Opening Up — खुलना	बुद्धि, प्रेम, कला, अंतर्दृष्टि और चेतना की विविध	"एक निज बुध अवतरी, दूजा नूर तारतम।।" — कलश हिन्दुस्तानी 23/91	ज्ञान, संगीत, कला, प्रेम, आत्म-जागरूकता, नैतिक एवं सौंदर्य-बोध

जागनी का आयाम	मूल अर्थ	तारतम वाणी का संकेत	जीवन-अभ्यास
	क्षमताओं को जागृत करना		
Cleaning Up — शुद्ध होना	विकार, अहंकार, भय, आसक्ति और मन की छाया का रूपांतरण	"जागो जगाऊँ जुगत सों, छोड़ो नींद विकार। पहेचान कराऊँ पिउ सों, सुफल करूँ अवतार।।" — कलश हिन्दुस्तानी 22/19	आत्मनिरीक्षण, मन-शोधन, अहंकार-गलन, shadow work, अंतःकरण की निर्मलता
Showing Up — प्रकट होना	प्रेम, सेवा, साहस और उत्तरदायित्व के साथ जगत में उतरना	"सूता होए सो जागियो, जाग्या सो बैठा होए। बैठा ठाढ़ा होइयो, ठाढ़ा पाँऊ भरे आगे सोए।।" — किरंतन 58/18	सेवा, करुणा, लोकमंगल, साहस, समर्पित कर्म, प्रेमपूर्ण सहभागिता

भाग 4: अध्याय – 18

सुन्दरसाथ की अवधारणा

ब्रह्मसृष्टि जीवन, प्रेम, जागृति और धामभाव की संस्कृति

18.1 प्रस्तावना: जागनी का जीवित हृदय

"सुन्दरसाथ" शब्द तारतम वाणी और जागनी परंपरा का अत्यंत केंद्रीय, गहन और बहुआयामी शब्द है। इसे केवल किसी संप्रदाय, समूह या धार्मिक पहचान के रूप में समझना इसकी वास्तविक गहराई को सीमित कर देता है। वास्तव में "सुन्दरसाथ" कोई बाहरी पदवी नहीं, बल्कि चेतना की अवस्था, हृदय-भाव, जीवन-पद्धति और परमधाम-संबंध की जागृत अनुभूति है। यह आत्मा की वह यात्रा है जिसमें वह अपने मूल वतन अखण्ड परमधाम, परमप्रिय अक्षरातीत धामधनी और अखण्ड प्रेम-लीला की ओर जागती है। तारतम वाणी में इन्हें सुंदरसाथ, साथ, साथ जी, ब्रह्मसृष्टि, परमहंस, धामी, मोमिन, रूह, पर-आतम और परात्म जैसे अनेक नामों से संबोधित किया गया है। इन सभी शब्दों का केंद्र एक ही है—जागृत प्रेमी आत्मा और उसका परमधाम-संबंध।

तारतम वाणी में "सुन्दरसाथ" शब्द परमधाम की नूरी परात्माओं के लिए भी प्रयुक्त हुआ है और इस जागनी लीला में उन आत्माओं के लिए भी जो अपने जीवन में परमधाम-संबंध को जागृत करने का प्रयास करती हैं। पुन: यह कोई बाहरी पदवी नहीं; यह चेतना की अवस्था है। पद छिन सकता है, पर "सुन्दरसाथत्व" आत्मा का भीतरी जाग्रत स्वरूप है।

जागनी परम्परा में भारत का परना (पन्ना, म.प्र.) को केवल ऐतिहासिक नगर नहीं, बल्कि जागनी ब्रह्माण्ड का केन्द्र माना गया है। यहाँ महामति प्राणनाथजी की अमृत वाणी के कई महत्वपूर्ण ग्रंथों का अवतरण हुआ और उन्होंने सुन्दरसाथ आत्माओं को परमधाम की अनुभूति कराई। परंपरा में "धामी" शब्द भी केवल सामाजिक उपाधि नहीं, बल्कि धाम-संबंध का द्योतक है — "धाम से ही धामी बने, धामी से बनत धाम।" अर्थात् धाम और धामी परस्पर अभिन्न चेतना के रूप हैं।

18.2 जागनी के मूल प्रश्न

सुन्दरसाथ संस्कृति की जड़ पाँच महान आध्यात्मिक प्रश्नों में निहित है। तारतम वाणी के अनुसार मनुष्य की आध्यात्मिक यात्रा भी इन्हीं प्रश्नों से प्रारम्भ होती है — मैं कौन हूँ? यहाँ क्यों आया हूँ? मेरा वास्तविक प्रियतम कौन है? मेरा मूल घर कहाँ है? और क्या मैं वास्तव में जाग रहा हूँ या अभी भी आध्यात्मिक नींद में हूँ? यही वे प्रश्न हैं जो सद्गुरु श्री देवचन्द्रजी के भीतर बाल्यावस्था से जागृत हुए और जिनका उत्तर आगे चलकर तारतम

ज्ञान के रूप में प्रकट हुआ। ये प्रश्न केवल देवचन्द्रजी से नहीं, प्रत्येक साधक से पूछे जा रहे हैं। इस तरह, सम्पूर्ण जागनी परंपरा आत्मा को उसके मूल संबंध की स्मृति दिलाने का प्रयास है। सुन्दरसाथ संस्कृति की आत्मा का स्वर स्वयं वाणी में प्रकट होता है— "सुख शीतल करूँ संसार।" यही जागनी का उद्देश्य है—स्वयं जागना और संसार को शीतल बनाना।

18.3 "सुन्दर" और "साथ" का तात्त्विक अर्थ

"सुन्दर" यहाँ बाहरी रूप-सौंदर्य नहीं, बल्कि उस परम सौन्दर्य का प्रतीक है जो अक्षरातीत परब्रह्म श्री राजजी के स्वरूप, प्रेम, आनंद और चिद्घन चेतना में नित्य विद्यमान है। संसार का सौन्दर्य परिवर्तनशील है, पर परमात्मा का सौन्दर्य अखण्ड और अविनाशी है। जो आत्मा उस दिव्य सौन्दर्य को अपने भीतर उतारने लगती है, वही वास्तविक अर्थ में "सुन्दर" बनती है।

"साथ" शब्द भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह केवल "साथी" नहीं है। साथी बदल सकता है, पर "साथ" एक सार्वकालिक हृदय-अवस्था है—आत्मीयता, मैत्री, एकत्व और प्रेम का भाव। इसी कारण वाणी कहती है—

"प्रणाम करूँ सब साथ को, जो कोई देश बिदेश।
राह वाट में जो मिले, ताको कहो संदेश।।"

अर्थात् "साथ" का भाव किसी सीमित समुदाय तक बंधा हुआ नहीं है; यह समस्त जागृत आत्माओं के प्रति प्रेमपूर्ण आत्मीयता का भाव है।

18.4 ब्रह्मसृष्टि और सुन्दरसाथ

तारतम दर्शन में सुन्दरसाथ का संबंध "ब्रह्मसृष्टि" से जोड़ा गया है। वाणी कहती है—

"ब्रह्म सृष्ट कही वेद ने, ब्रह्म जैसी तदोगत।
तौल न उनको कोई, जाकी ब्रह्म सों निसबत।।"

अर्थात् वे आत्माएँ जिनका संबंध परमधाम और परब्रह्म से है, वे ब्रह्मसृष्टि कही गई हैं। उनका जीवन केवल व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित नहीं, बल्कि प्रेम, सेवा, जागृति और अखण्ड आनंद के प्रसार का माध्यम है।

सुन्दरसाथ की सबसे बड़ी पहचान भीतर और बाहर की एकरूपता है। जीवसृष्टि का लक्षण दोहरापन है—अंदर कुछ और, बाहर कुछ और। पर ब्रह्मसृष्टि का लक्षण पारदर्शिता और एकरसता है। वाणी स्पष्ट कहती है—

"ए जो दोए दिल राखत हैं, ए तो दुनियां की रीत।
माहें मैले बाहेर उजले, ए जीव सृष्ट की प्रीत।।"

और आगे—

"एकै बात ब्रह्मसृष्ट की, दोए दिल में नाहें।
सोई करें धनी सो जाहेर, जैसी होए दिल माहें।।"

यही सुन्दरसाथ जीवन का नैतिक और आध्यात्मिक आधार है—मन, वचन और आचरण की एकता। वास्तविक सुन्दरसाथ वह है जिसका हृदय निर्मल हो, जो भीतर और बाहर से एक हो, जो प्रेम और विवेक दोनों में संतुलित हो, और जो दूसरों में अपना आत्म-स्वरूप देखने का अभ्यास करे।

18.5 इस संसार में आने का उद्देश्य

तारतम दृष्टि के अनुसार सुन्दरसाथ इस संसार में केवल भोग, भय या संघर्ष के लिए नहीं आया। उसका अवतरण दो प्रमुख कारणों से हुआ है—पहला, प्रेमानंद-विलासी परमात्मा के प्रति अपने प्रेम की पवित्रता को सिद्ध करना; और दूसरा, परमात्मा के ऐश्वर्य और लीला को पहचानना। इसलिए जागनी का जीवन संसार से भागना नहीं, बल्कि माया के बीच रहते हुए धाम-संबंध में जागना है।

"साथ को घरों ले जाना सही, कोई माया में ना सके रही।
खैंचे सबों को ए बानी, फिरसी घरों धनी पेहेचानी।।"

18.6 प्रेम: सुन्दरसाथ संस्कृति की धुरी

सुन्दरसाथ संस्कृति का केन्द्र प्रेम है। यही वह मूल तत्त्व है जो जागनी को केवल बौद्धिक विचार या धार्मिक कर्मकाण्ड बनने से बचाकर जीवित अनुभूति में रूपांतरित करता है। तारतम वाणी की दृष्टि में प्रेम सीमित भावुकता नहीं, बल्कि चेतना की वह अखण्ड शक्ति है जो जीव को उसके मूल धाम-संबंध की ओर लौटाती है। प्रेम द्वैत, वैर, ईर्ष्या, भय और अहंकार को गलाकर आत्मा को "मैं" और "मेरा" की संकीर्णता से उठाकर व्यापक एकत्व में प्रवेश कराता है। इसलिए वाणी प्रेम को मुक्ति, जागृति और परमधाम के प्रवेश-द्वार के रूप में प्रस्तुत करती है—

"प्रेम खोल देवे सब द्वार…"
"प्रेमै करी अलख की लख…"
"या को प्रेमै सहज स्वाभाव…" *(सिनगार एवं परिक्रमा)*

महामति प्राणनाथजी का संदेश सम्प्रदायवादी श्रेष्ठता का नहीं, बल्कि स्वलीला-अद्वैत पर आधारित प्रेममय एकेश्वरवाद, तारतम्यपूर्ण समन्वय और सार्वभौमिक मानव-एकता का संदेश है। वे मनुष्य को विभाजन से उठाकर उस दृष्टि तक ले जाना चाहते हैं जहाँ सभी भेद अंततः एक ही परम स्रोत में शांत हो जाएँ। इसलिए वाणी कहती है—

"धनी सबों का एक।"
"पारब्रह्म तो पूरन एक है।"

"छोड़ के बैर मिले सब प्यार सों।"

"तुम प्रेम सेवा से पाओगे पार।"

यहाँ प्रेम चेतना का विज्ञान है—वह आन्तरिक रसायन जो जीव की दृष्टि को माया के संघर्षों से हटाकर धामभाव की ओर मोड़ देता है। प्रेम के बिना ज्ञान कठोर हो सकता है, ध्यान आत्मकेन्द्रित हो सकता है और धर्म बाह्याचार में बदल सकता है। प्रेम ज्ञान को करुणा, ध्यान को आत्मीयता और सेवा को जीवंतता देता है। इसी कारण तारतम जागनी प्रेम को परमधाम का मूल नियम घोषित करती है—

"अरस इसक को राज।"

किन्तु तारतम मार्ग प्रेम को केवल भावावेश के रूप में स्वीकार नहीं करता। यहाँ प्रेम, ज्ञान और चितवन—तीनों का तारतम्य-केंद्रित समन्वय आवश्यक है। वाणी कहती है—

"एक इस्क दूजा इलम, ए दोऊ मोमिनों हक न्यामत।"

अर्थात् प्रेम और ज्ञान दोनों धनी की नेमत हैं। प्रेम आत्मा को जोड़ता है, ज्ञान दिशा देता है और चितवन उस सत्य को अनुभव में स्थिर करती है। समग्र साधना इन तीनों को संतुलित रूप में जीने का नाम है; इसी संतुलन से प्रेम अंधानुकरण नहीं बनता, ज्ञान अहंकार नहीं बनता और ध्यान पलायन नहीं बनता।

तारतम वाणी में प्रयुक्त "मोमिन" शब्द भी किसी पंथगत पहचान का नाम नहीं है। यह उस जाग्रत आत्मा के लिए प्रयुक्त है जो सत्य, प्रेम, ईमान और विवेक में स्थिर हो। इस प्रकार "मोमिन्त्व" और "सुन्दरसाथत्व" किसी धार्मिक लेबल के नाम नहीं, बल्कि चेतना की अवस्थाएँ हैं। जो आत्मा प्रेम में विनम्र, ज्ञान में स्पष्ट और चितवन में जाग्रत होती जाती है, वही वास्तविक अर्थ में सुन्दरसाथ कहलाने योग्य बनती है।

इसीलिए तारतम जागनी का अंतिम स्वर संघर्ष नहीं, प्रेम है; विभाजन नहीं, एकत्व है। साधना1 का सार यही है कि जीव ऐसा हृदय विकसित करे जिसमें सबके लिए स्थान हो, पर केंद्र में केवल धामधनी का प्रेम हो।

18.7 अंश–अंशी से अंग–अंगी तक

तारतम दर्शन में आत्मा और परमात्मा का संबंध अत्यंत विशिष्ट रूप में समझाया गया है। प्रारम्भ में और मुख्यतः निराकार लक्षी साधन में साधक स्वयं को "अंश" और परमात्मा को "अंशी" मानता है। यह बौद्धिक आरम्भ है। यह समझ निराकार तक सीमित रहती है। पर जागनी की परिपक्व अवस्था में यह संबंध "अंग–अंगी" का हो जाता है। आत्मा परमात्मा में मिटती नहीं, बल्कि उसकी अखण्ड प्रेम-लीला का जाग्रत अंग बनती है। यही "स्वलीलाद्वैत" का भाव है। इस प्रकार तारतम मार्ग आत्मा को केवल मुक्ति की ओर नहीं, बल्कि प्रेमपूर्ण सहभागिता और अखण्ड आनंद की ओर ले जाता है।

18.8 सुन्दरसाथ जीवन के पाँच आयाम: जागनी से समग्र मानव-विकास की ओर

तारतम परंपरा में सुन्दरसाथ जीवन केवल पूजा, उपासना या बाहरी धार्मिक पहचान तक सीमित नहीं है। यह जीवन की समग्र साधना है — ऐसी साधना जो आत्मा, बुद्धि, हृदय, व्यवहार, संबंध और समाज — सभी को रूपांतरित करना चाहती है। जागनी केवल किसी आध्यात्मिक अनुभव का नाम नहीं; यह जीवन को भीतर और बाहर दोनों स्तरों पर जागृत करने की प्रक्रिया है। आधुनिक भाषा में इस समग्र साधना को पाँच आयामों में समझा जा सकता है।

पहला आयाम है — Waking Up — जागना: यह अपने वास्तविक स्वरूप, परमधाम-संबंध और धामधनी की पहचान में जागना है। श्रीजी कहते हैं — "एक आतम धनी पहेचानिये, निर्मल एही उपाय।"

अर्थात् आत्मा के प्रियतम धनी की पहचान ही निर्मलता का मार्ग है। जागरण केवल जानकारी प्राप्त करना नहीं; अपने मूल संबंध की स्मृति में लौटना है। इसी कारण जागनी में "चितवन" का इतना महत्व है। यह केवल ध्यान की तकनीक नहीं, बल्कि आत्मा का अपने मूल प्रेम-संबंध की ओर लौटना है।

"सुरता एक ही रखिये, मूल मिलावे माहें।"

अर्थात् जीवन की हर परिस्थिति में सुरता धाम-संबंध में स्थिर रहे — यही जागनी का केन्द्र है।

दूसरा आयाम है — Growing Up — परिपक्व होना: जागनी केवल भावनात्मक अनुभव नहीं; यह विवेक, संतुलन और व्यापक दृष्टि में बढ़ना भी है। आध्यात्मिक अपरिपक्वता व्यक्ति को या तो अहंकारी बना देती है या पलायनवादी। इसलिए तारतम वाणी केवल कहनी नहीं, रहनी पर बल देती है — "कहनी सुननी गई रात में, आया रहनी का दिन।"

वास्तविक जागनी वही है जो व्यवहार में उतरती है। सुन्दरसाथ जीवन का अर्थ है —दूसरों के गुण ग्रहण करना, अपने अवगुणों को धोना, सेवा को अवसर मानना, संवाद में करुणा रखना, और विनम्रता को आभूषण बनाना। वाणी कहती है —

"अवगुण काढ़े गुन ग्रहे, हारे से होई जीत।
साहेब से सन्मुख सदा, ब्रह्म सृष्टि एह रीत॥"

यही ब्रह्मसृष्टि की वास्तविक चतुराई है — स्वयं को बड़ा सिद्ध करना नहीं, बल्कि निरंतर भीतर को परिष्कृत करना।

तीसरा आयाम है — Opening Up — खुलना: सुन्दरसाथ जीवन का तीसरा आयाम है — चेतना की अनेक क्षमताओं का जागरण। मनुष्य केवल बौद्धिक प्राणी नहीं;

उसके भीतर प्रेम, अंतर्दृष्टि, करुणा, सौंदर्यबोध, संगीतात्मकता, सेवा-भाव, ध्यान-क्षमता और दिव्य संवेदनशीलता जैसी अनेक बुद्धियाँ छिपी होती हैं। जागनी इन सबको खोलना चाहती है।

तारतम वाणी का "खुल्या दरवाजा धाम" केवल किसी लोक का संकेत नहीं; यह चेतना के भीतर खुलते हुए उन द्वारों का भी प्रतीक है जहाँ आत्मा धीरे-धीरे सीमित दृष्टि से व्यापक अनुभूति की ओर बढ़ती है।

इस अवस्था में साधक जीवन को केवल समस्या के रूप में नहीं, बल्कि धनी की लीला के रूप में देखना प्रारम्भ करता है। उसका हृदय अधिक ग्रहणशील, अधिक करुणामय और अधिक सौंदर्य-संवेदनशील बनता है।

चौथा आयाम है — Cleaning Up — शुद्ध निर्मल होना: तारतम वाणी का अत्यंत आधुनिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष यह है कि वह "छाया" (shadow) से लड़ने की नहीं, बल्कि उसे पहचानकर दिशा बदलने की बात करती है। क्रोध, मोह, तृष्णा, ईर्ष्या, तुलना, अहंकार — ये केवल शत्रु नहीं; दिशाहीन ऊर्जा हैं। जब वे माया की ओर मुड़ते हैं तो बन्धन बनते हैं; जब धनी की ओर मुड़ते हैं तो सेवा, करुणा और प्रेम में रूपांतरित हो सकते हैं।

माया केवल बाहरी वस्तु नहीं; कपटपूर्ण वाणी, दिखावा, झूठी आध्यात्मिकता, तुलना, मान-सम्मान की भूख और "मैं" की सूक्ष्म पकड़ भी माया के रूप हैं। इसलिए जागनी का मार्ग सजग विवेक और आत्म-साक्षी का मार्ग है।

खिलवत वाणी में यह बात अत्यंत गहराई से कही गई है —

"हुआ है सब हुकमें, होत है हुकम।
होसी सब कछू हुकमें, कछू ना बिना हुकम खसम॥" *(खिलवत 1/45)*

और —

"मारा कह्या काढ़ा कह्या, और कह्या हो जुदा।
एही मैं खुदी टले, तब बाकी रह्या खुदा॥" *(खिलवत 2/30)*

जब तक "मैं" बीच में है, तब तक धनी की उपस्थिति स्पष्ट नहीं होती। जागनी का मार्ग अहंकार की सूक्ष्म परतों को पहचानकर उन्हें प्रेमपूर्वक धनी में समर्पित करना है।

पाँचवाँ आयाम है — Showing Up — प्रकट होना: सुन्दरसाथ जीवन केवल भीतर के अनुभव तक सीमित नहीं रहता; वह प्रेम-सेवा, उत्तरदायित्व और करुणामय उपस्थिति के रूप में संसार में उतरता है। जागनी का वास्तविक फल यही है कि साधक संसार से भागता नहीं, बल्कि अधिक सजग, अधिक विनम्र और अधिक प्रेमपूर्ण होकर जीवन में उपस्थित होता है।

इसीलिए श्रीजी कहते हैं — "लिजो धणी की ओट।" अर्थात् प्रत्येक कार्य अहंकार से नहीं, धनी की महेर की छत्रछाया में हो।"मैं" केन्द्र में नहीं, धनी केन्द्र में हों।

18.9 सुन्दरसाथ रहेनी: जागृत जीवन की कला

सुन्दरसाथ जीवन केवल विचारधारा या धार्मिक पहचान नहीं; यह एक जागृत रहेनी है—ऐसी जीवन-पद्धति जिसमें आत्मा का भीतरी जागरण व्यवहार, संबंधों और दैनिक जीवन में उतरने लगता है। तारतम परंपरा में बाहरी पहचान से अधिक महत्त्व जीवन की भीतरी गुणवत्ता को दिया गया है। इसलिए मन, वचन और कर्म की पवित्रता को जागनी का मूल आधार माना गया है।

इस रहेनी के प्रमुख तत्त्व हैं—अहिंसा, सत्य, प्रामाणिकता, संयम, उदारता, असंग्रह, धनी के हुक्म में संतोष, आत्म-चिन्तन, वाणी-मंथन, सादगीपूर्ण जीवन, स्त्री-पुरुष के प्रति समान सम्मान, अष्टप्रहर धाम-स्मृति तथा प्रेम-सेवा-समर्पण। तारतम दृष्टि बाहरी कर्मकाण्ड से अधिक आंतरिक चितवन और जागृत व्यवहार पर बल देती है। इसलिए व्यसन, मद्य, मांसाहार, चोरी, असत्य और दिखावटी धार्मिकता से दूर रहने की प्रेरणा दी गई है। जागनी का केन्द्र बाहरी प्रदर्शन नहीं, बल्कि जागृत चेतना और प्रेममय व्यवहार है।

वास्तव में सुन्दरसाथ संस्कृति का मूल प्रश्न यह नहीं कि मनुष्य बाहर से कैसा दिखाई देता है, बल्कि यह है कि उसके भीतर कौन-सी चेतना सक्रिय है। इसी कारण सुन्दरसाथ संस्कृति बाह्य और आन्तरिक—दोनों आयामों का संतुलन सिखाती है। परम्पराएँ, उत्सव, पूजा-पद्धति, वेशभूषा और सामाजिक व्यवहार संस्कृति की आवश्यक अभिव्यक्तियाँ हो सकती हैं, पर उनका वास्तविक मूल्य तभी है जब वे भीतर की जागृति, प्रेम और धाम-स्मृति से जुड़े हों। आन्तरिक संस्कृति का सम्बन्ध हृदय की निर्मलता, चेतना की एकरसता और मन-वाणी-आचरण की एकता से है। संसार का बड़ा दुःख इसी विखंडन से उत्पन्न होता है कि व्यक्ति सोच कुछ और रहा है, बोल कुछ और रहा है और जी कुछ और रहा है। सुन्दरसाथ जीवन इसी असंतुलन को समाप्त करने की साधना है।

तारतम वाणी में विनम्रता को जागनी का अत्यंत आवश्यक अंग माना गया है। श्रीजी कहते हैं—

"होय रहियो तुम रेनू समान।"

अर्थात् चरणधूलि की तरह विनम्र बनकर जीना सीखो। स्वयं को बड़ा न मानना, दूसरों के दोषों में उलझने के स्थान पर अपने अंतःकरण को देखना, और हर क्षण अपनी "मैं-खुदी" को पहचानकर उसे धनी में समर्पित करना—यही ब्रह्मसृष्टि की परिपक्वता है। इसी कारण चेतावनी भी दी गई है—

"अब भली बुरी इन दुनी की, एह जिन लेओं चित ल्याए।"

अर्थात् संसार की तुलना, आलोचना और दोष-दर्शन में अपना बहुमूल्य जीवन नष्ट मत करो; अपना ध्यान आत्म-जागृति और धाम-स्मृति पर केन्द्रित रखो।

सुन्दरसाथ जीवन का एक और महत्त्वपूर्ण आयाम है—संतुलन। वाणी कहती है—

"दुःख सुख डारो आग में।"

अर्थात् सुख और दुःख दोनों अस्थायी अवस्थाएँ हैं। आत्मा को इन उतार-चढ़ावों से ऊपर उठकर धनी में स्थिर होना सीखना है। यह संसार से भागना नहीं, बल्कि अपने भीतर उस केन्द्र को खोजना है जहाँ से जीवन को अधिक स्पष्टता, करुणा और संतुलन के साथ जिया जा सके।

इस प्रकार सुन्दरसाथ जीवन केवल आध्यात्मिक अनुभव नहीं, बल्कि समग्र मानवीय विकास का मार्ग है। यह भीतर जागने, विवेक में बढ़ने, चेतना को खोलने, अहं को शुद्ध करने और प्रेम-सेवा के रूप में संसार में उतरने की यात्रा है। जागनी का लक्ष्य केवल "धार्मिक" बनना नहीं, बल्कि अधिक सचेत, अधिक प्रेमपूर्ण, अधिक संतुलित और अधिक करुणामय मनुष्य बनना है।

अंततः सुन्दरसाथ संस्कृति संसार से पलायन की नहीं, बल्कि संसार को "सुख-शीतल" बनाने की संस्कृति है। यही जागनी की वास्तविक रहेनी है, और यही सुन्दरसाथ जीवन की पहचान।

18.10 सामाजिक दृष्टि: एकत्व, समानता और आत्मीयता

सुन्दरसाथ संस्कृति केवल व्यक्तिगत साधना नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का रूपांतरण भी है। इसका उद्देश्य जाति, वर्ण, वर्ग, ऊँच-नीच और बाहरी विभाजनों को पार कर आत्मा को आत्मा से जोड़ना है। इसलिए सुन्दरसाथ कोई मात्र सामाजिक या धार्मिक संगठन नहीं, बल्कि आत्मैक्य, प्रेम और एकदिली की जीवित चेतना है।

तारतम वाणी परमधाम की परआत्माओं के इस अखण्ड एकत्व का अत्यंत सुंदर चित्र प्रस्तुत करती है—

"सुन्दरसाथ बैठा अचरज सों, जानो एकै अंग हिल मिल।
अंग अंग सब के मिल रहे, सब सोभित हैं एक दिल।।"

अर्थात् सुन्दरसाथ अलग-अलग व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं, बल्कि एक ही चेतना के अनेक अंगों की तरह है। सबका आधार एक दिल, एक प्रेम और एक धामभाव है। यही कारण है कि जागनी दृष्टि भेदभाव और अहंकार को अस्वीकार करते हुए एकात्म मानवता का भाव स्थापित करती है—

"छोड गुमान सब मिलसी, ये जो देखत हो जहान।
जात पांत न भांत कोई, एक खान पान और गान।।"

यहाँ "एक खान-पान और गान" केवल बाहरी समानता का संकेत नहीं, बल्कि भीतर की आत्मीयता, सह-अस्तित्व और प्रेमपूर्ण साझेदारी का प्रतीक है। सुन्दरसाथ जीवन में कोई ऊँचा-नीचा नहीं; सब धनी के प्रेम में जुड़े हुए आत्मीय अंग हैं।

विश्व की अनेक महान आध्यात्मिक परम्पराओं में भी यही भाव विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ है—वैदिक "मैत्री", बौद्ध "करुणा", जैन "अहिंसा", ईसाई "प्रेम", सूफी "इश्क" और सिख "एक ओंकार"। जागनी परंपरा इन सबको "एक दिल" और "एक धनी" के सूत्र में समाहित करती है।

सुन्दरसाथ जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष सामाजिक संतुलन और संवाद-संस्कृति भी है। तारतम वाणी को विवाद का हथियार नहीं, बल्कि हृदयों को जोड़ने वाला सेतु बनना चाहिए।"हम सही–वे गलत" की मानसिकता, कटु भाषा, आध्यात्मिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन और सोशल मीडिया पर वैचारिक युद्ध—ये सब जागनी की आत्मा के विपरीत हैं।

सुन्दरसाथ जीवन का वास्तविक सूत्र है—भीतर स्पष्टता, बाहर मर्यादा; सत्य, पर विवेक के साथ; भक्ति, पर अहंकार के बिना; और तारतम—दीवार नहीं, सेतु।

इसीलिए सत्संग, नेतृत्व और सार्वजनिक संवाद में भाषा सरल, समावेशी और प्रेमपूर्ण होनी चाहिए। गूढ़ अध्ययन और सार्वजनिक प्रस्तुति का संतुलन बना रहे; नई पीढ़ी को पहचान-संघर्ष या भय में न धकेला जाए; संस्था व्यक्ति-केंद्रित न बने; और असहमति रखने वालों के लिए भी संवाद का द्वार खुला रहे। यही सुन्दरसाथ संस्कृति की सामाजिक परिपक्वता है, और यही जागनी की वास्तविक आत्मीयता।

18.11 आधुनिक युग में सुन्दरसाथ की प्रासंगिकता

आज का युग अभूतपूर्व तकनीकी प्रगति, सूचना-विस्फोट और वैश्विक संपर्क का युग है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), सोशल मीडिया, एल्गोरिद्म और डिजिटल नेटवर्क ने मनुष्य के बाहरी जीवन को अत्यंत तीव्र और सुविधाजनक बना दिया है। परन्तु इसी के साथ मनुष्य भीतर से अधिक विखंडित, तनावग्रस्त और दिशाहीन भी होता जा रहा है। जानकारी बढ़ी है, पर आत्मीयता घट रही है; संपर्क बढ़े हैं, पर संबंध कमजोर हुए हैं; विचारों की बहुलता आई है, पर आंतरिक स्पष्टता कम होती जा रही है।

ऐसे समय में तारतम वाणी और सुन्दरसाथ संस्कृति अत्यंत प्रासंगिक हो उठती है। जागनी का संदेश मनुष्य को केवल सूचना-संपन्न नहीं, बल्कि चेतना-संपन्न बनाने का प्रयास करता है। यह हमें याद दिलाता है कि बाहरी साधनों की प्रगति तभी सार्थक है जब भीतर प्रेम, विवेक, संतुलन और आत्म-जागृति बनी रहे।

महामति प्राणनाथजी का संदेश किसी संकीर्ण सम्प्रदायवादी श्रेष्ठता का नहीं, बल्कि समन्वयकारी चेतना का आह्वान है। वे विभाजनकारी मत-मतान्तरों में उलझने के स्थान पर उनके पीछे छिपे सत्य को पहचानने की दृष्टि देते हैं। यदि मानवता ने विभिन्न विचारों, संस्कृतियों और मान्यताओं को जोड़कर देखने की कला नहीं सीखी, तो वैचारिक संघर्ष और मानसिक असंतुलन बढ़ते ही जाएंगे। जागनी का मार्ग इसी टूटन के बीच एकत्व, संवाद और प्रेम की दिशा प्रस्तुत करता है।

आधुनिक सुन्दरसाथ के सामने सबसे बड़ी परीक्षा यही है कि वह साधनों और चेतना के बीच अंतर को समझे। AI, तकनीक और डिजिटल माध्यम उपयोगी साधन हो सकते हैं, पर वे चेतना, करुणा, प्रेम और आत्म-जागृति का विकल्प नहीं बन सकते। साधन को साधन ही रहने देना और आत्म-जागृति को केन्द्र में रखना — यही आधुनिक जागनी की परिपक्वता है।

18.12 सुन्दरसाथ का अंतिम संकल्प

सुन्दरसाथ का अंतिम लक्ष्य केवल अपनी मुक्ति नहीं, बल्कि संसार में शांति, करुणा और सुख-शीतलता फैलाना है। वाणी कहती है—

"अब दुख न देऊं फूल पांखडी, देखूं सीतल नैन।
उपजाऊं सुख सब अंगों, बोलाऊं मीठे बैन।।"

और—

"प्रगट नींव बांधी है यह, बड़ी इमारत होसी जाहेर।
आगे बड़ा होसी विस्तार, अखण्ड सब होसी संसार।।"

अर्थात् जागनी का लक्ष्य विभाजन नहीं, अखण्डता है; भय नहीं, प्रेम है; संघर्ष नहीं, सुख-शीतलता है।

अंततः सच्चा सुन्दरसाथ वही है जो भीतर और बाहर से एक हो, जो प्रेम और विवेक दोनों में संतुलित हो, जो धाम-स्मृति में जीवन जिये, जो स्वयं जागे और दूसरों को भी जागरण की ओर प्रेरित करे, और जो संसार को शीतल बनाने की दिशा में प्रेम-सेवा का माध्यम बने।

यही तारतम वाणी का जीवित हृदय है। यही जागनी का सार है। यही सुन्दरसाथ संस्कृति की आत्मा है।

18.13 'प्रणाम': सुन्दरसाथ जीवन का आत्मीय अभिवादन

सुन्दरसाथ संस्कृति में "प्रणाम" केवल सामाजिक अभिवादन नहीं, बल्कि आत्मा की आत्मा को दी गई जागृत नम्रता और एकत्व की अनुभूति है। इसका भाव यह है—"मैं आत्मा हूँ, तुम भी आत्मा हो; स्वरूप से हम एक हैं, केवल रूप से भिन्न दिखाई देते हैं।" इसलिए प्रणाम में बाहरी व्यक्तित्व नहीं, भीतर की चेतना का सम्मान किया जाता है।

प्रणाम का अर्थ है—अपने भीतर और सामने वाले के भीतर स्थित उस निर्मल चिदाकाश को नमन करना जहाँ परमात्मा के प्रेम, शांति, करुणा और दिव्य गुण प्रकाशित हैं। यह स्मरण कराना कि हम सब उसी एक परम प्रेम-सागर की लहरें हैं और हमारा वास्तविक संबंध अहं, जाति, पद, विचार या बाहरी पहचान से नहीं, बल्कि धामभाव और आत्मैक्य से है।

सुन्दरसाथ जब "प्रणाम जी" कहता है, तो उसके भीतर यह मंगल भावना सक्रिय रहती है कि हम सबके भीतर परब्रह्म प्रियतम का नूर, हृदय की निर्मलता, क्षमा, करुणा, प्रेम और ऐक्य भाव निरंतर विकसित होते रहें। यही अभिवादन धीरे-धीरे व्यक्ति से समाज, समाज से समस्त जीव-जगत और अंततः परमात्मा के महासागर तक एकत्व की अनुभूति को विस्तृत करता है।

इसीलिए सुन्दरसाथ जीवन में "प्रणाम" विनम्रता, आत्मीयता, समानता और प्रेमपूर्ण जागृति का जीवित प्रतीक है। सप्रेम प्रणाम — प्रणाम जी।

.....

पंचम भाग:

उद्देश्य

इस भाग में महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर (मध्य प्रदेश) में आयोजित कुलपतियों के सम्मेलन Vice Chancellors' Conclave अगस्त 2025 में प्रस्तुत शोध-पत्रों के माध्यम से शिक्षा, चेतना, खोज, डिजिटल युग की चुनौतियाँ, प्रकृति एवं समग्रता, मानव चेतना-विकास, राष्ट्र-जागरण तथा महामति प्राणनाथ के बहुविषयी प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इसके माध्यम से विद्यार्थी आधुनिक समस्याओं को तारतम दृष्टि, समग्र चेतना और जीवनपरक शिक्षा के आलोक में समझ सकेंगे।

शोध पत्र

शोध पत्र 1 :	*शिक्षा का स्वरूप: जीवनपरक समन्वित दृष्टिकोण*
शोध पत्र 2 :	*खोज क्या है? श्रीमद् तारतम वाणी की खोज:*
शोध पत्र 3 :	*डिजिटल युग में मन की सवारी के लिए प्रभावी उपाय -तारतम ज्ञान, भौतिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान के आलोकमें*
शोध पत्र 4 :	*प्रकृति और परम:महामति प्राणनाथ की तारतम दृष्टि में समग्र चेतना की भूमिका*
शोध पत्र 5 :	*विभाजन से एकत्व की ओर: नस्लवाद, मानव चेतना का विकास और समग्रता की क्रांति*
शोध पत्र 6 :	*कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — राष्ट्र जागरण के त्रिदीप: श्री निजानंद - प्रणामी दर्शन एवं इतिहास के समग्र दृष्टिकोण से महामति प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव*
शोध पत्र 7:	*प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव: आध्यात्म, समाज और दर्शन का समन्वित ताना-बाना*

शोध पत्र 1

शिक्षा का स्वरूप - जीवनपरक समन्वित दृष्टिकोण
महामति प्राणनाथ जी प्रदत्त तारतम ज्ञान के प्रकाश में

श्री रमणभाई के. पटेल, एम.बी.ए., यू.एस.ए. अध्यक्ष, श्री निजानंद जागनी अभियान, श्री निजानंद आश्रम, वडोदरा; ट्रस्टी, श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी, उ.प्र. पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना, सलाहकार, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान

C1.1 सारांश:

यह शोध-पत्र शिक्षा को केवल औपचारिक ज्ञानार्जन की प्रक्रिया नहीं, बल्कि आत्मचेतना के जागरण और जीवन की समग्रता को समझने के मार्ग के रूप में प्रस्तुत करता है। लेख में शिक्षा की पारंपरिक और समकालीन समझ को समन्वित करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा केवल पाठ्यक्रम आधारित प्रणाली नहीं, बल्कि एक बहुआयामी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को एकीकृत करती है।

इसमें तीन मुख्य आयामों पर विशेष बल दिया गया है: 1. शिक्षा की प्रक्रिया और उद्देश्य: शिक्षा सूचना से शुरू होकर ज्ञान तक, और ज्ञान से विवेक तक की आंतरिक यात्रा है। इसका लक्ष्य केवल जानना नहीं, बल्कि "हो जाना" है — अर्थात् ऐसा आचरण जिसमें ज्ञान प्रेममय होकर आत्मबोध में परिणत हो जाए। 2. समग्र शिक्षा का आठ आयामी दृष्टिकोण: लेख समग्र शिक्षा के आठ आयामों—ज्ञान, चरित्र निर्माण, समालोचनात्मक सोच, करियर-तैयारी, सामाजिक चेतना, नागरिकता, आत्म-विकास, और जीवन-संतुलन—का विश्लेषण करता है। यह दृष्टिकोण शिक्षा को केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि जीवन जीने की कला बनाता है। 3. महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी में शिक्षा का दर्शन: तारतम वाणी के आलोक में लेख ज्ञान (इल्म) और प्रेम (इश्क) की अद्वैत एकता को रेखांकित करता है। यह बताया गया है कि यदि ज्ञान में प्रेम नहीं हो, तो वह कठोर हो जाता है, और यदि भक्ति में समझ नहीं हो, तो वह अंधी हो जाती है। इसी वाणी में 'स्वसंवेद' की अवधारणा — वह आत्मिक अनुभव जो भीतर से प्रस्फुटित होता है — को शिक्षा का चरम रूप माना गया है।

साथ ही, लेख भारतीय ज्ञान परंपरा के दो प्रमुख आयामों — अपरा (भौतिक) और परा (आध्यात्मिक) विद्या — के माध्यम से यह दृष्टि प्रस्तुत करता है कि सच्ची शिक्षा वही है जो आत्मा को ब्रह्म के प्रत्यक्ष साक्षात्कार की ओर ले जाए। अंततः, यह शोध-पत्र शिक्षा को धर्म, समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान का साधन मानते हुए, व्यक्ति को साक्षी,

समर्पित और प्रेममय चैतन्य स्वरूप में विकसित करने वाली एक जीवंत प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है।

C1.2. शिक्षा क्या है?:

शिक्षा वह प्रक्रिया है जिससे व्यक्ति ज्ञान, कौशल, मूल्य और आदतें सीखता है, जिसका उद्देश्य है बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और व्यावहारिक विकास। शिक्षा केवल औपचारिक स्कूलिंग तक सीमित नहीं, बल्कि अनौपचारिक और अनुभवजन्य सीख भी शिक्षा का भाग है। शिक्षा के मुख्य हिस्से हैं: पाठ्यक्रम (क्या पढ़ाया जाए), शिक्षण विधियाँ (कैसे पढ़ाया जाए — जैसे व्याख्यान, चर्चा, प्रयोग), शिक्षार्थी और शिक्षक, शिक्षण का वातावरण (कक्षा या ऑनलाइन मंच), मूल्यांकन (सीख के परिणाम कैसे नापे जाएँ), शैक्षिक संसाधन (जैसे किताबें और उपकरण), और सहायता प्रणालियाँ (जैसे पुस्तकालय और परामर्श)। इन सभी तत्वों के सहयोग से व्यक्ति को सीखने का पूरा अनुभव मिलता है।

C1.3. कुंजी शब्द

शिक्षा, समग्र शिक्षा, सूचना, ज्ञान और विवेक, इल्म (ज्ञान), इश्क (प्रेम), बहुआयामी बुद्धिमता, तारतम्य संबंध, महामति

C1.4. समग्र शिक्षा (Integral Education) क्या है?

आज का समय समग्र (समन्वित) शिक्षा का है, जिसमें सीखना केवल किताबों तक सीमित नहीं है। इसमें आठ मुख्य पहलू शामिल होते हैं: 1. ज्ञान और कौशल – ताकि व्यक्ति बौद्धिक रूप से सक्षम और व्यावहारिक रूप से कुशल बन सके, 2. चरित्र निर्माण – जिससे व्यक्ति में नैतिकता और अच्छे गुण विकसित हों, 3. समालोचनात्मक सोच – यानी स्वतंत्र और गहराई से सोचने की क्षमता विकसित हों, 4. करियर की तैयारी – ताकि व्यक्ति भविष्य के रोजगार या पेशे के लिए तैयार हो सके, 5. सामाजिक जागरूकता – जिससे वह समाज की समस्याओं और ज़रूरतों को समझ सके, 6. जागरूक नागरिकता – ताकि वह अपने कर्तव्यों और अधिकारों को समझकर जिम्मेदारी से कार्य करे, 7. व्यक्तिगत विकास – जिससे आत्मचेतना, आत्मविश्वास और भावनात्मक संतुलन बढ़े, और 8. समग्र संतुलन – जो इन सभी पहलुओं को एक साथ जोड़कर एक संतुलित और जागरूक जीवन की ओर ले जाए।

C1.5. सूचना (Information), ज्ञान (Knowledge) और ज्ञान से विवेक (Wisdom) में बड़ा अंतर:

सूचना (Information), ज्ञान (Knowledge) और ज्ञान से विवेक (Wisdom) में बड़ा अंतर होता है — इसे हमेशा याद रखना चाहिए। सूचना सिर्फ सतही या तथ्यात्मक जानकारी होती है, जो दिमाग में जमा रहती है, लेकिन जीवन को कोई

गहराई नहीं देती। जब हम सूचना को समझते हैं, उसका उद्देश्य जानते हैं और उसे व्यवस्थित करते हैं, तब वह ज्ञान बनती है। ज्ञान हमारी बुद्धि को दिशा देता है और सोचने-समझने की क्षमता बढ़ाता है। लेकिन जब यही ज्ञान अनुभव, आत्मचिंतन और भीतर की समझ से जुड़ता है, तब वह विवेक बन जाता है। विवेक से लिया गया निर्णय सत्य और नैतिकता पर आधारित होता है। संघर्ष या कठिन समय में विवेक अहंकार से नहीं, करुणा से प्रतिक्रिया करता है। विवेक केवल जानने नहीं, जीवन को सही ढंग से जीने की कला सिखाता है।

C1.6. ज्ञान का वास्तविक फल:

ज्ञान का वास्तविक फल तभी मिलना शुरू होता है, जब हम केवल जीने की कला सीखते ही नहीं, बल्कि उसी के अनुसार जीवन जीते भी हैं।"सा विद्या या विमुक्तये" - "वह ज्ञान है जो मुक्ति दिलाता है। यही अवस्था है आचरण (Embodiment) की — जहाँ ज्ञान केवल विचार नहीं रहता, बल्कि स्वाभाविक और सजग व्यवहार बन जाता है। जैसे प्रेम केवल कहने की वस्तु नहीं रह जाता, बल्कि व्यक्ति स्वयं प्रेम 'बन' जाता है। इस आचरण का गहन फल है — आत्मबोध / स्व-प्रकाश (Self-Realization)। इसमें मन और बुद्धि की सीमाएँ पीछे छूट जाती हैं, और आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। साक्षी भाव जागता है, और दिव्य कृपा का अवतरण होता है। इस अवस्था में अहंकार का लय हो जाता है और एकत्व की गहन अनुभूति में यह स्पष्ट बोध होता है: "मैं न शरीर हूँ, न मन — मैं शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ।" आख़िर में, जब भक्ति और समर्पण अपने चरम पर पहुँचते हैं, तो परमेश्वर में पूर्ण लीनता होती है। यहाँ से कृपा का प्रवाह (Divine Transmission) आरंभ होता है —जहाँ व्यक्ति की उपस्थिति ही परिवर्तनकारी बन जाती है। वह सत्य को बोले बिना भी प्रवाहित करता है, और दूसरों के भीतर आत्म-जागृति की चिंगारी सुलगा देता है। ऐसा जीवन जीने वाला मौन में गुरु बन जाता है। इस प्रकार आत्मिक शिक्षा का मार्ग — जिज्ञासा से शुरू होकर, भीतर की खोज, अध्ययन, मनन, संवाद और साधना के रास्ते स्वरूपबोध और दिव्य एकत्व तक पहुँचता है।

C1.7. शिक्षा में समझ की बात बहुत बड़ी:

विश्व के धर्मशास्त्रों के प्रत्येक वचन को उनके अनुयायियों द्वारा हर देश, काल और परिस्थिति में *सनातन सत्य* मान लेने से अनेक प्रकार की हानियाँ हुई हैं—और आज भी हो रही हैं। पिछले लगभग 125 वर्षों में मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि जब किसी समाज की सामूहिक चेतना पौराणिक या मिथकीय स्तर पर अटकी रहती है, तो वह समाज अपनी मान्यताओं को ही अंतिम सत्य मान लेता है। ऐसी स्थिति में वह दूसरों पर भी अपने विचार थोपने की प्रवृत्ति अपनाने लगता है। यही प्रवृत्ति

अक्सर संघर्ष, असहिष्णुता और अशांति का कारण बनती है—फिर वह समाज गीता, भागवत, या *तारतम वाणी* जैसे दिव्य ग्रंथों से ही क्यों न जुड़ा हो! अतः महामति तारतम वाणी में ज्ञान की समझ को अधिक महत्व देते हैं:

समझे बिना सुख पार को नाहीं, जो उदम करो कई लाख।
तोलों प्रेम न उपजे पूरा, जो लों अंदर न देवे साख।।

C1.8. शिक्षा में इल्म (ज्ञान) और इश्क (प्रेम) दोनों की पूरकता का ध्यान:

महामति[11] प्राणनाथ तारतम वाणी में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वास्तव में इल्म (ज्ञान) और इश्क (प्रेम) दो तत्व नहीं है, एक ही तत्व है दो रूपों में — दोनों ही परमात्मा को प्रिय हैं, और दोनों एक-दूसरे के पूरक ही नहीं प्राण हैं। इनकी समन्वित दृष्टि ही सच्ची समझ का आधार बनती है। परमात्मा जिसे जिस रूप में अधिक प्रदान करते हैं — किसी को गहरा ज्ञान, तो किसी को गहरा प्रेम — उसे उसी रूप में शिरोधार्य कर लेना चाहिए। यही समर्पण और विनम्रता की पहचान है। इसलिए जब हम किसी ज्ञान को पढ़ें, देखें या अनुभव करें, तो यह ध्यान रहे कि हम उसे इश्क और इल्म — दोनों की संतुलित दृष्टि से ग्रहण कर रहे हैं। यही उस ज्ञान के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धा की साक्षी है और सर्वांगीण सफलता का आधार भी। जैसा कि तारतम वाणी में कहा गया है:

---

11 *तारतम ब्रह्मवाणी में अंकित 'महामति' की मुहर प्रियतम परब्रह्म (प्राणनाथ) की पंच-दिव्य शक्तियों का प्रतीक है। परब्रह्म अपनी कृपा से किसी योग्य तन को अपनी दिव्य शक्तियों से सुशोभित कर, उसके माध्यम से संसार में ब्रह्मज्ञान प्रवाहित करते हैं। इसी अनुग्रह से मिहिरराज ठाकुर अक्षरातीत स्तर की पंच शक्तियों—जोश, दिव्य सम्बन्ध, तारतम ज्ञान, इच्छा-शक्ति और जाग्रत निजबुद्धि—से युक्त हुए और उन्हें 'महामति' पद प्राप्त हुआ। उनके तन में अक्षरातीत परब्रह्म की लीला प्रकट हुई, इसलिए सुन्दरसाथ ने उन्हें 'प्राणनाथ' स्वरूप में नमन किया। परंतु वे स्वयं सदैव ध्यान में अक्षरातीत नूरमयी 'प्राणनाथ' का ही साक्षात्कार करते और सबको उसी परम नूर की ओर उन्मुख करते थे। 'प्राणनाथ' नाम किसी ऐतिहासिक व्यक्ति मात्र का नहीं, बल्कि अक्षरातीत परब्रह्म का भी प्रतीक है, जो सभी आत्माओं के प्रियतम हैं। आज के समय में 'महामति' और 'प्राणनाथ' शब्द कभी संयुक्त ('महामति प्राणनाथ'), कभी पृथक रूप में प्रयोग होते हैं, जिसे व्यावहारिक सरलता के लिए उपयुक्त समझा जाना चाहिए- वास्तविकता के रू में नहीं। -- तारतम वाणी: सागर 15/14, प्रकाश हिं. 37/101, परिक्रमा 30/1, किरंतन ७६/२५*

"ए इल्म ए इश्क, दोऊ इन हक को चाहें।
पर जिनको हक जो देत हैं, सो लेवे सिर चढ़ाए।।"

महामति कहते हैं कि, विवेक, बुद्धि और आत्म-अनुभूति को कभी भी नजरअंदाज नहीं करना चाहिए, क्योंकि यही मार्ग समग्र जागनी, अर्थात् पूर्ण आत्मिक जागरण, की ओर ले जाता है।

जोलों आतम ना देवे साख, तोलों प्रबोध भले दीजे दस लाख।
पर सो क्योंए ना लगे एक वचन, जोलों ना समझे आतम बुध मन।। - तारतम वाणी

महामति की इसी अंतर्दृष्टि को विश्वप्रसिद्ध तत्ववेत्ता केन विल्बर, जिन्हें आधुनिक अध्यात्म का आइन्स्टाइन कहा जाता है, इस तरह अभिव्यक्त करते हैं: "वास्तविक रहस्यवादी केवल विश्वास (belief) के आधार पर किसी बात को स्वीकार नहीं करते। इसके विपरीत, वे आपको एक ऐसा प्रयोगात्मक पथ प्रदान करते हैं, जिसे आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं। इस प्रयोग की *प्रयोगशाला आपका अपना मन और आत्मा* है, और उसका *उपकरण ध्यान* है।"

C1.9. ज्ञान, शिक्षा और सभ्यता की पुनर्स्थापना: एक वैदिक दृष्टिकोण

प्राचीन भारत में ब्राह्मण केवल धार्मिक अनुष्ठानों के ज्ञाता नहीं थे, बल्कि वे समाज के शिक्षक, संस्कृति के संवाहक और मार्गदर्शक थे। उनके माध्यम से शिक्षा और संस्कार की परंपरा जीवित रहती थी। जब युद्धों या आपदाओं से ब्राह्मणों की शिक्षा व्यवस्था टूटती, तो समाज दो-तीन पीढ़ियों में ही संस्कारहीन हो जाता। *मनुस्मृति* और इतिहास बताते हैं कि शिक्षा के अभाव में कई जातियाँ (जैसे पौण्ड्र, द्रविड़, शक, यवन आदि) वैदिक मार्ग से भटक गईं।

वेदों का संदेश है—सामूहिकता और समरसता में ही समाज की उन्नति है। अज्ञान और अंधविश्वास में जीने वाला व्यक्ति भटक जाता है, इसलिए *ज्ञानदान* ही समाज की सबसे बड़ी सेवा है। शिक्षा के पाँच आयाम—शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास—एक-दूसरे के पूरक हैं। वेदों के अनुसार, ज्ञान का दान सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि यह अक्षय है और जितना बाँटा जाए, उतना ही बढ़ता है। सच्चा गुरु वह है जो अपने जीवन से शिक्षा देता है। वानप्रस्थ आश्रम में ज्ञान-वितरण को सर्वोच्च कर्तव्य माना गया है।

सच्चा ब्राह्मण वह है जो ब्रह्मज्ञान को आत्मसात कर लोकमंगल के लिए बांटे। ब्राह्मण का ज्ञान और क्षत्रिय का तेज जब मिलते हैं, तब समाज में न्याय और सामर्थ्य आता है। आज का संकट यह है कि आत्मज्ञानी शासकों का अभाव है। यदि आज के नेता

'राजा-ऋषि' की परंपरा को अपनाएं, तो भारत फिर से आध्यात्मिक दिशा दिखा सकता है—जैसा कि महामति प्राणनाथ ने छत्रसाल जी को आत्मबोध देकर कर दिखाया।

C1.10. भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का मूल: एक समन्वित दृष्टिकोण

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को केवल सूचनाओं के संकलन या व्यवहारिक कौशल तक सीमित नहीं माना गया, बल्कि उसे आत्मा की जागृति और ब्रह्मबोध का माध्यम समझा गया। इस परंपरा में शिक्षा को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है: अपरा विद्या – जो भौतिक, लौकिक, विषयगत और सीमित स्तर की ज्ञानधारा है। यह संसार के व्यवहार, विज्ञान और कलाओं से संबंधित है। परा विद्या – जो स्थूल से परे सूक्ष्म, कारण और महाकारण जगत से जुड़ी हुई है। यह विद्या आत्मा, ब्रह्म और चैतन्य की प्रकृति को समझने का मार्ग प्रदान करती है, और अपरा विद्या को एक गहन आध्यात्मिक आधार देती है। तारतम वाणी केवल अपरा विद्या की बात नहीं करती, बल्कि परा विद्या के चरम सत्य का साक्षात्कार कराती है। यह विद्या उस बोध की ओर ले जाती है जहाँ आत्मा और परमात्मा के बीच का अद्वैत संबंध प्रत्यक्ष अनुभव में आता है।

हमारी संस्कृति में परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को सत्-चित्-आनंद-अनंत और अद्वैत माना गया है: सत् का अर्थ है – नित्य, शाश्वत अस्तित्व। चित् का अर्थ है – सर्वज्ञता, चेतना और प्रेम का स्रोत। आनंद का अर्थ है – वह सुख जो जन्म-मरण और सुख-दुख के द्वंद्व से परे है। जब शिक्षा सत् और चित् पर आधारित होती है, तो वह जीवन को आनंद और शांति से भर देती है। परमात्मा के इस स्वरूप को जानना ही शिक्षा का अंतिम लक्ष्य है। यही वह ज्ञान-मूल है जिससे सभी शिक्षाएँ जन्म लेती हैं। जैसा कि महामति श्री प्राणनाथजी की तारतम वाणी में कहा है:

"अंग उत्कण्ठा उपजी, मेरे करना एह विचार।
ए सत वानी मथ के, लेऊँ जो इनको सार।।"
"इन सार में कई सत सुख, सो मैं निरने करूँ निरधार।
ए सुख देऊँ ब्रह्मसृष्ट को, तो मैं अंगना नार।।"

वे स्पष्ट करते हैं कि केवल वाणी सुनना पर्याप्त नहीं है—उसका सार आत्मा में उतरना चाहिए। आगे, वे समझाते हैं कि जब ज्ञान अहंकार पर आधारित होता है, तो वह दुख देता है; लेकिन जब वह प्रेम और श्रद्धा से जन्मता है, तो वही ज्ञान आत्मिक सुख का स्रोत बन जाता है। इसलिए ज्ञान प्राप्त करते समय कच्चापन, दिखावा, प्रतिस्पर्धा और अहम् के प्रवेश से सतर्क रहना आवश्यक है। क्योंकि ज्ञान का प्रकाश भी यदि अहंकार से जुड़ जाए, तो वह अज्ञान का पर्दा बन सकता है।

महामति जी केवल प्रेम और श्रद्धा से भरी शिक्षा की बात नहीं करते, बल्कि यह भी स्पष्ट करते हैं कि सीखा हुआ ज्ञान तभी सच्चा बनता है जब वह स्व-अनुभव में उतर जाए। ऐसा आत्मबोध तभी संभव होता है जब व्यक्ति परमात्मा की कृपा, और अपने भीतर की प्रेरणा पर पूर्ण विश्वास रखे।

जब हम महामति जी के दिव्य स्वरूप से प्रकट होने वाले आठ गुणों या 'रसों' को जानने का प्रयास करते हैं, तब धीरे-धीरे हमें अनुभव होता है कि हम स्वयं भी उन्हीं दिव्य रसों की तरंगें हैं, और परमात्मा के हृदय-सागर में लीन होकर खेल रहे हैं। ये आठ दिव्य रस हैं: सत्य, सौन्दर्य, एकदिली (एकता), शांति, प्रेम, ज्ञान, संबंध-सुख, महेर (कृपा)। जब ये रस आत्मा के हृदय में उतरते हैं, तब आत्मा को न केवल अपनी असली पहचान मिलने लगती है, बल्कि वह परमात्मा के अद्वैत स्वरूप को भी प्रत्यक्ष रूप से जानने लगती है।

C1.11. अनुभवजन्य ज्ञान और उससे भी परे प्रियतम परब्रह्म की कृपा से उपलब्ध ज्ञान

अनुभव-हीन ज्ञान भार रूप बन जाता है, मुक्ति और निजानंद से हमें वंचित रखता है। स्वसं-वेदीय ज्ञान भीतर से प्रगट होता रहता है। स्वसंवेद वह ज्ञान है जो आत्मनिरीक्षण, ध्यान और आत्मानुभव के माध्यम से प्राप्त होता है—न कि किसी बाहरी स्रोत या शास्त्रीय ग्रंथों से। यह विद्या तब विकसित होती है जब हमारा चित्त परमात्मा के प्रेम में पूर्णतः डूब जाता है और आत्मा भीतर से जाग्रत होती है।"स्वसंवेद" कोई पारंपरिक वैदिक संकल्पना नहीं है, बल्कि एक आधुनिक धारणा है, जो आत्मविकास, आत्मबोध और व्यक्तिगत आध्यात्मिक अनुभव के महत्व को रेखांकित करती है।

तारतम वाणी इसी प्रकार की एक विलक्षण वाणी है, जिसमें न केवल आत्मज्ञान और आत्मविकास की शिक्षा है, बल्कि यह एक जाग्रत आत्मा—इंद्रावती—की दिव्य अनुभूतियों का भी जीवंत संकलन है। इस दृष्टि से, तारतम वाणी स्वयं एक स्वसंवेद सिद्ध ग्रंथ है, क्योंकि इसमें निम्नलिखित चारों तत्व समाहित हैं: आत्मनिरीक्षण और ध्यान, अनुभव के माध्यम से अर्जित ज्ञान, गहन आध्यात्मिक दृष्टि और आत्मिक स्वतंत्रता और स्वायत्तता। इस प्रकार, तारतम वाणी महामति की आत्मा 'इंद्रावती' का स्वसंवेद है—उसके स्वयं के अनुभव और आत्मिक साक्षात्कार का सार।

ए हक इल्म की बारीकियाँ हकें दिए आवत।
ना सीखे सिखाए सोहोबतें, हक महेरें पाइयत ।।

जब बुद्धि जाग्रत होती है, तब व्यक्ति अपने भीतर बसे परमप्रिय परमात्मा की कृपा से जीवंत, मौन, प्रेममय और अनुभवजन्य ज्ञान प्राप्त करता है — जो शास्त्रों की निर्जीवता से परे, चेतना से उत्पन्न होता है। जो इस आंतरिक स्रोत से न जुड़ सकें, वे शास्त्रों के बोझ और बाह्य ज्ञान में भटकते रहते हैं। किन्तु जिसे यह 'प्रेमयुक्त आंतरिक चाबी' मिल

जाती है, वह माया को पार कर समग्रता और आत्मिक आनंद की ओर बढ़ता है — जैसा तारतम वाणी में दर्शाया गया है। जैसे तारतम वाणी कहती है

एम चौद लोकमां कोई नव कहे, जे पार मायानों आ लहे।

मोटी मत धणीमां रहे, बीजा भार पुस्तक केरा वहे।

C1.12. अनुभव के स्तर और परम अनुभव की ओर संकेत:

महामति जी कहते हैं कि अनुभव भी कई स्तरों के होते हैं — इंद्रियगत, मानसिक, आत्मिक, और अंततः परात्मिक। सर्वोच्च महिमा उस अनुभव की है जो आत्मा से भी परे — परात्मा से जुड़ा हो:

"जो सुख परआतम को, सो आतम न पोंहचत।

जो अनुभव होत है आतमा, सो नाहीं जीव को इत।" (किरंतन 73/7)

जिसने केवल क्षर (परिवर्तनशील) और अक्षर (नित्य सत्ता) के स्तरों के अनुभव किए हैं, वे भी अक्षरातीत परब्रह्म के प्रेमानन्द से वंचित रह जाते हैं - यदि उनका अंतस्करण परब्रह्म धणी की दया के अंकुर से सिंचित न हुआ हो:

कई आए अनुभव लेयके, सो पीछे दिए पटकाए।

धणी दया अंकूर बिना, किन सत सुख लियो न जाए। - किरंतन 79/28

यहाँ तक कि यदि किसी ने सदियों तक संगति की हो, अनुभवों का आदान-प्रदान किया हो - तब भी यदि मूल अंकुर, अर्थात् धणी की करुणा, न जागे, तो सब अनुभव अधूरे ही रह जाते हैं:

कदी सौ बरस रहो साथे मां, धणी अनुभव सौ बेर।

मूल अंकूर दया बिना, ले करमें डाले अंधेर। - किरंतन 79/29

C1.13. शुद्ध अनुभव और परमात्मा की इच्छा के बीच तारतम्य संबंध:

सच्चा अनुभव प्रेम और साक्षात्कार के रंग में भीगा हुआ होता है। जब वह घटित होता है, तब शरीर-भाव तक पिघल जाता है:

अंग अनुभवी असल के, सुखकारी सनेह।

अरस परस सब में भया, कछु प्रेमे पलटी देह। किरंतन 80/9

फिर भी, अनुभव भी परमेश्वर की इच्छा और हुक्म के अधीन होता है। हमें ध्यानपूर्वक और श्रद्धा से स्वयं को उस हुक्म के सामने समर्पित करना चाहिए:

मोमिन कहेवें हुकमें, बूझ अनुभव पर हुक्म।

हुक्म कहेवे सो भी हुकमें, कछू ना बिना हुक्म खसम। सिंगार 4/19

ए सब्द धणी फुरमान के, भी ले अनुभव आतम।

तिनसे उड़ाऊँ सुपना, पर कोई साइत हाथ हुक्म। किरंतन 85/13

अंततः परम अनुभव की स्थिति में आत्मा प्रेम से भीग जाए और प्रियतम की साक्षात उपस्थिति भीतर उतर आए — वह किसी बाह्य साधना या संकल्प से नहीं, बल्कि कृपा और समर्पण की अवस्था से ही सम्भव होता है:

ईमान ल्याओ सो ल्याइओ, कहूं अनुभव की बात।
मोको मिले इन बिध सों, श्री धाम धणी साख्यात। किरंतन 96/3

और जब समर्पण पूर्ण हो जाता है — जब प्रेम शरीर के हर अंग में व्याप्त हो जाता है — तब जीवन भी समर्पित हो जाता है। यह जागरण की चरम अवस्था कही जा सकती है:

जब प्रेम सबों अंग पिया, अपना अनुभव कर लिया।
तब वार फेर जीव दिया, अब न्यारे न जीवन जिया। परिक्रमा 1/60

C1.14. शिक्षा का हेतु बहुआयामी बुद्धिमता का ज्ञान होना:

महामति श्री प्राणनाथजी अपने समय से बहुत आगे की सोच रखने वाले व्यक्तित्व थे। महामति बहुआयामी एवं बहुस्तरीय बुद्धिमता के मालिक थे। उनकी वाणी और जीवन में हमें बुद्धिमत्ता के सभी ज्ञात प्रमुख आयामों का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है। वे अपनी बहुआयामी बुद्धि को चेतना के तीन स्तरों — स्वप्न (क्षर), जाग्रत (अक्षर) और प्रेमपूर्ण निजबुद्धि (अक्षरातीत) — पर लागू करते हैं। जीवन की समग्र समझ के लिए कुछ मूलभूत प्रश्नों पर विचार करने को प्रेरित करते है, जिनसे अलग-अलग प्रकार की बुद्धिमत्ता विकसित होने की संभावना बनती है।

ये प्रश्न इस प्रकार हैं: मैं किस बात के प्रति सचेत हूँ? — *संज्ञानात्मक बुद्धिमत्ता;* मेरी सच्ची ज़रूरतें क्या हैं? — *आवश्यकता-बोध;* मैं कौन हूँ? — *स्व-पहचान;* मेरे लिए क्या महत्वपूर्ण है? — *मूल्यबुद्धि;* मैं क्या महसूस कर रहा हूँ? — *भावनात्मक बुद्धिमत्ता;* क्या मेरा निर्णय नैतिक है? — *नैतिक बुद्धिमत्ता;* मैं दूसरों से कैसे जुड़ता हूँ? — *अंतरव्यक्तीय बुद्धिमत्ता;* मैं शारीरिक रूप से किस तरह क्रियाशील हूँ? — *शारीरिक/सॉमैटिक बुद्धिमत्ता;* मेरे लिए परम सत्य क्या है? — *आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता;* क्या मैं संकल्प के साथ कार्य करता हूँ? — *संकल्पबुद्धि*

प्राणनाथजी ने सभी प्रकार की बुद्धियों को अपने जीवन में न केवल प्रदर्शित किया, बल्कि उन्हें जाग्रत कर दूसरों में भी विकसित किया। चाहे वह आत्म-चिंतन हो, प्रेममय सेवा हो, संकल्पशक्ति हो या हजारों आत्मिक गीतों की रचना — वे हर आयाम में पूर्ण थे। समग्र शिक्षा और जीवन की पूर्णता के लिए इन सभी प्रकार की बुद्धिमत्ता को समझना और जाग्रत करना आवश्यक है; यदि कोई पक्ष छूट जाए, तो आत्मिक उन्नति अधूरी रह जाती है।

चार सौ वर्ष पूर्व महामति प्राणनाथजी ने ऐसे युग की नींव रखी, जिसमें मानवता से अपेक्षा की जाती है कि वह धर्म, दर्शन और विज्ञान — तीनों के समन्वित विकास से अपने आत्मस्वरूप को पहचाने। आज इसी दृष्टि की आवश्यकता फिर से है, ताकि शिक्षा, संस्कृति और अध्यात्म के क्षेत्र में वही आत्म-जागनी का आलोक फैले। इसी कारण हम विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में खोजी संतों की वाणी पढ़ाने की बात करते हैं — न कि केवल शास्त्रीय वाद-विवाद या तपस्वी हठयोग की सीमित परंपरा तक सीमित रहने की।

C1.15. निष्कर्ष:

शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि व्यक्ति की चेतना को जगाना है। यह तभी संभव है जब शिक्षा *सूचना से आगे बढ़कर समझ, विवेक और आत्मबोध* की ओर ले जाए। ज्ञान और प्रेम, अनुभव और विचार, सूचना और साक्षात्कार — जब ये सभी समरस होकर किसी शिक्षा पद्धति का अंग बनते हैं, तब ही वह शिक्षा व्यक्ति को 'मानव' से 'महामानव' की ओर ले जाती है।

महामति प्राणनाथ की शिक्षाएँ हमें यह सिखाती हैं कि सच्ची शिक्षा वह है जो हमें अपने *स्वरूप* की ओर लौटने की प्रेरणा देती है — जहाँ न कोई द्वैत है, न भय, न स्वार्थ; केवल एकरस प्रेम, साक्षी भाव और ब्रह्मानुभूति है। इसलिए 21वीं सदी की शिक्षा व्यवस्था को न केवल ज्ञान आधारित, बल्कि *चेतना आधारित* बनाना होगा — तभी व्यक्ति, समाज और संस्कृति का सच्चा पुनरुत्थान संभव होगा।

"तारतम वाणी के गहन भावों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर समझना न केवल शिक्षाप्रद है, बल्कि यह राष्ट्र निर्माण, मानव निर्माण, पर्यावरण संरक्षण और आत्म-जागरण की दिशा में एक सशक्त एवं प्रेरणादायक पहल सिद्ध हो सकता है।"

भाव	चौपाई	तारतम वाणी ग्रंथ/प्र./चो.
अनवरत तत्व-खोज	खोज सोहागिन ना थके, जोलों पार के पारै पार। नित खोजे चरनी चढ़े, नए नए करे विचार।	कलश हिं 1/8
ग्रंथों का भार बनाम तत्वज्ञान	*एम चौद लोकमां कोई नव कहे, जे पार मायानों आ लहे।* *मोटी मत धणीमां रहे, बीजा भार पुस्तक केरा वहे।*	*रास 1/38*
गुरु-सतगुरु की भूमिका	ए संसे सब समझाए के, कोई अंग करे उजास। सो गुरु मेरा मैं सेवों ताए, सुध चित होए दास।	किरन्तन 28/24
दोषारोपण नहीं, अंतरदृष्टि	*पगला पोताना जुओ नहीं, अने बीजाने देओ छो दोष।* *सास्त्र अर्थ समझया नथी, तां जातो नथी रिदे रोष।*	*किरन्तन 128/22*

ब्रह्मज्ञान की समझ ही मूल बात है	इत बात बड़ी है समझ की, और ईमान का काम। साथ जी समझ ऐसी चाहिए, जैसा कह्या अल्ला कलाम।	किरन्तन 94/18
अहंकार बाधा है, समर्पितता चाबी	*जब लग मैं ना समझी, तब लग थी मैं मैं।* *समझे थें मैं उड़ गई, सब कछू हुआ तुम से।*	*खिलवत 3/10*
आत्म-साक्षी – प्रेमानन्द की चाबी	समझे बिना सुख पार को नाहीं, जो उदम करो कई लाख। तोलों प्रेम न उपजे पूरा, जो लों अंदर न देवे साख।।	(किरन्तन 28/16)
गहन विचार से आत्म भेदन से परिवर्तन प्रारंभ	*विचार विचार विचारहीं, बेधे सकल संधान।* *रोम रोम ताए भेदहीं, सब सब्द के बान।।*	*कलश हिं 11/12*
दिल को न छूने वाला सत्य व्यर्थ	कई साखें गुन विचार विचार, बिध बिध करी पुकार। तो भी घाव कलेजे न लग्या, यों गया जनम अकार।।	किरन्तन 100/5

संदर्भ सूची:

1. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री कुलजम स्वरूप - तारतम वाणी (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
2. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री बीतक साहेब (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
3. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, वेद और स्वसम वेद, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
4. पटेल, नरेंद्र एवं रमेश, दिव्य प्रेम पत्र – श्री प्राणनाथ तारतम वाणी परिचय, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2023
5. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, गीता तारतम्य दर्शन, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
6. विलबर, केन, फ़ाइंडिंग रैडिकल होलनेस, शम्भला पब्लिकेशन्स, इंक., 2024

शोध पत्र 2:
खोज क्या है?

श्रीमद् तारतम वाणी की खोज: आत्म-जागरण से सत्य-विज्ञान की चेतना तक

श्री रमेशभाई वी. पटेल, बी.ए., बी.एड. (संस्कृत)
सेवानिवृत्त सहायक शिक्षक, सेंट ज़ेवियर्स हाई स्कूल, भीलोडा, गुजरात

C2.1 भूमिका

यह लेख "खोज और विज्ञान" विषय पर एक गहन चिंतन प्रस्तुत करता है, जिसमें यह तर्क दिया गया है कि सत्य की खोज ही जीवन का मूल उद्देश्य होना चाहिए, न कि केवल ज्ञान का संग्रह या ग्रंथों की व्याख्या। विद्यालयों और धर्मशास्त्रों में प्रचलित पद्धति प्रायः तथ्यों को रटने या पूर्ववर्ती मतों को दोहराने की होती है, जबकि सच्ची *खोज* अनुभव और निष्कलंक दृष्टि से होती है।

यहाँ दर्शाया गया है कि कैसे धार्मिक ग्रंथों की विभिन्न व्याख्याएँ सम्प्रदायों की उत्पत्ति का कारण बनीं, और कैसे इनकी व्याख्या अक्सर पूर्वग्रहों से प्रेरित होती है। महामति प्राणनाथ जैसे संतों ने शास्त्रार्थ या भाष्य के माध्यम से सत्य को पकड़ने की विधि को खारिज करते हुए *स्वयं के अनुभव* (स्वसंवेद) पर बल दिया। प्रस्तुत विचार विज्ञान और अध्यात्म के बीच एक गहरे सामंजस्य की ओर संकेत करते हैं, जहाँ वैज्ञानिक चेतना भी निरंतर खोज की प्रक्रिया में संलग्न रहती है। खोज का यह दृष्टिकोण, न केवल धार्मिक पूर्वग्रहों से मुक्त होता है, बल्कि नवीनता और अनन्तता के प्रति जागरूक रहता है। लेखक यह भी स्पष्ट करता है कि सामाजिक और धार्मिक मान्यताएँ व्यवहारिक सहूलियतें हो सकती हैं, परंतु सत्य की प्राप्ति के मार्ग में वे बाधा भी बन सकती हैं यदि उन्हें अंतिम सत्य मान लिया जाए।

C2.2 खोज और विज्ञान

"खोज" चेतना का द्वार है। आज विद्यालयों में विद्यार्थी विज्ञान पढ़ते हैं, परंतु वास्तव में खोज नहीं करते। जो खोज करते हैं, वे साधारण विद्यार्थियों से अलग होते हैं — वही आगे चलकर वैज्ञानिक बनते हैं। वैज्ञानिकों की विशेषता यह होती है कि वे केवल विश्वास नहीं करते; वे अनुभव करते हैं, परीक्षण करते हैं, और पूर्वग्रहों से मुक्त रहकर सत्य की खोज करते हैं।

जब कोई व्यक्ति "खोज" को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लेता है, तब वह वही कहता है जो उसने स्वयं अनुभव किया हो — न कि वह जो केवल सुना या पढ़ा हो। इसी खोज-भावना ने संसार में अनेक शास्त्रों, दर्शनों और ग्रंथों की रचना करवाई। जिन्होंने अनुभव से कुछ नया जाना, उन्होंने अपने वचनों और लेखन के माध्यम से दूसरों को भी उसकी ओर मार्ग दिखाया।

"खोज" महामति प्राणनाथ जी की आध्यात्मिक चेतना का मूल और केंद्रबिंदु है। वे बार-बार "खोज" का आग्रह करते हैं, क्योंकि वे भलीभांति जानते हैं कि मानव की समस्त प्रगति — चाहे वह भौतिक हो या आत्मिक — केवल जिज्ञासा, अध्ययन और अनुसंधान से ही संभव है, किसी चमत्कार से नहीं। उनका सम्पूर्ण जीवन स्वयं एक सतत शोधयात्रा था। वे अंतिम समय तक एक विद्यार्थी, एक शिक्षक और एक विचारक बने रहे। बीतक साहित्य में उनके अध्ययन, शिक्षण और सामाजिक जागरण की अनेक झलकियाँ मिलती हैं।

"खोज सुहागिन ना थके, जोलो पार के पार।
नित खोजे चरणी चढ़े, नये नये विचार।" — तारतम वाणी

महामति ज्ञान को स्थिर, जड़ या अंतिम नहीं मानते। उनके लिए ज्ञान एक निरंतर विकसित होती प्रक्रिया है, जो संवाद, पुनर्विचार, और परीक्षण से परिष्कृत होती है। वे एक ऐसे सुन्दरसाथ समाज की कल्पना करते हैं जो जिज्ञासु, विवेकशील, और विचारशील हो।

"ज्यों-ज्यों मायने विचारहीं, त्यों बेधे सकल संधान।"
"ऊपर मायने न होवे पेहेचान, ए तुम सुनियो दिल के कान।" — तारतम वाणी

उनके लिए दर्शन कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं, बल्कि निरंतर प्रकट होती चेतना है। इसी भावना से वे कहते हैं:

"खोज खोज और खोजहीं, आद के अनाद।
पल पल सबद प्रकासहीं, श्रवनों ऐही स्वाद।"

C2,3 खोज का वैज्ञानिक और संवेदनात्मक विस्तार:

महामति उस युग में सक्रिय थे जब आधुनिक वैज्ञानिक चेतना का उदय हो रहा था। वे न्यूटन के समकालीन थे। न्यूटन ने बताया कि हमारी दृष्टि केवल इन्फ्रारेड और अल्ट्रावायलेट के बीच के रंग देख सकती है — इसके बाहर का संसार हमारी आँखों के लिए अदृश्य है। इसी तरह आइंस्टीन ने समय को "चौथा आयाम" कहा, जो सामान्य बोध के पार है।

तितली की दृष्टि इसका एक सुंदर उदाहरण है। विज्ञान कहता है कि तितली को संसार अधिक पराबैंगनी, अधिक बहुरंगी और अधिक जीवंत दिखाई देता है। जो फूल हमें

केवल पीला लगता है, वही तितली को UV पैटर्न्स से युक्त, मार्गदर्शन करती हुई कोई चमकती पट्टी जैसा प्रतीत होता है। तो मनुष्य यह कैसे कह सकता है कि उसकी खोज पूरी हो चुकी है?

महामति के बीतक और तारतम वाणी में भी यही दृष्टिकोण प्रतिध्वनित होता है — कि सत्य अनंत है, और उसकी खोज भी अनवरत होनी चाहिए। उन्होंने अपने अनुयायियों में अनुसंधान की संस्कृति का बीज बोया। उनका स्पष्ट मत था: कोई भी व्याख्या अंतिम नहीं हो सकती — वह समय, अनुभव और समझ के साथ अद्यतन होती रहनी चाहिए।

निजानंद संप्रदाय की आत्मा में भी यही खोजमूलक चेतना समाई हुई है। श्री निजानंद सतगुरु देवचंद्र जी की आध्यात्मिक यात्रा 11 वर्ष की आयु से आरंभ हुई और 40 वर्ष की आयु तक अनेक दिव्य अनुभूतियों से परिपक्व हुई। किंतु उन्होंने कभी इन अनुभवों को अंतिम नहीं माना। यहां तक कि तारतम साक्षात्कार के बाद भी, उनके जीवन के अंतिम समय तक यही इच्छा रही कि वे भविष्य में होने वाली जागनी लीला में सहभागी बनें।

श्री निजानंद सतगुरु का प्रारंभिक प्रश्न रहा — "मैं कौन, कहां थे आइया, कहां हैं मेरो भरतार"

और परब्रह्म के स्वरूप द्वारा पूछा गया प्रश्न — "तूं कौन आई इत क्योंकर…" यह स्पष्ट करते हैं कि यह खोज केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि निजानंद परंपरा की मूल चेतना में निहित है।

C2.4 शब्द की सीमा और अनुभव की व्याप्ति:

महामति बार-बार इस बात पर बल देते हैं कि शब्दों की अपनी सीमाएं होती हैं — जबकि अनुभव असीम होता है।

"ए देह मेरी हद की, इसी देह की अकल।
धामधनी सुख बरनन, केहेने चाहे असल।"
"ले मसाला इत का, ताथे किन विध रूह कहे…" (किरंतन 73/14)

उनके परम साथी ब्रह्ममुनि श्री नवरंग स्वामी भी यही बात अपनी वाणी में प्रकट करते हैं: "सबद अमारो पहुँचे नहीं तमने…" यही भावना तुलसीदास, कालिदास और अन्य कवियों के यहां भी देखने को मिलती है: "क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्वचाल्पविशयामति…" *(रघुवंशम्),* अर्थात, "यह महान वंश कहाँ और मेरी सीमित बुद्धि कहाँ?"

C2.5 सम्प्रदायवाद और शास्त्र-व्याख्या

भारतीय धार्मिक इतिहास में सम्प्रदायवाद, मानव-बुद्धि की तार्किकता और भाष्य-कौशल का एक अद्वितीय उदाहरण है। हिन्दू धर्म के तीन मुख्य ग्रंथ—उपनिषद,

गीता और ब्रह्मसूत्र—को 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है। लगभग सवा हजार वर्ष पूर्व आदि शंकराचार्य ने इन तीनों पर भाष्य करके अद्वैतवाद की स्थापना की। इसके बाद जो भी व्यक्ति कोई नया मत स्थापित करना चाहता था, उसने इन ग्रंथों पर अपना भाष्य लिखना आवश्यक समझा। गीता पर ही अब तक तीन सौ से अधिक भाष्य रच डाले गए हैं। रामानुज, निम्बार्क, मध्व और वल्लभ—इन चार प्रमुख वैष्णव आचार्यों ने अपने-अपने मत को प्रस्थानत्रयी पर आधारित करते हुए दर्शन की विभिन्न धाराएं गढ़ीं।

दर्शन और धर्मशास्त्र के विद्यार्थी इन भाष्यों और उनके पारस्परिक खंडन-मंडन को बड़ी रुचि से पढ़ते हैं, और शिक्षकों द्वारा भी उन्हें इसी में गहन ज्ञान की अनुभूति कराई जाती है। एक ही मंत्र के विभिन्न अर्थ निकालना, एक ही श्लोक को तोड़-मरोड़कर उसमें द्वैत, अद्वैत या विशिष्टाद्वैत अथवा शुद्धाद्वैत सिद्ध करना जैसे विद्वत्ता का महोत्सव बन गया हो।

इसी पांडित्य-प्रदर्शन की सीमाओं को देखते हुए संतों और महामति प्राणनाथ जी ने स्पष्ट कहा कि शास्त्रार्थ द्वारा सत्य की खोज नहीं होती। उन्होंने किसी भी ग्रंथ पर भाष्य नहीं किया और न ही अपने अनुयायियों को ऐसा करने की प्रेरणा दी।

"सब्द जो सीधे प्रेम के, सास्त्र तो स्यानप छल।
या विध कोई ना समझहीं, बात पड़ी है वल।।" — *तारतम वाणी*

सत्य का अनुभव केवल साधना से होता है—शास्त्र के शब्दों की व्याख्या से नहीं। जब कोई व्यक्ति शास्त्रों से अर्थ निकालकर सत्य का निर्णय करता है, तो वह अनजाने ही अपने पूर्वग्रह की पुष्टि करता है। सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण पहले से ही यह तय कर चुका होता है कि उसे शास्त्र के शब्दों से कौन-सा निष्कर्ष निकालना है।

शास्त्र केवल अनुभव का संग्रह हैं—दिशा नहीं है। खोज की यह प्रवृत्ति केवल हिन्दू धर्म तक सीमित नहीं है। इस्लाम, ईसाई, यहूदी और बौद्ध धर्मों में भी ग्रंथों की अलग-अलग व्याख्याओं ने अनेकों सम्प्रदायों को जन्म दिया है। आज भी न्यायालयों में वकील और न्यायाधीश, कानून के ग्रंथों के विविध अर्थों के माध्यम से अपनी बौद्धिक क्षमता का प्रदर्शन करते हैं।

इसीलिए संतों ने सदैव यह चेतावनी दी कि केवल ग्रंथों को आधार बनाकर सत्य निर्णय नहीं किया जा सकता, क्योंकि मानव बुद्धि और रुचि सदा नवीन अर्थ गढ़ती रहेगी। स्पष्ट है कि शास्त्र-व्याख्या, सत्य को स्थापित करने का उपाय नहीं बन सकती। संतों ने स्वयं अनुभूति से, खोज की प्रक्रिया द्वारा सत्य का साक्षात्कार किया।

यह कहना ठीक है कि सभी शास्त्र, खोजी अनुभवों पर आधारित हैं। लेकिन खोज को आगे बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि अब तक जो कुछ खोजा गया है, उसे सुव्यवस्थित रूप से सामने रखा जाए, ताकि नई खोज उसी से आगे शुरू हो। अन्यथा लोग

अपनी-अपनी सीमित जानकारी के आधार पर बार-बार उन्हीं निष्कर्षों को दोहराते रहेंगे जो पहले ही खोजे जा चुके हैं।

C2.6 विद्यालय और विज्ञान की भूमिका: सत्य, विज्ञान और खोज की चेतना

विज्ञान शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल तथ्यों को रटाना नहीं, बल्कि अब तक हुई खोजों का सम्यक अध्ययन कराना है ताकि अगली पीढ़ी इन्हीं आधारों पर आगे बढ़कर नए सत्य की खोज कर सके। शुद्ध अध्ययन और सच्ची खोज में यही फर्क है—अध्ययन ज्ञान को संचित करता है, जबकि खोज अनुभव की गहराइयों में उतरकर नवीन सत्य को उजागर करती है।

कुछ सत्यदृष्टाओं का यह कथन अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि सत्य की खोज से पहले यह देखना ज़रूरी है कि हम कुछ 'मान' तो नहीं बैठे हैं। वास्तव में जानना तभी संभव होता है जब अनुभव से सत्य का साक्षात्कार हो, जबकि मानना केवल कल्पना से उपजा होता है। जो भी सत्य के दर्शन तक पहुँचे हैं, उन्होंने यह अनुभूति 'न मानने' की स्थिति में प्राप्त की है—जब उनके भीतर कोई पूर्वग्रह या धारणा शेष नहीं थी।

यह सत्य है कि व्यवहार में हम अनेक मान्यताओं पर टिके रहते हैं—माता-पिता, देश, जाति, धर्म, गुरु आदि की पहचानें हमारी सामाजिक संरचना का हिस्सा हैं। परन्तु इनसे सत्य का कोई सीधा संबंध नहीं है। समाज में सहजता के लिए मान्यताओं की आवश्यकता हो सकती है, लेकिन यदि हमें यह बोध बना रहे कि ये केवल व्यवहारिक सुविधाएँ हैं—कल्पनात्मक व्यवस्था हैं—तो सत्य की ओर दृष्टि खुली रहती है।

उदाहरण के लिए, यदि हमें किसी चोर के साथ रहना पड़े और हम यह जानते हों कि वह चोर है, तो हम सावधानीपूर्वक रह सकते हैं। उसी तरह, अगर हम यह जागरूकता बनाए रखें कि हमारी मान्यताएँ केवल परंपरा से आई धारणाएँ हैं—न कि अंतिम सत्य—तो हम उनके साथ रहते हुए भी उनसे अंधे होकर नहीं जुड़ते। जब यह दृष्टि निर्मित होती है, तब भीतर वह सत्य प्रकट होने लगता है जो कल्पना पर नहीं, अनुभव पर आधारित होता है।

हालाँकि देखने में यह बात सरल प्रतीत होती है, परंतु व्यवहार में यह जागरूकता बनाए रखना कठिन है। जन्म के समय हमारा किसी धर्म, जाति या परंपरा से कोई संबंध नहीं होता, पर जन्म के बाद इनसे इस कदर जुड़ जाते हैं कि उनकी आलोचना भी हमें असह्य लगने लगती है। यदि उस क्षण यह स्मरण हो जाए कि हम पहले इन सबसे अछूते थे—तो हमारी पहचान का आधार बदल सकता है। यही दृष्टि परिवर्तन सत्य से जुड़ने की कुंजी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जो सत्यदृष्टा पहले सत्य को देखकर गए हैं और कोई 'मान्यता' छोड़ गए हैं, उनसे हमारा संबंध क्या है? इसका उत्तर विज्ञान की दृष्टि से भी समझा जा सकता है—जैसे विज्ञान की खोजों को आगे बढ़ाते हुए हम पिछली खोजों से सीखते हैं, उसी तरह सत्य की खोज भी निरंतर चलती रहती है। सत्यदृष्टाओं के अनुभव हमारे ज्ञान में जुड़ते जाते हैं और यह प्रक्रिया तारतम्य कहलाती है—पूर्व अनुभवों से समरस होकर नए अनुभवों को जोड़ना।

सत्य और ब्रह्माण्ड दोनों ही अनन्त हैं, इसलिए यह खोज भी अनन्त ही है। उदाहरण स्वरूप, जो व्यक्ति आज भी विज्ञान से अनभिज्ञ है, वह यही मानता है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है—क्योंकि उसे आँखों से वैसा ही दिखता है। लेकिन जब वह खगोल-विज्ञान के तथ्यों से जुड़ता है, तब भ्रम का पर्दा हटता है। इसी तरह, जब तक हम पुराने विश्वासों को समझकर नहीं परखते, हम सत्य से दूर ही रहते हैं।

यही अंतर है पुरातनवादी और आधुनिक खोजी दृष्टिकोण में। पुरातनवादी मानता है कि सत्य पहले ही पूर्णतः खोजा जा चुका है—हमें बस उस पर विश्वास करना है। जबकि खोजी जानता है कि अनन्त सत्य की खोज कभी पूर्ण नहीं हो सकती। आत्मा और परमात्मा का संबंध भी इसी रहस्य में है—यह संबंध अनुभव का विषय है, और परमात्मा की लीला, अनुभव, ज्ञान—all are infinite.

इसलिए सत्य की खोज किसी एक बिंदु पर पूर्ण नहीं होती—बल्कि वह निरंतर जारी एक जीवंत प्रक्रिया है, जो ध्यान, जागरूकता और निष्कलंक दृष्टि की मांग करती है। अनन्त में से अनन्त निकालें तो भी शेष अनन्त ही रहता है। जितना देखा गया, वह भी अनन्त। जो देखने को शेष है, वह भी अनन्त। जो दिखाता है, वह भी अनन्त। जो देखता है, वह भी अनन्त। अनन्त की यह अनन्तता, कैसी बेबूझ पहेली है! दिखने में है शान्त, पर अन्तहीन होकर एक तारतम्य में जुड़ जाती है।

आज विज्ञान जिस गति से नए-नए रहस्यों की खोज कर रहा है, उसे देखते हुए यह कैसे मान लिया जाए कि हजार वर्षों बाद भी सत्य के प्रति वही दृष्टिकोण प्रासंगिक रहेगा जो आज हमारे लिए है? जिस तरह हम आज से दस हजार वर्ष पूर्व रचित वेदों में वर्णित इन्द्र, अग्नि, सूर्य, वरुण आदि की पूजाओं को अपने जीवन में सार्थक नहीं पाते, वैसे ही आने वाली पीढ़ियों के लिए हमारी आज की धारणाएँ भी एक समय अप्रासंगिक हो सकती हैं।

और फिर, क्या आज किसी सामान्य हिन्दू परिवार में वेद पाए जाते हैं? यदि नहीं, तो क्या यह आश्चर्य की बात है कि महामति प्राणनाथ जी को एक नवीन, *स्वयं*

अनुभव पर आधारित ज्ञान—स्वसंवेद—का बोध हुआ? जब सब कुछ परिवर्तनशील है, तब ज्ञान की गति को भी गतिमान क्यों न माना जाए?

सत्य का अनुभव भी कुछ वैसा ही है जैसे सागर। जो व्यक्ति कभी सागर को देखे ही नहीं, उसके लिए वह अकल्पनीय और अनिर्वचनीय रहेगा। पर जिसने सागर में यात्राएँ की हैं, वह न केवल उसका वर्णन कर सकेगा, बल्कि यह भी कहेगा कि उसके भीतर अनेक रहस्य अब भी अज्ञात हैं। यही फर्क होता है—*अनुभवी* और *अननुभवी* के बीच।

सो तेता ही बोलिया, जो गया जहां लों चल।
अपने अपने मुख से, जाहेर करें मजल।। - तारतम वाणी

C2.7 विविधता में सामंजस्य

हम देखते हैं कि यह विश्व विविधताओं से परिपूर्ण है। प्रत्येक वस्तु की अपनी विशिष्टता है—कीट-पतंगों की अपनी प्रकृति है, पशु-पक्षियों की अपनी, जड़ जगत के अणु-परमाणुओं की अलग पहचान है, और मनुष्य तथा नक्षत्र जगत की अपनी विशेषताएँ हैं। इन सभी भिन्नताओं के बीच एक अद्भुत सामंजस्य भी देखने को मिलता है। यह संसार एकता और विविधता—दोनों का सुंदर तारतम्य-केंद्रित समन्वय है। एक में अनेक और अनेक में एक—इन दोनों पहलुओं को समान महत्ता प्राप्त है।

पशु जगत मुख्यतः संवेदनात्मक होता है, किन्तु मनुष्य में न केवल संवेदना है, बल्कि कर्त्तव्य-बोध और नैतिक चेतना का भी विकास हुआ है। इसी भावबोध के कारण उसने समाज, परिवार और राष्ट्र की रचना की। उसमें विचार-विनिमय की क्षमता आई, जिससे वह केवल वर्तमान ही नहीं, अपने ऐतिहासिक अतीत से भी जुड़ सका। और जब इस नैतिक चेतना में आध्यात्मिक जिज्ञासा का संयोग हुआ, तो उसने समूचे विश्व के रहस्यों को जानने की खोज आरंभ की।

यही बोध उसे यह समझाने में समर्थ हुआ कि वह केवल प्रकृति का दास नहीं है, बल्कि उसके साथ संघर्ष करके, उसे अपने अनुकूल बनाकर, जीवन को अधिक सुखद और समृद्ध बना सकता है।

भविष्य की ओर दृष्टि डालें, तो स्पष्ट होता है कि मनुष्य की चेतना और सामर्थ्य एक महामानव की ओर अग्रसर है। एक ऐसी नवीन सभ्यता का जन्म होगा जो नये मूल्यों पर आधारित होगी—जहाँ सुख-सुविधाएँ सभी को समान रूप से उपलब्ध होंगी; जहाँ बुद्धि वैज्ञानिक होगी, परंतु निष्कलंक और करुणामयी; और जहाँ यह भी सम्भव होगा कि मनुष्य उन गूढ़ सत्यों का साक्षात्कार करे जो पदार्थ के परे हैं—न द्रव्य, न गुण, और न ही देश-काल-कारण की सीमा में बंधे हुए—बल्कि अस्तित्व के मूल स्वरूप से जुड़े हुए।

C2.8 तारतम वाणी में "खोज": आत्मा की जागरण यात्रा

महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी में "खोज" आत्मा की उस गहरी साधना का प्रतीक है, जिसमें वह अपने मूल स्वरूप, परमात्मा और परम प्रेम की ओर अग्रसर होती है। यह खोज बाह्य से भीतरी, ज्ञान से प्रेम, और अनुभव से अद्वैत की ओर ले जाती है।

यह न केवल बौद्धिक प्रयास, बल्कि आत्मिक क्रिया है — एक ऐसा मार्ग जो आत्मा को भीतर के सत्य से जोड़ता है और जीवन की दृष्टि को रूपांतरित करता है। सच्ची खोज ही वह प्रकाश है, जो अज्ञान के अंधकार को मिटा सकती है, और प्रेमपूर्ण आत्मबोध ही वह निधि है जिसे पाने के लिए आत्मा यह संपूर्ण यात्रा करती है।"खोज" केवल दर्शन नहीं, आत्मिक क्रिया है — एक गहरी साधना, जो आत्मा को उसके सत्स्वरूप, परमात्मा, और परम प्रेम से जोड़ती है। यह खोज केवल उत्तर नहीं देती, बल्कि वह भीतर का द्वार खोलती है, जहाँ से आत्मा स्वयं को पहचानती है — और वहीं से संसार के प्रति उसकी दृष्टि बदल जाती है। सच्चा खोजी वही है जो धैर्य, प्रेम और विवेक के साथ चलते हुए अंततः आत्मबोध, सत्य और मुक्ति को प्राप्त करता है।

C2.8.1. सतत खोज और चेतना का विकास: सच्चा साधक कभी थमता नहीं। उसकी खोज बाहरी और भीतरी जगत में निरंतर चलती रहती है। यह केवल जानकारी की तलाश नहीं, बल्कि चेतना के परिपक्व होने की प्रक्रिया है। शब्दों का स्वाद लेते हुए, नित्य नए विचारों से आत्मा उन्नत होती जाती है।

C2.8.2. बिना सतगुरु के खोज की उलझन: यदि यह खोज बिना ज्ञान और सतगुरु के हो, तो साधक भ्रम में पड़ जाता है। जितना अधिक खोजता है, उतना ही उलझता है — और अंधकार दूर नहीं होता।

C2.8.3. ब्रह्मांडीय सीमाएं और शून्य की खोज: केवल बाह्य ब्रह्मांडों या शून्य-निराकार की खोज अंततः अधूरी रह जाती है। करोड़ों ब्रह्मांडों के स्वामी भी परम सत्य को अंतिम रूप से जान नहीं सके, क्योंकि आत्मा की अंतरयात्रा के बिना वह ज्ञान संभव नहीं।

C2.8.4. वेद और जगत की सीमित खोज: वेदों और दुनिया ने परम सत्य की खोज की, पर परात्पर प्रभु का साक्षात ज्ञान नहीं पाया। शून्य की खोज में कई थक गए, पर किसी ने पूर्ण सत्य को नहीं छुआ।

C2.8.5. अंतर्मन की उलझन और प्रेमपूर्ण विरह: जब मन ही मन में उलझा होता है, तब खोज अधूरी रहती है। पर जब कोई विरहिणी अपने प्रिय को खोजती है, तो वह सब कुछ छोड़ देती है — उसकी प्रेमपूर्ण तड़प खोज को दिशा और ऊर्जा देती है।

C2.8.6. सतगुरु और करतार की प्राप्ति: जो खोज सच्चे भाव से की जाती है, वह सतगुरु और उनके माध्यम से करतार (परमात्मा) तक पहुँचाती है। यह खोज अमूल्य निधि का द्वार खोल देती है।

C2.8.7. वाणी की शक्ति और खोज की भूमिका: प्राणनाथजी की वाणी स्वयं संसार में गुंजती है, और सच्चे खोजियों के माध्यम से अज्ञान का अंधकार हटाती है। वह स्पष्ट कहते हैं कि खोज ही वह रास्ता है जो प्रकाश तक ले जाता है।

C2.8.8. जैसी खोज, वैसा ज्ञान: जिसकी जैसी खोज होती है, उसे वैसा ही ज्ञान मिलता है। शब्द तो सभी के सामने हैं, पर केवल वही उसे समझ पाता है, जिसकी खोज अंतर से उठी हो।

C2.8.9. परख और सच्चा जवेरी: केवल सुनना या बोलना काफी नहीं — सत्य के लिए परख ज़रूरी है। सच्चा खोजी ही खरे रत्न की पहचान करता है और धैर्यपूर्वक उसे पा लेता है।

C2.8.10. खोज का साहस और प्रेम की तीव्रता: खोजी व्यक्ति कभी पीछे नहीं हटता। वह दुःख-सुख से परे होकर अपने मन को दृढ़ करता है। वह बाहर और भीतर — दोनों की खोज करता है, और अंततः साक्षात दर्शन को प्राप्त करता है। प्रेम की खोज सबसे कठिन और सबसे महत्वपूर्ण है — क्योंकि ब्रह्म भी इसी प्रेमरस से अभिव्यक्त होता है।

C2.8.11. दिल में परमात्मा की खोज और आत्ममुक्ति: जो आत्मा अपने हृदय में परमात्मा को खोजती है, वह विकारों से मुक्त होकर मुक्ति का मार्ग पाती है। आत्मा की खोज अंततः सबमें आत्मा को देखने की दृष्टि देती है।

C2.8.12. प्रकट सत्य की उपेक्षा और गूढ़ खोज का भ्रम: प्राणनाथजी अंत में चेताते हैं कि कुछ लोग साक्षात प्रकट सत्य को छोड़कर गूढ़ और रहस्यमय प्रतीकों में उलझे रहते हैं। यह विस्मयकारी स्थिति है, क्योंकि सत्य हमारे सामने है — बस उसे पहचानने की आवश्यकता है।

C2.9 निष्कर्ष:

सत्य की खोज निरंतर चलने वाली एक जीवंत प्रक्रिया है, जो पूर्वग्रह रहित, अनुभव-संपन्न और तारतम्यपूर्ण दृष्टिकोण की मांग करती है। शास्त्र, मत, परंपरा, या संप्रदाय किसी भी रूप में अंतिम सत्य का निर्धारण नहीं कर सकते—बल्कि वे केवल अतीत की खोजों का संकलन हैं। आगे की खोज के लिए उन्हें एक पड़ाव की तरह स्वीकार किया जा सकता है, परंतु उन पर अटक जाना खोज की गति को रोक देता है। लेख यह स्पष्ट करता है कि विज्ञान और अध्यात्म दोनों की सच्ची आत्मा खोज में ही निहित है। जो जाना गया है वह भी अनन्त है, और जो जाना जाना है वह भी अनन्त है। अतः यह मानना कि सत्य पहले ही पूर्ण रूप से ज्ञात हो चुका है, एक भ्रांति है।

भविष्य में एक ऐसी चेतना की ओर मानवता अग्रसर हो सकती है जो वैज्ञानिक, करुणामयी और आध्यात्मिक रूप से सशक्त हो। जहाँ अनुभव, विज्ञान और आत्मिक

गहराई—तीनों एक समन्वय में कार्य करेंगे। यही खोजमय दृष्टि, मानवता को अनन्त के साक्षात्कार की ओर ले जाती है। आज भी महामति के जीवन, साहित्य और दर्शन का अध्ययन केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि दार्शनिक, साहित्यिक, समाजशास्त्रीय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया जा सकता है। बीते वर्षों में सम्प्रदाय द्वारा अनुसंधान की समकालीन आवश्यकताओं की ओर जो प्रयास किए गए हैं, वे प्रशंसनीय हैं — और आशा की जानी चाहिए कि आने वाले समय में यह खोज और अनुसंधान की धारा और भी तीव्र होगी।

अंत में, "तारतम वाणी के गहन भावों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर समझना न केवल शिक्षाप्रद है, बल्कि यह राष्ट्र निर्माण, मानव निर्माण, पर्यावरण संरक्षण और आत्म-जागरण की दिशा में एक सशक्त एवं प्रेरणादायक पहल सिद्ध हो सकता है। खोज संबंधी कुछ चॉपाईयां ध्यान देने योग्य है:

भाव	चौपाई	तारतम वाणी ग्रंथ संदर्भ
अनवरत तत्व-खोज	खोज सोहागिन ना थके, जोलों पार के पारै पार। नित खोजे चरनी चढ़े, नए नए करे विचार।	कलश हिं 1/8
बिना ज्ञान – सतगुरु खोज में उलझन	*यामें ज्यों ज्यों खोजिए, त्यों त्यों बंध पड़ते जाएं।* *कई उदम जो कीजिए, तो भी तिमर न छोड़े ताए।।*	*कलश हिं, 1/30*
ब्राहमात्माएं खोज के आनंद में मग्न रहती है	खोज खोज और खोजहीं, आद के आद अनाद। पल पल सब्द प्रकास हीं, श्रवणों एही स्वाद।।	कलश हिं. 11/9
शून्य-निराकार की खोज सब की अधूरी रही	*सुन्य निराकार पार को, खोज खोज रहे कई हार।* *बोहोतों बहुबिध ढूंढ़या, पर किया न किने निरधार।।*	*किरन्तन 52/4*
वेदों को परम सत्य न मिलना	कई खोज करी निगम, पर पाई नाहीं गम। ए पैदा जिनके हुकम, सो पाया न किन खसम।।	खुलासा 11/6
दुनिया की खोज में परम उपलब्धि शून्य की	*खोज करी सब दुनियां, किन पाई न सूरत हक।* *खोज खोज सुन्य में गए, कोई आगूं न हुए बेसक।।*	*खुलासा 7/3*
ब्रह्मांडों के धणी को भी परब्रह्म न मिलना	कोट ब्रह्मांड जो हो गए, तित काहूं ना सुनी। खोज खोज खोजी थके, चौदे लोक के धनी।।	प्रकाश हिं, 31/5
अंतर्मन में उलझन और खोज संसार में	*खोज थके सब खेल खसमरी।* *मन ही में मन उरझाना, होत न काहू गमरी।। टेक।।*	*किरन्तन 47/1*

विरहिणी द्वारा परब्रह्म पिया की खोज	पिया मैं बोहोत भांत तोको खोजिया, छोड़ धंधा सब और। पूछत फिरों सोहागनी, कोई बताओ पिया ठौर।।	कलश हिं, 2/1
खोज से सतगुरु और करतार की प्राप्ति	*खोज बड़ी संसार रे तुम खोजो साधो, खोज बडी संसार।* *खोजत खोजत सतगुर पाइए, सतगुर संग करतार।।*	*किरन्तन 26/1*
खोज से अमूल्य निधि प्राप्त	खोज पाई जिन ए निध, धंन धंन सो बुध। दृढ करी सनेहसों, साथ को कही सुध।।	प्रकाश हिं. 31/19
तारतम बानी और खोज का प्रभाव	*ए बानी गरजत मांझ संसार, खोजी खोज मिटावे अंधार।* *मूढ़मती न जाने विचार, महामत कहें पुकार पुकार।।*	*किरन्तन 3/ 9*
जैसी खोज वैसा ज्ञान	जिनहूं जैसा खोजिया, सो बोले बुध माफक। मैं देखे सब्द सबन के, जो गए जाहेर मुख बक।।	कलश हिं. 2/40
परख द्वारा ही सच्ची पहचान	*बोले चाले पर कोई न पेहेचाने, परखत नहीं परखानों।* *महामत कहे माहें पार खोजोगे, तब जाए आप ओलखानो।।*	*किरन्तन 1/5*
सच्चा खोजी ही रत्न पाए	खरो खोजी हसे जाण जवेरी, ते जोसे दृढ़ मन धीर। वस्त अखंड ने तेहज लेसे, जे होसे वचिखिण वीर।।	किरन्तन 125/11
खोजी के साहस की महिमा	*सुखने रखोपे दुख वीटया छे, लेवाए नहीं केणे काचे जन।* *सूरधीर हसे खरो खोजी, ते लेसे दृढ़ करी मन।।*	*किरन्तन 131/3*
बाह्य-भीतरी खोज और अंतःदर्शन	खोजी खोजे बाहेर भीतर, ओ अंतर बैठा आप। सत सुपने को पार थीं पेखे, पर सुपना न देखे साख्यात।।	किरन्तन 2/5
प्रेमरस की खोज	*पिया इस्क रस, ब्रह्मसृष्ट को अरस परस।* *काहूं और न इस्क खोज, औरों जाए न उठाया बोझ।।*	*परिक्रमा 1/16*
दिल में परमात्मा की खोज और मुक्ति	जो रूह पैठे हक दिल में, सो मगन माहें न्यामत। जो तित पड़ी कदी खोज में, तो छूटे ना लग कयामत।।	सिनगार 2/19

आत्मा की खोज से विकारमुक्ति	*जो खोज करे आतम की, ताय दिल में न होए विकार।* *सब आतम देखहीं, एही करे करार।।*	*बीतक 31/28*
प्रकट सत्य को छोड़ गूढ़ की खोज	जाहेर दुलहा छोड़के, ढूंढ़त माएने गुझ। ए खोज तिनों की देख के, होत अचम्भा मुझ।।	सनंध 22/9

संदर्भ सूची:

1. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री कुलजम स्वरूप - तारतम वाणी (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
2. ब्रह्म मुनि, लालदास महामति, टीका – शुशान्त महात्मा, श्री बीतक साहेब (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
3. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, वेद और स्वसम वेद, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
4. पटेल, नरेंद्र एवं रमेश, दिव्य प्रेम पत्र – श्री प्राणनाथ तारतम वाणी परिचय, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2023

शोध पत्र 3
डिजिटल युग में "मन की सवारी" के लिए प्रभावी उपाय: तारतम ज्ञान, भौतिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान के आलोक में

श्री मनुभाई पटेल,

संस्थापक: रेणुका बेन मनु भाई पटेल श्री महामति प्राणनाथ अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय छतरपुर मध्य प्रदेश; मल्टीमीडिया प्रोड्यूसर, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, एवं अमिधारा ट्रस्ट, साबरकांठा, गुजरात

C3.1 भूमिका:

यह स्पष्ट होता जा रहा है कि डिजिटल युग, विशेषकर सोशल मीडिया की आक्रमक उपस्थितिने हमारे ध्यान, सोचने की गहराई, और आंतरिक शांति को गहराई से प्रभावित किया है। आज "मन को साधना" केवल ध्यान या किसी एक तकनीक तक सीमित नहीं रह गया है; यह अब डिजिटल सजगता और मानसिक अनुशासन का एक समग्र अभ्यास बन चुका है।

डिजिटल युग की प्रमुख मानसिक चुनौतियाँ है: 1. सोशल मीडिया से दिमाग सड़ना (ब्रेन रॉट) – सतही, त्वरित कंटेंट और अत्यधिक उत्तेजना और सजग रूप से जुड़ाव की कमी के कारण गहराई में सोचने की क्षमता - तीक्ष्णता, रचनात्मकता और धैर्य क्षीण होना। 2. डोपामिन लूप्स – सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स नशे जैसे व्यवहार को जन्म दे रहे हैं, जिससे सतत उत्तेजना और बेचैनी का बढ़ना। और 3. ब्रेनवॉशिंग – वैचारिक गुटबंदी और एल्गोरिदमिक बबल्स द्वारा लोगों को मानसिक रूप से सीमित और सामाजिक रूप से अलग-थलग कर देना।

इन चुनौतियों के उत्तर क्या हो सकते हैं? "मन की सवारी" की कला को हाँसील करना अब एक व्यापक, बहुआयामी अभ्यास बन गई है — जिसमें नवीन और परंपरागत ज्ञान, दोनों की साझेदारी आवश्यक है। आज ध्यान, परहेज़, डिजिटल डिटॉक्स जैसे उपाय पर्याप्त नहीं; सजगता, प्रसंगबुद्धि, और भीतर की स्पष्टता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक है।

समकालीन सोच में मन की पुनर्परिभाषा: पोस्ट-मॉडर्न युग की विचारधारा यह मानती है कि कोई एक दृष्टिकोण अंतिम नहीं हो सकता। हर व्यक्ति की सच्चाई, शैली और सोच को स्वीकार करना ही विविधता का सम्मान है। इसी भावना से आज के शोध और प्रयोग आध्यात्म, मनोविज्ञान, विज्ञान, तकनीक और संस्कृति को एक साथ जोड़ने का

प्रयास कर रहे हैं ताकि "मन" को समग्र रूप से समझा और सशक्त किया जा सके। आधुनिक मनोविज्ञान की उभरती दृष्टियों में अब मन को केवल जैव-रासायनिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक संवेदनशील, सामाजिक, और ऊर्जा-संचालित संरचना माना जा रहा है। ऐसे में तीन महत्वपूर्ण अवधारणाएँ उभर कर आई हैं: 1. देह-स्थित मन (Embodied Mind) – मन केवल मस्तिष्क में नहीं, शरीर की पूरी अनुभूति में व्याप्त है। 2. विस्तारित मन (Extended Mind) – मन बाहरी औजारों, तकनीक और पर्यावरण से भी जुड़ा है।, और 3. समाज-निर्मित मन (Socially Constructed Mind) – हमारी सोच और पहचान सामाजिक संरचनाओं द्वारा आकार पाती है।

इस ज्ञान के विकास के प्रकाश में एकीकृत-सजग मन के निर्माण हेतु जो चार प्रारंभिक उपाय मुख्य रूप से अपनाए जाते हैं, इन का संक्षिप्त परिचय इस लेख में संलग्न है, जो डिजिटल अराजकता के बीच एक शांत और स्पष्ट मानसिक संरचना निर्मित करने में सहायक हो सकते हैं। ये हैं: 1. डोपामिन की समझ – अपने डिजिटल व्यवहार में डोपामिन आधारित प्रतिक्रिया चक्र को पहचानना।, 2. 'शुरुआती मन' की पुनरावृत्ति – बालमन जैसी जिज्ञासा और सरलता को पुनः जगाना।, 3. समग्र (समन्वित) दृष्टिकोण – मन को केवल मानसिक नहीं, भावनात्मक, सामाजिक और आध्यात्मिक रूप से देखना। और 4. न्यूरो-भाषिक प्रोग्रामिंग NLP तकनीकें या आंतरिक संवाद और मानसिक रूपांतरण के व्यावहारिक उपाय अपनाना।

आज "मन की सवारी" का निष्कर्ष रूप यह मंत्र उभर कर आता है: "समन्वित रूप से सजग बनो, संदर्भ समझो, प्रतिक्रिया से पहले रुको — और अपने डिजिटल जीवन को भीतर की स्पष्टता से देखो।" हम देखेंगे कि यह सजगता हमें न केवल विकर्षणों से बचाती है, बल्कि आत्मबोध की ओर भी ले जाती है।

हालाँकि आधुनिक विचारधाराएँ मन की समझ को गहराई और विविधता प्रदान कर रही हैं, किंतु इन प्रयासों में महामति श्री प्राणनाथ जी प्रदत्त तारतम ज्ञान के मर्म को अब तक व्यवस्थित रूप से नहीं जोड़ा गया है। इसके बिना, मन की यात्रा — व्यष्टि से समष्टि, अक्षर ब्रह्म से अक्षरातीत परमचेतना तक — अधूरी रह जाती है। परिणामस्वरूप, मानव समाज आज भी उस अखंड आनंद और अंतिम समाधान की खोज से वंचित है, जो इन चेतन आयामों के अनुभव में निहित है। डिजिटल युग में सजगता, समग्रता और आत्मबोध की यात्रा में जुडने से मन की अर्थपूर्ण सवारी संभव है।

C3.2 मन की कार्य विधि

यजुर्वेद के 34वें अध्याय 'शिव संकल्प सूक्त' में मन को एक अत्यंत शक्ति-संपन्न तत्व के रूप में वर्णित किया गया है। यह सूक्त बताता है कि मन दिन-रात सक्रिय

रहता है, जाग्रत अवस्था में तो स्पष्ट रूप से, और निद्रा के दौरान भी अंतर्मन (अवचेतन) जागरूक रहता है। उदाहरण के तौर पर, यदि कोई गहरी नींद में हो और उसे किसी विशेष नाम से पुकारा जाए, तो वही जागता है क्योंकि उसका अन्तर्मन उस पहचान को थामे रहता है। यह दर्शाता है कि मन केवल शरीर का हिस्सा नहीं, बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व का संवेदनशील केंद्र है।

मन के दो प्रमुख भाग होते हैं—ऊपरी सतही मन जो इच्छाओं, संकल्पों और विकल्पों से जुड़ा होता है, और अन्तर्मन जिसे चित्त भी कहते हैं, जो स्मृतियों, अधूरी इच्छाओं और अवचेतन भावनाओं का भंडार है। ये अधूरी इच्छाएं स्वप्नों के रूप में प्रकट होती हैं और जीवन के व्यवहार पर गहरा प्रभाव डालती हैं। हमारे डर, भय, या असामान्य प्रतिक्रियाएं जैसे ऊँचाई का डर या अंधेरे का भय, अक्सर इसी अंतर्मन में जमा हुए गहरे संस्कारों का परिणाम होती हैं।

अंतर्मन केवल स्मृतियों का संग्रह नहीं, बल्कि उन संस्कारों का पुनर्गठन करता है। यह हमारे अनुभवों को एक नई समझ और रचनात्मकता में बदलने की क्षमता रखता है। गणितज्ञ और वैज्ञानिक भी जटिल समस्याओं का हल पाने के लिए अपनी अवचेतन शक्ति का सहारा लेते हैं। जबकि सतही मन सीमित और सतत व्यस्त रहता है, अंतर्मन गहरे स्तर पर काम कर समस्या का समाधान खोजता है। अंतर्मन में दबे नकारात्मक संस्कार हमारे व्यवहार में विकृतियां पैदा कर सकते हैं, जैसे हकलाना या बार-बार आंखें मिचकाना। ये व्यवहार हमारे भीतर छुपे तनाव और दोषों के संकेत हैं। लेकिन अगर हम अंतर्मन का सकारात्मक उपयोग करें, तो यह हमारे व्यक्तित्व को निखार सकता है। सोते समय अंतर्मन को प्रेरणादायक कथन दोहराने से हमारी आदतें और क्षमताएं बेहतर हो सकती हैं, जैसे बच्चे को कहानियां सुनाकर उसके मन में अच्छे संस्कार स्थापित करना।

महात्मा गांधी अंतर्मन की शक्ति को गहराई से समझते थे। जब वे थक जाते थे, तो कुछ मिनटों का विश्राम लेकर पुनः ताजगी से कार्य में लग जाते थे। उन्होंने जटिल समस्याओं को तुरंत हल करने के बजाय समय दिया ताकि अंतर्मन उसमें गहराई से काम कर सके। उनके निर्णय, जैसे 21 दिन का उपवास, अंतर्मन की सूझ-बूझ से लिए गए थे। उन की यह युक्ति आज की प्रभावी और वैज्ञानिक रूप से समर्थित 'पोमोडोरो तकनीक' जैसी है। इस समय प्रबंधन विधिमें 25 मिनट केंद्रित काम और 5 मिनट ब्रेक के चक्र होते हैं। चार चक्रों के बाद लंबा ब्रेक (15–30 मिनट) लिया जाता है। इस के अनुसरण से हमारी उत्पादकता, ध्यान क्षमता और मानसिक ऊर्जा में वृद्धि हो सकती है।

इस प्रकार, मन और अंतर्मन दोनों मिलकर हमारी स्मृति, सृजनात्मकता और निर्णय लेने की प्रक्रिया का केंद्र हैं। यह शक्ति हमारे भय और बाधाओं का स्रोत भी बन

सकती है, लेकिन अगर हम इसे समझदारी से अपनाएं और अंतर्मन के साथ मित्रवत संवाद करें, तो यह हमारे लिए सबसे बड़ा सहयोगी साबित होता है। मन को साधकर और उसके गूढ़ रहस्यों को समझकर हम अपने जीवन को अधिक संतुलित, शांतिपूर्ण और सफल बना सकते हैं।

मन की सीमाएँ और संभावनाएँ भी स्पष्ट हो जाती है। मन एक ओर जहाँ आलोचनात्मकता, शंका और अस्तित्व की चिंता में उलझ सकता है, वहीं सूचना की अधिकता, डिजिटल विखंडन और विकेन्द्रित आत्म-भावना से अस्थिर और भ्रमित भी हो सकता है। यह कभी-कभी अपनी ही बनाई 'कहानी' में उलझकर वास्तविकता से भटक जाता है — जिसे 'Narrative Self' delusion कहा जाता है। परंतु दूसरी ओर, मन में रचनात्मकता, संवेदनशीलता, सह-अस्तित्व और चेतना के उत्कर्ष की अनंत संभावनाएँ भी छिपी होती हैं। सीमित होते हुए भी, मन विकास और विस्तार की दिशा में अग्रसर होने की शक्ति रखता है।

C3.3 तनाव — कारण, प्रभाव और समाधान

तनाव तब उत्पन्न होता है जब मन अपनी क्षमता से अधिक चिंता, विशेषतः भविष्य की आशंकाओं, को ढोने लगता है। यह न केवल मानसिक बल्कि शारीरिक असंतुलन भी उत्पन्न करता है — जैसे हार्मोन असंतुलन, रोग प्रतिरोधक क्षमता में गिरावट, और भावनात्मक अशांति। परिणामस्वरूप व्यक्ति अवसाद, अपराधबोध, सामाजिक अलगाव और यहां तक कि आत्मघातीय विचारों से भी ग्रसित हो सकता है।

तनाव से मुक्ति के प्रमुख उपाय है: हँसी और संवाद: खुलकर हँसना, दोस्तों से संवाद करना तनाव कम करता है। आध्यात्मिकता: ईश्वर में विश्वास, प्रार्थना और सेवा भाव मन को स्थिर करते हैं। प्राकृतिक उपाय: योग, आयुर्वेद, प्राणायाम, और प्रकृति से जुड़ाव तनाव घटाते हैं। दर्शन और आत्मबोध: जीवन के संघर्षों को स्वीकार कर ज्ञान और भक्ति से शांति पाई जा सकती है। ध्यान और अंतःकरण की चेतना: ध्यान, आत्मचिंतन और अंतर्मन की सुनवाई से सही मार्ग प्राप्त होता है।

अंततः, मनुष्य के भीतर का अंतःकरण — मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार — उस से ऊंची आत्मा की उपस्थिति में संचालित होता है। छोटे-छोटे विवेकपूर्ण निर्णय और स्वबोध के साथ किया गया जीवन-विकास ही तनाव से मुक्ति और पूर्णता की ओर ले जाता है। यजुर्वेद का "शिवसंकल्प सूक्त" भी मन को शुभ संकल्पों की ओर प्रेरित कर तनावमुक्त जीवन का मार्ग दिखाता है।

C3.4 मन की अवस्थाएँ और वैदिक दृष्टि

मन चेतना का एक चंचल, गतिशील और अनुभव-संग्राहक पक्ष है, जो जीव की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति जैसी अवस्थाओं में कार्य करता है। यह बाह्य अनुभवों और

आंतरिक विचारों के बीच सेतु है, जो जिस वस्तु पर टिकता है, उसी का स्वरूप ग्रहण करता है। जब यह सत् तत्व से जुड़ता है, तो ज्ञान की ज्योति प्रकट होती है। वैदिक दृष्टिकोण, विशेषतः यजुर्वेद के शिव संकल्प सूक्त में, मन को बुद्धि और प्रयत्न का मूल माना गया है, जो आत्मा और इन्द्रियों के साथ मिलकर जीवात्मा को परमात्मा से जोड़ता है। जो भक्तिरस में या धर्म में स्थिर, उदात्त मन वाला हो उसे शास्त्रों में 'महामना' कहा गया है। उन का मन महान, करुणामय और विवेकशील होता है। वह केवल नियम के अनुसार नहीं, परिस्थिति के अनुसार लोकहितकारी निर्णय करता है, जैसे श्रीकृष्ण द्वारा धर्म की व्यापक व्याख्या करना। युधिष्ठिर, जनक विदेही, तथा गांधीजी जैसे व्यक्तित्व इस संतुलित करुणा और विवेक के प्रतीक हैं।

मन केवल अनुभव नहीं करता, बल्कि सूचनाओं को संगठित कर ज्ञान का निर्माण करता है। बुद्धि इस संयोजन की शक्ति है, जो आंतरिक और बाह्य अनुभूतियों को जोड़कर जीवन में समग्र दृष्टि प्रदान करती है। यह समन्वय मानसिक ही नहीं, बल्कि जैविक स्तर पर भी होता है, जहां शरीर की सूक्ष्म चेतना सामूहिक बुद्धि के रूप में कार्य करती है। मन की संयोजन शक्ति हमें खंडित दृष्टि से उठाकर समग्रता की ओर ले जाती है, जिससे आत्मा ब्रह्म और सच्चिदानंद परब्रह्म से जुड़ती है। यही मन, जब शुद्ध होता है, तो वैदिक ज्ञान और आत्मबोध अपने आप प्रकाशित होते हैं। इस से भी परे स्वसंवेदीय सत्व को ग्रहण करते हुए तारतमीय परात्म बोध भी संभव होता है।

C3.5 मन की संयोजन शक्ति ही अनुभवों को अर्थ देती है:

संसार में सभी वस्तुएँ निश्चित प्राकृतिक नियमों के अधीन हैं, पर उनका ज्ञान तभी संभव होता है जब मन उन्हें ग्रहण कर संयोजित करे। बाह्य अनुभवों को समझने और अर्थ प्रदान करने का कार्य मन की संयोजन शक्ति के माध्यम से होता है — जैसे एक मिस्त्री ईंट और सीमेंट को मिलाकर भवन बनाता है।

इस संयोजन की प्रमुख शक्ति है बुद्धि, जो इन्द्रियों द्वारा लाए गए अनुभवों को तार्किक, स्पष्ट और सार्वभौमिक ज्ञान में बदलती है। इन्द्रियाँ कभी-कभी भ्रमित कर सकती हैं, पर बुद्धि वस्तुओं को देश-काल-कारण के संदर्भ में सही रूप में जोड़कर यथार्थ को प्रकट करती है। मनुष्य के अनुभवों की एकता — अर्थात् "मैं किस तरह अनुभवों को जोड़ता हूँ" — यह एक ऐसी भीतरी दृष्टि है जिसे केवल स्वयं व्यक्ति ही जान सकता है। पागलपन या मानसिक विकृति में यही संयोजन शक्ति अव्यवस्थित हो जाती है, जिससे विचार बिखर जाते हैं।

यह संयोजन केवल मानसिक नहीं, बल्कि जैविक भी है। हमारे शरीर के करोड़ों जीवकोशों (cells) में सूक्ष्म चेतना होती है, जो मिलकर एक सामूहिक बुद्धि बनाती है।

जीवित अवस्था में यह बुद्धि समन्वय बनाए रखती है, परंतु मृत्यु के बाद प्राण के निकलते ही यह एकता भंग हो जाती है। इसतरह, मन की संयोजन शक्ति ही अनुभवों को अर्थ देती है, ज्ञान को संरचना देती है और चेतना को समग्र बनाती है। यह शक्ति मानसिक, बौद्धिक और जैविक स्तर पर कार्य करती है, और यही मनुष्य को यथार्थ को जानने और ब्रह्म और परब्रह्म से जुड़ने की क्षमता प्रदान करती है।

प्रत्येक जीव एक दर्पण के समान है, जो सृष्टि को खंडों में देखता है। जैसे मच्छर शीशमहल को टुकड़ों में समझता है, जबकि राजा उसे एक ही दृष्टि में समग्रता से देख लेता है, वैसे ही परब्रह्म का सत् अंग अक्षर ब्रह्म सम्पूर्ण सृष्टि को एक साथ देखता है — समग्र, अखंड और पूर्ण रूप में। उसकी दृष्टि संयोजन की पूर्णता है। मन की संयोजन शक्ति केवल अनुभवों को जोड़ने तक सीमित नहीं, बल्कि वह विराट चेतना की ओर संकेत करती है, जहाँ खंडों का विलय होकर तारतम्य में समग्रता प्रकट होती है। यही बुद्धि रूपी सेतु आत्मा को ब्रह्म से जोड़ता है और आत्मानुभूति को ब्रह्मानुभूति में रूपांतरित करता है।

C3.6 तन और मन – दो नहीं, एक जीवनधारा:

पारंपरिक दर्शन जैसे उपनिषद, योग और आयुर्वेद में तन और मन को अलग तत्त्वों की तरह माना गया है, पर उनकी गहरी अंतःसंबंधता भी स्वीकार की गई है — वे एक ही चेतना के दो स्तर माने हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान और न्यूरोसाइंस भी अब इसी को स्वीकारते हैं कि तन-मन एक संवेदनशील, एकीकृत प्रणाली है, जहाँ विचार शरीर की मुद्रा, श्वास, आंतों और हार्मोन से प्रभावित होते हैं। ट्रॉमा भी अब केवल मानसिक नहीं, शरीर में संग्रहित माना जाता है।

तारतमज्ञान जैसी आध्यात्मिक दृष्टि इसे और गहराई से देखती है — तन, मन और अन्य चेतना के कई आवरण हैं, जो साधना, प्रेम और ज्ञान से शुद्ध होते हैं। इसलिए, तन और मन को एक संयुक्त इकाई – "तन-मन" – के रूप में समझना ही उपचार, साधना और रूपांतरण के लिए अधिक प्रभावी और सत्य के निकट दृष्टिकोण है।

C3.7 मन की समझ: तारतम दृष्टि से

C3.7.1. **मन की गति और स्थिति**: "अब तोको कहूं चाक चकरड़ा…" मन कुम्हार के चाक की तरह निरंतर गतिशील, कभी स्थिर न रहने वाला है। यह जीव के सिर पर सवार होकर उसे घुमा रहा है, और वह स्थिर ध्यान में टिक नहीं पाता। जब तक वह ध्यान और ज्ञान से अनुशासित न हो, मन-प्रकृति मूलतः भटकावमूलक है।

C3.7.2. **चेतना से विहीन, ज्ञान से विमुख मन**: मन को अंधा और भाग्यहीन कहा गया है क्योंकि धनी के वचन मिलने के बाद भी उसमें स्थिरता नहीं आई।"अंध

अभागी क्यों हुआ ऐसा…" यह बुद्धि और चेतना के आलोक के बिना भटकने वाला मन है, जिसे जागृति की आवश्यकता है।

C3.7.3. **मन की असीम शक्ति और क्षमता**: मन "जोरावर" है – यह अत्यंत सामर्थ्यशाली है, क्योंकि इसमें कल्पना, संकल्प, निर्णय की शक्ति है।"समरथ मन तू बड़ा जोरावर…" मन ही मुक्ति का मार्ग भी है, और बंधन का जाल भी – यह उसकी द्वैध भूमिका है।

C3.7.4**. मन ही साधना का द्वार**: यदि मन संकल्प-विकल्प से युक्त होकर धनी की सेवा और ध्यान में लगे, तो संपूर्ण आत्मसिद्धि संभव है।"सेवा कर धनी धाम…" मन ही साधना का साधन है, बशर्ते वह वैराग्य और ज्ञान से अनुशासित हो।

C3.7.5**. मन का आधिपत्य** – लेकिन आत्मा की सत्ता से अधीन: मन का कोई स्पष्ट रूप या मूल नहीं, पर वह सभी इन्द्रियों और यहां तक कि जीव को भी वश में करता है।"मूल बिना करूं सिरदारी…" यह सूक्ष्मतम होते हुए भी अत्यंत प्रभावी है — इसे केवल आत्मबोध से ही वश में किया जा सकता है।

C3.7.6. **मन तभी सही दिशा में काम करता है, जब जीव जागे**: मन अपने आप में साधना नहीं कर सकता, वह केवल जागृत जीव की प्रेरणा से धाम की दिशा में गति करता है।"जोलों जीव जागे नहीं…" जब तक जीव स्वरूप बोध से जाग्रत नहीं होता, तब तक मन केवल सांसारिक संकल्पों में उलझा रहता है।

C3.7.7. **जब मन संयमित होता है तो वह परम को भी ला सकता है:** यदि मन एकाग्र हो जाए और सेवा में लग जाए तो वह परमधाम के तत्वों को हृदय में प्रकट कर सकता है।"अब तुम विध मेरी देखियो…" यही मन सप्तगुणातीत सेवा भावों को जन्म दे सकता है। सप्तगुणातीत सेवा भाव वह शुद्ध, अखंड, स्वाभाविक सेवा भावना है जिसमें कर्तापन का अभाव होता है, कोई लाभ, स्वर्ग या मुक्ति की इच्छा नहीं होती, सेवा करने वाला और जिस की सेवा हो रही है — वे अलग नहीं होते, यह सेवा लीला और प्रेम के रूप में होती है — न कर्मबंधन, न पुण्यबांधन। तारतम वाणी भी इस सेवा भाव को "स्वलीलाद्वैत" की भावना से जोड़ती है। यह सेवा न केवल देह से, बल्कि आत्म-चेतना या परात्म चेतना भाव से होती है। यह सेवा आज्ञा, श्रद्धा, और प्रेमरस से जन्मती है, जिस में सेवक और सेव्य (सेवा का अधिकारी) अभिन्न अनुभव होते हैं।

C3.7.8. **मन – चंचलता से चैतन्यता तक**: समग्र (integrated/holistic) दृष्टिकोण से देखा जाए तो मन एक चंचल, गतिशील और कल्पनाशील तत्व है। संकल्प, सेवा और सृजन इसकी शक्तियाँ हैं, जबकि माया, मोह और अस्थिरता इसकी सीमाएँ। इसका उत्थान आत्मबोध, साक्षीभाव, सात्विकता और सेवा से होता है, और शुद्धिकरण ध्यान, शुद्ध आहार, सत्संग और श्रवण द्वारा संभव है। जब मन आत्मा की शांति में स्थित होता है, तब वह केवल चंचल नहीं रह जाता, बल्कि चैतन्य का माध्यम बन जाता है।

आधुनिक न्यूरोसाइंस भी यही संकेत देती है — mindfulness, neuroplasticity और conscious intention के माध्यम से मन को पुनर्निर्मित किया जा सकता है। जब पुराने संस्कार और संवेदनाएं रूपांतरित होती हैं, तब ज्ञान, सेवा और प्रेम से प्रेरित "नव-मन" प्रकट होता है। जैसा श्रीजी कहते हैं: "अब तुम बिध मेरी देखियो..." "मैं हृदय में धनी को बसा सकता हूँ।" मन तब साधना का सेतु बन जाता है। यदि नकारात्मक हो, तो यही मन काम, क्रोध, मोह और अहंकार का जाल बन जाता है। लेकिन यदि सकारात्मक हो जाए, तो यह परमात्मा की ओर सेतु बन जाता है। इसलिए, **न तो मन को मारना है, न त्यागना है — हमें मन को समझना है, साधना से सँवारना है, और परम के चरणों में समर्पित करना है।** जब मन "धनी" के ज्ञान से प्रेरित हो जाता है, तब चित्त चकोर की तरह केवल प्रियतम रूपी चन्द्रमा की ओर ही देखता है — न भटकता है, न थकता है, बस 'साक्षात' के आनंद में झूमता है।

C3.8 मन की सवारी के मनोवैज्ञानिक उपाय:

C3.8.1. डोपामिन लूप को पहचानें और ध्यान पुनः प्राप्त करें: बार-बार स्क्रॉलिंग, बेचैनी, सतही आनंद की आदत को देखें। फिर उपाय के रूप में 'डोपामिन डिटॉक्स' अर्थात नियमित डिजिटल उपवास करें। सजग विकल्प चुनें: स्क्रॉलिंग की जगह गहरी साँस या टहलना सीखें। आत्म-जागरूकता पूर्वक पूछें: "मैं अभी क्या खोज रहा हूँ?" मेडिटेशन और गहन पठन द्वारा अपने ध्यान को प्रशिक्षित करें। इस तरह लक्ष्य बनाएं रखें: "मुझे डोपामिन का स्वामी बनना है, शिकार नहीं।"

C3.8.2. "शुरुआती मन" का अभ्यास करें (Beginner's Mind): हर अनुभव को पहली बार की तरह देखने का है यह अभ्यास: रुकें और साँस लें – यह सजगता का प्रवेश द्वार है। पूर्वधारणाओं से मुक्त अवलोकन द्वारा अपने अनुभव को न्याय रहित बनाएं। दिन के अंत में चिंतन और आत्म-पुनरावलोकन द्वारा दैनिक रीसेट करते रहें। इस के अनेक लाभ है, जैसे: मानसिक रीसेट, खुलेपन और जिज्ञासा से भरपूर सजगता।

C3.8.3. समग्र मन (Integral Mind) का प्रयोग करें: सूचना को चार क्वाड्रैंट में देखें — आंतरिक/बाह्य, व्यक्तिगत/सामूहिक। किसी पोस्ट को पढ़ते समय पूछें: मुझे इससे क्या अनुभव हो रहा है? यह समाज या संस्कृति में कैसे फिट होता है? दृष्टिकोण परिवर्तन (Reframing) करें: कंटेंट को "अच्छा-बुरा" न कहें, उसकी आंशिक सच्चाइयाँ समझें। इस से डिजिटल जीवन में स्पष्टता, विवेक और संतुलन आएगा।

C3.8.4. NLP तकनीकों से आंतरिक संवाद को पुनः परिभाषित करें: प्रमुख NLP अभ्यास: Reframing: प्रतिक्रिया को प्रेरणा में बदलना। Anchoring: सकारात्मक भावनाओं से जुड़ना। Pattern Interrupt: नकारात्मक सोच को रोकना। लाभ: प्रतिक्रियात्मक व्यवहार में कमी, आत्म-मूल्य की सुरक्षा, डिजिटल तुलना से स्वतंत्रता

C3.9 निष्कर्ष:

सजग डिजिटल जीवन की ओर: सोशल मीडिया के युग में "मन की सवारी" केवल ध्यान या परहेज़ नहीं, बल्कि एक एकीकृत दृष्टि से सजग, समग्र और सशक्त मानसिक अनुशासन है। चार उपाय — डोपामिन की समझ, शुरुआती मन, समग्र दृष्टिकोण और NLP तकनीकें — मिलकर एक ऐसी मानसिक संरचना बनाते हैं, जो आज की डिजिटल बाढ़ में भी शांत, स्पष्ट और गहराई से जुड़ी रह सकती है। मन की सवारी के लिए सवार साधक को स्वयं को पूर्ण तारतम्य-केंद्रित समन्वय और सजगता के साथ तैयार करना होगा। मन की सवारी का मंत्र: "तारतम ज्ञान के प्रकाश में समन्वित दृष्टि से सजग बनो, संदर्भ समझो, प्रतिक्रिया से पहले रुको — और अपने डिजिटल जीवन को भीतर की स्पष्टता से देखो।"

तीन-स्तरीय दृष्टिकोण:

स्तर	साधन	उद्देश्य
शारीरिक (Body Level)	योग, प्राणायाम, तनाव मुक्ति अभ्यास	मनो-दैहिक मुक्ति
मनोवैज्ञानिक (Mind Level)	NLP, सजगता, डायरी लिखना, CBT tools सचेतनता आधारित संज्ञानात्मक चिकित्सा	विचारों का पुनर्गठन
अध्यात्मिक (Self/Soul Level)	ध्यान, तारतम ज्ञान, नाम-जप, समर्पण	'मन को पार' कर परम के साथ जुड़ना

मनोबल सशक्तिकरण के समन्वित उपाय – परंपरागत धर्म बनाम आधुनिक मनोविज्ञान

विषय	परंपरागत धर्म	आधुनिक मनोविज्ञान (विशेषकर पोस्ट-मॉडर्न)
मन का स्वरूप	अशांत, वासना-मूलक, भ्रमकारी	जैविक + सामाजिक + सांस्कृतिक रूप से निर्मित
साधन	ध्यान, जप, संयम, सत्संग, भक्ति, त्याग	CBT, ACT, Mindfulness, Somatic therapy, NLP
उद्देश्य	आत्मा की प्राप्ति, मोक्ष, तारतम ब्रह्मज्ञान	आत्म-स्वीकृति, संज्ञानात्मक संतुलन, जीवन-गुणवत्ता

दृष्टिकोण	मन को वशीभूत करो (जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में कहा "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः")	मन को स्वीकृति के साथ समझो, उसका पुनर्निर्माण करो
प्रक्रिया	अनासक्ति, नियम, अनन्य प्रेम साधना, सतगुरु कृपा	स्व-प्रतिबिंब, अनुभव विश्लेषण, रिफ्रेमिंग, न्यूरो-हैकिंग
जोखिम/सीमाएं	कभी अंधश्रद्धा या शुष्क तपस्या में बदल जाता है	कभी अत्यधिक आत्मकेन्द्रितता या 'analysis paralysis' में उलझ जाता है

"तारतम वाणी के गहन भावों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर समझना न केवल शिक्षाप्रद है, बल्कि यह राष्ट्र निर्माण, मानव निर्माण, पर्यावरण संरक्षण और आत्म-जागरण की दिशा में एक सशक्त एवं प्रेरणादायक पहल सिद्ध हो सकता है।"

भाव	चौपाई	तारतम वाणी ग्रंथ/प्र./चो.
मन ही विजय की कुंजी. मन ही हार का कारण	मन के हारे हारिए, मन के जीते जीत। मनहीं देवे सत साहेबी, मनहीं करे फजीत।।	सनन्ध 25/26
मन ही बंधन और मुक्ति सारा संसार खेल मन का	*मन ही बांधे मन ही खोले, मन तम मन उजास।* *ए खेल सकल है मन का, मन नेहेचल मन ही को नास।*	किरन्तन *47/2*
सर्जक- संहारक मन	मन उपजावे मन ही पाले, मन को मन ही करे संघार।	
दुःख - सुख मन से मन जड़ और चेतन भी	छोटा बड़ा मन भारी हलका, मन ही जड़ मन ही चेतन।।	किरन्तन 47/3–4
माया का छल = वर्चुअल रियलिटी	*मृगजल द्रष्टें न राचिए, जेहेनूं ते नाम परपंच।* *ए छल छे माया तणो, रच्यो ते अवलो संच।*	*कलश 5/31*
मन का बाजार –सोशल मीडिया का प्रतीक	हाट पीठ रलियामणा, चौटा चोरासी बाजार। मन चितवी वस्त आंही मले, पण खरा जोइए खरीदार।।	किरन्तन 125/5
विवेकपूर्ण खोजी ही खरी मूल्य पहचानता है	*खरो खोजी हसे जाण जवेरी, ते जोसे दृढ़ मन धीर।* *वस्त अखंड ने तेहज लेसे, जे होसे वचिखिण वीर।*	*किरन्तन 125/11*
मन का व्यापार- भूलाने वाला – जागते रहो	एणी पेरे वेपार थाय, हाट पीठ बाजार।	किरन्तन 125/40

	आ भोमनी अनेक आंकड़ी, तेनो केटलो कहूं विस्तार॥	
मन की मायाजाल के प्रति सतर्क रहें	*बंध छूटा विना न चलाय, भाई ए छे करम नी काणी।* *मन माहें जाणे अमें सुख भोगवसुं, पण जाए बंधाणां जमपुरी ताणी।*	*किरन्तन 126/13*
सत्-वचन को समझो-मन-अहम के खेल से बचो	बिध न लहो विवाद करो, ना देखो वचन विचारी। वल्लभ बानी समझे बिना, खोवत निध तुमारी।	किरन्तन 12/11
भ्रम-अहंकारवश "हम सच्चे और तुम झूठे" का खेल	*जाहिर झूठा खेलहीं, हिरदे अति अंधेर।* *कहें हम सांचे और झूठे, यों फिरें उलटे फेर।*	*सनन्ध 15/18*

संदर्भ सूची:

1. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री कुलजम स्वरूप - तारतम वाणी (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
2. ब्रह्म मुनि, लालदास महामति, टीका – शुशान्त महात्मा, श्री बीतक साहेब (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
3. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, वेद और स्वसम वेद, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
4. पटेल, नरेंद्र एवं रमेश, दिव्य प्रेम पत्र – श्री प्राणनाथ तारतम वाणी परिचय, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2023
5. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, गीता तारतम्य दर्शन, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
6. विलबर, केन, फ़ाइंडिंग रैडिकल होलनेस, शम्भला पब्लिकेशन्स, इंक., 2024

.....

शोध पत्र 4

प्रकृति और परम: महामति प्राणनाथ की रहस्यात्मक चेतना की यात्रा पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन पर विशेष चिंतन

महेशभाई अ. पटेल,
अध्यक्ष, श्री 108 प्राणनाथ जी मंदिर ट्रस्ट,
श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना, म. प्र.

C4.1 भूमिका:

आज की मानवता जिन गंभीर चुनौतियों का सामना कर रही है, वे केवल सतही समस्याएँ नहीं, बल्कि गहरे दार्शनिक, आध्यात्मिक और अस्तित्वगत संकट का संकेत हैं। इन प्रमुख चुनौतियों में शामिल हैं: 1. पर्यावरणीय संकट और जलवायु परिवर्तन – जो जीवन के समस्त आधारभूत संतुलन को विघटित कर रहा है। 2. आध्यात्मिक रिक्तता और जीवन के अर्थ का संकट – जिससे व्यक्ति भीतर से टूटता जा रहा है, और बाहरी उपलब्धियों के बावजूद आंतरिक अधूरापन बना हुआ है। 3. ध्रुवीकरण और संवादहीनता – जिसके चलते समाज में सामूहिक समझ और सह-अस्तित्व की भावना कमजोर होती जा रही है। 4. विज्ञान और तकनीक की नैतिक दिशा का अभाव – जिससे प्रगति के साधन, मूल्यों से विमुख होकर विनाशकारी भी हो सकते हैं। 5. आर्थिक असमानता और सामाजिक अन्याय – जो वैश्विक स्तर पर तनाव, असंतोष और संघर्ष को जन्म देता है। 6. संस्कृतिक विस्मृति और ज्ञान परंपराओं का लोप – जिससे सभ्यता की जड़ें खोखली होती जा रही हैं। और 7. नेतृत्व संकट और सामूहिक दृष्टिकोण का अभाव – जिससे मानवता को दिशा देने वाली चेतना क्षीण होती जा रही है।

इस लेख में हम आधुनिक युग की सबसे गंभीर चुनौती—पर्यावरणीय विनाश और जलवायु परिवर्तन—का विश्लेषण करेंगे, न केवल वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, बल्कि आध्यात्मिक चेतना और प्रकृति के रहस्यात्मक संबंध के आलोक में। हमारा प्रयास इन संकटों को आत्मिक गहराई से और अस्तित्व की समग्रता को समझने का होगा। इस के मुख्य बिंदु होंगे: प्रकृति और चेतना का संवाद – मानव की अंतर्चेतना और प्रकृति के बीच गहरा, भावनात्मक और आत्मिक संबंध।; प्राकृतिक रहस्यवाद – आधुनिक दार्शनिकों और संतों की दृष्टि से प्रकृति को एक जीवंत, चेतन सत्ता के रूप में देखना जो भीतर शांति और सह-अस्तित्व की भावना को जाग्रत करती है।; प्रकृति में परम का अनुभव – महामति

प्राणनाथ की वाणी के माध्यम से यह समझना कि नदी, पर्वत, वायु, अग्नि आदि में 'परम' का आलोक विद्यमान है।; प्रेमपूर्ण संरक्षण की चेतना – आध्यात्मिकता का लक्ष्य केवल आत्मकल्याण नहीं, बल्कि करुणा और संवेदनशीलता से भरे जीवन के माध्यम से प्रकृति की रक्षा भी है।; और इस चिंतन का उद्देश्य है—मानव और प्रकृति के बीच एक हरित, आध्यात्मिक और पुनर्संवेदनशील संबंध की पुनर्प्रतिष्ठा।

C4.2 तारतम्य का विघटन और प्रकृति की प्रतिक्रिया:

आज जिस तरह वैश्विक तापवृद्धि, जैव विविधता का विनाश, जल संकट और प्रदूषण बढ़ रहा है, यह एक बहुत ही गंभीर बाबत है क्यों कि पृथ्वी की इस से जीवन-समर्थन प्रणाली अस्थिर हो रही है। मानव ने प्रकृति के प्रति श्रद्धा खो दी है। पृथ्वी को एक "संसाधन" के रूप में देखना — एक जीवित सत्ता के रूप में नहीं — आत्मिक विच्छेदन का प्रतीक है। जब मनुष्य, समाज, जीव, प्रकृति - इन सभी तत्त्वों के बीच में संतुलित और क्रमबद्ध सह-अस्तित्व का संबंध होता है, तब एक क्रमिक समरसता (तारतम्य) की परिस्थिति का निर्माण होता है। और जब भी यह तारतम्य संबंध या सामंजस्य टूटता है, तब प्रकृति विद्रोह करती है। यानी जब कोई तत्त्व अत्यधिक हावी हो जाता है या अपने स्थान से हट जाता है — तो असंतुलन उत्पन्न होता है।यह प्रतिक्रिया ही प्रकृति का विद्रोह है। प्रकृति एक जीवंत तंत्र है।जब मानवीय लोभ या अज्ञानवश हम उसका दोहन करते हैं, तो वह अपने ढंग से प्रतिरोध करती है। जलवायु परिवर्तन (climate change), सूखा या अतिवृष्टि, भूकंप, जंगल की आग, महामारी यह प्रकृति का विद्रोह है।

पर्यावरण की रक्षा एक आध्यात्मिक उत्तरदायित्व है। जब आत्मा जाग्रत होती है, तो उसका आचरण करुणामय और संतुलित हो जाता है। पंचतत्त्वों के साथ सामंजस्य केवल तब संभव है जब मनुष्य अपने धर्म में स्थित हो। इसलिए पर्यावरण की रक्षा मात्र सामाजिक या वैज्ञानिक दायित्व नहीं, बल्कि आत्मिक अनुशासन और सह-अस्तित्व की अभिव्यक्ति है। प्रकृति को क्षति पहुँचाना आत्मा को कलुषित करना है; और आत्मा का जागरण प्रकृति के संतुलन का आधार। आध्यात्मिकता और पर्यावरण दो नहीं, एक ही चेतना की दो लयें हैं—ऋतुएँ, नदियाँ, पशु-पक्षी और मौन, आत्मा की साधना-पथ का दर्पण बन जाते हैं।

C4.3 तारतम्य का धर्म - जीवन-जाल की पुनर्स्थापना की पुकार:

यदि धर्म को केवल पारंपरिक दृष्टिकोण से देखा जाए, तो वह नैतिकता, आचार और सामाजिक नियमों तक सीमित प्रतीत होता है। लेकिन जब हम धर्म के गहरे अर्थ में उतरते हैं, तो पाते हैं कि इसका मूल भाव है—"धारण करना"। अर्थात्, जीवन और ब्रह्मांड को यथासंभव संतुलनपूर्वक धारण करना, उसका पोषण करना। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य में

धर्म न केवल सामाजिक न्याय और समानता (social harmony) का संरक्षक है, बल्कि प्रकृति के साथ सहजीवन (ecological harmony) का भी आधार बनता है।

मनुष्य और समाज के बीच का संतुलन जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही जरूरी है मनुष्य और प्रकृति के बीच का तारतम्य। जैसे ही यह तारतम्य (balance) टूटता है—प्रकृति प्रतिक्रिया देती है। जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक आपदाएँ और पारिस्थितिक असंतुलन यही संकेत हैं कि धर्म की पारंपरिक परिभाषा अब अपर्याप्त हो गई है। हमें एक नई व्याख्या की आवश्यकता है—एक ऐसा धर्म जो केवल मंदिरों और ग्रंथों में नहीं, वृक्षों और नदियों में भी प्रकट हो। आज का सच्चा धर्म वही है— जो मनुष्य और मनुष्य के बीच समरसता स्थापित करे, और साथ ही, मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन को पोषित करे। इसी तारतम्य-केंद्रित समन्वयपूर्ण धर्म में आज की मानवता और पृथ्वी दोनों की मुक्ति का मार्ग छिपा है।

जब मनुष्य ने अंधाधुंध वनों की कटाई की, जंगलों का संतुलन बिगाड़ा, तब केवल पेड़ों की हरियाली नहीं घटी—वर्षा चक्र प्रभावित हुआ, सूखा पड़ा, बाढ़ आई और जैवविविधता का ह्रास होने लगा। इन सबके परिणामस्वरूप महामारियाँ बढ़ीं और संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र अस्थिर हो गया। यह कोई साधारण घटना नहीं थी—यह प्रकृति का प्रतिशोध नहीं, बल्कि उसका सजग उत्तर था उस संतुलन-भंग (तारतम्य) को जिसे मनुष्य ने तोड़ा। इस संदर्भ में पेड़ लगाना, जल की रक्षा करना, मिट्टी को संजोना—ये कार्य मात्र पर्यावरणीय उपाय नहीं, बल्कि आज के समय में धार्मिक कर्तव्य हैं। प्राचीन ऋषियों ने भी इन्हें यज्ञ और तप के रूप में देखा था—जिसका उद्देश्य केवल आत्मकल्याण नहीं, लोककल्याण और भू-संरक्षण था।

दूसरा उदाहरण लें—पशुओं के वाणिज्यिक शोषण का। आधुनिक मांस उद्योगों ने जानवरों को केवल उपभोग की वस्तु बना दिया, जिससे उनकी प्राकृतिक जीवन-धारा और संख्या गड़बड़ा गई। इस असंतुलन का परिणाम भी गंभीर रहा—महामारियों का प्रसार, मानव प्रतिरोधक क्षमता में गिरावट, और अनुवांशिक विकारों की वृद्धि। इस पृष्ठभूमि में, अहिंसा और करुणा अब केवल आध्यात्मिक या नैतिक मूल्य नहीं रह गए हैं। वे प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने के व्यावहारिक साधन बन गए हैं। जब हम किसी जीवन के प्रति करुणा दिखाते हैं, तो वास्तव में हम पूरे जीवन-जाल (web of life) को सहारा देते हैं। इसलिए, धर्म को अब केवल आस्था या उपासना की परिधि में सीमित नहीं किया जा सकता—उसे प्रकृति के संरक्षण और जीवन के प्रति करुणा के रूप में पुनर्परिभाषित करना होगा।

C4.4 प्रकृति की समग्र व्याख्या

समग्र चिंतन के लिए प्रकृति की सही समझ आवश्यक है। भौतिक दृष्टि से यह बाह्य जगत है — पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और इनसे बने समस्त जीव-वनस्पति।

लेकिन संस्कृत में प्रकृति का अर्थ है — सृष्टि का मूल कारण, जो सृजन, संतुलन, परिवर्तन और विलय की अनादि शक्ति है। आध्यात्मिक रूप में यह केवल बाहरी नहीं, बल्कि हमारे अंतर की प्रवृत्तियों और भावनाओं का भी प्रतीक है। गीता (७.४–५) के अनुसार, प्रकृति दो प्रकार की है —अपरा (जड़ भौतिक तत्व) और परा (चेतन आत्मा)। सांख्य दर्शन में यह अव्यक्त, अनादि और त्रिगुणात्मक शक्ति है, जो पुरुष के संपर्क से क्रियाशील होती है। वेदांत में यही शक्ति माया कहलाती है — ब्रह्म की वह अनिर्वचनीय शक्ति जिससे एक ब्रह्म अनेक रूपों में प्रकट होता है।

महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी में प्रकृति को ब्रह्म की चेतन लीला का विस्तार बताया गया है — जहाँ सृष्टि भौतिक नहीं, बल्कि दिव्य चेतना की अभिव्यक्ति बन जाती है।

C4.5 प्रकृति रक्षा - आध्यात्मिक उत्तरदायित्व की पुकार:

प्राचीन भारतीय परंपराएँ प्रकृति को ईश्वर की जीवंत अभिव्यक्ति मानती हैं—गंगा को माँ, वृक्षों को देवता और पर्वतों को पूज्य समझने की श्रद्धा-संपन्न दृष्टि संरक्षण को प्रेम और सम्मान में बदल देती है। जब हम स्वयं को प्रकृति का अभिन्न अंश मानते हैं, तब उसकी रक्षा कोई कर्तव्य नहीं, सहज आचरण बन जाती है। आध्यात्मिक साधना भोग की लालसा को घटाकर संयम, संतोष और संतुलन की ओर ले जाती है। जितना भीतर संतुलन होता है, उतनी ही बाहर की मांग कम होती है। अहिंसा, करुणा और अपरिग्रह जैसे मूल्य केवल मनुष्यों तक सीमित नहीं, संपूर्ण प्रकृति के प्रति संवेदना की चेतना जगाते हैं।

ध्यान, आत्मचिंतन और विवेक से जुड़ी आंतरिक जागृति व्यक्ति को उपभोग से उत्तरदायित्व की ओर ले जाती है। आध्यात्मिकता पूजा तक सीमित नहीं, बल्कि पृथ्वी की रक्षा को धर्म का कार्य मानती है। यह हमें "उपभोगकर्ता" नहीं, बल्कि प्रकृति का रक्षक (Steward) बनाती है। यह दृष्टि न केवल आत्मकल्याण, बल्कि समष्टि-कल्याण की प्रेरणा देती है—जहाँ पर्यावरण की रक्षा आध्यात्मिक उत्तरदायित्व बन जाती है।

C4.6 प्रकृति और चेतना का संबंध:

आध्यात्मिकता और पर्यावरण का संबंध केवल नैतिक विचार तक सीमित नहीं है, यह एक गहन अंतर्संबंध है जो व्यक्ति के भीतर से जागता है और बाहर तक फैलता है। यह चेतना हमें प्रकृति के साथ भावनात्मक लगाव, समग्र दृष्टिकोण और जिम्मेदारी की अनुभूति प्रदान करती है। जब मनुष्य अपने स्वधर्म में स्थित होता है, तब प्रकृति अपने आप संतुलन में रहती है।

भारतीय दर्शन में प्रकृति को मात्र जड़ पदार्थ नहीं, बल्कि चैतन्यस्वरूप – चेतन, जीवंत और अर्थपूर्ण सत्ता के रूप में देखा गया है। जहाँ प्रकृति एक मौन, जीवंत भाषा में आत्मा से संवाद करती है, और जहाँ फूलों की सुगंध, ऋतुओं की चाल, नदियों की धारा और पक्षियों का कलरव, सब किसी गहरे आध्यात्मिक संदेश को प्रकट करते हैं। प्रकृति और आध्यात्मिकता के बीच का संबंध केवल भावनात्मक या प्रतीकात्मक नहीं, अपितु गहन अनुभवात्मक और रहस्यात्मक है। जब हम प्रकृति को मात्र संसाधन नहीं, बल्कि परम की चेतना की अभिव्यक्ति मानते हैं, तब हमारे भीतर एक नई दृष्टि और ज़िम्मेदारी का जन्म होता है। आध्यात्मिक जीवन हमें सादगी, संयम और त्याग की शिक्षा देता है—जो न केवल आत्मिक उन्नयन में सहायक है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन के लिए भी अत्यंत आवश्यक है।

महामति प्राणनाथ जी की वाणी इस दृष्टिकोण को न केवल पुष्ट करती है, बल्कि उसमें एक नई आत्मिक संवेदना का संचार करती है। उनके अनुसार, प्रकृति केवल दृश्य और भौतिक जगत नहीं है, बल्कि आत्मा और परम के बीच एक गूढ़ संवाद का माध्यम है। तारतम वाणी के षटऋतु, रास और परिक्रमा जैसे ग्रंथों में ऋतुओं, नदियों, पशु-पक्षियों, पुष्पों, और मौन जैसे प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से आत्मा की चेतना-यात्रा और परम से मिलन की आकांक्षा को रूपायित किया गया है। यह दृष्टि प्रकृति को एक दर्पण के रूप में देखती है—एक ऐसा दर्पण जिसमें आत्मा न केवल अपनी वर्तमान स्थिति देख सकती है, बल्कि परम की छवि भी प्रतिबिंबित होती है। इस दार्शनिक रहस्यवाद में, प्रकृति एक मार्गदर्शिका बन जाती है—जो आत्मा को परम की ओर ले जाती है, उसे उसकी आंतरिक पुकार और ब्रह्ममिलन की राह दिखाती है।

C4.7 षटऋतु ग्रंथ में ऋतुएँ और आत्मा की अवस्थाएँ:

'षटऋतु' की रचना वियोग और पीड़ा की गहराई से जन्मी। जामनगर में बंदी जीवन के दौरान महामति की चेतना ने ऋतुओं को आत्मा की अवस्थाओं में रूपांतरित कर दिया। यह केवल ऋतु वर्णन नहीं, आत्मा का रहस्यात्मक आत्मकथ्य है: ग्रीष्म में तृष्णा और प्रियविहीन तपन है, तो वर्षा में उमड़ता प्रेम और मिलन की आकांक्षा। शरद में स्पष्टता, लेकिन अभी भी अपूर्णता महसूस होती है, तो हेमंत में प्रतीक्षा में जमी हुई चुप्पी। शिशिर में एकांत का सन्नाटा और अंतरदृष्टि जगती है, तो वसंत में रंग, रास, मिलन और उल्लास का उभार। यह वाणी हमें दिखाती है कि आत्मा किस प्रकार ऋतुओं के लय में अपना विरह, प्रतीक्षा और आनंद व्यक्त करती है। यह प्रकृति-परक रहस्यवाद की अत्यंत सुंदर अभिव्यक्ति है।

C4.8 रासलीला में सखियों की परीक्षा और लीला में प्रवेश:

'रास' ग्रंथ में आत्मा की योग्यता की परीक्षा होती है। यह भावों की परीक्षा है — क्या आत्मा प्रेम, समर्पण और विनम्रता की उस स्थिति तक पहुँच चुकी है जहाँ वह अपने अस्तित्व का विसर्जन कर सके? सखियाँ जब भीतर से तपकर निष्कपट प्रेम और त्याग में परिपक्व हो जाती हैं, तभी वे योगमायिक वृंदावन की रासलीला में प्रवेश करती हैं। यहाँ प्रकृति एक सक्रिय संवादिनी बनती है: यमुनाजी आत्मा की बहती हुई प्रेमधारा तो भ्रमर, मोर और कोयल भीतर बजती लयात्मक पुकार, तो बेल, पुष्प और मृग प्रिय की गंध, आत्मा की खोज और व्याकुलता का रूप दर लेती है। यह पूरी लीला आत्मा की अंतरंग यात्रा है जिसमें प्रकृति की प्रत्येक छवि चेतना का एक भाव बन जाती है। प्रकृति, ऋतुओं और अंतर की एकता का स्वर है, जो प्रियतम की निकटता, रंग और रस में विलीन होने की उत्कंठा से उपजती है।"जीवन सखी वृंदावन रंग जोइए जी" — यहाँ वृंदावन कोई भौगोलिक स्थान मात्र नहीं, बल्कि वह आंतरिक अवस्था है जहाँ आत्मा प्रकृति के माध्यम से अपने प्रिय को अनुभव करती है, उन से रास खेलती ती है।

C4.9 परिक्रमा ग्रंथ की वाणी में आत्मा परम की ओर लौटती है।

इस में महामति परमधाम की उस स्थिति को व्यक्त करते हैं जो वाणी से परे है। जब उनसे पूछा गया कि वहाँ क्या देखा, तो वे कहते हैं — "जो देखा, वह कह नहीं सकता।" यह अनुभव किसी बाहरी स्थल की परिक्रमा नहीं, बल्कि आत्मा की अपने स्रोत की ओर लौटने की चेतना है। प्रकृति यहाँ भी सहचरी है: पर्वत और आकाश चेतना की विशालता है, मौन और आलोक आत्मा की मौन गति और दिव्यता का प्रकाश है। यह परिक्रमा कोई चक्कर नहीं, एक वृत्तीय वापसी है — भीतर से निकलकर फिर भीतर में ही लौटना। यह चेतना का वह केंद्र है जहाँ आत्मा और परम एक हो जाते हैं।

C4.10 प्रकृति-परक रहस्यवाद - आत्मा की भाषा और साधना:

महामति प्राणनाथ की चेतना में प्रकृति एक रहस्यमयी भाषा बन जाती है। जहाँ बादल और वर्षा करुणा और अंतःवेदना के प्रतीक हैं, पुष्प और गंध प्रेम के संकेत हैं, जबकि रात्रि और भोर आत्मा की पीड़ा और आशा की लहरें बनकर उभरते हैं। प्रकृति का प्रत्येक तत्व आत्मा की छाया बन जाता है—एक दर्पण, जिसमें वह अपने प्रियतम की झलक देखती है। यह रहस्यवाद केवल काव्य नहीं, बल्कि आत्मा की प्रेममय साधना का जीवंत रूप है। आत्मा अब केवल प्रेमी नहीं, प्रेमस्वरूप बन जाना चाहती है। वह ऋतुओं की तपन, प्रतीक्षा और भीतरी रात्रि से गुजर चुकी है, और अब वह योगमायिक रास में अपने परम से एकाकार होना चाहती है।

तारतम वाणी यह स्पष्ट करती है कि प्रकृति मात्र दृश्य पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि चेतना की एक गहन, संवेदनशील और संवादशील भाषा है। योगमायिक वृंदावन कोई भौगोलिक स्थान नहीं, बल्कि वह अवस्था है जहाँ आत्मा और परमात्मा के बीच का द्वैत मिट जाता है। वहाँ हर ऋतु आत्मा की एक अवस्था बनती है, और परमधाम की हर परिक्रमा उसके भीतर की गति का प्रतिबिंब। यह प्रकृति-परक रहस्यवाद हमें यह समझने का अवसर देता है कि आत्मा, प्रकृति और परम के बीच एक मौन, निरंतर संवाद चलता रहता है—और उसी मौन में परम की वाणी को सुना जा सकता है।

संक्षेप में, महामति प्राणनाथ की रास, षटऋतु, और परिक्रमा रचनाएँ प्रकृति-परक रहस्यवाद की सुंदर मिसाल हैं—जहाँ रास आत्मा की योग्यता की परीक्षा है, षटऋतु भावनात्मक अवस्थाओं का प्रतीकात्मक चित्रण, और परिक्रमा चेतना की स्रोत की ओर वापसी। प्रकृति यहाँ आत्मा की भाषा, उसकी साधना और परम से मिलन की सहचरी बन जाती है। प्राकृतिक एकता (नेचर मिसटीसीसम) के प्रवेश द्वार से हम दैवी एकता में, आदि प्रतीकों से एकता में, निराकार से एकता में, शुद्ध चेतन से एकता में, शुद्ध शून्य से एकता में, अद्वैत एकत्व के विविध स्तरों को पार करते हुए – तारतम्य सीढ़ी द्वारा- स्वलीलाअद्वैत परमधाम तक की लज्जत ले सकते हैं। तो क्या पर्यावरण की रक्षा, सिर्फ तकनीकी समाधान है? कभी नहीं — एक आध्यात्मिक साधना भी है।

C4.11 पर्यावरण और समग्रता की दृष्टि - चेतना विकास के स्तरों से प्रकृति के दृश्य भी बदलते हैं:

प्रकृति के प्रति हमारी संवेदनशीलता और सक्रियता इस बात पर निर्भर करती है कि हम शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से कितने विकसित हैं। समग्र (Integral) दृष्टिकोण से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे हम इन विभिन्न आयामों में परिपक्व होते जाते हैं, वैसे-वैसे हमारा प्रकृति के साथ जुड़ाव, समझ और संरक्षण के प्रति समर्पण भी गहराता है। इसलिए चेतना विकास के इन विविध स्तरों की शिक्षा — जो व्यक्ति को भीतर से जागरूक और संतुलित बनाती है — पर्यावरण सुधार के लिए एक मूलभूत आवश्यकता बन जाती है। जब व्यक्ति भीतर से विकसित होता है, तभी वह बाहर की प्रकृति के साथ सच्चा और टिकाऊ संबंध स्थापित कर सकता है। जैसे:

C4.11.1. पुरातन (Archaic) स्तर, जो चेतना की प्रारंभिक अवस्था है, जिसमें हम जीवित रहने के लिए प्रकृति पर निर्भर होते हैं। हमारे लिए प्रकृति एक चुनौती तो होती है - पर भूख, भय और सुरक्षा की चिंता प्रमुख होती है। उस में संघर्षपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना होने से प्रकृति के संरक्षण की कोई जागरूक भावना नहीं होती।

C4.11.2. जादुई (Magical) स्तर पर हमारी चेतना प्रकृति को जादुई शक्तियों से युक्त मानतो है। जैसे वृक्ष, नदी, पर्वत आदि में आत्मा या शक्ति का वास मानना, जिस में हमारा प्रकृति से संबंध श्रद्धा और भय से मिश्रित होता है। हम प्रकृति की पूजा तो करता है, लेकिन अभी वैज्ञानिक समझ नहीं आई है।

C4.11.3. पौराणिक (Mythic) स्तर पर हमारा विश्वास धार्मिक और सांस्कृतिक मिथकों पर अधिक होता है, जहाँ ईश्वर और प्रकृति की भूमिकाएँ स्पष्ट होती हैं। हम मानते हैं कि प्रकृति देवताओं की रचना और इच्छा से संचालित है। हम नियम, यज्ञ, व्रत आदि के माध्यम से प्रकृति को संतुष्ट करने की भावना से उससे संबंध बांधते हैं और प्रकृति का संरक्षण धार्मिक कर्तव्य के रूप में देखते हैं।

C4.11.4. तार्किक (Rational) स्तर पर हमारी चेतना आधुनिक वैज्ञानिक सोच वाली होती है। हमारी दृष्टि में प्रकृति एक प्रणाली है, जिसे समझा, उपयोग किया और नियंत्रित किया जा सकता है। हम प्रकृति का उपयोग एक संसाधन के रूप में करते हैं। हमें प्रकृति का संरक्षण आवश्यक तो लगता है, पर मुख्य रूप से हम उपयोगिता पर ध्यान देते हैं।

C4.11.5. बहुलवादी (Pluralistic) स्तर पर हमारी चेतना विविधता, अधिकार और संवेदनशीलता को महत्व देती है। हमारी दृष्टि में प्रकृति के हर घटक का अपना मूल्य है। प्रकृति से हम अपना संबंध करुणा, सहअस्तित्व और नैतिक जिम्मेदारी से निभाते हैं और प्रकृति संरक्षण अब हमारे लिए सामाजिक न्याय और वैश्विक कर्तव्य बन जाता है।

C4.11.6. अभिन्न समग्रता (Integral) स्तर पर खड़ी हमारी चेतना सभी पूर्ववर्ती स्तरों (1-5) को समेट कर एक समग्र दृष्टिकोण अपनाती है। हमारी दृष्टि में आत्मा और प्रकृति में कोई द्वैत नहीं; दोनों एक ही चेतना की अभिव्यक्ति अनुभव आते हैं – हाँ, लेकिन तारतम्य में। इस स्तर पर हमारे लिए प्रकृति से संबंध का प्रश्न ही नहीं उठता, प्रकृति स्वयं 'स्व' का विस्तार बन जाती है। हमारे मन में उसका संरक्षण नहीं, उससे एकात्मता ही मुख्य भाव है। यहाँ प्रेम, करुणा, विज्ञान और साधना सभी एकीकृत हो जाते हैं।

यहाँ एक बात का ध्यान रखना जरूरी है कि जैसे हम जन्म से लेकर बड़े होने तक कई चरणों से गुजरते हैं, हर नया स्तर पिछले स्तर पर आधारित होता है और उसे अपने साथ लेकर चलता है। इनमें से कोई भी स्तर छोड़ा नहीं जा सकता — हर एक जरूरी होता है। हर स्तर पर हमारी सोच, समझ और चेतना (awareness) में एक नया बदलाव अवश्य आता है, पर हमें नीचे के स्तरों का तिरस्कार नहीं, उन को प्रेम और धैर्य से समझा कर अपने साथ ऊंचे उठाने को प्रयासशील रहन है।

जैसे-जैसे हमारी चेतना ऊँचे स्तरों पर विकसित होती है, वैसे-वैसे प्रकृति के प्रति हमारा दृष्टिकोण भी उपयोगवादी मानसिकता से निकलकर गहरी एकात्मता की ओर अग्रसर होता है। समग्र चेतनावस्था में प्रकृति मात्र एक संसाधन नहीं, बल्कि एक जीवंत सहभागिनी के रूप में अनुभव होती है। अतः जब मानव समाज के अधिक लोग चेतना की उच्च अवस्था को प्राप्त करते हैं, तब पर्यावरण संबंधी समस्याओं का समाधान केवल व्यवहारिक नहीं, बल्कि आत्मिक स्तर पर भी संभव हो जाता है — और यही सच्चे समाधान की आधारभूमि है।

C4.12 पर्यावरण और समग्रता की दृष्टि - पर्यावरण से जुड़ाव के चार आयाम:

मनुष्य और प्रकृति का संबंध अत्यंत गहरा, जटिल और बहुआयामी है। यह संबंध केवल पर्यावरणीय समस्या या समाधान तक सीमित नहीं है, बल्कि चेतना, आचरण, संस्कृति और संस्थागत ढांचे से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। इस जटिल संबंध को समझने के लिए *चार चतुर्थांशों* (Four Quadrants) की अवधारणा एक प्रभावी ढांचा प्रदान करती है। यह दृष्टिकोण व्यक्ति और समाज — दोनों के आंतरिक और बाह्य पहलुओं को एक साथ देखकर एक समग्र और संतुलित समझ विकसित करता है।

आयाम 1. प्रकृति की व्यक्तिगत आंतरिक अनुभूति के क्षेत्र में हम प्रकृति से सीधे अपने मन और हृदय के स्तर पर जुड़ता है। जब हम जंगलों, पहाड़ों, नदियों या खुले आकाश के बीच होते हैं, तो शांति, विस्मय और करुणा जैसी भावनाएं भीतर जागती हैं। यह अनुभूति ध्यान, आत्मचिंतन, या किसी आध्यात्मिक क्षण के माध्यम से घटित हो सकती है — जहाँ प्रकृति के सौंदर्य से आत्मा भीतर तक स्पर्शित होती है। यह प्रकृति-आध्यात्म (nature mysticism) का मूल है। इसे ऊपरी बायाँ चतुर्थांश कहेंगे।

आयाम 2. प्रकृति से व्यक्तिगत बाह्य व्यवहार का क्षेत्र हमारी उन प्रत्यक्ष क्रियाओं से संबंधित है जो हम पर्यावरण की रक्षा या उससे जुड़ने के लिए करते हैं। जैसे कि वृक्षारोपण, बागवानी, ट्रेकिंग, प्लास्टिक का त्याग, या सतत जीवनशैली अपनाना। इस क्षेत्र में हमारे लिए प्रकृति से केवल भावनात्मक जुड़ाव पर्याप्त नहीं है, हम उसे अपने व्यवहार में भी उतारना चाहते हैं - कर्म के रूप में। इसे हम ऊपरी दायाँ चतुर्थांश कहेंगे।

आयाम 3. सामूहिक आंतरिक चेतना: यह क्षेत्र समाज की साझी मान्यताओं, संस्कृति, धर्म और मूल्यों से जुड़ा है। भारत जैसे देश में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जहाँ नदियों को माँ कहा जाता है, पर्वतों को देवता माना जाता है, और पेड़ों की पूजा होती है। त्योहारों, गीतों और लोककथाओं में प्रकृति का सम्मान झलकता है। यह साझा चेतना पर्यावरणीय भावना को गहराई और निरंतरता देती है। इसे हम निचला बायाँ चतुर्थांश कहेंगे।

आयाम 4. सामूहिक बाह्य व्यवस्थाएं: यह चतुर्थांश उन संस्थागत ढाँचों, नीतियों और नियमों से संबंधित है जो सामूहिक रूप से पर्यावरण की दिशा तय करते हैं — जैसे सरकार की जलवायु नीति, वनों की सुरक्षा के कानून, पर्यावरण शिक्षा की योजनाएं, या अंतरराष्ट्रीय जलवायु संधियाँ। यह पहलू दिखाता है कि यदि व्यवस्थाएं सजग और सहयोगी न हों, तो व्यक्तिगत और सांस्कृतिक प्रयास भी सीमित हो जाते हैं। इसे हम निचला दायाँ चतुर्थांश कहेंगे।

इन चार दृष्टिकोणों को देखने से यह साफ़ हो जाता है कि जब ये सभी चतुर्थांश — यानी मन, कर्म, संस्कृति और व्यवस्था — मिलकर काम करते हैं, तभी हमारा प्रकृति से संबंध पूरा, संतुलित और सार्थक बनता है। ये चारों हमारे प्राकृतिक जुड़ाव की संपूर्ण साधना के अंग हैं। अगर हम सिर्फ ध्यान करें, लेकिन अपने कर्मों से प्रकृति को नुकसान पहुँचाएँ, या केवल कानून बनाएं लेकिन समाज में प्रकृति के प्रति संवेदना न हो — तो ऐसे प्रयास अधूरे रह जाते हैं। इसलिए ज़रूरी है कि हम: भीतर से प्रकृति के प्रति प्रेम करें, उस प्रेम को अपने व्यवहार में उतारें, समाज में प्रकृति-संवेदनशील सोच और संस्कृति को बढ़ावा दें, और ऐसी व्यवस्थाएँ बनाएं जो संरक्षण और संवर्धन को प्राथमिकता दें। इन चार पहलुओं का समन्वय न केवल पर्यावरण की समस्याओं का हल है, बल्कि यह जीवन के प्रति एक जागरूक, जिम्मेदार और समग्र चेतना का संकेत भी देता है। जब हमारा मन, व्यवहार, सामाजिक दृष्टि और संस्थागत ढाँचा — सब प्रकृति से गहराई से जुड़ते हैं, तब बाहरी संरक्षण के साथ-साथ एक आंतरिक जागृति भी उत्पन्न होती है। यह समग्र दृष्टिकोण — भीतर और बाहर, दोनों में हरियाली लाता है। और जब यह साधना गहराती है, तो व्यक्ति 'स्व' और 'संसार' के भेद से ऊपर उठकर अद्वैत चेतना की अनुभूति करने लगता है।

C4.13 पर्यावरण और समग्रता की दृष्टि – विविध बुद्धियाँ पर्यावरण को अलग-अलग तरीके से जोड़ती है:

हर इंसान में एक नहीं, कई तरह की बुद्धियाँ होती हैं — जैसे बोलने की, समझने की, भावों को महसूस करने की, दूसरों से जुड़ने की या आत्मचिंतन करने की क्षमता। इन्हें "बुद्धि की रेखाएँ" (Lines of Intelligence) कहा जाता है। हर व्यक्ति की बुद्धियाँ अलग ढंग से और अलग गति से विकसित होती हैं, इसलिए तुलना करना व्यर्थ है — हर किसी की अपनी खास समझ और ताकत होती है। इन बुद्धियों का विकास सिर्फ व्यक्तिगत सफलता ही नहीं, बल्कि पर्यावरण के प्रति हमारी संवेदना और जिम्मेदारी को भी गहरा करता है:

संज्ञानात्मक बुद्धि हमें यह समझने में मदद करती है कि पर्यावरण एक जटिल, परस्पर जुड़ा हुआ तंत्र है — जिससे समग्र सोच और समाधान की समझ आती है।

भावनात्मक बुद्धि से हम पेड़, पशु, नदी, पृथ्वी से जुड़ते हैं — संवेदना से संरक्षण की प्रेरणा पैदा होती है। नैतिक बुद्धि यह बोध कराती है कि प्रकृति की रक्षा कोई विकल्प नहीं, बल्कि हमारा कर्तव्य है — आनेवाली पीढ़ियों और सभी प्राणियों के लिए। अंतरव्यक्तीय बुद्धि से हम मिलकर, समूह में, समाज और संस्थाओं के साथ मिलकर बड़े बदलाव ला सकते हैं। आध्यात्मिक बुद्धि हमें प्रकृति से प्रेमपूर्वक एकात्म अनुभव कराती है — जिससे संरक्षण एक आंतरिक भाव बन जाता है।

इस तरह, जब हम इन बुद्धियों को भीतर से विकसित करते हैं, तो न सिर्फ अपना विकास करते हैं, बल्कि पृथ्वी को भी अधिक सुरक्षित, संवेदनशील और सुंदर बना सकते हैं।

C4.14 निष्कर्ष:

महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी और उनके जीवन-दर्शन को देखकर यह स्पष्ट होता है कि वे प्रकृति और पर्यावरण को समग्र दृष्टिकोण से देखते थे। उनकी वाणी में चेतना के विभिन्न स्तरों के माध्यम से प्रकृति को समझा और अनुभव किया गया है। पर्यावरण संबंधी जिन चार मुख्य आयामों (भीतरी भाव, व्यवहार, संस्कृति, और व्यवस्था) की आज चर्चा होती है, उनका समावेश उनकी शिक्षाओं में पहले से ही मौजूद है। उन्होंने विभिन्न प्रकार की मानवीय बुद्धियों — जैसे संज्ञानात्मक, भावनात्मक, नैतिक, और आध्यात्मिक बुद्धि — को जाग्रत करते हुए, प्रकृति को अपनी चेतना से जोड़ने का मार्ग दिखाया है। उनके इस समग्र दृष्टिकोण को आज केन विल्बर जैसे आधुनिक चिंतक और तत्त्वदर्शी भी सुंदर ढंग से व्याख्यायित करते हैं। उन्हीं के समन्वित ढांचे को आधार बनाकर यहां तारतम वाणी और महामति के स्वयं की बीतक की पृष्ठभूमि में कुछ मुख्य बिंदु प्रस्तुत किए गए हैं, जिस पर गहन अध्ययन की आज आवश्यकता है।

अंत में, महामति प्राणनाथ प्रदत्त "तारतम वाणी" से कुछ चुनी हुई चॉपाइयाँ यहाँ प्रस्तुत करना उचित रहेगा। इन्हें आधुनिक संदर्भों से जोड़कर समझने से पर्यावरण संरक्षण और आत्म-जागरण की दिशा में सशक्त व प्रेरणादायक पहल सिद्ध हो सकता है।

भाव	तारतम वाणी चौपाई	ग्रंथ/प्र./चो.
प्रकृति की शीतलता और विरह की आग	वनने छाह्यूं रे वाला द्रुम वेलडी, सीतल धराने सीतल वाए। सीतल जलने सीतल छांहेडी, पण मारे अंग लागे अति दाहे।	षटरुती 3/8
वसंत ऋतु का सौंदर्य	*रुत मांहें रुत वसंत घणूं रूडी, जेमां मौरे वनराय। विध विधना रंग लेरे वेलडियो, वन तणे कंठड़े वलाय।*	*षटरुती 5/5*

कोयल का टहूँकार = आत्मा का विरहगान	कोयलडी टहुंकार करे रे, सुडला करे रे कलोल। एणी रुते हूं एकलडी, रोई नेंणा करूं रंग चोल।	षटरुती 6/5
वन्यपशुओं का आनंद और विरहीन आत्मा का दर्द	*वांदर मोर क्रीडे वनमां, आनंद देखी वनराय।* *एणे समे वालाजी विना, विरहसूं कालजडूं रे कपाय।*	*षटरुती 6/6*
नदियों की शुद्धता से चित्त की निर्मलता	वाला जी रे डोहलाते जल वही गया, हवे आव्या ते निरमल नीर। पिउजी विना हूं एकली, ते तां केम राखूं मन धीर।	षटरुती 2/2
परमशांतिपूर्ण जैविक एकत्व का महास्वप्न	*बाघ बकरी एक संग चरें, कोई न करे किसी सों बैर।* *पसु पंखी सुखे चरें चुगें, छूट गयो सब को जेहेर।*	*किरन्तन 55/20*
वृंदावन की शोभा में प्रियतम को आमंत्रण	वृंदावन फूल्यूं बहु फूलडे, सोभा धरे अपार। वन फल उत्तम अति घणूं ऊंचा, कुसम तणा वेहेकार।	रास 10/30
परमधाम के वृक्षों के चैतन्य की विशेषता	*जिमी तले जो दरखत, एह जिनस कछू और।* *खूबी फल फूल पात की, किन मुख कहूं ए ठौर।*	*परिक्रमा 34/60*
परमधाम के फल, फूल, पत्ते आत्माओं का प्रेम, ज्ञान, संबंध	क्यों दीजे निमूना इनका, जो कही हक की जात। निसबत इस्क इलम, ज्यों बिरिख फल फूल पात।	सागर 14/29

संदर्भ सूची:

1. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री कुलजम स्वरूप - तारतम वाणी (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
2. ब्रह्म मुनि, लालदास महामति, टीका – शुशान्त महात्मा, श्री बीतक साहेब (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
3. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, वेद और स्वसम वेद, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
4. पटेल, नरेंद्र एवं रमेश, दिव्य प्रेम पत्र – श्री प्राणनाथ तारतम वाणी परिचय, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2023
5. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, गीता तारतम्य दर्शन, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
6. विलबर, केन, रीलिजन ऑफ टूमारो, शम्भला पब्लिकेशन्स, इंक., 2024

7. ब्रह्म मुनि, लालदास महामति, टीका – शुशान्त महात्मा, परमधाम की बड़ी वृत, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2021

संशोधन-सम्पादन:

नरेन्द्र आर पटेल, MS CSP (Retd.), Writer, Translator and Editor
Supporting Researcher and Script Writer for Shri Prannath Multimedia Productions
Trustee, Shri 5 Padmavati Puri, Dham Panna
Team member, Shri Prannath Global Consciousness Mission
Trustee, Nijanand Foundation Inc., U.S.A. (Lord Prannath Divine Center, Macon, GA, U.S.A.)
Retd. University Safety Coordinator, Rutgers State University of NJ

सह-सम्पादन: Manukumar Patel,
President, Shri Prannath Global Consciousness Mission
Producer, Multimedia Spiritual and Historical Shows and Animation series
Trustee, Shri Nijanand Ashram, Vadodara, Guj. and Ratanpuri, U.P.

संदर्भ सूची:

1. श्री प्राणनाथ तारतम वाणी 2. श्री बीतक साहेब, ब्रह्म मुनि लाल दास कृत 3. केन विलबेर, रीलिजन ऑफ टुमोरो, फाइन्डिंग रैडिकल होलनेस 4. वेद और स्वसं वेद, ब्रह्मलीन आचार्य बुद्धि प्रकाश बाजपेयी, पी. एच. डी, (दर्शन) 5. जागनी पत्रिका, श्री प्राणनाथ मिशन

शोध पत्र 5

विभाजन से एकत्व की ओर
नस्लवाद, मानव चेतना का विकास और समग्रता की क्रांति

शारदा पटेल, हिम्मतनगर

B. Sc. M. Ed, निवृत आचार्य, माध्यमिक स्कूल, विश्व मंगलम्, अनेरा, गुजरात

सहयोगी लेखक: नरेन्द्र आर. पटेल M. S. CSP (Retd.), मनु कुमार पटेल, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान

C5.1 सारांश:

यह लेख मानव चेतना के विकास, सामाजिक भेदभाव के मूल कारणों और समग्र आध्यात्मिकता (Integral Spirituality) की दिशा में एक समन्वित दृष्टि प्रस्तुत करता है। इसका मूल निष्कर्ष यह है कि जाति-नस्लवाद और विभाजन की जड़ें बाहरी संरचनाओं में नहीं, बल्कि चेतना की अपरिपक्व अवस्थाओं में निहित हैं। सच्चा परिवर्तन तभी संभव है जब बाहरी सुधार के साथ आंतरिक जागरण और विकास भी हो।

सत्रहवीं शताब्दी में महामति प्राणनाथ ने "सर्व धर्म समभाव" और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना के आधार पर धर्म, जाति और संप्रदाय से ऊपर उठकर चेतना-आधारित एकता का मार्ग दिखाया। उनकी तारतम वाणी ऐसा विज्ञान है जो विविध धर्मों, संस्कृतियों और विचारधाराओं को 'समग्र दृष्टि' में जोड़ती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि धर्म, भाषा और संस्कृतियाँ भले भिन्न हों, पर सभी की खोज एक ही परम सत्य की है, और प्रेम ही धर्म का प्राण है। धर्म केवल मत नहीं, बल्कि आत्मानुभूति का सेतु है, जो मानवता को "एक खसम, एक दुनिया" की अनुभूति में जोड़कर अनेकता में एकता का सजीव अनुभव कराता है।

अब समय आया है मानव समाज को उपलब्ध ज्ञान के प्रकाश में 'समग्र चेतना' को जगाने का। समग्र चेतना वह जागरूकता है जो अनेकता में एकता को देखती है, व्यक्तिगत, सामाजिक और आध्यात्मिक अनुभवों को एकीकृत करती है और सभी स्तरों पर प्रेम, करुणा और विवेक के साथ क्रियाशील होती है। यह व्यक्ति को "हम बनाम वे" की सीमित मानसिकता से मुक्त कर सहानुभूति, संवाद और जिम्मेदारी से युक्त बनाती है। यह समझती है कि सच्चा न्याय केवल कानूनों से नहीं, बल्कि चेतना की परिपक्वता से आता है।

विज्ञान और तकनीक में तीव्र प्रगति के बीच मानव चेतना का धीमा विकास असंतुलन का कारण बना है; समग्र दर्शन इस अंतर को संतुलित करने की राह दिखाता है। यह विविधता में एकता, स्वकेंद्रित से विश्वकेंद्रित परिवर्तन, और बहु-दृष्टिकोणीय "समग्र जिज्ञासा" को प्रोत्साहित करता है।

अंततः जब मानवता अलगाव भाव से ऊपर उठकर एकत्व चेतना की अनुभूति में जीना सीख लेगी, तभी सच्ची सामाजिक समरसता, करुणा और वैश्विक एकता संभव होगी — और यही संदेश तारतम वाणी रूपी महासागर से मानवता के लिए झिलमिलाते मोतियों की तरह उद्भासित होता है।

C5.2 कुंजी शब्द

समग्र आध्यात्मिकता, नस्लवाद, आंतरिक जागरण, चेतना के विकास स्तर, श्री कुलजम स्वरूप

C5.3 महामति प्राणनाथ परिचय: तारतम क्रांति का बीजारोपण ऐतिहासिक संदर्भ: विघटन से समन्वय और परम सत्य की प्रकाशना की ओर

सत्रहवीं शताब्दी का भारत सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विघटन के दौर से गुजर रहा था। जाति-पंथ के मतभेद, आडंबर और असहिष्णुता ने समाज को बाँट रखा था। ऐसे संक्रमणकाल में महामति प्राणनाथ का प्रादुर्भाव हुआ — जिन्होंने *"वसुधैव कुटुम्बकम्"* और *"सर्वधर्म समभाव"* को केवल कहा नहीं, बल्कि अपने जीवन में साकार किया।

उनका कार्य किसी एक संप्रदाय तक सीमित नहीं था; वह संपूर्ण मानवता की चेतना को पुनर्जीवित करने वाला आंदोलन था। उन्होंने धर्मों की मूल एकता को उजागर किया और मनुष्य को प्रेम, सत्य, करुणा और समभाव का मार्ग दिखाया। उनका सशक्त मत था कि मनुष्य ने स्वयं को विभिन्न जातियों और नामों में बाँट लिया है, जबकि सबका मालिक परमात्मा एक ही है। सभी उसी की आराधना करते हैं, किंतु जब विवेक जागृत नहीं होता, तब वही आराधना विवाद का कारण बन जाती है। जैसे विभिन्न रंगों की गायों का दूध एक समान होता है, वैसे ही सभी धर्मों का सार भी एक ही है —

सब जातें नाम जुदे धरे, और सबका खाविंद एक।
सबकी बंदगी याही की, पीछे लड़े बिना पाये विवेक।। — खुलासा 2/22

सन 1678 में हरिद्वार कुंभ के अवसर पर महामति प्राणनाथ ने अनेक मतों के आचार्यों से शास्त्रार्थ किया और सबका ध्यान इस गहन तथ्य की ओर आकर्षित किया कि यद्यपि आज देश-विदेश में अनेक विघटनकारी प्रवृत्तियाँ दिखाई दे रही हैं, तथापि एक अदृश्य शक्ति — परमात्मा स्वयं — विश्व को पुनः एकीकरण की दिशा में अग्रसर कर रही

है। उन्होंने संकेत दिया कि इस दिव्य एकता का प्रारंभ हिन्दू जन समाज से होना चाहिए, क्योंकि इसी भूमि ने विविध दर्शनों, ग्रंथों और साधनाओं के माध्यम से मानवता को आध्यात्मिक एकत्व का संदेश दिया है। तारतम ज्ञान, समस्त विद्याओं के तारतम्य संबंध को उद्घाटित कर सबको एक पुरुषोत्तम सत्य में समन्वित करता है और परमानंद के द्वार खोलता है। उन्होंने कहा -

सास्त्र ले चले सतगुर सोई, बानी सकल को एक अर्थ होई।
सब स्यानों की एक मत पाई, पर अजान देखे रे जुदाई।। — किरन्तन 3/4

अर्थात, सच्चा सतगुरु वही है जो सभी शास्त्रों के मूल अर्थ में एकत्व दिखा दे। ज्ञानीजन सभी ग्रंथों में एक ही संदेश पहचानते हैं, जबकि अज्ञानी केवल भेद और विरोध ही देखते हैं।

फिर समझाया कि "ज्ञान की ज्योति से सबके मनों की बुरी भावनाएँ मिटना और सबके हृदयों में परमात्मा के प्रति प्रेम और सच्चे सुख का अनुभव होना अब निश्चित है" -

दुष्टाई सबों की संघारती, सुख अखण्ड आनन्द विस्तारती
जन सचराचर तारती, भई नई रे नवों खण्डों आरती ॥

उनकी इस अद्वितीय तात्त्विक दृष्टि और एकत्व के दिव्य संदेश से प्रभावित होकर, संतों और विद्वानों ने उन्हें "विजयाभिनंदन बुध निष्कलंकावतार" की उपाधि से अलंकृत किया।

C5.4 दार्शनिक दृष्टि: तारतम ज्ञान और एकत्व की अनुभूति

श्री निजानंद सतगुरु श्री देवचंद्रजी और महामति श्री प्राणनाथजी — दोनों ने अपनी आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत गहन आत्म-खोज के प्रश्नों से की और मानवता को भी इसी मार्ग पर चलने का आह्वान किया। वे कहते हैं — "सोचो, मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा स्वामी कौन और कैसा है? जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है?"

ज्ञान के उजाले में जब साधक की दृष्टि क्रमशः समावेशी होती जाती है, तब ये जिज्ञासाएँ केवल विचारों तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि प्रेम, सेवा और रस में परिवर्तित हो जाती हैं। उनकी यह परमज्ञानमयी वाणी, जिसे "तारतम वाणी" या "श्री कुलजम स्वरूप" कहा गया है, चेतना की जागरण-यात्रा का दिव्य मानचित्र है।

इस यात्रा को सफल बनाने हेतु महामति प्राणनाथ अपने निजानंद सतगुरु से प्रेरित आत्म-जागनी अभियान के उद्देश्यों को प्रारंभ में ही स्पष्ट करते हैं — मनुष्यों को सामाजिक दूषणों और संकीर्णताओं से मुक्त करना, धर्मग्रंथों के गूढ़ार्थ को प्रकट करना, अंधविश्वासों से दूर रखना, और स्वानुभूति के आधार पर सत्य को पहचानने की जागृति

जगाना। वे कहते हैं — "साधो, कहर कही करामात," अर्थात चमत्कारों या बाह्य सिद्धियों से सत्य नहीं मिलता; सत्य की पहचान तो तब होती है जब मनुष्य स्वयं देखे, जाने और अनुभव करे। इसलिए वे बार-बार प्रेरित करते हैं — "नित्य नई चरनी चढ़े, नये-नये करे विचार।"

तारतम वाणी सत्रहवीं शताब्दी का एक ऐसा अद्वितीय समावेशी आध्यात्मिक विज्ञान है, जो पूर्ववर्ती सभी शास्त्रों की गहराइयों को जोड़कर उनकी चरम उपलब्धि को एक तारतम्य में बाँध देता है। यह वाणी चेतना के सभी स्तरों को तारतम के प्रकाश में और तारतम्य की जोड़ने की युक्ति से एकीकृत करते हुए पार से पार कराती है। चेतना के विकास की यह प्रक्रिया प्रत्येक स्तर को पार करते हुए, उसकी सार्थकता को कृतज्ञता भाव से अपने में समाहित करते हुए नई ऊंचाई को छू लेना।

महामति के अनुसार, चेतना का यह विकास केवल बौद्धिक नहीं, बल्कि अनुभूतिमूलक है — यह भीतर के प्रेमानन्द की लहरों में डूबने की प्रक्रिया है। जब चेतना अपने केंद्र को पहचानती है, तब वह देखती है कि संसार के विविध मत, भाषा, और संस्कृति — सब उसी एक सत्य की अलग-अलग तरंगें हैं।

इसी सत्य को महामति ने तीन पुरुषों की दार्शनिक संकल्पना से स्पष्ट किया — क्षर पुरुष: परिवर्तनशील जगत का प्रतीक, अक्षर पुरुष: अनादि और अविनाशी सत्ता, और उत्तम पुरुष: परम सच्चिदानंद स्वरूप, जो सबका मूल है। उनके अनुसार, वेद, गीता, कुरान, बाइबिल, और गुरुवाणी — सभी उसी परम सत्य की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं। कल्कि, इमाम मेहंदी, या परमेश्वर के पुत्र — नाम भिन्न हैं, पर सत्य एक ही है।

इसलिए उनकी वाणी केवल धर्मों का संगम नहीं, बल्कि आत्मानुभूति से प्रकट स्वसंवेद ब्रह्मविद्या है — जो भीतर के एकत्व को जागृत करती है। महामति की दृष्टि में न कोई ऊँच-नीच था, न जात-पात; वे हर जीव में धाम का ही अंकुर देखते थे। उनका संदेश स्पष्ट था — जब तक हम अपने भीतर के एकत्व को नहीं पहचानते, तब तक बाहरी विभाजन मिट नहीं सकते।

तारतम ज्ञान हमें यही सिखाता है — कि चेतना का सर्वोच्च उत्कर्ष तब होता है जब जानने वाला, ज्ञेय और ज्ञान — तीनों एक रस में विलीन हो जाते हैं। अंततः वह यह अनुभव कराती है कि एकत्व कोई विचार नहीं, बल्कि अस्तित्व की वास्तविक अनुभूति है — जहाँ धर्म, दर्शन और प्रेम तीनों एक हो जाते हैं। यही है तारतम्य का सार — अक्षरातीत की ओर बढ़ती हुई आत्मा की अनंत उड़ान

C5.5 सामाजिक प्रभाव: सुंदरसाथ से सार्वभौमिक चेतना तक

महामति प्राणनाथ ने अपने विचारों को केवल वाणी में नहीं, बल्कि समाज में उतारा। उन्होंने *"सुंदरसाथ समाज"* की स्थापना कर प्रेम, समानता और एकत्व का जीवन्त

उदाहरण प्रस्तुत किया। उनकी प्रेरणा से बुंदेलखंड के महाराजा छत्रसाल ने न्याय, स्वतंत्रता और मानवता की दिशा में कार्य किया।

उनका आंदोलन केवल धार्मिक सुधार नहीं था, बल्कि तारतम क्रांति था — एक ऐसी चेतना-क्रांति जो मानव को विभाजन से उठाकर एकत्व की अनुभूति तक ले जाती है –

जुदे जुदे नामें गावहीं, जुदे जुदे भेख अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।। — सनन्ध 41/72

अर्थात, सभी धर्मों में नाम, भाषा और बाह्य रूप भिन्न हैं, परंतु परमेश्वर एक ही है। अतः उसकी उपासना के भेद पर झगड़ना अज्ञान है। सच्चा धर्म वह है जो विविधता में उस एकत्व को पहचान सके।

यह वाणी बताती है कि भाषा, परंपरा और प्रतीक बदल सकते हैं, पर परम सत्य एक ही रहता है।

जब यह चेतना जागती है, तब धर्म केवल मत न रहकर — *आत्मानुभूति का सेतु* बन जाता है, जो मानवता को "एक खसम, एक दुनिया" की अनुभूति में प्रतिष्ठित करता है।

जात एक खसम की, और न कोई जात।
एक खसम एक दुनियां, और उड़ गई दूजी बात।। — सनन्ध 36/17

अर्थात, सम्पूर्ण मानवता की जाति एक ही है — परमात्मा की संतान होने की। जो भी भेद हम रचते हैं, वे केवल मानसिक भ्रम हैं। जब यह समझ प्रकट होती है, तब द्वैतभाव और भेद की सारी बातें स्वतः मिट जाती हैं।

मध्यकालीन भारत आधुनिक नस्लवाद से मुक्त था, पर जाति, धर्म और वर्ग आधारित भेदभाव उसी मानसिकता का प्रतीक थे — जहाँ कोई स्वयं को "ऊँचा" या "शुद्ध" मानता था। यही श्रेष्ठता-बोध आगे चलकर सामाजिक असमानता का कारण बना। इस दृष्टि से महामति प्राणनाथ का समरसता-संदेश आज भी अत्यंत प्रासंगिक है — क्योंकि वास्तविक एकता तभी संभव है जब मनुष्य चेतना के स्तर पर विभाजन से ऊपर उठे।

पहलू	विषमता का स्वरूप	जातिवाद से समानता
जातिगत व्यवस्था	जन्म से तय ऊंच-नीच	हाँ — जन्म आधारित भेद
सांस्कृतिक वर्चस्व	मुगल-फ़ारसी प्रभुत्व	सांस्कृतिक श्रेष्ठता
धार्मिक संकीर्णता	हिन्दू–मुस्लिम–सिख विभाजन	विचारगत अलगाव

लैंगिक भेदभाव	पुरुषप्रधान ढाँचा	संरचनात्मक असमानता
भाषा और शिक्षा	संस्कृत–फ़ारसी भाषा श्रेष्ठता	अवसर से बहिष्कार
आध्यात्मिक सुधार	भक्ति–सूफ़ी–तारतम समन्वय	चेतना द्वारा समता की स्थापना

C5.6 कुछ ऐतिहासिक क्रांतिकारी झलकियाँ

ऐसे युग में तारतम वाणी प्रकाश की एक नई किरण प्रकट हुई — जिसने विभाजन के सारे पर्दे हटाकर यह उद्घोष किया कि सभी आत्माएँ एक ही मूल ज्योति से प्रकाशित हैं - जब आत्मा अपने मूल स्वरूप में जागती है, तब अलगाव का पट हट जाता है। निजानन्द सतगुरु और महामति प्राणनाथजी के जीवन के सार्वभौमिक चेतनाका उद्घाटन करने वाले कुछ प्रसंग ऐसे हैं जो हर प्रकार के सामाजिक और आध्यात्मिक "नस्लवाद" का अंत और चेतना में एक नई क्रांति — तारतम क्रांति — का बीज बोते हैं: यहाँ इन प्रसंगों का प्राथमिक परिचय करना उपयुक्त होगा:

C5.6.1 **वंश से ऊपर योग्यता — धर्म नेतृत्व के लिए मिहिराज का नियुक्त होना**: जब निजानन्द सतगुरु स्वामी ने अपने रक्तपुत्र बिहारीजी के स्थान पर मिहिराज (भविष्य के महामति प्राणनाथ) को समुदाय का नेतृत्व सौंपा, तो यह केवल एक प्रशासनिक निर्णय नहीं था — यह एक क्रांति थी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि आध्यात्मिक अधिकार जन्म से नहीं, जागृति से मिलता है। मिहिराज ने अत्यंत विनम्रता से यह उत्तरदायित्व स्वीकार किया और बिहारीजी का भी सम्मान बनाए रखा। इस घटना ने पहली बार यह स्पष्ट किया कि सत्य की प्रतिष्ठा रक्त से नहीं, आत्मा से होती है। यही निजानन्द क्रांति का प्रथम चरण था — वंश पर योग्यता की विजय।

C5.6.2 **नियम से ऊपर प्रेम — फूलबाई की करुणा:** बिहारीजी ने एक गरीब किसान भक्त गंगादास को इस आधार पर दण्डित किया कि वह अपने खेत और दूरी के कारण दिन में दो बार दरशन सभा में उपस्थित नहीं हो पाता था। जब उस ने रोज एक बार आने की छूट मांगी, तो इस बात पर बिहारीजी ने उसे सुन्दरसाथ समुदाय से बाहर कर दिया। नौ दिन से भूखा गंगादास फूलबाई के द्वार पर पहुँचा। फूलबाई, जो मिहिराज की पत्नी थीं, ने किसी दंड के भय या नियम की परवाह किए बिना उसे घर में बुलाया, भोजन कराया और स्नेह दिया। जब उन्हें बिहारी जी के दंड का सामना करना हुआ, तब उन्होंने शांत भाव से अपने पति मिहिराज जी से कहा —"स्वामी, आप सतगुरु के कार्य में लग

जाइए, मेरा त्याग उसी का एक भाग रहेगा।" फूलबाई की यह करुणा बताती है कि निजानन्द पथ में प्रेम ही सर्वोच्च नियम है। जहाँ प्रेम है, वहाँ विभाजन का कोई स्थान नहीं।

C5.6.3 **धर्म से ऊपर आत्मा — मुस्लिम विधवा का सम्मान**: एक दिन सत्संग के बीच एक मुस्लिम विधवा सब्ज़ियाँ बेचते हुए पुकार रही थी। निजानन्द सतगुरु ने अचानक कहा —"वह स्त्री परमधाम की आत्मा है।" बालक मिहिर ने विस्मय से पूछा —"गुरुदेव, क्या कोई गरीब, मुस्लिम और विधवा आत्मा इतने आनन्दमय परमधाम की हो सकती है?" सतगुरु मुस्कराए और बोले — "मिहिर, परमधाम की आत्माएँ सब जातियों और समुदायों में हैं। धर्म, सम्प्रदाय या स्थिति का भेद वहाँ नहीं चलता। जहाँ प्रेम और सत्य की ज्योति जलती है, वहीं परमधाम है।" यह घटना मिहिर के भीतर वास्तविक सार्वभौमिकता का बीज बनी।यह दूसरा द्वार था — धर्म से दिव्यता कीओर।

C5.6.4 **सत्ता से ऊपर समानता** — धाराभाई खंभालिए के एक गरीब और विनम्र सुन्दरसाथ थे। महामति की प्रेरणा से वह सब को अनुभवात्मक ज्ञान चर्चा सुनाते थे। लेकिन बिना गादीपति बिहारीजी की अनुमति के तारतम उपदेश देने की सजा के रूप में उस को सुन्दरसाथ समुदाय से निस्कासित कर दिया। व्यथित धाराभाई ने मिहिराज से सहायता माँगी कि उसे सुन्दरसाथ समुदाय में पुनः सम्मिलित कर लिया जाए। मिहिराज ने अत्यंत शांति से बिहारीजी को समझाने का प्रयास किया, परंतु उन की एक भी बयान नहीं मानी। उल्टे, क्रूर बिहारीजीने तीन कठोर नियम लिख भेजे — 1. कोई दलित या गरीब दीक्षा नहीं पा सकता, 2. कोई विधवा दीक्षा नहीं पा सकती, और 3. केवल बिहारीजी और मिहिराज ही तारतम ज्ञान दे सकते हैं, अन्य कोई नहीं! तो मिहिराज ने सतगुरु की सार्वभौमिक दृष्टि के विपरीत इन नियमों का सख्त विरोध किया और सुरत शहर से बिहारी जी से अलग हो कर जागनी अभियान — वह जागरण जो सबको समान रूप से जोड़ता है, जहाँ परमात्मा का प्रकाश सबके भीतर प्रकट होता है - को सुव्यवस्थित रूप दिया और उन के साथ 500 जितने सुन्दरसाथ भी जूड गए, जो पन्ना म. प्र. पहुंचते तक 5000 की बड़ी जमात बन गई। यह था सत्ता और आध्यात्मिक अहंकार के विरुद्ध समानता का उद्घोष।

C5.6.5. **जब दुनिया तैयार न थी — तब महाराज छत्रसाल जी ने दिया स्त्री साध्वी को आचार्य पद**: जब हम इतिहास पर दृष्टि डालते हैं, तो पाते हैं कि अमेरिका में महिलाओं को वोट देने का अधिकार 1920 में और स्विट्ज़रलैंड में 1971 में मिला — अर्थात्, स्त्री को समान अधिकार मिलने में आधुनिक समाज को भी कई शताब्दियाँ लगीं। परन्तु सोचने योग्य बात यह है कि महामति श्री प्राणनाथ के परम शिष्य, महाराज छत्रसाल जी ने तो सन 1695 में ही केसरबाई नामक साध्वी को प्रथम महिला आचार्य बनाकर पन्ना

(म.प्र.) से जामनगर (नवतनपुरी) भेजा था। यह उस युग की सीमाओं से परे उठने वाला एक आध्यात्मिक और सामाजिक क्रांतिकारी कदम था — जो दर्शाता है कि तारतम वाणी ने न केवल आत्मिक समता का संदेश दिया, बल्कि लिंगभेद से परे समानता और श्रद्धा के आदर्श को भी बहुत पहले स्थापित किया।

C5.6.6. **महामति प्राणनाथ का गांधीजी पर प्रभाव और एकत्व की दृष्टि**: महात्मा गांधी की गहरी आध्यात्मिक समावेशिता उनकी माता पुतलीबाई की परनामी परंपरा से जुड़ी थी — जो जूनागढ़ के पास दत्राणा गाँव के अनुयायी थे और महामति प्राणनाथ की शिक्षाओं में विश्वास रखते थे, जिन्होंने सभी धर्मों की एकता का संदेश दिया। पोरबंदर के स्वामी लालदासजी, जो प्राणनाथजी के परम भक्त थे, ने अपना जीवन उन्हें समर्पित किया। यह भक्ति और सार्वभौमिकता की जीवंत परंपरा गांधीजी के परिवारिक संस्कारों में गहराई से समाई हुई थी। हार्वर्ड के विद्वान स्टीफन ने लिखा कि गांधीजी को समझने के लिए उनकी मां के धर्म को समझना आवश्यक है।

इंग्लैंड प्रवास (1888–1890) के दौरान गांधीजी ने महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी (बड़ा कयामत) का अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ा, जिसमें जागृति, करुणा और आत्मोद्धार का संदेश था। इस ग्रंथ की शिक्षाओं ने उनके भीतर सेवा, करुणा और सार्वभौमिक धर्म की भावना को और गहराई दी।

महामति की तरह गांधीजी भी मानते थे कि धर्म का सच्चा उद्देश्य जोड़ना है, तोड़ना नहीं। उन्होंने यंग इंडिया (1927) में लिखा: "यद्यपि मैं हिंदू हूँ, फिर भी मेरे विश्वास में ईसाई, इस्लामी और जरथुस्त्र धर्म की शिक्षाओं के लिए स्थान है।"

महामति प्राणनाथ और गांधीजी दोनों ने अस्पृश्यता और जातिगत ऊँच-नीच का विरोध किया। उन्होंने कर्म और सदाचार को जन्म से ऊँचा माना तथा एकत्व और समानता को धर्म का आधार बताया। यह दृष्टि तारतम वाणी और गांधीजी की इस प्रार्थना में स्पष्ट झलकती है: "ईश्वर अल्लाह तेरो नाम, सबको सन्मति दे भगवान।"

विश्व स्तर पर गांधीजी ने महामति के सत्य, करुणा और एकता के संदेश को कर्म के रूप में मूर्त किया। उन्होंने इस दिव्य विचारधारा को नैतिक और मानवीय क्रांति में बदल दिया, जिससे मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेल्सन मंडेला जैसे नेता प्रेरित हुए।

अमेरिकी इतिहासकार रैंडल मिलर (2019) बताते हैं कि आज सोशल मीडिया के प्रभाव से लोगों में विभाजन की भावना बढ़ रही है, और राजनीतिक समझौते कठिन होते जा रहे हैं। मतभेदों को अक्सर मूलभूत टकराव के रूप में देखा जाता है, जिससे साझा समझ बनाना मुश्किल हो जाता है।

मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा कि गांधी का योगदान मानवता की प्रगति के लिए अनिवार्य है। उन्होंने शांति और एकता की दिशा में मानवता की दृष्टि से जीवन जीने

और कार्य करने का उदाहरण दिया। उन्होंने कहा: "ईसा ने भावना और प्रेरणा दी, गांधी ने तरीका दिया।" गांधी ने अहिंसा को ही उत्पीड़ितों के लिए नैतिक और व्यावहारिक मार्ग माना।

बराक ओबामा ने कहा कि गांधी और नेल्सन मंडेला जैसे नेताओं का काम कठिन था और समय और प्रयास की आवश्यकता थी। नेल्सन मंडेला ने गांधी को अपना रोल मॉडल बताया, क्योंकि दोनों ने उपनिवेशवादी अत्याचार का सामना किया और अहिंसात्मक प्रतिरोध के माध्यम से लोगों को संगठित किया।

इस तरह, महामति प्राणनाथ ने एकत्व की चेतना के बीज बोए तो गांधीजी ने उन्हें मानवता की जीवंत नैतिक क्रांति में परिणत किया।

इन सभी प्रसंगों में एक ही सत्य क्रमशः खुलता है कि परमात्मा की सत्ता किसी भी भेद से परे है: वंश के ऊपर योग्यता, नियम के ऊपर प्रेम, धर्म के ऊपर आत्मा, और सत्ता के ऊपर समानता। यही है तारतम क्रांति — जहाँ समाज व्यवस्था से चेतना समरसता की ओर बढ़ता है, जहाँ "मैं और तुम" की जगह "हम" जागृत होता है। नस्लवाद और सामाजिक भेदभाव केवल सामाजिक नहीं, बल्कि अविकसित चेतना के रूप हैं।उनका समाधान बाहरी सुधार से नहीं, आत्मिक जागरण से होता है। जब मनुष्य भीतर की ओर मुड़ता है, जाति, धर्म, और लिंग के पर्दे स्वयं गिर जाते हैं — और वही एक परम सत्य प्रकट होता है। यही है अद्वैत निजानन्द समानता — वह अनुभव जहाँ सबमें एक ही चेतना स्पंदित है, जहाँ परमधाम कोई दूर स्थान नहीं, बल्कि यह क्षण-क्षण का जागृत आनन्द क्षेत्र है। यहाँ और अभी — यही परमधाम है। यही है परमधामी चेतना। यही है सब के लिए 'सदा आनन्द मंगल' की भावना।

C5.7 सामाजिक भेदभाव और नस्लवाद

आज भी मानव समाज में जो नस्लवादी प्रवृत्ति व्यापक रूप से देखी जाती है, इसका मूल विश्वास यह है कि मानव नस्लों के बीच प्राकृतिक और जैविक अंतर मौजूद हैं, और इन्हीं के आधार पर कुछ नस्लों को अन्य से श्रेष्ठ या हीन माना जाता है। यह धारणा सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और वैश्विक स्तर पर भेदभाव, पूर्वाग्रह और असमानता को जन्म देती है।

विश्व इतिहास इसके अनेक प्रमाण प्रस्तुत करता है—जैसे, 17वीं से 19वीं सदी तक अमेरिका में अफ्रीकी मूल के लोगों को जबरन गुलाम बनाना और खेतों व घरों में बेगार कराना; दक्षिण अफ्रीका में 1948 से 1994 तक श्वेत और अश्वेत लोगों के बीच कानूनी अलगाव (अपरथाइड) लागू करना, जिसके तहत मतदान, शिक्षा और भूमि अधिकारों पर प्रतिबंध लगाए गए; और नाज़ी जर्मनी में यहूदी, रोमा और अन्य समुदायों

के खिलाफ़ नस्लीय श्रेष्ठता के नाम पर हिंसा और नरसंहार (होलोकॉस्ट) करना। भारत समेत कई देशों में भेदभाव के स्वरूप अलग-अलग हैं—त्वचा के रंग, क्षेत्रीय या भाषायी पहचान, जाति, जनजाति, तथा रोज़मर्रा की सूक्ष्म बातें जैसे उच्चारण, पहनावा, खानपान या रीति-रिवाज़ों पर मज़ाक उड़ाना या सामान्यीकरण करना आदि। ये सभी, भले ही अलग संदर्भ में हों, ये सभी नस्लवाद-समान ही माने जा सकते हैं।

अतः महामति प्राणनाथ प्रदत्त "तारतम वाणी" के गहन भावों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर समझना केवल शिक्षाप्रद ही नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण, मानव-निर्माण, पर्यावरण संरक्षण और आत्म-जागरण की दिशा में सशक्त व प्रेरणादायक पहल सिद्ध हो सकता है। क्यों कि दोनों युगों में समस्या की जड़ एक ही है - अपरिपक्व चेतना।

C5.8 सामाजिक समरसता, सामाजिक भिन्नताएँ और सामाजिक भेदभाव

'सामाजिक समरसता' का अर्थ है समाज के विविध समूहों, विचारों और पहचानों के बीच संतुलन, सम्मान और सहयोग का वातावरण। इसका मतलब यह नहीं कि जाति, धर्म, भाषा या परंपराओं की भिन्नताएँ मिट जाएँ, बल्कि यह कि वे संघर्ष का कारण न बनें।

'सामाजिक भिन्नताएँ' जैसे उम्र, लिंग, जाति, धर्म, भाषा, धन या शिक्षा के अंतर स्वाभाविक और कई बार लाभकारी होते हैं—वे रचनात्मकता, समझ और सहयोग को बढ़ाते हैं। पर जब इन्हें "श्रेष्ठ" या "हीन" मानकर भेदभाव से जोड़ा जाता है, तो अन्याय और विभाजन उत्पन्न होते हैं। दोष अंतर में नहीं, सोच में है।

इसलिए उद्देश्य यह होना चाहिए कि विविधता को स्वीकारते हुए समानता और मेल बनाए रखें। ऐसा समाज जहाँ पहचान के आधार पर किसी के साथ अन्याय या असमान व्यवहार न हो—वही सामाजिक समरसता कहलाता है।

इसके विपरीत, जब भिन्नताओं के आधार पर असमानता और अन्याय होते हैं, तो वह 'सामाजिक भेदभाव' है, और जहाँ भेदभाव रहेगा, वहाँ स्थायी समरसता संभव नहीं।

समरसता केवल भेदभाव मिटाने से नहीं आती; इसके लिए आपसी विश्वास, सम्मान और सतत संवाद आवश्यक है। यही भावना महामति प्राणनाथ ने 17वीं सदी में 'सुंदरसाथ समाज' के रूप में जीवित की—जहाँ विविध जातियों, प्रांतों और धर्मों से आए हजारों साधक पन्ना में उनके सान्निध्य में एकता और आध्यात्मिक समानता का जीवंत उदाहरण बने।

C5.9 तकनीकी प्रगति बनाम चेतना विकास: एक वैश्विक खतरा

यह असमानता केवल जाति या नस्ल तक सीमित नहीं रही; अब यह आधुनिक सभ्यता के केंद्र — तकनीक और मानव मूल्यों — के बीच भी दिखाई देती है। आज हम

एक खतरनाक असंतुलन का सामना कर रहे हैं: तकनीकी प्रगति (IT) तेजी से बढ़ रही है, जबकि मानव मूल्यों, नैतिकता और चेतना विकास (I) धीमा पड़ गया है। यह असंतुलन केवल सामाजिक या आर्थिक समस्याएँ नहीं, बल्कि वैश्विक संकट की संभावना भी बढ़ाता है।

समग्रता का अर्थ है तकनीकी और चेतनात्मक विकास का संतुलन। केवल स्मार्ट मशीनें बनाना पर्याप्त नहीं; बुद्धिमान, नैतिक और परिपक्व मन का विकास भी आवश्यक है। समग्र चेतना लोगों को जिम्मेदार निर्णय लेने, करुणा और सहानुभूति बढ़ाने, और अपने पूर्वाग्रहों को दूर करने में सक्षम बनाती है।

सबसे बड़ी चुनौती यह है कि बाहरी प्रणालियाँ—तकनीक, अर्थव्यवस्था, शासन—वैश्विक हो गई हैं, लेकिन आंतरिक चेतना पीछे छूटी है। केवल 30% लोग विश्व-केन्द्रित सोच तक पहुँचे हैं; 60–70% अभी भी अहं- या जाति-केन्द्रित हैं, और मात्र 8% समग्र (इंटीग्रल) स्तर पर हैं। हम बाहरी प्रगति को मापते हैं, लेकिन आंतरिक विकास को नहीं। यह वैसा ही है जैसे पेड़ की पत्तियाँ रंगते जाएँ, लेकिन जड़ों की देखभाल भूल जाएँ।

वास्तविक स्थायित्व और न्याय तभी संभव है जब तकनीकी क्षमता और मानव चेतना दोनों का संतुलन बनाए रखा जाए। केवल तभी नवाचार समाज और प्रकृति के लिए स्थायी और लाभकारी बन सकता है।

C5.10 वैश्विक गाँव में जातिगत चेतना का संकट और समाधान

आज का वास्तविक संकट *वैश्वीकरण* नहीं, बल्कि *चेतना की अपरिपक्वता* है। हमने "वैश्विक गाँव" तो बना लिया है, पर उसमें जीने की *आंतरिक तैयारी* अभी नहीं की। हमारे पास पंख तो हैं, पर उड़ना नहीं आता। तकनीक और संसाधनों में हम विश्वस्तरीय हैं, पर हमारी सोच अब भी जातिगत, सीमित और विभाजक है। यही असंतुलन युद्ध, असमानता और पर्यावरणीय संकटों को जन्म देता है।

हमारे युग की सबसे बड़ी चुनौती केवल बाहरी प्रबंधन नहीं, बल्कि *भीतरी विकास* है — ऐसी परिपक्वता, करुणा और चेतना का विकास जो हमारी सामर्थ्य और तकनीकी शक्ति के अनुरूप हो। आज *समग्र राजनीति, समग्र संस्कृति और समग्र चेतना* कोई आदर्श नहीं, बल्कि अस्तित्व की अनिवार्यता बन गई है।

जैसा कि *तारतम वाणी* स्मरण कराती है — सच्चा सामंजस्य तभी संभव है जब *आंतरिक शुद्धता, व्यक्तिगत साधना और सामूहिक उत्थान* एक साथ चलें। आधुनिकता ने हमें पंख दिए, उत्तर-आधुनिकता ने खाई दिखाई; अब समग्र दृष्टि सिखाती है कि विवेक और चेतना से उड़ना कैसे है — अन्यथा हमारी तकनीकी उपलब्धियाँ ही हमारी छाया बनकर हमें निगल सकती हैं। इसलिए *समग्र चेतना का विकास* आज की सबसे आवश्यक माँग है।

महामति प्राणनाथ ने इस संकट को तीन शताब्दियाँ पहले ही भाँप लिया था। उन्होंने देखा कि मानव समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जैसी जातियों और विविध गोत्रों में उलझकर अपनी *मूल चेतन वंशावली* से कट चुका है। यह बाहरी व्यवस्था मनुष्य को उसकी *आत्मिक पहचान* से दूर ले गई थी।

इस विभाजन को मिटाने के लिए संवत 1735 में हरिद्वार में महामति प्राणनाथ ने सभी धर्माचार्यों को *एक परब्रह्म परमात्मा* की चेतना से जोड़ा और आत्मा की सच्ची वंशीय पहचान — "चिदानंद" — को *आत्मिक गोत्र* के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने उद्घोष किया —

"एक खसम एक दुनिया, उड़ गई दूजी बात।"

"जात-पांत न भाँत कोई, एक खान-पान, एक गान।"

देह-आधारित जाति और गोत्र-भेद को उन्होंने *अज्ञान* का परिणाम बताया, जबकि आत्मा-आधारित एकत्व को *सत्य का बोध* कहा। यही दृष्टि आज के वैश्विक गाँव के लिए भी समाधान है — जहाँ मानवता को तकनीकी और सांस्कृतिक प्रगति के साथ-साथ *आध्यात्मिक एकत्व-बोध* विकसित करना होगा।

जब तक यह "चिदानंद-गोत्र" — अर्थात् परमात्मा-संबंधी चेतना — जाग्रत नहीं होती, तब तक मानवता अधूरी रहेगी। और जब यह बोध जागेगा, तब वैश्वीकरण केवल तकनीकी उपलब्धि नहीं रहेगा, बल्कि आत्मा की *वैश्विक करुणा और समरसता का विस्तार* बन जाएगा।

C5.11 धर्म और चेतना: प्रेरणा, परिपक्वता और सामाजिक समरसता

मानव समाज में धर्मों की विविधता जितनी प्राचीन है, उतना ही पुराना है उनका संवाद और संघर्ष भी। अधिकतर लोग संसार में रहते हुए सभी धर्मों में निहित एकता के सार को नहीं पहचान पाते। यही धर्म का सबसे बड़ा विरोधाभास है—वह मानवता का सबसे महान प्रेरक भी रहा है और सबसे भयानक विभाजन का कारण भी। महामति प्राणनाथ इस स्थिति को देखकर चेतना के विकास की आवश्यकता पर विशेष बल देते हैं—

"जाहिर झूठा खेलहीं, हिरदे अति अंधेर।
कहें हम सांचे और झूठे, यों फिरें उलटे फेर।।" (कलश हिंदी 15/16)

जब आध्यात्मिक अनुभवों की व्याख्या निम्न चेतना स्तरों—जैसे स्वकेन्द्रीयता ("सिर्फ मैं") या जातिकेन्द्रीयता ("सिर्फ हमारा समूह")—से की जाती है, तो धर्म विनाशकारी बन जाता है। यही कारण था कि क्रूसेड्स और इन्क्विज़िशन जैसी हिंसक घटनाएँ हुईं, जहाँ "सच्चे धर्म" के नाम पर अत्याचार किए गए। ऐसे कई साधक आध्यात्मिक रूप से तो जागे हुए थे, पर नैतिक और भावनात्मक रूप से अपरिपक्व रहे—

उनकी चेतना "मैं" या "हम" से आगे नहीं बढ़ पाई। उन्होंने जीवन की एकता और अहं की माया जैसे गूढ़ रहस्यों को तो जाना, पर सहानुभूति, आत्म-जागरूकता और उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन जीने की क्षमता विकसित नहीं कर सके। जब धर्म को जातिकेन्द्रीय दृष्टि से देखा जाता है, तो वह घृणा और विभाजन का कारण बनता है; पर जब उसे विश्वकेन्द्रीय चेतना से देखा जाता है, तो वही धर्म प्रेम, करुणा और एकता की शक्ति बन जाता है। जैसा महामति ने कहा—

"ए तो गत संसार की, जो खैंचा खैंच करत।
आपन तो साथी धाम के, है हम में तो नूर मत॥" (किरंतन 94/33)

इसलिए सच्ची आध्यात्मिकता में केवल "जागना" (Waking Up) नहीं, बल्कि "विकसित होना" (Growing Up) भी आवश्यक है। क्योंकि कोई भी आध्यात्मिक पथ यदि भावनात्मक और नै-तिक परिपक्वता नहीं देता, तो साधक विकास के निम्न स्तरों पर अटक जाते हैं—और तब धर्म, जो जोड़ने के लिए था, विभाजन का साधन बन जाता है। बस यहीं से द्वैत भाव खड़ा हो जाता है, सामाजिक समरसता भंग होने लगती है।

महामति जब 'एक विश्व धर्म' की बात करते हैं, तो वे उसका अर्थ धार्मिक एकरूपता नहीं, बल्कि चेतनात्मक एकता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। साधारण धारणा के विपरीत, उनका आशय यह नहीं है कि सभी धर्म मिलकर एक समान ढाँचे में समा जाएँ; बल्कि यह है कि हर धर्म अपने मौलिक सत्य में गहराई से उतरे, और उसके अनुयायी अन्य परंपराओं के दृष्टिकोणों से सीखने के लिए खुले बनें।

महामति का उद्देश्य बाहरी संगठनों का विलय नहीं, बल्कि आंतरिक चेतना का उत्कर्ष है—जहाँ मनुष्य धर्म के नाम पर विभाजित न होकर, सत्य के अनेक रूपों को एक ही दिव्य स्रोत से उत्पन्न लहरों के रूप में पहचान सके। इस दृष्टि में "एक विश्व धर्म" कोई संस्थागत या बाहरी ढाँचे की कल्पना नहीं, बल्कि आध्यात्मिक परिपक्वता और समन्वित चेतना का आह्वान है। अर्थात, "एक विश्व धर्म" धार्मिक संरचना की एकरूपता नहीं, बल्कि चेतना की एकता है।

C5.12 पुनर्जन्म: आत्मा की क्रमिक चेतन यात्रा और धर्म-समन्वय की दिशा

यदि हम चेतना के विकास को केवल एक जीवन तक सीमित न देखें, तो पुनर्जन्म का सिद्धांत हमें एक व्यापक और समग्र दृष्टि प्रदान करता है। इसके अनुसार जीव अनेक जन्मों के अनुभवों से गुजरता हुआ क्रमशः समरसता, अद्वैत और तारतम्य-केंद्रित धर्म-समन्वय की ओर अग्रसर होता है। यह केवल सांस्कृतिक या नैतिक यात्रा नहीं, बल्कि आत्मा के क्रमिक आध्यात्मिक उत्कर्ष की प्रक्रिया है।

गीता (4.5) में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं — "बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥" यहाँ कृष्ण संकेत करते हैं कि आत्मा अनेक जन्मों से गुजरती है, और हर जन्म में उसके कर्म, ज्ञान और संस्कारों का संचय उसे एक नई चेतन अवस्था में ले जाता है। इसी भाव को बृहदारण्यक उपनिषद् (4.4.3) में "यथाकर्म यथाश्रुतं..." कहकर दोहराया गया है — जहाँ जन्म को कर्म और ज्ञान की परिपक्वता से जोड़ा गया है।

यदि हम कर्मफल और सीखने की प्रक्रिया को ध्यान में रखें, तो पुनर्जन्म एक दिव्य पाठशाला की तरह प्रतीत होता है — जहाँ आत्मा विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और विचार-परंपराओं के अनुभवों से होकर गुजरती है, ताकि अंततः वह सबमें निहित एकत्व-सत्य को पहचान सके। एक जीवन में संकीर्ण दृष्टि अपनाने वाला व्यक्ति अगले जीवन में अधिक उदार और समग्र दृष्टिकोण प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार पुनर्जन्म आत्मा की सतत शिक्षा है — अनुभवों का विस्तार और चेतना की परिपक्वता।

परन्तु इस से एक कदम आगे बढ़ कर, महामति प्राणनाथ तारतम वाणी में पुनर्जन्म को केवल शरीर का परिवर्तन नहीं, बल्कि चेतना की छलांग के रूप में व्याख्यायित करते हैं। उनके अनुसार यह यात्रा स्वप्न-बुद्धि (अज्ञान) से जाग्रत-बुद्धि (ज्ञान) और फिर निज-बुद्धि (प्रेम) में प्रवेश की यात्रा है। यही वास्तविक पुनर्जन्म है — जहाँ आत्मा हद (सीमित) से बेहद (असीम) और फिर अक्षरातीत (अपरिमेय प्रेमानंद) की ओर उन्मुख होती है। प्रत्येक अवस्था में आत्मा अपने पूर्व अनुभवों का सार लेकर आगे बढ़ती है, पुराने संकीर्ण दृष्टिकोणों को कृतज्ञता से पीछे छोड़ती है, और नए प्रकाश में स्वयं को पहचानती है। तारतम ब्रह्मवाणी में इसका स्पष्ट संकेत मिलता है — "जीव टल होसी आतम।" यह चरण पुनर्जन्म की चरम परिणति को उद्घाटित करता है — जहाँ जीवभाव की अस्थिरता मिटकर आत्मभाव की स्थिरता में प्रवेश होता है। यह केवल पुनर्जन्म नहीं, पुनर्जागरण है — चेतना की पूर्ण परिपक्वता।

इस दृष्टि से तारतम्य-केंद्रित 'धर्म-समन्वय' कोई वैकल्पिक दर्शन नहीं, बल्कि आत्मा की स्वाभाविक चेतन प्रगति का अंग है — जहाँ अनेकता से एकता की ओर यात्रा होती है। कुछ आत्माएँ इस मार्ग पर धीमे चलती हैं, कुछ तीव्र गति से, पर अंततः सभी एक ही स्रोत की ओर लौटती हैं। अंततः, यदि पुनर्जन्म को ईश्वरीय योजना का अंग माना जाए, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा का प्रत्येक जन्म किसी दंड या पुरस्कार का नहीं, बल्कि सीखने, समन्वय करने और प्रेम में परिपक्व होने का अवसर है। यही तारतम वाणी की निर्णायक शिक्षा है — जीव की अनेक जन्मों की यात्रा तब ही सार्थक होती है जब वह

उत्तरोत्तर ऊंची छलाँगे लगाते हुए आत्म स्वरूप और निज स्वरूप — प्रेममय आत्मा और परमात्मा के अखंड एकत्व — को पहचान लेता है।

C5.13 मानव चेतना विकास के बिना समानता अधूरी है

आधुनिक "विज्ञान बनाम धर्म" की बहस प्रायः मानव चेतना के गहरे आयामों को अनदेखा कर देती है। विज्ञान की प्रमाण-आधारित दृष्टि की प्रशंसा होती है, पर धर्म को अक्सर मिथकीय या पुरातन समझ लिया जाता है। यह द्वैत दृष्टिकोण उस यात्रा को नज़रअंदाज करता है जो चेतना के विस्तार और अर्थ की खोज की दिशा में चल रही है — जहाँ अंधविश्वास नहीं, बल्कि अनुभव, विवेक और समग्रता का संगम है।

मानव चेतना सामान्यतः स्वकेंद्रित से समग्र चेतना तक विकसित होती है:

चरण	ध्यान	मानसिकता
समग्र	"हर चरण महत्वपूर्ण है"	आंतरिक और बाह्य विविधता का समावेश
विश्वकेंद्रित	"हर कोई महत्वपूर्ण है"	समावेशी, वैश्विक दृष्टिकोण
जातिकेंद्रित	"हम बनाम वे"	जनजातीय, पहचान आधारित
स्वकेंद्रित	"पहले मैं"	आत्म-केंद्रित, अस्तित्व आधारित

एक शोध के अनुसार आज लगभग 60% लोग जातिकेंद्रित स्तर पर अटके हुए हैं, जहाँ पहचान कठोर हो जाती है और "हम बनाम वे" की मानसिकता हावी रहती है। यही सोच सदियों से नस्लवाद, युद्ध, उत्पीड़न और असमानता को जन्म देती रही है।

विडंबना यह है कि प्रगतिशील आंदोलन भी कभी-कभी इसी गिरावट का शिकार हो जाते हैं — जब कोई विचारधारा इतनी अटल हो जाती है कि हर असहमति को शत्रुता मानने लगती है। यह प्रवृत्ति केवल धर्म में ही नहीं, बल्कि विज्ञानवाद या पहचान-आधारित राजनीति में भी दिखाई देती है।

कानूनी समानता और सामाजिक सुधार विकसित देशों में होने के बावजूद, आंतरिक चेतना में पक्षपात अब भी बना हुआ है। निष्पक्ष कानून भी तब तक अधूरे हैं, जब तक उन्हें संकीर्ण मानसिकता वाले लोग लागू करते हैं। इसलिए नस्लवाद और भेदभाव आज भी जीवित हैं।

उच्चतर चेतना स्तर समावेशिता, समानता और विविधता को अंतःस्रोत से जीता है, केवल बाहरी पहचान से नहीं। जैसा कि मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा था — व्यक्ति का मूल्य उसके चरित्र से होना चाहिए, न कि रंग या जाति से।

आधुनिक सोच कभी-कभी बाहरी समानता पर इतना केंद्रित हो जाती है कि वह आंतरिक विकास के पदानुक्रम को नकार देती है। जबकि प्रकृति में हर विकास — परमाणु से अणु, अणु से कोशिका, कोशिका से जीव — क्रमिक और परस्पर आधारित होता है। इसलिए, असली परिवर्तन बाहरी सुधारों से नहीं, बल्कि भीतरी परिपक्वता और चेतना-विकास से संभव है। जब व्यक्ति और समाज स्वकेंद्रित और जातिकेंद्रित सीमाओं से ऊपर उठकर विश्वकेंद्रित और समग्र चेतना की ओर बढ़ते हैं, तभी करुणा, न्याय और सहयोग की वास्तविक संस्कृति जन्म लेती है। संक्षेप में: समानता और समावेशिता की जड़ें बाहरी कानूनों में नहीं, बल्कि चेतना की परिपक्वता में हैं। यही है — समग्रता की क्रांति।

C5.14 समग्र चेतना और मानव एकता की दिशा

नस्लवाद, भेदभाव और विभाजन जैसी समस्याओं का स्थायी समाधान तभी संभव है जब मानवता समग्र (इंटीग्रल) चेतना के स्तर तक विकसित हो। यह चेतना बाहरी विविधता—जैसे जाति, लिंग, संस्कृति—के साथ-साथ आंतरिक विविधता—जैसे मूल्य, दृष्टिकोण और विकास-स्तर—को भी स्वीकार करती है।

समग्र चेतना व्यक्ति को आत्म-जागरूक, सहानुभूतिपूर्ण और संतुलित बनने में सहायता देती है। यह समझती है कि सभी पदानुक्रम दमनकारी नहीं होते—कुछ विकास के स्वाभाविक क्रम हैं। इसलिए सच्चा न्याय केवल कानूनों से नहीं, बल्कि *चेतना की परिपक्वता* और *अंतःपरिवर्तन* से आता है।

इसी दिशा में समग्र जिज्ञासा (Integral Inquiry) हमें यह पूछने के लिए प्रेरित करती है—क्या हम विभाजन की ओर बढ़ रहे हैं या समग्रता की ओर? यह जिज्ञासा पाँच मूल प्रश्नों के माध्यम से हमारी सोच और नीति दोनों को दिशा देती है: 1. समग्र दर्शन वैश्विक मूल्यों और सांस्कृतिक विविधता में संतुलन कैसे स्थापित करे? 2. सामाजिक-पारस्परिक विभाजनों का बहु-दृष्टिकोणीय समाधान कैसा हो सकता है? 3. "एक मानव जाति" या "एक विश्व धर्म" जैसी अवधारणाएँ क्या सच्ची समग्रता दर्शाती हैं? 4. आध्यात्मिक एकता कैसे बिना कट्टरता के विकसित हो सकती है? 5. क्या भिन्नताएँ खतरा नहीं, बल्कि समग्रता का निमंत्रण बन सकती हैं?

समग्र दर्शन (Integral Philosophy) इन प्रश्नों का व्यावहारिक मार्गदर्शन देता है। यह सिखाता है कि: 1. विविधता में एकता देखी जाए, क्योंकि व्यक्ति, संस्कृति, समाज, प्रकृति और चेतना सब परस्पर जुड़े हैं। 2. पहचान को जाति या भाषा तक सीमित न रखकर पूरे मानव समुदाय से जोड़ा जाए। 3. अपनी संस्कृति से प्रेम करते हुए भी दूसरों के प्रति सम्मान और सहानुभूति रखी जाए। 4. भिन्न विचारधाराओं और कार्यप्रणालियों को

जोड़कर व्यावहारिक समाधान खोजे जाएँ। 5. इन सिद्धांतों को केवल विचार में नहीं, बल्कि शिक्षा, नीति और सामाजिक व्यवहार में उतारा जाए।

समग्र दृष्टिकोण किसी भी समस्या को चार स्तरों पर देखने को कहता है: 1. भीतर (I): सजगता, दया और पूर्वाग्रह-मुक्त मन। 2. संबंधों में (We): सहयोग, संवाद और उत्सव की भावना। 3. व्यवहार में (It): न्यायपूर्ण आचरण और समान अवसर। 4. प्रणाली में (Its): संस्थागत सुधार और ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों को सहयोग।

इस प्रकार, समग्र चेतना केवल विचार नहीं—यह आत्मिक, सामाजिक और वैश्विक रूपांतरण की प्रक्रिया है, जहाँ *एकता में बहुलता* (Unity in Diversity) किसी आदर्श नहीं, बल्कि जीवन्त वास्तविकता बन जाती है।

C5.15 निष्कर्ष: तारतम वाणी और समग्र चेतना का विज्ञान

समग्र चेतना की जिस दिशा में आधुनिक विचारक मानवता को आगे बढ़ाने का आह्वान करते हैं, उस दृष्टि की मूल जड़ें तारतम वाणी में पहले से विद्यमान हैं। सत्रहवीं शताब्दी की यह अद्वितीय 'अति-अभिन्न' या सुपर-इंटीग्रल आध्यात्मिक वाणी चेतना के सभी आयामों को जोड़ने और समन्वित करने की अद्भुत क्षमता प्रदान करती है। इसकी विशेषता यह है कि यह पूर्ववर्ती सभी शास्त्रों की चरम उपलब्धियों को एक गूढ़ तारतम्य में पिरोती है—किसी परंपरा का खंडन किए बिना, प्रत्येक ज्ञानधारा के सत्य को उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करती है।

यह विज्ञान हमें चेतना के प्रत्येक विकास-स्तर को कृतज्ञता से स्वीकारते हुए उसकी सीमाओं से आगे बढ़ना सिखाता है। यह यात्रा बौद्धिक से अधिक आत्मिक है—जहाँ पुरानी, सीमित पहचानें सहज रूप से विलीन हो जाती हैं, पर उनके सारभूत जीवन-पाठ संरक्षित रहते हैं। इस प्रकार, चेतना का विकास किसी अस्वीकार का नहीं, बल्कि समावेश का पथ बन जाता है।

महामति प्राणनाथ की यह दृष्टि आधुनिक समग्र दर्शन से गहराई से जुड़ती है। उनके अनुसार, प्रत्येक अस्तित्व अपने में पूर्ण होते हुए भी किसी बड़े समग्र का अंग है—एक होलोन। यही अंतर्संबंधता जीवन का रहस्य है। जब इसका अनुभव भीतर प्रकट होता है, तब अहंकार का संकुचन समाप्त हो जाता है और प्रेम, एकता तथा दिव्य लीला का आनंद स्वाभाविक रूप से उमड़ पड़ता है।

इस अर्थ में, समग्र दर्शन केवल कोई सिद्धांत नहीं है, बल्कि मानव चेतना के विकास की अगली अवस्था है—एक ऐसी अवस्था जहाँ विविधता विरोध या भेदभाव का कारण नहीं बनती, बल्कि एक ही सत्य के विभिन्न आयामों के रूप में प्रकट होती है। जब यह दृष्टि जीवन में उतरती है, तब "एक विश्व धर्म" या "एक मानव जाति" जैसी

अवधारणाएँ किसी कठोर एकरूपता की मांग नहीं करतीं। इसके बजाय, ये दृष्टियाँ एकता में विविधता (Unity in Diversity) और विविधता में एकता (Diversity in Unity) के उत्सव का मार्ग प्रशस्त करती हैं। संसार की विविध परंपराएँ असल में एक गहरी और सार्वभौमिक एकता से जुड़ी हैं। यह दृष्टि दोनों पक्षों—"विविधता में एकता" और "एकता में विविधता"—को समर्थित करती है: भिन्नताएँ एकता को समृद्ध करती हैं, और एकता उन भिन्नताओं को अर्थपूर्ण रूप से जोड़ती है।

आज की दुनिया, जहाँ नस्लवाद, सांस्कृतिक विभाजन और वैचारिक संघर्ष मानवता को बाँट रहे हैं, वहाँ तारतम वाणी की समग्र दृष्टि हमें स्मरण कराती है कि ये केवल सामाजिक नहीं, बल्कि चेतना के विकास की चुनौतियाँ हैं। इनका समाधान क्रोध, प्रतिरोध या कठोर विचारधाराओं में नहीं, बल्कि समग्रता की करुणामयी क्रांति में है—ऐसी क्रांति जो मनुष्य को भीतर से परिपक्व बनाती है, उसे जागरूकता, प्रेम और विवेक के साथ कार्य करने की प्रेरणा देती है।

जब हम आधुनिक ज्ञान और संसाधनों को तारतम दृष्टि से जोड़ कर "हम बनाम वे" की सीमाओं से ऊपर उठने का लक्ष्य बना लेंगे, तब ही एक ऐसा संसार बन सकेगा जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की उपस्थिति अर्थपूर्ण हो, और हर जीव सदा आनंद-मंगल में जी सके। इस नई दृष्टि से, तारतम वाणी रूपी महासागर में गोते लगा कर ऐसे अनमोल मोती निकाले जा सकते हैं, जो मानवता को नई चेतना, नई करुणा और नई संपूर्णता की दिशा दें।

दुख सब सुपनों हो गयो, अखंड सुख भोर भयो।
महामति खेले अपने लाल सों, जो अक्षरातीत कहयो।।

C5.16 तारतम्य-केंद्रित धर्म-समन्वय और एकत्व का सार — तारतम वाणी की दृष्टि

मानवता के इतिहास में विविध धर्म, पंथ, भाषा और संस्कृतियाँ विकसित हुईं, पर उनका मूल लक्ष्य एक ही परम सत्य की खोज रहा। नाम, रीति, और प्रतीक अलग हो सकते हैं, पर परमेश्वर का सार एक है — "धनी सबों का एक।" बाह्य भेद चेतना की सीमितता से उत्पन्न होते हैं; वेद, क़ुरान, बाइबल, गीता आदि सभी उसी सत्य, प्रेम, करुणा और आत्मबोध को प्रकाशित करते हैं। सतगुरु वे हैं जो इन विविध ग्रंथों में छिपे एकत्व को प्रकट करते हैं। जब यह समझ जागृत होती है, धर्म केवल मान्यता नहीं रहकर आत्मानुभूति का सेतु बन जाता है और मानवता को अनेकता में एकता का अनुभव कराता है।

जुदे जुदे नामें गावहीं, जुदे जुदे भेख अनेक।
जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक।। — सनन्ध 41/72

अर्थ: सभी धर्मों में नाम, भाषा और बाह्य रूप भिन्न हैं, परंतु परमेश्वर एक ही है। अतः उसकी उपासना के भेद पर झगड़ना अज्ञान है। सच्चा धर्म वह है जो विविधता में उस एकत्व को पहचान सके।

बोली सबों जुदी परी, नाम जुदे धरे सबन।

चलन जुदा कर दिया, ताथें समझ न परी किन।। — खुलासा 12/43

अर्थ: भाषा, नाम और रीति-रिवाज प्रत्येक संस्कृति में अलग होना स्वाभाविक है। किंतु जब चेतना संकुचित होती है, तब लोग इन विविध प्रतीकों के भीतर छिपे उसी एक सत्य को नहीं देख पाते — यही भ्रम मतभेद का कारण बनता है।

सब जातें नाम जुदे धरे, और सबका खाविंद एक।

सबकी बंदगी याही की, पीछे लड़े बिना पाये विवेक।। — खुलासा 2/22

अर्थ: मनुष्य ने स्वयं को विभिन्न जातियों और नामों में बाँट लिया है, जबकि सबका मालिक परमात्मा एक ही है। सभी उसी की आराधना करते हैं, किंतु जब विवेक जागृत नहीं होता, तब वही आराधना विवाद का कारण बन जाती है।

सब कहें वजूद एक है, और सब में एकै दम।

सब कहें साहब एक है, पर सबकी लड़े रसम।। — खुलासा 10/12

अर्थ: सभी यह स्वीकार करते हैं कि सृष्टि का अस्तित्व एक ही मूल शक्ति से उत्पन्न है, कि साहेब एक ही है — परंतु जब चेतना रस्मों और बाह्य कर्मकांड में उलझ जाती है, तब वही एकत्व केवल वाणी में रह जाता है, जीवन में नहीं उतरता।

कै दीन फिरके मजहब, खेल फिरस्ते दम।

ए खेल किया हुक्मे देखने, सब पर एक हुकम।। — सनन्ध 38/13

अर्थ: धर्म, मज़हब और संप्रदाय अनेक हैं, परंतु वे सभी उसी एक दैवी आदेश के अंतर्गत हैं। विविधता ईश्वर की लीला है, जो एक ही हुक्म से संचालित हो रही है।

नाम सारों जुदे धरे, लई सबों जुदी रसम।

सब में उमत और दुनिया, सोई खुदा सोई ब्रह्म।। — खुलासा 12/38

अर्थ: नाम और आचार भले अलग-अलग हों, पर सबका ईश्वर वही एक है — जिसे कोई 'खुदा' कहे, कोई 'ब्रह्म'। जब हृदय की दृष्टि खुलती है, तो सब धर्मों का केंद्रबिंदु एक ही सत्य के रूप में दीखता है।

जात एक खसम की, और न कोई जात।

एक खसम एक दुनियां, और उड़ गई दूजी बात।। — सनन्ध 36/17

अर्थ: सम्पूर्ण मानवता की जाति एक ही है — परमात्मा की संतान होने की। जो भी भेद हम रचते हैं, वे केवल मानसिक भ्रम हैं। जब यह समझ प्रकट होती है, तब द्वैत और भेद की सारी बातें स्वतः मिट जाती हैं।

सास्त्र ले चले सतगुर सोई, बानी सकल को एक अर्थ होई।

सब स्यानों की एक मत पाई, पर अजान देखे रे जुदाई।। — किरन्तन 3/4

अर्थ: सच्चा सतगुरु वही है जो सभी शास्त्रों के मूल अर्थ में एकत्व दिखा दे। ज्ञानीजन सभी ग्रंथों में एक ही संदेश पहचानते हैं, जबकि अज्ञानी केवल भेद और विरोध ही देखते हैं।

सो ए बात तुम देखी है, उनकी दृष्ट जात भेष पर नाहिं।
जित देखो अंकूर धाम को, गिनो ऊंच नीच न ताहिं।। — बीतक 31/56

अर्थ: जिन्हें सत्य का साक्षात्कार हुआ है, उनकी दृष्टि में न कोई ऊँच है न नीच। वे हर जीव में उसी दिव्य धाम के अंकुर को देखते हैं। उनके लिए जाति और भेष का भेद अर्थहीन हो जाता है।

पंथ सारों की एह मजल, अनेक विध वैराट।
ए जो विगत खेल की, सब रच्यो छल को ठाट।। — कलश हि. 15/17

अर्थ: सभी पंथों का सार एक ही है — ईश्वर-प्रेम और आत्मबोध। मतभेद और वैर भाव मनुष्य की सीमित दृष्टि से उपजे हैं, जो भ्रम का जाल रचकर एकता के सत्य को ढक देते हैं।

वेदान्त गीता भागवत, दैयां इसारतां सब खोल।
मगज मायने जाहेर किये, माहें गुझ हते जो बोल।। — खुलासा 13/96

अर्थ: वेदांत, गीता और भागवत के गूढ़ संकेतों को महात्माओं ने प्रकट किया है, जिससे उनके भीतर छिपे सत्य और रहस्य अब स्पष्ट हो गए। यह वह ज्योति है जो विविध ग्रंथों को एक ही ज्ञानस्रोत से जोड़ देती है।

अंजीर जंबूर तौरेत, चौथी जो फुरकान।
ए मायने मगज गुझ थे, सो जाहेर किये बयान।। — खुलासा 13/97

अर्थ: तारतम ज्ञान के प्रकाश में बाइबल, ज़बूर, तौरात और क़ुरान के गूढ़ अर्थों को उद्घाटित किया गया है। जब ये रहस्य खुले, तब स्पष्ट हुआ कि सबका उद्देश्य मनुष्य को उसी परम एकत्व की पहचान तक ले जाना है।

जो कछू कह्या कतेब ने, सोई कह्या वेद।
दोऊ बंदे एक साहेब के, पर लड़त बिना पाए भेद।। — खुलासा 12/42

अर्थ: वेद और क़िताबें दोनों एक ही सत्य की घोषणा करती हैं। झगड़े केवल नासमझी से हैं — क्योंकि जब तक चेतना बाह्य रूपों में उलझी रहती है, तब तक वह सत्य के उस मूल एकत्व को पहचान नहीं पाती।

संदर्भ सूची:

1. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री कुलजम स्वरूप - तारतम वाणी (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
2. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री बीतक साहेब (मूल एवं सम्पूर्ण टीका), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692

3. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, वेद और स्वसम वेद, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
4. पटेल, नरेंद्र एवं रमेश, दिव्य प्रेम पत्र – श्री प्राणनाथ तारतम वाणी परिचय, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2023
5. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, गीता तारतम्य दर्शन, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
6. विलबर, केन, फ़ाइंडिंग रैडिकल होलनेस, शम्भला पब्लिकेशन्स, इंक., 2024
7. विलबर, केन, रीलिजन ऑफ टुमोरो, शम्भला पब्लिकेशन्स, इंक., 2017
8. The Forum at Harvard T. H. Chan School of Public Health, The Spread of Hate and Racism Feb 2019
9. *Acknowledgment: The author has used AI applications such as ChatGPT and Copilot to assist in idea generation, editing, and improving the linguistic clarity. All interpretations and conclusions are solely the author's responsibility*.

……..

शोध पत्र 6

कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — राष्ट्र जागरण के त्रिदीप श्री निजानंद - प्रणामी दर्शन एवं इतिहास के समग्र दृष्टिकोण से

नरेंद्र आर. पटेल, एम.एस., सी.एस.पी. (सेवानिवृत्त): लेखक, संपादक, सहयोगी शोधकर्ता एवं स्क्रिप्ट लेखक, श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया प्रोडक्शन्स, पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना एवं निजानंद फाउंडेशन इंक., यू.एस.ए. सदस्य, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय सुरक्षा समन्वयक, रटगर्स विश्वविद्यालय, यू.एस.ए.

सहयोगी लेखक:

श्री मनुभाई पटेल, संस्थापक: रेणुका बेन मनु भाई पटेल श्री महामति प्राणनाथ अंतर्राष्ट्रीय अध्ययन एवं शोध केंद्र महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय छतरपुर मध्य प्रदेश; मल्टीमीडिया प्रोड्यूसर, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, एवं अमिधारा ट्रस्ट, साबरकांठा, गुजरात

C6.1 सारांश:

इस शोध पत्र में कर्तव्य, बलिदान और समर्पण को व्यक्तित्व निर्माण से राष्ट्र जागरण तक के त्रिदीपों के रूप में समझाने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप से, श्री निजानंद - प्रणामी दर्शन और उसके ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से इन तीनों आदर्शों के स्वरूप का संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

महामति प्राणनाथ जी के जीवन, दर्शन और प्रेरणा के आलोक में यह विचार किया गया है कि कर्तव्य, बलिदान और समर्पण मिलकर एक समग्र जीवनदर्शन कैसे निर्मित करते हैं। आत्म-जागनी सेवा की भावना के अंतर्गत कुछ व्यावहारिक शिक्षाओं, सुन्दरसाथ की भक्ति और समर्पण के सार, तथा प्रेरक ऐतिहासिक प्रसंगों का भी समावेश किया गया है — जैसे: बुंदेलखंड के नरवीर केसरी महाराजा छत्रसाल का समर्पण भाव, साधारण होते हुए भी असाधारण सुन्दरसाथ कहान जी भाई की कर्तव्यनिष्ठा, बंदर अब्बास के अमीर भैरव शेठ का प्रेरक प्रसंग, मेरता (राजस्थान) की युवती ललिता की आत्म-सौंदर्य जागृति से उपजा कर्तव्य-बोध, क्रूर मुगल सम्राट औरंगज़ेब के सम्मुख महामति प्राणनाथ जी के बारह साथीदारों की साहसपूर्ण भेंट, तथा स्वयं महामति की आत्म-समर्पण

यात्रा — "मैं खुदी से खुदा की मैं" की ओर। इन प्रसंगों के माध्यम से सुन्दरसाथ की कर्तव्य निभाने की क्षमता की झलक मिलती है, जो समर्पण और सेवा का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करती है।

अंतिम भाग में, "कर्तव्य निभाने की हमारी क्षमता कैसे बढ़ाई जाए" इस प्रश्न पर विचार किया गया है। उपसंहार में कुछ विचारणीय प्रश्नोत्तर के साथ महामति प्राणनाथ जी के जागनी, धर्मरक्षा, राष्ट्रधर्म और सत्य-संकल्प के आह्वान को स्मरण कराते हुए यह विश्वास व्यक्त किया गया है कि आने वाली पीढ़ी इन त्रिदीपों — कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — की एकीकृत समझ को अपने जीवन में अपनाकर अपने अस्तित्व को सार्थक और उज्ज्वल बनाएगी।

C6.2 भूमिका

कर्तव्य, बलिदान और समर्पण राष्ट्र और मानवता की आत्मा है। इतिहास साक्षी है — वे सभ्यताएँ जो कर्तव्य, बलिदान और समर्पण की नींव पर खड़ी थीं, उन्होंने न केवल अमर विरासत रची, बल्कि मानवता को आदर्श दिशा दी। इसके विपरीत, वे समाज और साम्राज्य जो अहंकार, स्वार्थ और भोगवाद में डूबे, समय की धारा में विलीन हो गए। किसी भी राष्ट्र का उत्थान केवल धन, शक्ति या तकनीक से नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों, दृष्टि और चरित्रबल से होता है।

भारत का इतिहास इस सत्य का जीवंत प्रमाण है। जब भारत धर्म, कर्तव्य और आत्मनिष्ठा के प्रकाश में आगे बढ़ा, तब वह *विश्वगुरु* बना; और जब अहंकार, विभाजन व लोभ का अंधकार बढ़ा, तब वही गौरवशाली सभ्यता पतन की ओर गई। रोम और ग्रीस जैसी प्राचीन सभ्यताएँ बाहरी आक्रमणों से नहीं, बल्कि आंतरिक नैतिक पतन से ढहीं। दूसरी ओर, जापान ने अनुशासन, परिश्रम और आत्मबल से राख से पुनर्जन्म लेकर यह दिखाया कि राष्ट्रीय पुनरुत्थान बाहरी सहायता से नहीं, बल्कि आंतरिक चरित्रबल से होता है। आज के स्कैंडिनेवियाई देशों ने भी सिद्ध किया है कि सच्ची समृद्धि मानवता, न्याय और समानता के मूल्यों पर ही टिकी होती है।

स्पष्ट है — किसी राष्ट्र की स्थिरता उसकी दृष्टि और चरित्र में निहित होती है, न कि उसकी संपत्ति या शस्त्रबल में। भारत की समग्र दृष्टि इसलिए विश्व के लिए दिशासूचक है, क्योंकि उसकी शक्ति सदैव आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों में रही है। प्राचीन भारत *विश्वगुरु* इसलिए बना क्योंकि उसकी चेतना में विज्ञान, दर्शन और अध्यात्म विरोधी नहीं, बल्कि एक ही सत्य की विविध अभिव्यक्तियाँ थीं। यह समन्वयी दृष्टि, जहाँ

ज्ञान, कर्म और भक्ति एकत्र होकर जीवन का संतुलन रचते हैं, आज भी विश्व को संघर्ष से समरसता की दिशा दे सकती है।

वर्तमान समय में यह चर्चा और भी आवश्यक हो उठी है। आज आर्थिक प्रगति तो अभूतपूर्व है, पर नैतिकता और मानवीय चेतना की परीक्षा पहले से कहीं अधिक कठिन हो चुकी है। व्यक्ति शिक्षित और सचेत तो है, पर कर्तव्य, त्याग और समर्पण के सामूहिक अभ्यास में कमी आई है। राजनीति और समाज में बढ़ता स्वार्थ, विभाजन और उपभोग-प्रधान मानसिकता संतुलित विकास और विश्व-शांति के मार्ग में बाधा बन रहे हैं।

ऐसे समय में हमें पुनः स्मरण करना होगा कि —

- कर्तव्य की सजगता (Duty) हमें जिम्मेदारी और कर्म का बोध कराती है,
- बलिदान की प्रेरणा (Sacrifice) हमें सीमित स्वार्थ से ऊपर उठाकर समष्टि के कल्याण से जोड़ती है,
- और समर्पण की आत्मशक्ति (Surrender) हमें ईश्वरीय चेतना से एकाकार करती है।

ये तीनों मिलकर राष्ट्र की आत्मा को जागृत करते हैं। इन्हीं के संयोग से व्यक्ति स्वार्थ से सेवा की ओर, भोग से योग की ओर, और अस्तित्व से उत्कृष्टता की ओर बढ़ता है।

आज की चुनौतियाँ — अज्ञानता, विभाजन और अहंकार — भले ही नए रूपों में हों, पर मूल संकट वही पुराना है। विद्यार्थी शिक्षा से अज्ञानता, नेता ईमानदारी से भ्रष्टाचार, नागरिक एकता से विभाजन, और साधक समर्पण से अहंकार का सामना कर सकते हैं। यदि हम अपने भीतर यह प्रश्न करें — *"क्या मैं जागृत हूँ? क्या मैं बलिदान के लिए तैयार हूँ? क्या मैं अहंकार त्याग सकता हूँ?"* — और उसका उत्तर 'हाँ' हो, तो निश्चय ही हमारा जीवन, समाज और राष्ट्र स्थायी शक्ति, शांति और गौरव से आलोकित होगा।

सच्चा राष्ट्र-निर्माण नीतियों या प्रणालियों से नहीं, बल्कि उन हृदयों से होता है जो कर्तव्य को समझते हैं, त्याग को जीते हैं, और समर्पण में विश्राम पाते हैं। जब तक हम इन त्रयी के रहस्यों को नहीं समझेंगे, तब तक न व्यक्ति पूर्ण जागेगा, न राष्ट्र पूर्णता पाएगा। इन्हीं तीन दीपों — कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — को पुनः प्रज्वलित करना ही आज के युग का सच्चा आह्वान है।

राष्ट्र पिता महात्मा गांधी, राष्ट्रनिर्माता सरदार पटेल, महान वैज्ञानिक स्टीफन हॉकिंग और महान समाजसेवी बिल गेट्स — सभी ने अपने जीवन से यह संदेश दिया कि कर्तव्य, त्याग और समर्पण ही व्यक्ति, राष्ट्र और मानवता की असली शक्ति हैं। गांधीजी

ने सिखाया कि सच्चा विकास सेवा और प्रेम से होता है; पटेल ने एकता और राष्ट्र-निष्ठा को सर्वोपरि माना; हॉकिंग ने कठिनाइयों के बीच भी मानवता के प्रति समर्पण दिखाया; और बिल गेट्स ने अपने संसाधनों को मानव सेवा के लिए अर्पित किया। इन सबका जीवन प्रमाण है कि जब मनुष्य निस्वार्थ भाव से अपना कर्तव्य निभाता है, तो वही शांति, प्रगति और करुणा से भरे विश्व की नींव रखता है।

C6.3 महामति प्राणनाथ: जीवन, दर्शन और प्रेरणा

महामति प्राणनाथ (1618–1694 ई.) प्रदत्त श्री निजानंद दर्शन और उनका ऐतिहासिक योगदान उत्तर-मध्यकालीन दिव्य परंपरा की एक अद्वितीय उपलब्धि है। उनके सतगुरु निजानंदाचार्य श्री देवचन्द्र जी द्वारा प्रबोधित वैश्विक जागरण को साकार करने में उनके परम प्रिय शिष्य मिहिराज — जो आगे चलकर *'महामति'* और *'प्राणनाथ'* कहलाए — ने अपने आध्यात्मिक अभियान के साथ-साथ समाज-जागरण, धार्मिक एकता और आत्म-चेतना के प्रसार को अपना जीवनधर्म बनाया।

उन्होंने अपने युग की सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक जटिलताओं का साहसपूर्वक सामना किया और मानवता, समानता तथा ज्ञान-जागरण का अभियान चलाया। उनके चिंतन ने व्यक्ति, समाज और विश्व के बीच सेतु का कार्य किया। वेद, पुराण, कुरान और अन्य धार्मिक परंपराओं के सत्य तत्वों का समन्वय कर उन्होंने एक ऐसी सार्वभौमिक धर्मदृष्टि प्रस्तुत की जो रूढ़ियों से मुक्त और मानव-केंद्रित थी।

महामति की वाणी भक्ति आंदोलन की एकता और सर्वधर्म समभाव की ऊँचाई को दर्शाती है। उनके जीवन, संघर्ष और योगदान का विस्तृत वर्णन 'श्री बीतक साहेब' और 'श्री कुलजम स्वरूप (तारतम सागर)' में मिलता है — जो कर्तव्य, बलिदान और समर्पण की प्रेरक गाथाओं से आलोकित हैं।

हजारों अनुयायियों ने श्री प्राणनाथ जी के परम ध्येय — परमात्म-साक्षात्कार और विश्वकल्याण — के लिए अपना जीवन अर्पित किया। आज भी विश्वभर में लाखों *सुन्दरसाथ* उनकी शिक्षाओं पर चिंतन और अमल करते हैं।

महामति प्रणीत तारतम ज्ञान जीवन और चेतना के सभी स्तरों में क्रमबद्ध समरसता की समग्र — अर्थात् पूर्ण — दृष्टि प्रदान करता है। साथ ही, उस पूर्णता को जीने की निरंतर प्रक्रिया, यानी एकीकृतता, को भी वे आवश्यक मानते हैं। चूँकि चेतना असीम है, इसलिए प्रत्येक एकीकृत अवस्था अगले, अधिक व्यापक समग्र स्तर की सीढ़ी बन जाती है। यही ज्ञान और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नई पीढ़ी के लिए केवल इतिहास नहीं, बल्कि सेवा, विवेक और समर्पण की एक जीवंत प्रेरणा है।

महामति प्राणनाथजी की तारतम वाणी सत्रहवीं सदी की भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, जो आज और आने वाली पीढ़ियों के लिए जीवन और समाज के हर क्षेत्र में सार्थक मार्गदर्शन देने में सक्षम है। इस वाणी का सार यही है — जागरण (सजगता) से यात्रा प्रारंभ होती है, कर्तव्य और बलिदान से धर्म और राष्ट्र की रक्षा होती है, और समर्पण व अहंकार-त्याग से साधक परमधाम की ओर अग्रसर होता है।

इस लेख में हम महान परंपरा से लिए गए कुछ प्रेरक प्रसंगों के माध्यम से कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — इन तीन दीपों के समग्र अर्थ को समझेंगे। साथ ही, उनसे मिलने वाली शिक्षाओं के आधार पर इन्हें आज के जीवन में उतारने के व्यावहारिक मार्गों पर भी विचार करेंगे, ताकि जिज्ञासुओं का जीवनपथ प्रकाशमान हो। वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए यह इतिहास केवल स्मरण नहीं, बल्कि प्रेरणा का दीपस्तंभ है — जो हमें विवेक, सेवा और समर्पण की भावना जगाने की दिशा दिखाता है। यहाँ प्रस्तुत पात्रों और प्रसंगों का संक्षिप्त परिचय इन्हीं दो प्रमाणित ग्रंथों पर आधारित है।

C6.4 कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — एक समग्र जीवनदर्शन

कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — यही तीन दीपक हैं जो मनुष्य को भीतर से प्रकाशित करते हैं और संसार में शांति, संतुलन और समरसता का मार्ग दिखाते हैं। जब व्यक्ति का कर्म उसकी आत्मा से जुड़ता है, तो समाज में संतुलन आता है; जब समाज कर्तव्यनिष्ठ होता है, तो राष्ट्र संगठित और महान बनता है। और जब राष्ट्र अपने कर्तव्य को विश्व-मंगल की भावना से निभाता है, तब पृथ्वी पर धर्म, सत्य और प्रेम का युग आरंभ होता है।

तत्व	सार	फल
कर्तव्य	दिशा देता है — जागरण और कर्म का आधार	उत्तरदायित्व और उद्देश्य
बलिदान	शक्ति देता है — सेवा और निःस्वार्थता	साहस और त्याग
समर्पण	दिव्यता देता है — अहंकार से मुक्ति	शांति और एकत्व

कर्तव्य केवल कर्म करने की कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। यह जीवन जीने की एक कला है — सजगता, उत्तरदायित्व और उद्देश्यपूर्णता से भरा हुआ जीवन। कर्तव्य वह आंतरिक प्रेरणा है जो हमें आलस्य, उदासीनता और स्वार्थ से ऊपर उठाकर सेवा, समर्पण और सक्रियता की दिशा में ले जाती है। जागरण — कर्तव्य की प्रथम सीढ़ी है। जागना केवल आँखें खोलना नहीं, बल्कि मानसिक जड़ता, भय और आसक्ति से मुक्त होना है। जब व्यक्ति भीतर की चेतना से जुड़ता है, तब उसका विवेक, साहस और संकल्पशक्ति प्रकट होते हैं। यही आंतरिक जागरूकता हमारे कर्म को अर्थ, दिशा और उद्देश्य प्रदान करती है। कर्तव्य तभी सार्थक होता है जब उसमें तीन तत्व हों — जागरूकता (Awareness), जिम्मेदारी (Responsibility) और प्रेरणा (Purpose)। इन तीनों का संगम "सजग कर्म" या "स्वधर्म" कहलाता है — जो व्यक्ति को अर्थपूर्ण बनाता है और राष्ट्र को ऊँचाई देता है।

कर्तव्य का मूल स्रोत आत्मा की जागृति है। जब अंतःकरण शुद्ध होता है, तब सत्य, न्याय और लोकहित की प्रेरणा स्वाभाविक रूप से जन्म लेती है। ऐसे व्यक्ति के लिए यह प्रश्न नहीं रहता कि "मुझे क्या करना चाहिए?" — क्योंकि उसका उत्तर भीतर से उठता है।

महामति प्राणनाथ जी द्वारा प्रणीत परब्रह्म वाणी जीवन को एक व्यापक और समग्र दृष्टि से देखने का मार्ग देती है। यह दृष्टि व्यक्ति से लेकर समाज, राष्ट्र और पूरी मानवता तक—जीवन, चेतना और कर्म के सभी स्तरों को एक साथ जोड़ती है। साथ ही यह क्षर, अक्षर और अक्षरातीत—इन तीन प्रमुख *आंतर-ब्रह्मांडीय* (inter-cosmic) चेतना-स्तरों के बीच के क्रम और आपसी संबंध को भी स्पष्ट करती है।

यह दृष्टि केवल यह नहीं कहती कि सब कुछ एक-सा है, बल्कि यह समझाती है कि अस्तित्व में चेतना के अलग-अलग स्तर हैं, हर स्तर का अपना महत्व है और उन्हें सही क्रम में समझना आवश्यक है। इसी को तारतम ज्ञान की समग्र दृष्टि कहते हैं—जहाँ एकता को कोई जमी हुई अवस्था नहीं, बल्कि चेतना के निरंतर संतुलन और विकास की जीवंत प्रक्रिया माना गया है।

C6.5 आत्म-जागृति के अग्रदूत — श्री निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचंद्रजी

श्री निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचंद्रजी (1581-1655) ने आत्म-खोज और आत्म-जागृति को अपने जीवन का सर्वोच्च कर्तव्य माना। अपने जीवन के प्रारंभिक चालीस वर्षों तक उन्होंने इस लक्ष्य की सिद्धि हेतु अनवरत साधना की। उनके अंतर्मन में

उठने वाले मूल प्रश्न — *"मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? मेरा भरतार (परमसत्य) कौन है?"* — उनकी साधना का केंद्र बन गए।

इन प्रश्नों के उत्तर की खोज में उन्होंने अनेक प्रकार कष्ट सहे। सोलह वर्ष की आयु में हिंमत और दृढ़ संकल्प के साथ करीब 250 किलोमीटर की अकेले पैदल यात्रा करते हुए उमरकोट से भुज आए और गुरु हरिदास जी के सान्निध्य में अनन्य प्रेम से भक्ति और सेवामें समर्पित रहे। चौदह वर्ष लगातार श्रीमद भागवत कथा श्रवण द्वारा भागवत के गूढ रहस्यों को खोलने में प्रयास रत रहे। विविध सफल साधनाओं के बावजूद, वे कभी किसी एक मुकाम पर नहीं ठहरे। निरंतर साधना के नए-नए आयामों में प्रवेश करते हुए खोज में आगे बढ़ते रहे। प्रत्येक पड़ाव पर उन्होंने कर्तव्य, श्रद्धा, भक्ति और समर्पण के उच्चतर रूप को अभिव्यक्त किया।

आखिर, 40 वर्ष की आयु में उनकी आत्म-साधना तपश्चर्या की परिणति यह हुई कि उन्हें परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार तथा *"निराकार के पार के पार के पार"* का दिव्य तारतम ज्ञान प्राप्त हुआ। इस प्रकार, श्री देवचंद्रजी ने आत्म-जागृति और आत्म-विकास के माध्यम से अपने जीवन को उद्देश्यपूर्ण और प्रेरणास्रोत बनाया — और 'आत्म-कर्तव्य' (Self-Duty) का पूर्णतः निर्वाह किया – यह सब उन्होंने स्वयं के एवं आने वाले आत्म-खोजियों के सुख के लिए किया।

"कई कसोटी करी दुल्हिन (श्री देवचंद्र जी की आत्मा), सो भी कारण हम सब सैयन।"

अपना सामाजिक कर्तव्य (Social Duty) निभाव करते हुए, उन्होंने "मैं सबका हूँ" की अनुभूति में जीवन बिताया। परिवार, मित्रों और समाज को सुगठित करके एक विशाल सुन्दरसाथ परिवार बना कर सहयोग, सेवा और करुणा का व्यावहारिक पाठ दिखाया। कई प्रसंगों में उन्होंने सामाजिक असंतुलन, अन्याय या हिंसा के प्रति सजग प्रतिक्रिया दी। समाज के कल्याण हेतु समय, शक्ति और संसाधन व्यवस्था में भी अपना योगदान दिया।

अपने कई प्रसंगों में अनुयायी सुन्दरसाथ समूह को सामाजिक एवं वैश्विक स्तर के विविध प्रकार के भेदभावों को मिटाने की, प्रेम सेवा और क्षमा भाव विकसित करने की प्रेरणा देकर उन्होंने अपने सामाजिक कर्तव्य के साथ साथ राष्ट्रीय एवं सार्वभौमिक कर्तव्य (National and Universal Duty) को भी विपरीत सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के बावजूद, भलीभांति निभाया और स्वयं और परमात्मा में एकत्व का अनुभव भी किया।

केवल स्थूल वस्तुओं का त्याग नहीं, बल्कि स्वार्थ, सुविधा, आलस्य और आसक्ति का त्याग एवं अहंकार से ऊपर उठकर उन्होंने अपना जीवन उच्च उद्देश्य के लिए जीया।भविष्य के मानव समुदाय को प्रेरित किया। उन्होंने सिद्ध किया कि इस प्रकार का सच्चा बलिदान कर्तव्य की पूर्णता का द्वार है। इस प्रकार, उनका जीवन कर्तव्य, बलिदान और समर्पण के त्रिदीपों से प्रकाशित था।

C6.6 श्री प्राणनाथ जी: कर्तव्य, त्याग और समर्पण की दिव्य त्रिवेणी

महामति प्राणनाथ जी का जीवन और वाणी कर्तव्य, त्याग और समर्पण की सर्वोच्च मिसाल हैं। जब संसार धर्म के नाम पर विभाजनों, अंधविश्वासों और हिंसा में उलझा हुआ था, तब उन्होंने यह उद्घोष किया कि — सभी आत्माएँ एक ही परम सत्य की संतान हैं। उन्होंने दिखाया कि सत्य एक ही है, पर मनुष्य उसे अपनी-अपनी "खिड़की" से देखता है। उनका तारतम ज्ञान उन सब सीमित दृष्टियों को जोड़ने वाला सूत्र बना, जिसने व्यक्ति, समाज, धर्म और मानवता को एक ही आध्यात्मिक एकता में बाँध दिया।

अपने निजानन्द सतगुरु श्री देवचंद्रजी से प्रेरित होकर उन्होंने सांसारिक पद, वैभव और सुखों का त्याग किया तथा सेवा, प्रेम और समर्पण को जीवन का आधार बनाया। उन्होंने कर्म, भक्ति और ज्ञान को संतुलित करते हुए सिखाया कि —"सच्चा कर्तव्य वही है, जो आत्मा को परमात्मा से जोड़ दे।" महामति जी ने अपने जीवन से सिद्ध किया कि —

कर्तव्य है — सत्य और मानवता की निःस्वार्थ सेवा, त्याग है — सीमित दृष्टि, स्वार्थ और विभाजन का परित्याग, और समर्पण है — तन, मन, आत्मा को परम सत्य के प्रेम में अर्पित कर देना।

उनकी तारतम वाणी केवल आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, बल्कि सामाजिक जागरण का प्रकाश भी है। उन्होंने जाति-पांति, अंधविश्वास और अन्याय के विरुद्ध खड़े होकर समता, सेवा और विश्वबंधुत्व का आदर्श स्थापित किया। इस प्रकार, उनका जीवन यह सिखाता है कि कर्तव्य, त्याग और समर्पण — केवल साधना के मार्ग नहीं, बल्कि मानवता के पुनर्जागरण के प्रकाशस्तंभ हैं।

C6.7 श्री मिहिराज जी: आत्मा का अखंड समर्पण

श्री मिहिराज जी — जो श्री इन्द्रावती की आत्मा के रूप में महामति के भावों का मूर्त स्वरूप हैं — धामधनी के प्रति अविचल प्रेम और पूर्ण समर्पण के उदाहरण हैं। उन्होंने अपने तन, मन और जीव को अपने प्राणवल्लभ के चरणों में न्योछावर कर दिया। उनका समर्पण केवल बाह्य सेवा नहीं था, बल्कि अंतर की दृष्टि, भावना और चेतना का पूर्ण अर्पण था।

रास और उत्सवों में जब वे धामधनी के प्रेममय नेत्रों को निहारते, तो उनका हृदय प्रेमरस में विलीन हो जाता। साधारण वस्तुओं में भी वे धाम की छाया और लीला का अनुभव करते। उनके भाव यह बताते हैं कि प्रेम, भक्ति और दृष्टि का संगम ही सर्वोच्च बलिदान है। वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि अपने अनेक अवगुणों के बावजूद, धामधनी ने उन पर अनंत गुणों की वर्षा की। इस प्रेमसागर में वे बार-बार स्वयं को अर्पित करते रहे। उनका जीवन बताता है कि सच्चा समर्पण केवल कर्म या वाणी में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण अस्तित्व के विसर्जन में है।

उन का सम्पूर्ण जीवन सेवा का यज्ञ है। श्री निजानन्द सम्प्रदाय का बीतक साहित्य उन के जीवन के ऐसे अनेक प्रेरक प्रसंगों से भरा है, जो उनकी कर्तव्यनिष्ठा, त्याग-वृत्ति और अटूट निष्ठा के द्योतक हैं।

सतगुरु के आदेश से वे अरब गए, ताकि गांगजी भाई के भ्राता खेता भाई को जगाकर भारत ला सकें। चार वर्षों तक उन्होंने असंख्य शारीरिक और मानसिक कष्ट सहे, पर सतगुरु द्वारा सौंपे गए धर्म-सेवा में तनिक भी विचलन नहीं आने दिया। वे झूठे आरोपों और फरियादों के शिकार हुए, जेल में रहे, पर किसी से शिकायत नहीं की।

जब फूलबाई जैसी सेवाभावी पत्नी को भी धर्मकार्य के लिए त्यागना पड़ा, तब उन्होंने उसे भी ईश्वर की सेवा का प्रसाद माना।

जामनगर और हब्सा में जब उन्हें नज़रबंद किया गया, तब उसी अंधकार में से उन्होंने प्रकाश प्रकट किया — वहीं तारतम वाणी का अवतरण हुआ।

जब जामनगर की प्रजा संकट में थी, तब उन्होंने स्वयं को अहमदाबाद में क़ुतुब ख़ाँ (ई.स. 1663–64) के समक्ष प्रस्तुत कर स्वेच्छा से जेल स्वीकार की, ताकि धर्म और सत्य की रक्षा हो सके।

यहाँ तक कि गुरुपुत्र बिहारीजी के बार-बार कुवर्तन के बावजूद उन्होंने उन्हें स्नेह और क्षमा से अपनाया, और सुन्दरसाथ समाज को एकत्व और प्रेम की महिमा का बोध कराया।

इस प्रकार, सेवा, त्याग और प्रेम के त्रिवेणी-संगम में पवित्र होकर मिहिराज का व्यक्तित्व महामति के रूप में उदित हुआ — जहाँ से महामति और प्राणनाथ-पद की शोभा प्रकट हुई। उनका जीवन यह उद्घोष करता है कि — "कर्तव्य जब प्रेम से जुड़ता है, त्याग जब सत्य में विलीन होता है, और समर्पण जब आत्मा से उद्भव लेता है — तब वही परमधाम का द्वार बनता है।"

सम्पूर्ण श्री कुलजम स्वरूप एवं बीतक में उन की भीतरी अवस्था से प्रगट होने वाली अनेकों पुकारों से भरपूर है, जैसे:-

अंग अंग सब उलसत, कुरबानी कारने ।
जरे जरे पर वार हूँ, ए जो बीच जरे राह इन।। किरन्तन 90/25
जिन दिस मेरा पिउ बसे, तिन दिस पर होऊँ कुरबान।
रोम रोम नख सिख लों, चार डारों जीय सी प्रान।। - किरन्तन 90/26

अर्थ – "मेरी आत्मा आनंदित होती है जब मैं देखती हूँ कि लोग धामधनी के प्रेम में अपना सर्वस्व अर्पित कर रहे हैं। उनके प्रेम-पथ के हर साधक के प्रति मेरे हृदय में सम्मान और समर्पण है। ज्ञान, प्रेम और सेवा की राह में मुझे ईर्ष्या नहीं, बल्कि स्वस्थ प्रेरणा प्रिय है। मेरे प्रियतम श्री राजश्यामा जी जिस दिशा में विराजमान हैं, उस दिशा पर मैं अपने तन-मन-प्राण तक को न्योछावर करती हूँ।"

धिक धिक पड़ों तिन समझ को, जो पीछे देवें पाए।
कुरबानी को नाम सुन, क्यों न उड़े, अरवाहें।। - किरन्तन 91/3
सो भी पिउ अछरातीत, इत कायर न होवें कोए।
सुनत कुरबानी के आगे हीं, तन रोम रोम् जुदे होए ।। - किरन्तन 91/6

अर्थ - "जो आत्म-जागृति के मार्ग पर समर्पण से पीछे हटते हैं, वे नासमझ हैं। सच्चा समर्पण वही है जब आत्मा संसार के मोह को छोड़कर अपने प्रिय परमात्मा के प्रेम में पूरी तरह लीन हो जाए और 'मैं' तथा 'मेरा' का भाव मिट जाए। अपने प्रिय अक्षरातीत पर समर्पण में कभी डर या कमजोरी नहीं होनी चाहिए।"

जो सोहागिन वतनी, ताकी प्रगट पेहेचान।
रोम रोम सब अंगों, जुदी जुदी दे कुरबान।।
कुरबानी को सब अंग, हँस हँस दिल हरखत।
पिउ पर फना होवने, सब अंगों नाचत ।।- किरन्तन 91/9-10

अर्थ – "जो आत्मा परमधाम की निवासिनी है, उसकी पहचान यह है कि उस के रोम-रोम अपने प्रियतम धणी की सेवा में पूर्ण समर्पण करने के लिए खुशी से नाच उठते हैं – सदा तत्पर रहते हैं। यही उसी पहचान है।"

C6.8 सुन्दरसाथ के कर्तव्य, बलिदान और समर्पण का स्वरूप

महामति प्राणनाथ जी ने अपनी 'छोटी-बड़ी पातियों (बीतक)' में सुन्दरसाथ के कर्तव्य, बलिदान और समर्पण का स्वरूप बड़े ही प्रेम, स्पष्टता और विनम्रता से समझाया है। उन्होंने बताया कि जागनी जीवन का सार आत्म-जागृति, धाम-स्मरण, सादगी, धैर्य, रहेनी और सेवा में निहित है। प्रियतम धनी की ओट में रहकर वाणी-पाठ और सत्संग के माध्यम से आत्मा को स्थिर करना प्रत्येक सुन्दरसाथ का प्रथम कर्तव्य है। महामति के अनुसार, जागनी कोई बाहरी कर्म या आयोजन नहीं, बल्कि आत्मा की परमधाम की ओर लौटने की आंतरिक यात्रा है — एक ऐसी यात्रा जिसमें आत्म-पहचान, निर्मलता और अनन्य प्रेम मनुष्य का परम लक्ष्य बन जाते हैं। इन शिक्षाओं के मुख्य बिन्दु इस प्रकार है:

1. "एक आतम धनी पहेचानिये, निर्मल एही उपाय।" - धनी की पहचान ही आत्मा को निर्मल करती है और अनन्य प्रेम से उसके चरण-कमल की प्राप्ति होती है। --
2. "दुःख सुख डारो आग में" - सुख-दुख में मन धनी में स्थिर रहे।
3. "सरत धाम की न छोड़ियो।" - धाम-स्मरण एक क्षण के लिए भी न टूटे।
4. दूसरों की भलाई या बुराई में समय न गँवाकर आत्मा को अपने धाम-स्मरण और धनी की सुरता में लगाओ, क्योंकि हमारी असली पहचान वहीं है।
5. "होय रहिए तुम रेणु समान" - सुन्दरसाथ को सदा विनम्र और निष्कपट रहना चाहिए। अर्थात्, अहंकार मिटाकर चरण-धूलि बन कर रहें।
6. "सुरत एक ही राखिये, मूल मिलावे मांही" - युगल धनी के चरणों में ध्यान को स्थिर रखो।
7. "ऐह वचन ऐसे जाग्रत, जगावत ततखिन।" -वाणी आत्मा को तुरंत जाग्रत करने की शक्ति रखती है। इसलिए वाणी-मंथन, रहेनी और स्मरण निरंतर करते रहो।
8. "यों तैयारी कीजयो, आगू करनी है दोड।" – अपनी कथनी, करनी और भाव में एकरूपता लाओ; तभी चित्त स्थिर होगा और सच्ची सेवा संभव होगी।
9. "रहेनी रुह पहोंचावसी" - सही रहेनी ही आत्मा को उसके असली धाम तक पहुँचाने का माध्यम है।

इस प्रकार, महामति का संदेश स्पष्ट है — प्रत्येक सुन्दरसाथ का कर्तव्य है कि वह स्वयं जागे और दूसरों को भी जागृत करे, ताकि सब धनी की मेहर में रहकर परमधाम के निजानन्द का अनुभव कर सकें।

C6.9 जागनी सेवा हेतु कुछ व्यावहारिक शिक्षाएं

बीतक ग्रंथ में जागनी सेवा में समर्पित होने को उत्सुक सुन्दरसाथ को महामति जो प्रबोध देते हैं, वे आज भी उपयोगी हैं। इस के कुछ बिन्दु इस प्रकार है:

1. "लीजो धनी की ओट" — हर परिस्थिति में परमात्मा या दिव्य शक्ति को अपने अहं से आगे रखना।
2. "मैं तुम्हारे सिर पर खड़ा हूं एक पाय" — विश्वास रखना कि प्रियतम धनी सदा तुम्हारे साथ हैं; निराश कभी न होना।
3. "माया छल रूप है" — विवेक और धैर्य से मायावी प्रभावों को पहचानो और उस पर विजय प्राप्त करो।
4. "अब मरजादा चलियो" — अपना सच्चा निजानंदी स्वभाव बनाए रखो; रहेनी ही जागनी का बल है।
5. "कोई लड़वाई बुध सो, राखियो नहीं सोहोबत" - हल्की या नकारात्मक संगति से बचो, जो मार्ग से भटका दे।
6. "तुम आकले होय न उरझिये" — धैर्यपूर्वक और सामूहिक सहयोग से हर कार्य करो; मतभेदों में न उलझो।
7. "खाने को पेट माफक" — सादगी और संयम से सेवा निभाओ; भोगों और आसक्ति से बचो।
8. "ना बैठक कीजो बन्द" — सत्संग और बैठकें जारी रखो; यही जागृति और एकता के साधन हैं।
9. "जागते रहो" — अन्याय, भेदभाव और अज्ञान के विरुद्ध सजग रहो; समानता और निःस्वार्थ सेवा अपनाओ।
10. "मेरी पाती पढ़ते रहो" — हर प्रश्न का उत्तर श्रीजी की वाणी में है; उसे पढ़ो, चिंतन करो और जीवन में उतारो।

C6.10 सुन्दरसाथ की अनन्य प्रेम लक्षणा भक्ति और समर्पण का सार

महामति प्राणनाथ जी ने स्पष्ट किया कि जागनी लीला कोई बाहरी घटना नहीं, बल्कि आत्मा की भीतर की दिव्य यात्रा है — जहाँ साधक अपने अंतःकरण में ही परम सत्य का साक्षात्कार करता है। यह जागृति तब संभव होती है जब धनी की मेहर, सुरता की एकाग्रता, ब्रह्मवाणी का मंथन, और सत्संग की ज्योति एक साथ प्रज्वलित हों। जब साधक की रहेनी (जीवनचर्या), प्रेम और स्मरण एकाकार हो जाते हैं, तब आत्मा अपने निजधाम के नित्य आनन्द — निजानन्द — का अनुभव करती है। यही अवस्था सुन्दरसाथ के जीवन का सार, समर्पण का शिखर और सेवा का सच्चा अर्थ है।

सुन्दरसाथ की भक्ति बाहरी पूजा या अनुष्ठानों पर आधारित नहीं थी; वह तो हृदय की आंतरिक साधना, प्रेम और समर्पण का जीवन थी। उनके लिए उपासना, ध्यान और तप का उद्देश्य था — चेतना को देह और विषयों से ऊपर उठाकर परमधाम के युगल स्वरूप में स्थिर करना। तीर्थयात्रा वे बाहर नहीं, अपने हृदय में करते थे; क्योंकि सच्चा तीर्थ वही है, जहाँ आत्मा प्रेम में स्नान करे।

उनका मार्ग था — अनुभव और न्योछावरता का। सामान्य धर्म में जहाँ दान, तप और यात्रा का स्थान है, वहीं सुन्दरसाथ के लिए चितवनी, चिन्तन और विरह-प्रेम का स्थान था। वे मानते थे कि परमधाम का अनुभव तब होता है जब मन, इन्द्रियाँ और अहंकार शांत होकर केवल प्रियतम के प्रेम में लीन हो जाएँ।

अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी से मिलना सुन्दरसाथ के जीवन का परम क्षण था — जब उन्होंने अपने तन, मन और अस्तित्व को पूर्णतः समर्पित कर दिया। यह समर्पण भावनात्मक नहीं, बल्कि आत्मिक सत्य, निष्पक्षता और समदर्शिता की चरम अवस्था थी — जिसे उन्होंने "धन्य-धन्य" कहा।

उनकी कुर्बानी का सार था — सेवा, प्रेम और समर्पण। उन्होंने कर दिखाया कि जब व्यक्ति माया, भय और अहंकार का त्याग कर देता है, तो उसमें निष्काम सेवा और दिव्यता का प्रकाश प्रकट होता है। यही आंतरिक बलिदान व्यक्ति को ब्रह्मसत्ता के निकट ले जाता है।

आज, सुन्दरसाथ का जीवन यह सिखाता है कि सच्चा धर्म और भक्ति बाहरी आडंबरों में नहीं, बल्कि हृदय की शुद्धता और आत्मा की न्योछावरता में निहित है। जैसे व्रज की गोपियाँ अपने अहंकार को भूलकर कृष्ण-प्रेम में लीन रहती थी, वैसे ही उन्होंने अपने अस्तित्व को अक्षरातीत प्रेम में विलीन कर दिया। जब तन-मन-प्राण पूर्ण श्रद्धा से परमधाम या सतगुरु की इच्छा के लिए समर्पित हो जाते हैं, तब जीवन प्रेम, भक्ति और आत्म-जागृति का दीप बन जाता है। सुन्दरसाथ का यह आदर्श बताता है कि सच्चा धर्म वही है, जिसमें 'मैं' मिट जाता है और केवल 'तू' का अनुभव शेष रहता है। यही मार्ग मनुष्य को अखण्ड सुख, आत्मिक उन्नति और ब्रह्मसत्ता के एकत्व तक पहुँचाता है।

चलना राज के पीछल, किया अपना कुरबान।
भयो गौवच्छपद कहिवे को, जाय लगे ब्रह्म बान।।२।। बौतक 9/2

अर्थ-जिन सुन्दरसाथ ने ब्रह्मवाणी का गहरा चिंतन कर उसे अपने जीवन में उतार लिया, उन्होंने श्री प्राणनाथ जी में ही अक्षरातीत परमधाम के स्वरूप को पहचान लिया। जब यह सत्य उनके हृदय में जागा, तो उन्होंने तन-मन-धन सब कुछ उनके चरणों में अर्पित कर दिया। उनके लिए संसार का यह भवसागर अब भय या बाधा नहीं रहा — वह उन्हें

उतना ही तुच्छ लगा, जितना गाय के बछड़े के खुर में भरा थोड़ा-सा पानी। उन्होंने श्रद्धा, प्रेम और समर्पण की शक्ति से इसे सहजता से पार कर लिया।

C6.11 बुंदेलखंड नरवीर केसरी महाराजा छत्रसाल का समर्पण भाव

इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जहाँ महान व्यक्तियों ने अपने जीवन को पूर्ण समर्पण और सेवा का प्रतीक बना दिया और समर्पण से सामर्थ्य उत्पन्न कर लिया। उनमें से एक अद्वितीय उदाहरण हैं महाराजा छत्रसाल, जिनकी कथा आज भी हम सब के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

जब महाराजा छत्रसाल पहली बार श्री प्राणनाथ जी से मिले, तब उनका दृष्टिकोण केवल बाहरी राजसी सम्मान या अधिकारों तक सीमित नहीं था। उन्होंने अपने तन, मन और धन को निःस्वार्थ भाव से न्योछावर कर दिया और कहा: "छत्रसाल तिन ऊपर, तन मन धन कुरबान।" अर्थात, जो व्यक्ति श्रीजी के सत्य और ज्ञान पर विश्वास करता है, उसके ऊपर उनका तन, मन और धन पूर्ण रूप से न्योछावर रहेगा।

"बातने सुनी रे बुंदेले छत्रसाल ने, आगे आए खड़ा ले तरवार।
सेवाने लई रे सारी सिर खैंच के, सांइए किया सैन्यापति सिरदार।। (किरन्तन 58/20)"

राष्ट्रनिर्माण के लिए आदर्श नेतृत्व और गुरु प्रेरणा महत्व की है। बुंदेलखंड के महाराजा छत्रसाल को बलिदान और वीरता का आदर्श है। अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक की वाणी सुनकर अन्याय के विरुद्ध शस्त्र उठाया और नेतृत्व किया।

छत्रसाल का यह कर्तव्य केवल शाही दायित्व नहीं, बल्कि आत्मिक समर्पण का उदाहरण था। उन्होंने अपने राज्य की चाबियाँ, अपने अहंकार और सम्पूर्ण सत्ता को श्री प्राणनाथ जी के चरणों में अर्पित कर दिया। उनके मन में अति उल्लास और श्रद्धा थी: "आज का दिन मेरे लिए धन्य-धन्य है, क्योंकि मेरे घर साक्षात् प्राणेश्वर पधारे हैं।"-

अपनो आपा सब दियो, और दियो सब साज।
आरती निछावर करके, कही धन धन दिन है आज।।५४।।

अर्थ - महाराजा छत्रसाल जी ने आरती से पहले अपना अहंकार, धन और सम्पूर्ण राज्य श्री प्राणनाथजी के चरणों में समर्पित कर दिया और आनंदपूर्वक बोले — "आज का दिन धन्य है, क्योंकि आज मेरे घर साक्षात् अक्षरातीत पधारे हैं।"

श्री ठकुरानी जी साथ संग ले, पधारे मेरे घर।
धनी बिना तुम्हें और देखे, सो नही मिसल मातवर।।५८।।

आप श्री श्यामा स्वरूप श्री बाईजूराज और सुन्दरसाथ सहित मेरे घर पधारे हैं। आपको अक्षरातीत से भिन्न किसी रूप में देखना संभव ही नहीं — आप अद्वितीय और अप्रतिम हैं। श्री प्राणनाथ जी ने इस समर्पण के बदले उन्हें आध्यात्मिक शक्ति और तेज प्रदान किया:

"पहले दाता हम भए, गुरू को दीनों सीस।
पीछे दाता गुरू भए, सब कछु कियो बकसीस।"

अर्थात्, जब शिष्य अपने अहंकार को त्याग देता है, तभी गुरु उसे सत्य का साम्राज्य और आध्यात्मिक सामर्थ्य प्रदान करता है।

बिजिया अभिनन्द बुध जी, ब्रह्म सृष्टि सिरताज।
हाथ हुकम छत्रसाल के, दियो सो आपनो राज।। बीतक 60/63

अर्थ- विजयाभिनंदन, निष्कलंक बुद्ध स्वरूप श्री प्राणनाथजी — जो ब्रह्मसृष्टियों के प्रियतम हैं — उन्होंने महाराजा छत्रसाल जी को अपने हुक्म की शक्ति और गौरव प्रदान किया।

एही टीका एही पांवड़ो, एही निछावर आए।
श्री प्राणनाथ के चरन पर, छत्ता बलि बलि जाए।। बीतक 60/55

अर्थ - असली टीका (श्रद्धा का चिन्ह) अपने अहंकार का त्याग है, और असली पाँवड़ा (भक्ति का आभूषण) अपनी पाग (मान-सम्मान) को छोड़ देना है। इसे ही न्योछावर राशि (समर्पण की भेंट) मानकर महाराजा छत्रशाल जी बार-बार अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी पर समर्पित होने लगे।

सकुण्डल सोभा भई, प्रगट भई पहिचान।
छत्रसाल छत्ता हुआ, छिपे सबे सुलतान।। बीतक 60/66

अर्थ - धामधनी श्रीजी ने महाराजा छत्रशाल जी के हृदय में विराजमान सकुण्डल आत्मा को विशेष तेज और शोभा दी, जिससे सारे सुन्दरसाथ उन्हें पहचानने लगे। श्रीजी ने प्रेमपूर्वक उनका नाम "छत्ता" रखा। श्रीजी की कृपा से उनमें ऐसी दिव्य शक्ति आई कि औरंगज़ेब के सभी सेनापति उनके भय से छिप गए।

महाराजा छत्रसाल ने यह कर दिखाया कि कर्तव्य, बलिदान और समर्पण दीपक की तरह है। कर्तव्य और सेवा केवल बाहरी कर्म नहीं, बल्कि आत्मा और चेतना से जुड़ा हुआ कार्य है। जब समाज में यह भावना प्रबल होती है, तो राष्ट्र संगठित और धर्म, सत्य और प्रेम का युग स्थापित होता है।

उन के चरित्र से हमारे लिए मुख्य शिक्षाएँ हैं: 1. कर्तव्य का बोध: अपने कार्य को केवल जिम्मेदारी नहीं, बल्कि सेवा और सच्चाई का माध्यम मानें। 2. बलिदान की भावना: व्यक्तिगत स्वार्थ और अहंकार से ऊपर उठकर धर्म और सत्य के लिए जीना वास्तविक बलिदान है। 3. सेवा में समर्पण: सेवा और प्रेम का संगम ही पूजा का वास्तविक रूप है।

महाराजा छत्रसाल ने यह दिखाया कि सच्चा योद्धा वह नहीं जो केवल युद्धभूमि में विजयी हो, बल्कि वह है जो अपने अंदर की असली लड़ाई—अहंकार, स्वार्थ और

लोभ के विरुद्ध—जीत ले। जब सेवा, प्रेम और समर्पण जीवन का अंग बन जाते हैं, तब जीवन स्वयं पूजा और कर्तव्य का उत्सव बन जाता है। अपने 'मैं' और 'मेरा' को पार करके वे सर्वोच्च सत्ता और आदर्श मूल्य के प्रति समर्पित हुए।

महाराजा छत्रसाल की कथा और ब्रह्मसृष्टियों का समर्पण यह दिखाता है कि सच्चा कर्तव्य, बलिदान और समर्पण केवल नियमों या बाहरी कर्मों तक सीमित नहीं, बल्कि हृदय, मन और आत्मा के पूर्ण न्योछावरता में प्रकट होता है। यही मार्ग व्यक्तिगत उन्नति, समाज की भलाई और वैश्विक संतुलन का आधार है। सत्य, सेवा और समर्पण — तीन दीपक हैं जो जीवन को प्रकाशित करते हैं और संसार को उज्जवल बनाते हैं। छत्रसाल का आत्म-बल इस चौपाई से स्पष्ट समझ सकते हैं:

और बात हमारी ए सुनो, जो ए बात सुन ल्यावे ईमान।
छत्रसाल तिन ऊपर, तन मन धन कुरबान।। बीतक: ६०/८९

"हे धाम धनी! हमारी एक और बात सुन लीजिये – आप श्री प्राणनाथ जी की इस एक वैश्विक धर्म चेतना की बात को सुनकर जो भी व्यक्तिं उस पर विश्वास लायेगा, उस व्यक्ति के ऊपर मुझ छत्रशाल का तन, मन, धन् न्यौछावर रहेगा।

C6.12 साधारण - असाधारण सुन्दरसाथ: कर्तव्यनिष्ठ कहान जी भाई

कानजी भाई सेवा, निष्ठा और साहस के अद्भुत प्रतीक थे — वास्तव में "साधारण, पर असाधारण" सुन्दरसाथ। उन्होंने अपना जीवन श्री प्राणनाथ जी की सेवा और सुन्दरसाथ की भलाई के लिए समर्पित कर दिया। नवतन पुरी में उन्होंने श्री जी के साथ रहकर तन-मन से सेवा की, और जूनागढ़ में हरजी व्यास पंडित को ज्ञानपथ पर जगाने हेतु सच्चे हृदय से सहायता की।

जब जामनगर पर क़ुतुब खां के हमले का खतरा मंडरा रहा था और पूरा राज्य भयभीत था, तब श्री जी ने आगे बढ़कर सुन्दरसाथ और प्रजा की रक्षा की जिम्मेदारी ली। उन्होंने दीवान पद स्वीकार कर समझदारी से क़ुतुब खां से समय की मोहलत प्राप्त की, ताकि सबकी सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। श्री जी का यह निस्वार्थ साहसिक निर्णय सुन्दरसाथों के लिए प्रेरणा बन गया।

इसी दौरान जब श्री जी अहमदाबाद में क़ुतुब खां की जेल में बंदी बनाए गए, तब कानजी भाई का प्रेम और समर्पण चरम पर पहुँचा। उन्होंने बिना किसी भय या स्वार्थ के बाईजू राज के वस्त्र पहनकर स्त्री का भेष धारण किया, जेलर को यह विश्वास दिलाया कि वे श्री जी की पत्नी हैं, और इस प्रकार भीतर पहुँचकर श्री जी को मुक्त कराया। वे स्वयं उनकी जगह जेल में रह गए — यह बलिदान इतिहास में अमर हो गया।

इसके अतिरिक्त, कानजी भाई ने औरंगज़ेब के पाँच विशेष दरबारियों तक श्री जी का "क़यामत संदेश" पहुँचाने का कठिन कार्य भी निभाया और उनके उत्तर भी वापस लाए। हर परिस्थिति में उन्होंने साहस, बुद्धि और गहन श्रद्धा से कार्य किया। गाँव - गाँव चलते जा कर डाकिया की सेवा निभाई।

उनका जीवन यह सिखाता है कि सच्चा सुन्दरसाथ वही है जो अपने सतगुरु के आदेश को जीवन का धर्म माने, कठिन समय में भी पीछे न हटे, और सेवा-समर्पण को सर्वोच्च कर्तव्य समझे। कानजी भाई की निष्ठा, प्रेम और वीरता यह प्रमाण है कि जब श्रद्धा सच्ची हो, तो साधारण मानव भी असाधारण कार्य कर सकता है।

आत्म-जागृति के अग्रदूत — श्री निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचंद्रजी

श्री प्राणनाथ जी: कर्तव्य, त्याग और समर्पण की दिव्य त्रिवेणी

श्री मिहिराज जी: आत्मा का अखंड समर्पण सुन्दरसाथ के कर्तव्य, बलिदान और समर्पण का स्वरूप

C6.13 भैरव शेठ की कर्तव्य निष्ठा

भैरव शेठ लोहाना जाति के एक प्रतिष्ठित और धनी व्यापारी थे, जो अब्बास बन्दर में रहते थे। जब उन्हें पता चला कि उनकी जाति के कुछ लोग मस्कत में अरबी लुटेरों की कैद में हैं, तो उन्होंने करुणा और जिम्मेदारी से प्रेरित होकर ७०,००० लहरी (कौड़ी) देकर बाईजू राज सहित सभी सुन्दरसाथ को मुक्त कराया।

उन्होंने श्री प्राणनाथ जी और सुन्दरसाथों का अत्यंत आदर के साथ स्वागत किया, भोजन कराया और पास की हवेली में ठहरने की व्यवस्था भी की। दो माह तक सत्संग और चर्चा सुनने के बाद भी जब श्री जी को भैरव शेठ में कोई गहरा आध्यात्मिक परिवर्तन नहीं दिखा, तो उन्होंने प्रेम से कहा — "भैरव शेठ, तुमने धन और सेवा से अपना कर्तव्य निभाया, पर मेरा कर्तव्य अभी अधूरा है। जब तक तुम्हारी आत्मा में ज्ञान का प्रकाश नहीं जगता, मुझे शांति नहीं मिलेगी।"

फिर उन्होंने समझाया — "बस एक माह तक पाँच निषेधों का पालन करो — तंबाकू, शराब, मांस-मछली, परदारा, झूठ और चोरी से दूर रहो। ध्यानपूर्वक ज्ञान सुनो, सच्चा सुख स्वयं मिल जाएगा।"

भैरव शेठ ने पूर्ण श्रद्धा से यह व्रत स्वीकार किया और मन लगाकर चर्चा सुनने लगे। तीसरे ही दिन उन्हें भीतर एक दिव्य अनुभव हुआ — मानो चेतना की नींद टूट गई हो। उनके जीवन में नई रोशनी फैल गई।

यह घटना दिखाती है कि दृढ़ संकल्प, श्रद्धा और कृतज्ञता से कोई भी परिवर्तन असंभव नहीं। कृतज्ञता सभी सद्गुणों की जननी है — और यही भाव भैरव शेठ को आत्म-

जागृति तक ले गया। इस प्रकार, भैरव शेठ ने भक्ति का कर्तव्य निभाया और श्री प्राणनाथ जी ने ज्ञानदान का। दोनों के समन्वय से सेवा, ज्ञान और भक्ति का सुंदर संगम प्रकट हुआ।

C6.14 आत्म-सौंदर्य की जागृति से ललिता को हुआ कर्तव्य बोध

मेड़ता के सेठ राजाराम की बेटी ललिता जन्म से कुबड़ी और सांवली थी। परिवार उसकी अवस्था देखकर चिंतित रहता था — "इसका भविष्य क्या होगा?" एक दिन श्री प्राणनाथ जी मेड़ता पधारे। उन्होंने ललिता और उसके परिवार की पीड़ा देख कर उसे ज्ञान और करुणा से भर दिया। स्नान के समय उन्होंने एक कृपा-जल का छींटा ललिता पर डाला और कहा:

"बेटी, सौंदर्य बाहरी नहीं, चेतना की अवस्था है। सौंदर्य पहले चेतना में हो कर फिर शरीर में और बाहर फैलता है। अतः भीतरी प्रकाशकी पहचान बाहरी रूपांतरण का कारण बन सकती है। जब मनुष्य प्रेम, सेवा और समर्पण से जीता है, तब उसका सम्पूर्ण अस्तित्व और संसार सुंदर हो जाता है।"

ललिता के भीतर यह वचन चुभ गए। उसने अनुभव किया कि सुंदरता देखने में नहीं, देखने वाले में है। धीरे-धीरे उसका भीतर का आलोक उसके बाहरी रूप में भी चमकने लगा। उसका मुखमंडल तेजस्वी हुआ, दृष्टि निर्मल और शांत हो गई। उसने समझ लिया कि यह जल साधारण नहीं, ज्ञान का स्पर्श था। अब उसने अपने जीवन को पूर्ण रूप से श्री प्राणनाथ जी के चरणों में समर्पित कर दिया और सेवा, निष्ठा तथा आनंद में लीन हो गई। आज भी ललिता हमें यह बात समझा रहि है कि "रूप से अधिक महिमा है रूपांतरण की।" तारतम वाणी की यह चौपाई श्री प्राणनाथ जी ललिता के इस भाव को स्पष्ट करती है:

वारी रे वारी मेरे प्यारे, वारी रे वारी।
टूक टूक कर डारों या तन, ऊपर कुंज बिहारी।।
सुन्दर सरूप सुभग अति उत्तम, मुझ पर कृपा तुमारी।
कोट बेर ललिता कुरबानी, मेरे धनी जी कायम सुखकारी।। - किरन्तन 119/1-5

C6.15 क्रूर मुग़ल सम्राट औरंगजेब से बारह सुन्दरसाथ का सीधा सामना

बलिदान कर्तव्य की पूर्णता का द्वार है। बलिदान का अर्थ केवल त्याग नहीं, बल्कि स्वार्थ, सुविधा और अहंकार से ऊपर उठकर उच्च उद्देश्य के लिए जीना है। यह शरीर का नहीं, बल्कि अहंकार और आसक्ति का त्याग है। जब व्यक्ति "मैं" और "मेरा" से ऊपर उठकर समाज, राष्ट्र और सत्य के लिए स्वयं को अर्पित करता है, तब उसका कर्म दिव्यता को छू लेता है — यही कर्तव्य का यज्ञ और सच्चा बलिदान है।

समर्पण कर्तव्य और बलिदान का शिखर है। समर्पण का अर्थ हार मानना नहीं, बल्कि अहंकार को त्यागकर परम सत्ता में विश्वास रखना है। यह वह अवस्था है जहाँ व्यक्ति

समझ लेता है — *"मैं साधन हूँ, सच्चा कर्ता वही है।"* महामति प्राणनाथ जी के अनुसार, समर्पण जागृति का चरम बिंदु है — जहाँ कर्तव्य बंधन नहीं रहता, बलिदान बोझ नहीं लगता, और सभी कर्म प्रेम और श्रद्धा से सहज प्रवाहित होते हैं। समर्पण से जीवन कर्मयोग से प्रेमयोग की ओर बढ़ता है।

कुलिए छकाए रे दिलड़े जुदे किए, मोह अहं के मद माते।
असुर माते रे असुराई करें, तो भी न मिले रे धरम जाते।। - किरन्तन 58/3

अर्थ - अहंकार और मोह मनुष्य को कर्तव्य से विचलित करते हैं और समाज को भीतर से तोड़ते हैं। धर्म का मार्ग केवल बाहरी आक्रमण से नहीं, बल्कि चेतना के भीतरी विभाजन, स्वार्थ और अहंकार से भी संकट में पड़ता है।

महामत कहे ए मोमिनों, सुनो मेरे वतनी यार।
खसम करावे कुरबानियां, आओ मैं मारे की लार ।। ३५।।

अर्थ - श्री महामति जी अपने प्यारे यार 'सुन्दरसाथ जी' को आह्वान करते हैं कि यदि परमधाम का सच्चा प्रेम पाना है तो अपनी 'मैं खुदी' का पूर्ण त्याग करना होगा। व्यक्ति की अपनी अहम-जनित सीमित पहचान (ego identification) उस के सच्चे स्वरूप (आत्मा, चेतना) को भुला कर उसे केवल 'मैं' और 'मेरा' में उलझा देती है।

वि.सं. 1679 में महामति प्राणनाथजी के बारह सुन्दरसाथ ब्रह्ममुनियों ने धर्म के एकत्व संदेश को मुगल सम्राट औरंगज़ेब तक पहुँचाने के लिए अपने प्राणों की परवाह किए बिना पूर्ण समर्पण और साहस का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया। भारतीय इतिहास में यह अद्वितीय घटना है, जहाँ बारह आत्माओं ने धर्म के सार्वभौमिक सत्य के प्रसार को अपने जीवन का परम कर्तव्य मानते हुए मृत्यु को भी सहजता से स्वीकार किया।

वे समर्पित साथी दृढ़ विश्वास के साथ कहते रहे — *"हमको और न सूझहीं, बिना करे एह काम।"*

उनके लिए सांसारिक बंधनों को तोड़ना उतना ही सरल था, जितना गाय के बछड़े के खुर से बने छोटे गड्ढे के जल को पार करना। वे श्री प्राणनाथजी के एक आदेश मात्र पर आत्म-बलिदान के लिए तत्पर थे। निर्दयी मुग़लों की यातनाएँ सहते हुए भी उन्होंने श्रीजी का संदेश औरंगज़ेब तक पहुँचा दिया। किन्तु सत्ता के अहंकार और शरियत-बंधी धर्मांधता में डूबा औरंगज़ेब उस सत्य को स्वीकार न कर सका। फिर भी, अपने जीवन के अंत में उसने अपने इस अज्ञान पर गहरा पश्चाताप किया — जिसका उल्लेख उसने अपने पुत्र आज़म को लिखे पत्र में किया है। इन आत्म-जाग्रत सुन्दरसाथ — जिनमें दस हिन्दू और दो मुसलमान थे — का जीवन कर्तव्य, त्याग और समर्पण का अनुपम प्रतीक है, जो आज भी एकत्व, साहस और आत्म-जागरण की प्रेरणा देता है।

कलमा निमाज रोजा दिल से, दे जगात आप कुरबान।
करे हज बका हमेसगी, ए दिल मोमिन अर्स सुभान ।। - सनंध 23/45

महामति ने एक ओर हिंदुओं को समझाया कि यंत्रवत कर्मकांड तक सीमित भक्ति से हृदय की जागृति नहीं होती। प्रेम, चितवनी और समर्पण के मार्ग पर चलने वाला सच्चे अर्थों में परमधाम का यात्री है, तो दूसरी ओर तत्कालीन मुसलमानों एवं सूफीओं को भी समझाया कि कलमा, नमाज, रोजा, हज और जकात — ये सब भीतर घटने वाले अनुभव हैं; जब प्रेम और ध्यान परमधाम की ओर मुड़ते हैं, वही सच्ची इबादत है।

उन्होंने समझाया कि सच्चे साधक ही वे मोमिन है, जिस की भक्ति बाहरी कर्मकाण्डों या सरीयत के नियमों या अन्य कोई भी रिचूअल्स से परे है। जब हृदय से प्रेम और श्रद्धा के साथ ब्रह्मवाणी का चिन्तन किया जाता है, वही सच्चा संकल्प मंत्र है, जिसे कलमा कहते है। जब मन और इन्द्रियाँ विषय-वासनाओं से हटकर परमधाम के स्मरण में लीन होती हैं, वही नमाज और रोज़ा है। जब व्यक्ति अपने तन-मन-धन और अहंकार को परब्रह्म के चरणों में समर्पित कर देता है, वही जकात है। और जब साधक अपनी चितवनी के माध्यम से परमधाम के युगल स्वरूप और परमधाम लीला दर्शन का सुख लेता है, तब वही उसका हज है।

इस प्रकार, कर्मकांड (शरीअत) में जो उपासनाएँ बाह्य रूप में की जाती हैं, वही हकीकत (ग्यान) और मारिफ़त(विज्ञान) के मार्ग में अंतर्यात्रा बन जाती हैं। बाहरी नियम मात्र साधन रूप (लक्ष्य नहीं!) रह जाते हैं और अपने भीतर के प्रेम, ध्यान और समर्पण में परमात्मा का अनुभव होता रहता है। इस प्रकार, वैश्विक दृष्टिकोण से सब को अपनी अपनी भाषा में कर्तव्य बोध कराया। आगे समझाया कि

साथ जी सोभा देखिए, करे कुरबानी आतम।
वार डारों नख सिख लों, ऊपर धाम धनी खसम।। - किरन्तन 90/1
कुरबानी सुन सखिया, उलसत सारे अंग।
सुरत पोहोची जाए धाम में, मिलाप धनी के संग।। - किरन्तन 19/18

हे सुन्दरसाथ जी! अपने प्राणप्रिय धाम धनी अक्षरातीत श्री राज जी के स्वरूप की शोभा को चित्त में भर लो, अपना सर्वस्व उन पर न्योछावर कर दो और आत्मा को उनके प्रेम में डुबोकर उन की नूरी शोभा के दर्शन करो।

करी कुरबानी तिन कारने, परीक्षा सबकी होए।
करे कुरबानी जुदे जुदे, सांच झूठ ए दोए।। किरन्तन (90 / 4)

अर्थ - यह सब की परीक्षा की घड़ी है। अब देखना है कि कौन अपने प्रेम, सेवा और समर्पण में कितना न्योछावर होता है। यह न्योछावर तो अलग-अलग रूपों में प्रकट

होगा, परंतु कुर्बानी का दावा करने वाले दो प्रकार के होंगे: - ब्रह्मसृष्टि (सत्य): जो वास्तव में समर्पित हैं और जीवसृष्टि (झूठ): जो केवल दिखावा करने वाले होते हैं। इसलिए समर्पण को सत्यता, विनम्रता और गहराई से निभा कर (न कि केवल बाहरी प्रदर्शन से) दूसरों को प्रेरणा भी देना है।

कायरता छोड़ सच्चे वीर बनो

क्या बल के हेसी कायर माया को, जो गए सागर में रल।
सामें पूर जो चढ़या होसी, सो केहेसी तिखाई मोह जल।। -किरन्तन 77/13

अर्थ – मोह और माया के सागर में फंसा साहसहीन व्यक्ति इनके स्वभाव और शक्ति को समझ ही नहीं सकता। जो वीर व्यक्ति सांसारिक प्रवाह के विरुद्ध जाकर उनका सामना करता है, वही इस मोहजल की गहराई और तिखाई को जान सकता है। माया वह बाहरी भ्रमपूर्ण दुनिया है, जबकि मोह हमारे भीतर का लगाव है, जो वास्तविकता की पहचान को ढक देता और मन को अस्थिर बनाता है। दोनों ही चेतना को सत्य से भटकाते हैं और व्यक्ति की शक्ति व स्वतंत्रता को सीमित कर सकते हैं।

कर हिंमत बांध कमर, ले हुकम सब हाथ।
पिउ पास हो पेहेचान के, और छोड़ सब साथ।। प्रकाश 16/5

अर्थ: आत्मबल और दृढ़ संकल्प जीवन के मार्ग में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। प्रियतम परमात्मा की इच्छा को स्वीकार करते हुए और यह जानते हुए कि वे हर पल हमारे साथ हैं, हमें विचलित करने वाले तत्वों और नकारात्मक प्रवृत्तियों से दूर रहकर स्थिर, केंद्रित और दृढ़ बने रहना चाहिए।

कर्मफल और साधना

असुभ करम जेम लिए निंद्या, सुभ करम नामना लई जाय।
गोप साधन कीजे ते माटे, जेम सुख जीवने पोहोंतू थाय।। - किरन्तन 131/14

अर्थ - मनुष्य जीवन में अशुभ कर्म निंदा के योग्य होते हैं, वहीं शुभ कर्म का फल प्रसिद्धि और प्रशंसा (नामना) छीन ले जाती है। इसलिए शास्त्रों में सेवा और साधना को गुप्त रखने की विशेष महिमा बताई गई है। जब साधक अपने सत्कर्मों को निस्वार्थ और गुप्त रूप से करता है, तभी वह बिना किसी विघ्न के सच्चे सुख — अर्थात मुक्ति — का अधिकारी बनता है।"

अहंकार और भ्रांति का बोझ

तमसूं जुध करे घेन धारण, लज्या ने अहंकार।
कायर ने कंपावे ए बल, बीक ने भ्रांत विचार।। - किरन्तन 70/10

अर्थ - यह अज्ञानरूपी निद्रा, तंद्रा, लज्जा और अहंकार — ये सब तुम्हारे साथ संघर्ष करते रहते हैं। इनकी शक्ति डरपोक (कायर) व्यक्ति को कंपा देती है, क्योंकि वह तो अपने ही भ्रमित विचारों से भयभीत रहता है।

दान और अहंकार

आप पछाडी ल्याओ छो धन, ऊंचा थावा रब्दे करो छो दान।
नहीं रे आवे ते अरथ जीवने, लई जाय छे वचे अभिमान।। - किरन्तन 131/13

अर्थ - तुम शरीर को कष्ट देकर धन एकत्र करते हो और समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिए दान–पुण्य करते हो। परंतु जीव को ऐसे दान–पुण्य का कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि अभिमान बीच में आकर उन पुण्यों का फल छीन लेता है।

C6.16 सुन्दरसाथ की कर्तव्य निभाने की क्षमता की एक झलक

कर्तव्य निभाने की क्षमता और भक्ति-साधना विधि दोनों ही व्यक्ति के आंतरिक विकास से जुड़ी हुई हैं। जब व्यक्ति अपनी चेतना के विभिन्न स्तरों पर विकसित होता है, तो उसकी कर्तव्यनिष्ठा भी परिपक्व होती है। इसी प्रकार, जब व्यक्ति आत्मिक समर्पण और प्रेम के माध्यम से भक्ति साधता है, तो वह अपने कर्तव्यों को भी अधिक निष्ठा और समर्पण से निभाता है। इस प्रकार, कर्तव्य निभाने की क्षमता और भक्ति-साधना विधि एक-दूसरे के पूरक हैं, और दोनों मिलकर व्यक्ति के समग्र विकास में सहायक होती हैं।

सुन्दरसाथ की भक्ति-साधना विधि बाहरी कर्मकांडों से परे, हृदय की शुद्धि और आत्मिक समर्पण पर आधारित है। उनके अनुसार, सच्ची भक्ति उपासना, तप और तीर्थ यात्रा के माध्यम से नहीं, बल्कि हृदय की साधना, ध्यान और चित्त की शुद्धि के द्वारा होती है।

सुन्दरसाथ ने अपने जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य श्री प्राणनाथ जी को अक्षरातीत स्वरूप में पहचान कर तन, मन और धन का पूर्ण समर्पण किया। उनके लिए संसार का कोई मोह, भय या बाधा मायने नहीं रखती थी। जीवन की हर परीक्षा उनके भक्ति और प्रेम की अग्नि में पिघल गई। उनकी भक्ति विधि में आत्मा का समर्पण ही परमधाम की राह है। यह समर्पण बाहरी नहीं, बल्कि आत्मा की गहराई से उत्पन्न प्रेम और श्रद्धा का प्रतिबिंब है।

करत कुरबानी सकुचें, मोमिन करे ना कोए।
तीन गिरो की परीछा, अब सो जाहेर होए ।।किरन्तन 90/7

जिस की चेतना परमधाम प्रेमानन्द स्तर पर होगी, वे बिना झिझक अपने आपको परब्रह्म प्रियतम पर अर्पित करने को तैयार रहती है। हर किसी की अर्पण भावना तय करेगी कि कौन किस स्तर पर खड़ा है या उस का चेतना बीज (अंकुर) कितनी क्षमता वाला है।

कहा कहुँ वतन सैयां, जो मगज लगे अर्थ।
कुरबानी समे देख्या चाहिए, सांचे सूर समर्थ।। किरन्तन 90/8

अर्थ - धर्मग्रन्थों के गूढ़ तत्त्वों की खोज करने वाले फरमधाम के ब्रह्ममुनि अत्यंत गरिमामय हैं। अब समय है कि हर आत्मा स्वयं को धामधनी पर पूर्ण रूप से अर्पित करे। देखने की बात यह है कि सुन्दरसाथ की जमात में प्रेम की राह पर चलने वाला सच्चा, सामर्थ्यवान ब्रह्मसृष्टि कौन है — जो समर्पण की कसौटी पर खरा उतरता है।

पाइयत झूठ के बदले, सत सुख अखंड।
सो देख पीछे क्यों होवहीं, करते कुरबानी पिंड।। किरन्तन 87 /2

अर्थ - मायिक सुखों का मोह छोड़ने से ही परमधाम के सच्चे और अखण्ड सुख मिलते हैं। यह जानते हुए भी यदि कोई अपने शरीर को धाम धनी के लिए समर्पित करने में झिझकता है, तो वह अधूरा है। जो ध्यान में स्थिर नहीं, वह प्रियतम से कैसे मिल सकता है?

धन धंन सखी मेरे सोई रे दिन, जिन दिन पिया जी सो हुओं रे मिलन।
धंन धंन सखी मेरे हुई पेहेचान, धंन धंन पिउ पर मैं भई कुरबान।। किरन्तन 84 /1

अर्थ - महामति की आत्मा सभी आत्म-खोजी सुन्दरसाथ जी से कहती है — "वह दिन धन्य है जब मेरा प्रियतम अक्षरातीत से मिलन हुआ।" मेरा यह मिलन बाहरी नहीं, बल्कि चेतना के उस गहन अनुभव का प्रतीक है, जहाँ निज स्वरूप की दृढ़ पहचान है। धाम की पहचान से मेरा तन, मन, अहंकार और संपूर्ण अस्तित्व सहज ही परमप्रेम में समर्पित हो गया है। मेरा यह समर्पण केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि सत्यता, निष्पक्षता और समदर्शिता से ओतप्रोत वह अवस्था है, जहाँ मनुष्य की सीमाएँ लुप्त होकर उसका अस्तित्व दिव्यता से ओतप्रोत हो जाता है। यही समर्पण उस दिव्य व्यक्तित्व की महिमा को प्रकट करता है, जो मानवता से ऊपर उठकर ब्रह्म की सार्वभौम चेतना से जुड़ जाता है।

C6.17 महामति की आत्म-समर्पण यात्रा: 'मैं खुदी' से 'खुदा की मैं' की ओर

"मैं-खुदी और आत्म-समर्पण" का विषय महामति की आत्म (इंद्रावती) की जागृति में केंद्र में है। जिसमें आध्यात्मिक, दार्शनिक, और आधुनिक मनोवैज्ञानिक दृष्टियों का सुंदर समन्वय मिलता है। किसी भी मनुष्य का सम्पूर्ण आध्यात्मिक संघर्ष एक ही केन्द्रीय प्रश्न के चारों ओर घूमता है — "मैं कौन हूँ?" यह प्रश्न जितना सरल प्रतीत होता है, उतना ही गहरा है। महामति प्राणनाथ की वाणी में यह रहस्य अत्यंत स्पष्ट रूप से उद्घाटित होता है — जब तक "मैं-खुदी" (अहंकार, अलगाव की भावना) जीवित है, तब तक "धनीजी की मैं" — अर्थात् परमात्मा की दिव्य चेतना — प्रकट नहीं हो सकती।

बुजरकी मारे रे साथ जी, बुजरकी मारे।
जिन बुजरकी लई दिल पर, तिनको कोई ना उबारे।। - किरन्तन 102/1

अर्थ – हे साथ जी! अहंकार और मान-वृद्धि मनुष्य का सर्वनाश कर देती है। जिसने अपने मन में थोड़ा-सा भी अहंकार या गर्व पाल लिया, उसका उद्धार कोई नहीं कर सकता।

'मैं खुदी' से 'खुदा की खुदी'

मैं मैं करत मरत नहीं, और हक को लगावे दोस।
अब मेहेर हक ऐसी करें, जो इन मैं थें होऊं बेहोस।। - खिलवत 2/22

अर्थ - सिर्फ "मैं-मैं" की बातें करने से "मैं खुदी" (अहंता) समाप्त नहीं होती। बल्कि ऐसा करते हुए मैं उल्टे अपने ही परमेश्वर धनी को दोषी ठहराने लगती हूँ! अब तो बस यही अभिलाषा है कि वह इतनी कृपा करें कि मैं "उनकी मैं" में विलीन हो जाऊँ — अर्थात् उसी के रंग में रंग जाऊँ।

यह "मैं से तू" की यात्रा ही आत्मा की वास्तविक तपश्चर्या है। इन्द्रावतीजी की आत्म-अर्ज़ी से लेकर "धनी की मैं" की पूर्ण प्रतिष्ठा तक, यह यात्रा हमें आत्म-विस्मृति से आत्म-स्मृति की ओर ले जाती है — अज्ञान से जागृति, विभाजन से एकता, और भय से प्रेम की ओर।

C6.17.1 आत्म-अर्ज़ी - माया के खेल से निजघर की पुकार: पहला चरण है *"अर्ज़ी"* — आत्मा की जागरण पुकार। इन्द्रावतीजी की तरह, हर आत्मा किसी न किसी रूप में संसार के खेल में फँसकर अपने घर को भूल बैठी है। जब ज्ञान का एक किरण हृदय को छूता है, तो भीतर से आवाज़ उठती है — "अब बस! यह सब खेल किसका है? और मैं कौन हूँ जो इस खेल में उलझी हूँ?" यह प्रश्न ही आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत है। जब आत्मा यह स्वीकार कर लेती है — "हे धनी! खेल रचने वाले भी तुम हो और छुड़ाने वाले भी तुम ही," तभी उसके भीतर समर्पण की पहली लहर उठती है।

मनोवैज्ञानिक अर्थ में, यह अवस्था *ego-awareness* की शुरुआत है। व्यक्ति यह देखना प्रारम्भ करता है कि उसकी सारी प्रतिक्रियाएँ, इच्छाएँ, असंतोष और भय — सब "मैं" के इर्द-गिर्द घूमते हैं। वह समझता है कि *I am not the doer, but the witness.* यहीं से समर्पण की राह खुलती है।

C6.17.2 'मैं-खुदी' का विसर्जन: आत्म-समर्पण की परीक्षा: दूसरा चरण है *'मैं खुदी'* का अंत। महामति कहते हैं — "जब तक 'मैं' बोलता है, तब तक 'वह' नहीं बोलता।" यह 'मैं' ही सबसे सूक्ष्म दीवार है — जो परमात्मा और आत्मा के बीच खड़ी है।कभी यह धार्मिक अहंकार के रूप में प्रकट होती है — "मैं साधक हूँ, मैं भक्त हूँ"; तो कभी सामाजिक स्वरूप में — "मैं सही हूँ, बाकी सब गलत।"

अहंकार का नाश बाहरी त्याग से नहीं, बल्कि अंतर्मुखता और कृतज्ञता से होता है। जब आत्मा यह स्वीकार करती है — "सब कुछ धनी के हुक्म से है; मैं केवल माध्यम हूँ," तब "खुदी" की दीवार धीरे-धीरे पिघलने लगती है।

आधुनिक मनोविज्ञान में, यह चरण *ego dissolution* या *surrender therapy* कहा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने "control illusion" को छोड़ता है, और जीवन की घटनाओं को एक बड़ी योजना का हिस्सा मानने लगता है। यही वह बिंदु है जहाँ मानसिक संघर्ष *flow state* में परिवर्तित हो जाता है।

C6.17.3 "धनीजी की मैं" का जागरण - भीतर की दिव्य चेतना: जब 'मैं-खुदी' हट जाती है, तब "धनीजी की मैं" — अर्थात् दिव्य चेतना — भीतर प्रकट होती है। इन्द्रावतीजी की आत्मा इसे ऐसे अनुभव करती है —"अब मैं नहीं बोलती; धनीजी मुझसे बोलते हैं ।मेरा हृदय उनका धाम बन गया है।" इस जागरण के पाँच संकेत महामति वाणी में स्पष्ट मिलते हैं —1. ईश्वरीय जोश और प्रेम (इश्क), 2. हुक्म पालन की सहजता, 3. एकदिली और वहदत का अनुभव, 4. निजबुद्धि की शुद्धता, 5. शीतलता और आत्मिक प्रकाश। अब आत्मा का जीवन सेवा, करुणा और शांति का प्रतीक बन जाता है।वह किसी से स्पर्धा नहीं करती, किसी को नीचा नहीं मानती — क्योंकि उसे अपने भीतर वही धनी हर रूप में दिखने लगता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, यह अवस्था *self-transcendence* कहलाती है — जहाँ व्यक्ति व्यक्तिगत लाभ या हानि से ऊपर उठकर संपूर्णता के हित में जीने लगता है। यही अवस्था "conscious collaboration with the Divine" की होती है — जहाँ चेतना सृजनशील और संतुलित हो जाती है।

C6.17.4 पूर्ण समर्पण - "ज्यो जानो त्यों रखो धनी तुमारी में": चौथा और अंतिम चरण है — पूर्ण आत्म-विलय। यह वह स्थिति है जहाँ आत्मा कहती है — "अब मैं कुछ नहीं, सब कुछ तुम ही हो।" यह समर्पण निष्क्रियता नहीं, बल्कि परम सक्रियता है — क्योंकि अब क्रिया भी धनी की है, भावना भी, और फल भी।आत्मा अब "कर्तव्य" नहीं करती — वह स्वयं "कर्तव्य" का स्वरूप बन जाती है।

आधुनिक संदर्भ में, यह अवस्था उस व्यक्ति की है, जो अपने अहंकार को साधन बनाकर जीवन को "offering" में बदल देता है। वह अपने कार्य, संबंध, समाज और देश — सभी में एक ही धनी की लीला देखता है।

यह समर्पण किसी पलायन की स्थिति नहीं, बल्कि जाग्रत जीवन की पराकाष्ठा है — जहाँ व्यक्ति का समूचा अस्तित्व "सेवा और प्रेम" में विलीन हो जाता है।

अहंकार से एकता तक की यात्रा का समन्वित सार:

पड़ाव	आत्मिक अनुभव	मनोवैज्ञानिक अर्थ
१. आत्म-अर्ज़ी	माया से निजघर की पुकार	Self-awareness
२. 'मैं खुदी' का विसर्जन	अहंकार का अंत	Ego-dissolution
३. "धनी की मैं" का जागरण	दिव्य चेतना का प्रकाश	Self-transcendence
४. पूर्ण समर्पण	हुक्म और प्रेम की एकता	Flow & Grace, दिव्य जीवन

इस तरह, महामति कहते हैं, "अपने अस्तित्व को नकारना समर्पण नहीं, बल्कि उसे परमात्मा के अस्तित्व से ओतप्रोत कर देना।" यह यात्रा भीतर से बाहर की नहीं, बल्कि 'मैं से तू' और अंततः 'मैं ही तू' की है। जब 'मैं-खुदी' का पतन होता है, तभी 'धनीजी की मैं' का उदय होता है। और तभी जीवन — पूजा बन जाता है, वाणी — वाणी नहीं, वाणी धनी की - श्यामा जी की रसना बन जाती है, और आत्मा संसार में रहते हुए भी निजघर में स्थित हो जाती है।

जिस तरह महामति कहते हैं, "ज्यो जानो त्यों रखो धनी तुमारी में", ठीक उसी तरह, विश्व विख्यात वर्तमान दर्शन शास्त्री एकहार्ट टोले भी कहते हैं कि समर्पण हार नहीं, बल्कि जैसा है वैसी जीवन की सजग स्वीकृति है। जब हम वर्तमान क्षण को बिना विरोध या निर्णय के स्वीकारते हैं, तब भीतर शांति और स्पष्टता जन्म लेती है।

स्वीकृति ही परिवर्तन की शुरुआत है — यह परिस्थिति के आगे झुकना नहीं, बल्कि उसे समझकर सही कदम उठाना है। जैसे कीचड़ में फँसने पर पहले स्वीकारें कि "हाँ, मैं फँसा हूँ," तभी निकलने का मार्ग दिखेगा। विरोध ऊर्जा को बांधता है, जबकि स्वीकृति उसे प्रेम और करुणा में बदल देती है।

सच्चा समर्पण दूसरों के अधीन होना नहीं, बल्कि जागरूकता से उत्तर देना है — जहाँ आघात में भी बिना क्रोध के "ना" कहना संभव हो। यह हमें जीवन के स्रोत से जोड़ता है, जहाँ से प्रेम, करुणा और स्पष्टता प्रवाहित होती है।

परम समर्पण की स्थिति में महामति कहते हैं, "दुख तो हमारो आहार है, औरन को दुख खाए।" ठीक उसी तरह एकहार्ट कहते हैं, "दुःख या बीमारी से भागना नहीं, बल्कि साक्षी भाव से देखना ही सच्चा समर्पण है। विरोध समाप्त होते ही पीड़ा ज्ञान में और दुःख प्रेम में बदल जाता है। विपत्ति स्वीकारना वरदान है, क्योंकि इससे अहंकार मिटता है और "मैं" व "परमेश्वर" का द्वैत समाप्त होता है।

इस तरह, महामति की शिक्षा आज भी उतनी ही उपयोगी है, जो कहती है, "समर्पण हार नहीं, सजग शांति है। विरोध मन का बंधन है, स्वीकृति मुक्ति है। जब हम 'अब – वर्तमान' में जीते हैं, तभी जीवन सहज, आनंदपूर्ण और करुणामय बनता है।"

C6.18 कर्तव्य निभाने की हमारी क्षमता कैसे बढ़ाएं?

यदि हमें श्री निजानंद सतगुरु, महामति, महाराजा छत्रसाल और सुन्दरसाथ जैसी कर्तव्य निभाने की क्षमता विकसित करनी है, तो हमें उनके उपायों को आज के आधुनिक ज्ञान और परिस्थितियों के अनुसार अपनाना होगा। इनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय है चेतना के ऊँचे स्तर तक विकास का प्रयास।

C6.18.1 चेतना का विकास:

व्यक्ति की कर्तव्य निभाने की क्षमता सीधे उसकी चेतना के विकास स्तर पर निर्भर करती है। जैसे-जैसे चेतना विकसित होती है, व्यक्ति का दृष्टिकोण अधिक संतुलित, परिपक्व और समग्र बनता है। प्रत्येक स्तर अपने आप में एक नई दुनिया की तरह है, जिसमें अलग जरूरतें, इच्छाएँ, नैतिक मूल्य और क्षमताएँ होती हैं।

उदाहरण के रूप में, जीवन के प्रारंभिक स्तर पर हमारा ध्यान भोजन, सुरक्षा और मूल आवश्यकताओं पर रहता है। जैसे-जैसे हम भावनात्मक और सामाजिक कौशल विकसित करते हैं, हमारा ध्यान इन जरूरतों से आगे बढ़कर रिश्तों, जिम्मेदारियों और कल्पनाशील कार्यों पर केंद्रित होता है। जब चेतना और अवधारणात्मक क्षमता ऊँची होती है, तो हम जागरूक निर्णय लेने, आवेगों पर नियंत्रण रखने और कर्मों का सोच-समझकर चयन करने लगते हैं। इस स्तर पर कार्य-शक्ति और प्रभावशीलता बढ़ती है, और पुराने स्तरों की प्राथमिकताएँ स्वतः कम महत्व की लगने लगती हैं। इसके आगे उच्च स्तर पर हमारी तर्कशक्ति, आत्म-सम्मान और जटिल कार्यों की समझ पूरी तरह विकसित होती है। और सबसे उन्नत स्तर पर बहुसांस्कृतिक दृष्टिकोण, बहुआयामी सोच और आत्म-साक्षात्कार संभव होता है।

जब हम अपने भीतर इन विभिन्न विकास स्तरों की संभावनाओं को समझते हुए चेतना और दृष्टिकोण पर ध्यान रखते हैं, तो हम लगातार उन्नति कर सकते हैं। चेतना के इन विभिन्न स्तरों को हम हमारे शरीर में सात सूक्ष्म ऊर्जा चक्रों से जोड़ सकते हैं। जैसे प्रत्येक चक्र का जागरण हमें नई शक्ति, समझ और व्यापक दृष्टि देता है, वैसे चेतना विकास स्तरों संबंधी जागरूकता कर्तव्य निभाने की हमारी क्षमता बढ़ाते हुए हमें सतत उन्नति की ओर ले जाती हैं।

C6.18.2 अपने व्यक्तित्व को और बुद्धि की विविधता को जानना:
हमारी कर्तव्य निभाने की क्षमता हमारे व्यक्तित्व और बुद्धि पर भी निर्भर होती है। बीतक

के प्रसंगों के अध्ययन से पता चलता है कि महामति हर सुन्दरसाथ को उसके स्वभाव, योग्यता और रुचि के अनुसार सेवा देते थे, ताकि वह अपनी प्रकृति के अनुरूप कर्तव्य को सहजता और आनंद से निभा सके - विविध सेवाओं का संतुलित और उचित विभाजन देखने को मिलता है।

आज व्यक्तित्व (personality) के प्रकारों (टाइप्स) के अध्ययन में बहुत प्रगति हुई है। यदि हम अपने व्यक्तित्व के प्रकार विशिष्ट को समझ लें, तो अपनी ताकत और कमजोरियों — दोनों को जानना आसान हो जाता है। उदाहरण के लिए, यदि आप विश्लेषक (Observer) हैं, तो आप तर्क, विश्लेषण और अवलोकन में कुशल होंगे, परंतु सामाजिक या भावनात्मक परिस्थितियों में थोड़ा कठिनाई महसूस कर सकते हैं। वहीं, यदि कोई व्यक्ति मध्यस्थ (Mediator) स्वभाव का है, तो उसका संवाद-संतुलन बनाए रखने का गुण टीम में सहयोग और समरसता बढ़ा सकता है।

अपने स्वभाव और प्रवृत्ति की समझ हमें यह जानने में मदद करती है कि कौन-सा कार्य हमारे लिए सबसे उपयुक्त है और कहाँ सुधार की आवश्यकता है। कुछ मूल लक्षण बदले नहीं जा सकते, पर उन्हें समझकर हम अपनी ऊर्जा को सही दिशा दे सकते हैं। जैसे भावुक व्यक्ति अपनी संवेदनशीलता को दूसरों की प्रेरणा और सहयोग में बदल सकता है, जबकि तर्कशील व्यक्ति अपनी विवेकशीलता और निर्णय क्षमता से टीम को दिशा दे सकता है।

C6.18.3 समग्र क्षमता की समझ: समग्र क्षमता (Holistic Capability) का अर्थ है व्यक्ति की सभी क्षमताओं, कौशलों, गुणों और जागरूकता का संतुलित उपयोग। इसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और नैतिक पक्ष शामिल हैं। यह केवल एक कौशल तक सीमित नहीं, बल्कि पूरे व्यक्तित्व, निर्णय क्षमता, सामाजिक समझ और अनुशासन का संयोजन है। समग्र क्षमता न केवल व्यक्तिगत विकास, बल्कि समाज और राष्ट्र की स्थिरता और कल्याण में भी सहायक है।

समग्र क्षमता होने पर व्यक्ति:

1. कर्तव्यों को समझदारी और संतुलन के साथ निभाता है।
2. आवेग या अनियंत्रित प्रतिक्रिया से मुक्त होकर सोच-समझकर कार्य करता है।
3. अपनी क्षमताओं और सीमाओं का मूल्यांकन कर कमजोरियों को संतुलित करता है।
4. बलिदान और समर्पण की भावना के साथ कार्य करता है।
5. विविध परिस्थितियों में अपने कर्तव्य का प्रभावी निर्वाह करता है।

6. कर्तव्य को केवल जिम्मेदारी नहीं, बल्कि संतोषजनक और प्रभावशाली अनुभव के रूप में जीता है।

कर्तव्य केवल व्यक्तिगत काम या बाहरी गतिविधि नहीं है। यह तभी समग्र रूप लेता है जब इसे इन चारों दृष्टियों से निभाया जाए। यह हमारे कर्तव्य को व्यापक सामाजिक संदर्भ में स्थायित्व और अर्थ प्रदान करता है।:

क्रम	दृष्टिकोण	मुख्य अर्थ	दृष्टांत / उदाहरण
1	अंतःव्यक्तिगत दृष्टि	अपनी सोच, भावना और नैतिक मूल्यों के अनुसार कार्य करना	स्वार्थ के बजाय सत्य और ईमानदारी को प्राथमिकता देना
2	बाह्य-व्यक्तिगत दृष्टि	अपने कर्मों और व्यवहार में जिम्मेदारी, अनुशासन और निष्ठा रखना	दूसरों की सहायता करना, कार्य समय पर और सही ढंग से करना
3	अंतःसामूहिक दृष्टि	परिवार, समूह या संस्कृति के साझा मूल्यों के अनुरूप कार्य करना	परिवार या टीम की सफलता के लिए मिलकर प्रयास करना
4	बाह्य-सामूहिक दृष्टि	समाज और संस्थाओं के प्रति जिम्मेदारी निभाना, सामूहिक कल्याण में योगदान देना	समुदाय की सेवा, सामाजिक कार्यों में सहभागिता करना

C6.19 कुछ विचारणीय प्रश्नोत्तर:

प्रश्न 1: कर्तव्य, त्याग और समर्पण में प्रगतिशील सक्रियता के बावजूद अक्सर भावनात्मक थकान और संघर्ष का सामना करना पड़ता है। कभी-कभी इसे छोड़ देने का विचार भी मन में आता है। ऐसे स्थिति में इसे कैसे टाला जा सकता है और अपनी सक्रियता को संतुलित, आनंदमय और टिकाऊ बनाया जा सकता है?

उत्तर: कर्तव्य निभाने में सक्रिय रहना तो जरूरी है, लेकिन सवाल है कि क्या यह समग्र समझ के साथ है?

'प्रगतिशील सक्रियता' में हमारा ध्यान अधिकतर बाहरी बदलाव पर होता है— जैसे समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था। असमानता, नस्लभेद, जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं से लड़ना इसका उद्देश्य है। यह तुरंत असर दिखाती है, हाशिए पर पड़े लोगों की आवाज़ उठाती है और ठोस परिणाम देती है, लेकिन इस से भावनात्मक थकान और संघर्ष की संभावना अधिक होती है।

इस से विपरीत समग्र सक्रियता आंतरिक और बाहरी बदलाव का संयोजन है। केवल बाहरी कार्यों तक सीमित नहीं, बल्कि व्यक्ति की चेतना, आत्मचिंतन और आंतरिक

विकास के साथ जुड़ी होती है। इसका असर धीरे दिखता है, लेकिन यह संतुलित, टिकाऊ और थकान कम करने वाली होती है, साथ ही विभिन्न दृष्टिकोणों का सम्मान करती है।

आधुनिक विशेषज्ञ भी इस अभिगम को महत्व देते हैं, जैसे: - डॉ. दीपक चोपड़ा कहते हैं: आंतरिक जागरूकता और चेतना विकास के बिना स्थायी परिवर्तन संभव नहीं। दार्शनिक एकहार्ट टोले कहते हैं: वर्तमान क्षण में जागरूक रहकर आंतरिक शांति से बाहरी बदलाव लाया जा सकता है। और दार्शनिक केन विल्बर कहते हैं: आंतरिक और बाहरी विकास – दोनों को जोड़कर ही स्थायी और संपूर्ण बदलाव संभव है।

समग्र सक्रियता की ताकत उसकी गहराई, संतुलन और दीर्घकालिक स्थायित्व में है। यह केवल असर दिखाने के बजाय जीवन और समाज में स्थायी सुधार लाती है। महामति का यही महस्वप्न है।

प्रश्न 2: समर्पण में संतुलन की आवश्यकता: राष्ट्र निर्माण या धर्म/सत्य की रक्षा में समर्पित कुछ लोग कभी-कभी अत्यधिक विश्वास या हानिकारक क्रियाओं की ओर क्यों बढ़ जाते हैं? इसके प्रमुख कारण बताइए:

उत्तर: इस असंतुलन के मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक और सामाजिक स्तर के हैं, जो इस प्रकार हैं:

a. सामूहिक पहचान और समूहवाद: "हम और वे" की मानसिकता से चरम विचार और कर्म जन्म ले सकते हैं।
b. अपनत्व और स्वीकृति की आवश्यकता: अपने समूह में स्वीकार्यता पाने की इच्छा व्यक्ति को अतिवादी या कठोर कदम उठाने के लिए प्रेरित कर सकती है।
c. शक्ति और प्रभुत्व की विकृत अभिव्यक्ति: उत्पीड़न, युद्ध या हिंसा जैसी हानिकारक प्रवृत्तियाँ इस वजह से उत्पन्न हो सकती हैं।
d. स्व-जागरूकता और आत्म-साक्षात्कार की कमी: जब व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रखता, तब मार्गभ्रष्ट होने की संभावना बढ़ जाती है।
e. ऐतिहासिक-सांस्कृतिक प्रभाव: अतीत के संघर्ष, साम्राज्य या धार्मिक व्यवस्थाओं से जुड़े अनुभव कभी-कभी वर्तमान में भी क्रूर या अतिवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे सकते हैं।

सच्चा समर्पण तभी सुरक्षित और फलदायी होता है जब यह स्व-जागरूकता, संतुलन और नैतिक दृष्टि के साथ जुड़ा हो।

प्रश्न 3: हमारा समर्पण मिशन (उच्च उद्देश्य) के प्रति होना चाहिए कि नेता के प्रति? व्यक्तिगत निष्ठा भी आवश्यक होती है, पर इस से उत्पन्न होने वाले अंधानुकरण के प्रति सावधानी के लिए क्या करें?

उत्तर: महामति ने अपनी जाग्रत बुद्धि से समग्र दृष्टि अपनाते हुए मिशन और नेता दोनों के प्रति निष्ठा के संतुलन की आवश्यकता दर्शाई। मूल दिव्य स्वरूप और परमधाम के प्रति अनन्य श्रद्धा एवं निष्ठा के साथ साथ जागनी लीला में नेतृत्व के सम्मान की व्यावहारिक बात समझाई।

उन का समग्र दृष्टिकोण सिखाता है कि "अतिक्रमण और समावेशन" (ट्रैन्सेन्ड एण्ड इन्क्लूड) की प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्तिगत निष्ठा और उच्च उद्देश्य के बीच संतुलन साधा जा सकता है। अतिक्रमण से तात्पर्य है अपने व्यक्तिगत स्वार्थ, सीमित दृष्टिकोण और संकुचित सोच से ऊपर उठना। और समावेशन से तात्पर्य है अपनी मूल निष्ठा, मूल्य और व्यक्तिगत योग्यता को उस बड़े उद्देश्य में शामिल करना।

इसमें नेता और मिशन का संबंध यह सुनिश्चित करता है कि नेता केवल मिशन का वाहक है, स्रोत नहीं; उन्हें सम्मान दें, लेकिन अंतिम निष्ठा उस सत्य को दें जिसे नेता सेवा करता है। इस तरह, व्यक्ति अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण और निष्ठा को पूरी तरह त्यागे बिना, उच्च उद्देश्य या समग्र लक्ष्य में खुद को शामिल कर सकता है। व्यक्तिगत निष्ठा अंधानुकरण बनाती है, जबकि परिपक्व भक्ति मुक्ति देती है; इसलिए निष्ठा को व्यक्ति से सिद्धांत और मूल्य में बदलना चाहिए।

मिशन वास्तविक पारमार्थिक विकास का संकेत है और यदि नेता और मिशन लक्ष्य के अनुरूप हैं, तो दोनों की सेवा समान है; विचलन होने पर हमेशा सत्य और दिव्य लक्ष्य पर लौटना चाहिए। यह गतिशील संतुलन "हाँ/हाँ" नहीं, बल्कि "दोनों/और" का दृष्टिकोण है—नेता को प्रेम से, मिशन को बुद्धिमानी से और परमेश्वर को पूर्ण समर्पण से सेवा करने की महिमा बड़ी है। इस दृष्टि से किया गया समर्पण तभी सुरक्षित और सशक्त होता है, जब यह व्यक्तिगत जागरूकता, उच्च उद्देश्य और समग्र दृष्टि के संतुलन पर आधारित हो।

प्रश्न 4: आधुनिक राष्ट्रवाद में समग्र चेतना और न्यायपूर्ण समाज के सिद्धांतों से टकराव के कारण क्या है? इसे कैसे सुलझा सकते हैं?

उत्तर: क्यों कि आधुनिक राष्ट्रवाद में अक्सर दबाने वाली व्यवस्थाओं (dominator hierarchies) और विकासात्मक व्यवस्थाओं (growth hierarchies) के बीच अंतर नहीं समझा जाता, जिससे यह समग्र चेतना और न्यायपूर्ण समाज के सिद्धांतों से टकराता है।

इस टकराव के समाधान के आसान उपाय इस प्रकार हैं: (1) लोगों को शिक्षित करना कि दबाने वाली व्यवस्थाएँ अपमानजनक होती हैं, जबकि विकासात्मक व्यवस्थाएँ लाभकारी और उन्नतिशील होती हैं, (2) कम जातिवाद, नस्लवाद और लैंगिक भेदभाव

वाले उच्च चेतना के स्तर को बढ़ावा देना, (3) व्यक्तियों और समूहों का न्यायपूर्ण मूल्यांकन चेतना विकास के स्तर और उन के योगदान के आधार पर करना, और (4) आधुनिक विज्ञान और प्राचीन रहस्यवाद की गलत व्याख्याओं एवं परस्पर संबंध की गलतफहमियों को सुधारकर समग्र दृष्टिकोण अपनाना।

यदि हम शिक्षा, चेतना विकास, न्यायपूर्ण मूल्यांकन और स्पष्ट समझ पर ध्यान दें, तो आधुनिक राष्ट्रवाद और समग्र दर्शन के बीच के टकराव को अवश्य कम किया जा सकता है।

प्रश्न 5: चेतना के विविध स्तरों की समझ का राष्ट्रनिर्माण में क्या योगदान हो सकता है?

उत्तर: राष्ट्रनिर्माण में उच्च चेतना का योगदान विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। क्यों कि उच्च चेतना स्तर वाले लोग अपने कार्यों को समाज और राष्ट्र के कल्याण के अनुसार करते हैं, जिससे सामूहिक चेतना, एकता और सामंजस्य बढ़ता है। ऐसे नेता दूरगामी और समग्र विकास पर ध्यान देते हैं और दूसरों को प्रेरित करते हैं।

जब समाज में अधिक लोग उच्च चेतना के साथ कार्य करते हैं, तो आपसी सम्मान, सहयोग और साझा लक्ष्यों की दिशा में प्रयास बढ़ता है। संक्षेप में, चेतना के उच्च स्तर व्यक्ति को कर्तव्य निभाने, बलिदान करने और समर्पण करने में सक्षम बनाते हैं, जो व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ सामाजिक समरसता और राष्ट्रनिर्माण को भी प्रोत्साहित करता है।

साधारण जागृत अवस्था में लोग मुख्यतः भौतिक और तात्कालिक वास्तविकताओं पर ध्यान देते हैं और कर्तव्य तथा बलिदान समाजिक नियमों या अपेक्षाओं तक सीमित रहते हैं। इस ऊपर, सूक्ष्म या सपनों की अवस्था में व्यक्ति अपने कर्तव्य और बलिदान को आदर्श दृष्टि से देखता है। इस से ऊपर, कारण या गहन निद्राहीन अवस्था में कर्तव्य और बलिदान गहन आत्मनिरीक्षण के साथ, उच्च, आध्यात्मिक उद्देश्य के लिए किए जाते हैं, जिसमें अहंकार और व्यक्तिगत इच्छाओं का त्याग शामिल होता है। इस से परे साक्षी अवस्था में व्यक्ति अपने विचारों और कर्मों को आसक्ति रहित दृष्टि से देखता है और सेवा तथा बलिदान उस से निष्काम भाव से होते हैं। अंतिम अद्वैत एकता की अवस्था में व्यक्ति सभी स्तर के अस्तित्वों के साथ एकता का अनुभव करता है, और कर्तव्य, बलिदान तथा समर्पण को समग्र हित और एकता के लिए करता है।

प्रश्न 6: आज के जटिल और आपसी निर्भरता वाले विश्व में राष्ट्रनिर्माण और विश्वशांति के बीच संतुलन क्यों आवश्यक है? राष्ट्रनिर्माण और वैश्विक कल्याण के प्रयासों को संतुलित तरीके से कैसे अपनाया जा सकता है?

उत्तर: आज का विश्व जटिल और आपसी निर्भरता से भरा है, इसलिए राष्ट्रनिर्माण और विश्वशांति का संतुलन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रनिर्माण का अर्थ है देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करना, जिसमें शिक्षा, न्याय और करुणा को प्राथमिकता देना और नागरिकों का जिम्मेदार योगदान शामिल है। वहीं, विश्वशांति सीमाओं से परे सोचकर सभी मानवता के कल्याण को बढ़ावा देने का प्रयास है, जैसे वैश्विक समस्याओं—जलवायु संकट, असमानता या महामारी—का सहयोग से समाधान।

संभावित संघर्ष तब उत्पन्न होते हैं जब राष्ट्रवाद केवल राष्ट्रीय हित तक सीमित रह जाए, संसाधनों और पहचान की राजनीति हो, या सैन्य बल बढ़ाने की कोशिशें पारस्परिक संशय और टकराव बढ़ा दें। इसके विपरीत, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित राष्ट्रनिर्माण विश्वशांति में योगदान कर सकता है। उदाहरण के लिए, स्कैंडिनेवियाई देशों ने शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा और सतत विकास पर जोर देकर स्थायी संतुलन बनाया। सच्चा देशभक्ति वह है जो मानवता को ऊपर उठाए, न कि अलग करे।

दार्शनिक दृष्टि से हर संस्थान और स्तर का सही स्थान होना चाहिए। राष्ट्रनिर्माण जीवन के भौतिक और नैतिक आयामों का संगठन है, जबकि विश्वशांति सभी जीवों को परम चेतना का हिस्सा मानने में निहित है। संघर्ष तब बढ़ता है जब राष्ट्रीय अहंकार सार्वभौमिक दृष्टि की जगह ले ले। आदर्श संतुलन वह है जिसमें राष्ट्र अपनी शक्ति और प्रकाश से मानवता को रोशन करे और संघर्ष के बजाय सहयोग और संतुलन को बढ़ावा दे।

अंतरराष्ट्रीय उदाहरण—जलवायु परिवर्तन, सैन्य और आतंकवाद, और कोविड-19 जैसी वैश्विक स्वास्थ्य चुनौतियाँ—सिखाती हैं कि केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर्याप्त नहीं; साझा जिम्मेदारी और सहयोग आवश्यक है। निष्कर्ष यह है कि सच्चा राष्ट्रनिर्माण तभी स्थायी और सार्थक होता है जब यह विश्वशांति के मूल्यों के साथ संतुलित हो, और हर राष्ट्र अपनी शक्ति, शिक्षा, न्याय और करुणा से मानवता में योगदान करे।

6.20 उपसंहार: महामति का आह्वान

जागरण

सूता होए सो जागियो, जाग्या सो बैठा होए।
बैठा ठाढ़ा होइयो, ठाढ़ा पाँऊ भरे आगे सोए।।
यों तैयारी कीजियो, आगूं करनी है दौड़।
सब अंग इस्क लेय के, निकसो ब्रह्मांड फोड़। किरन्तन 86/18-19

अर्थात, यदि तुम सो रहे हो तो अब जागो — चेतन बनो और वर्तमान को समझो। जागने के बाद स्थिर होकर देखो कि अब क्या कैसे करना है;

फिर दृढ़ संकल्प से उठो और पूरे समर्पण के साथ आगे बढ़ते रहो।
अपने लक्ष्य की दिशा में पूर्ण तैयारी करो —
क्योंकि आत्म-जागृति की यात्रा में धीमे कदम नहीं, सजग दौड़ चाहिए।
अपने मन और शरीर को प्रेम और चेतना से भर दो,
अपनी सीमित मान्यताओं को त्याग दो, और
अनंत संभावनाओं के ब्रह्मांड में साहसपूर्वक प्रवेश करो।
यही समय है — उठने, जानने और पूर्णता की ओर बढ़ने का।

धर्म रक्षा, राष्ट्रधर्म और सत्य संकल्प

राजा ने मलो रे राणें राए तणो, धरम जातां कोई दौडो ।
जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोडी रे छोडो ॥ - किरन्तन 58/1

अर्थ - महामति प्राणनाथजी ने मध्ययुगीन राजाओं और योद्धाओं को पुकारा था कि,
"धर्म संकट में है, औरंगज़ेब की अन्यायी नीतियाँ इसे नष्ट कर रही हैं।
अब जागने का समय है, फूट और आलस्य रूपी नींद को त्यागो।"
ठीक वैसे ही, आज यह पुकार हर व्यक्ति के लिए है:
"अज्ञान, असत्य और अन्याय की नींद से उठो;
सत्य, न्याय और आत्मजागरण की रक्षा के लिए सजग बनो।
धर्म की रक्षा केवल शस्त्र से नहीं, बल्कि चेतना की समग्र जागृति से होगी।"

छूटत है रे खडग छत्रियों से, धरम जात हिन्दुआन ।
सत न छोडो रे सत बादियों, जोर बढ्यो तुरकान ॥ - किरन्तन 58/2

जिस तरह महामति ने मध्य युगीन क्षत्रियों को कहा कि
उनके हाथों से तलवार छूट जाने से असत्य प्रबल हुआ और अत्याचार बढ़े।
ठीक वैसे ही वे आज भी हमें पुकार रहे हैं —
विवेक, करुणा, साहस और सत्य की तलवार लेकर खड़े रहो।
धर्मयुद्ध किसी व्यक्ति या सत्ता के खिलाफ नहीं,
बल्कि भीतर के अज्ञान, मोह, भय और असत्य के विरुद्ध है।
हर युग में धर्म की रक्षा का अर्थ है — अंतर्मन की शक्ति जागृत रखना, त्याग और समर्पण करना।
आज यह आह्वान हर व्यक्ति के लिए है:
आत्मिक जागरण और समरस चेतना में खड़े रहो, अपने भीतर के अधर्म से लड़ो।
जागृति से कर्म, कर्म से धर्म, और धर्म से सत्य की स्थापना होती है।

यही है तारतम वाणी का युगानुकूल धर्मयुद्ध —
सत्य की ओर जागना, कर्तव्य के लिए खड़ा होना, और प्रेमपूर्ण चेतना में जीना।

कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — यही राष्ट्र और मानवता की आत्मा हैं। यदि भारत को अपना विश्वगुरु स्थान बनाए रखना है, तो इन मूल्यों को जीवित रखकर ऐसी सभ्यता का विकास करना होगा जहाँ स्वार्थ, अहंकार और भोग-वृत्ति के प्रति सजगता बढ़े, और धर्म, कर्तव्य तथा आत्मनिष्ठा जीवन के उत्सव बनें।

भारत की सच्ची शक्ति उसकी चरित्रनिष्ठा, दृष्टि और नैतिकता में है — यही उसका सबसे बड़ा धन है। आज बाहरी प्रगति जितनी तीव्र है, उतनी ही आवश्यकता है कि आंतरिक मूल्यों का दीप भी समान रूप से प्रज्वलित रहे।

महामति प्राणनाथ प्रदत्त तारतम ज्ञान का प्रकाश और सब को तारतम्य में जोड़ने की युक्ति का सदुपयोग करते हुए इन तीन दीपों — कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — को फिर से प्रज्ज्वलित कर, हम मिलकर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को स्थायी शक्ति, शांति और गौरव प्रदान कर सकते हैं।

.....

शोध पत्र 7
महामति प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव
आध्यात्म, समाज और दर्शन का समन्वित ताना-बाना

नरेंद्र आर. पटेल, एम.एस., सी.एस.पी. (सेवानिवृत्त): लेखक, संपादक, सहयोगी शोधकर्ता एवं स्क्रिप्ट लेखक, श्री प्राणनाथ मल्टीमीडिया प्रोडक्शन्स, पूर्व ट्रस्टी, श्री 5 पद्मावती पुरी धाम, पन्ना एवं निजानंद फाउंडेशन इंक., यू.एस.ए. सदस्य, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, सेवानिवृत्त विश्वविद्यालय सुरक्षा समन्वयक, रटगर्स विश्वविद्यालय, यू.एस.ए.

C7.1 प्रस्तावना:

मानव चेतना की एक सामान्य प्रवृत्ति यह रही है कि वह किसी एक जीवन-क्षेत्र, अनुभव या सत्य-अंश को ही सम्पूर्ण सत्य मान बैठती है। कोई केवल धर्म को ही सब कुछ समझ लेता है और विज्ञान, समाज या मनोविज्ञान को गौण मान लेता है; कोई केवल विज्ञान और तर्क को अंतिम सत्य मानकर प्रेम, आध्यात्म और चेतना के सूक्ष्म आयामों का निषेध कर देता है; कोई राजनीति को ही परिवर्तन का एकमात्र माध्यम मानता है, तो कोई केवल व्यक्तिगत मुक्ति को पर्याप्त समझकर समाज और मानवता की उपेक्षा कर देता है। इसी प्रकार कोई केवल कर्मकाण्ड, कोई केवल दर्शन, कोई केवल भावना और कोई केवल बाहरी सक्रियता में उलझ जाता है। परिणामतः मनुष्य आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य समझ बैठता है और जीवन खंडित हो जाता है।

यह समस्या केवल अज्ञान की नहीं, बल्कि चेतना की सीमित अवस्था की भी है। जब व्यक्ति किसी एक आयाम से अत्यधिक जुड़ जाता है, तब वह उसी को अंतिम मानने लगता है और अन्य आयामों का नकार कर देता है। यही कारण है कि इतिहास में धर्म बनाम विज्ञान, भक्ति बनाम ज्ञान, समाज बनाम आध्यात्म, परंपरा बनाम आधुनिकता जैसे संघर्ष बार-बार उत्पन्न हुए। वस्तुतः समस्या विविधता में नहीं, बल्कि एकांगी दृष्टि में है।

महामति प्राणनाथ की विशिष्टता यही है कि वे किसी एक सीमित खांचे में नहीं ठहरते। वे केवल भक्त, दार्शनिक, समाज-सुधारक, कवि या राजनीतिक मार्गदर्शक मात्र नहीं हैं, बल्कि इन सभी आयामों के समन्वयकारी और परम सत्य के प्रकाशक हैं। उनकी दृष्टि जीवन को खंडों में नहीं, बल्कि एक जीवंत चेतना-समग्रता के रूप में देखती है।

इसीलिए उनकी वाणी में प्रेम भी है, दर्शन भी; भक्ति भी है, विवेक भी; सामाजिक समरसता भी है और आत्म-जागरण भी।

तारतम वाणी बार-बार संकेत करती है कि सत्य को किसी एक परिभाषा, सम्प्रदाय, शास्त्र, भाषा या मानसिक ढाँचे में पूर्णतः बाँधा नहीं जा सकता। इसलिए महामति प्राणनाथ "खोज" पर बल देते हैं—एक ऐसी जीवंत खोज जो व्यक्ति को स्थिर मान्यताओं से आगे ले जाकर व्यापक चेतना की ओर खोलती है—

"खोज सोहागिन ना थके, जोलों पार के पारै पार।
नित खोजे चरनी चढ़े, नए नए करे विचार।।"

यहाँ "नए नए करे विचार" का अर्थ सत्य को बदलना नहीं, बल्कि चेतना के विकसित होने पर उसके नए आयामों का उद्घाटन होना है। जो व्यक्ति किसी एक स्तर पर अटक जाता है, वह सम्पूर्णता को नहीं देख पाता। महामति प्राणनाथ का मार्ग इसी सीमितता को तोड़कर चेतना को समग्र, समन्वित और प्रेममय बनाता है।

दृष्टि	**केंद्र**	**सीमा**	**समग्र दृष्टि क्या जोड़ती है**
केवल कर्मकाण्ड	बाहरी धर्म	अनुभव का अभाव	चेतना और प्रेम
केवल बौद्धिक दर्शन	तर्क और सिद्धांत	हृदय और अनुभव से दूरी	ज्ञान + अनुभूति
केवल भावनात्मक भक्ति	भावना	विवेक का अभाव	प्रेम + प्रज्ञा
केवल सामाजिक सक्रियता	बाहरी परिवर्तन	आंतरिक रूपांतरण की कमी	सेवा + आत्म-जागरण
केवल व्यक्तिगत मुक्ति	स्वयं की साधना	समाज से दूरी	आत्मा + लोकमंगल
महामति प्राणनाथ की समग्र दृष्टि	चेतना का पूर्ण विकास	—	भक्ति, ज्ञान, सेवा, समाज और जागृति का समन्वय

आधुनिक समग्र (Integral) दर्शन भी यही कहता है कि वास्तविक परिपक्वता तब आती है जब मनुष्य जीवन के विभिन्न आयामों—व्यक्तिगत, सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक और व्यवहारिक—को एक साथ देखना सीखता है। तारतम दृष्टि में भी यही समन्वय दिखाई देता है। क्षर, अक्षर और अक्षरातीत की स्तरबद्ध व्यवस्था; भक्ति, ज्ञान और कर्म का संतुलन; व्यक्ति और समाज की एकता; तथा धर्मों के बीच

अंतर्धारा की खोज—ये सभी संकेत करते हैं कि महामति प्राणनाथ का दर्शन किसी संकीर्ण आग्रह का नहीं, बल्कि चेतना की समग्रता का दर्शन है।

इसीलिए वे केवल "क्या मानो" यह नहीं सिखाते, बल्कि "कैसे देखो" यह सिखाते हैं। उनका उद्देश्य मनुष्य को किसी विचारधारा में बंद करना नहीं, बल्कि उसे इतना जाग्रत करना है कि वह सत्य के विभिन्न आयामों को प्रेम, विवेक और अनुभव के साथ जोड़ सके। जब यह समग्र दृष्टि विकसित होती है, तभी धर्म विभाजन का कारण न बनकर जागृति का माध्यम बनता है; ज्ञान अहंकार न बनकर करुणा में बदलता है; और आध्यात्म जीवन से पलायन न बनकर जीवन को प्रकाशित करने वाली चेतना बन जाता है।

C7.2 महामति प्राणनाथ के बहुआयामी योगदान

महामति प्राणनाथ का व्यक्तित्व भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में अत्यंत अद्वितीय और बहुआयामी है। उन्हें केवल एक संत, कवि, धर्माचार्य या समाज-सुधारक के रूप में सीमित कर देना उनके योगदान की व्यापकता को संकुचित कर देना होगा। वे ऐसे युगद्रष्टा थे जिन्होंने आध्यात्म, दर्शन, समाज, राजनीति, संस्कृति, शिक्षा और मानव चेतना के विविध आयामों को एक समग्र दृष्टि में जोड़ने का प्रयास किया। उनकी वाणी केवल मोक्ष या परलोक की चर्चा नहीं करती, बल्कि जीवन के संपूर्ण रूपांतरण की दिशा प्रदान करती है।

क्षेत्र	**महामति प्राणनाथ का योगदान**
आध्यात्म	जागनी, प्रेम और आत्म-पहचान का मार्ग
दर्शन	क्षर–अक्षर–अक्षरातीत एवं स्वलीलाद्वैत
समाज	समरसता, जाति-पार मानवता और सुंदरसाथ समाज
धर्म	तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म समन्वय और चेतना-आधारित एकत्व
शिक्षा	खोज, संवाद और अनुभव-आधारित अध्ययन
राजनीति	न्याय, स्वराज और धर्माधारित नेतृत्व
संस्कृति	बहुभाषी वाणी, संगीत, काव्य और संवाद
आधुनिक संदर्भ	चेतना-विकास और डिजिटल युग में "मन की सवारी"

आज का मनुष्य अभूतपूर्व ज्ञान, तकनीक और संसाधनों के बावजूद भीतर से विभाजित, अस्थिर और संघर्षग्रस्त दिखाई देता है। बाहरी प्रगति के साथ आंतरिक परिपक्वता का संतुलन न होने से समाज में ध्रुवीकरण, कट्टरता, हिंसा, मानसिक तनाव और पहचान-आधारित संघर्ष बढ़ते जा रहे हैं। ऐसे समय में महामति प्राणनाथ का समग्र

दृष्टिकोण केवल ऐतिहासिक महत्त्व का विषय नहीं, बल्कि समकालीन मानवता के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है।

आधुनिक विषय	तारतम वाणी/बीतक से संबंध
Developmental Psychology	चेतना-विकास, जागनी, आत्म-जागृति
Depth Psychology	मन की सवारी, माया, अंतर्दृष्टि
Systems Theory	तारतम्य, जंजीर, समग्रता
Integrative Thinking	भक्ति-ज्ञान-कर्म का समन्वय
Education	खोज, संवाद और अनुभव आधारित शिक्षा
Ethics	प्रेम, सेवा, सत्य और समरसता
Politics	न्याय, स्वराज और धर्माधारित नेतृत्व
Medicine	"सब विध का औषध", मन-चेतना संतुलन
Business	उत्तरदायित्व, संतुलन और लोकहित
Technology	साधन बनाम चेतना का विवेक
Parenting	संस्कार, करुणा और चेतना-विकास

C7.3 आधुनिक बहुविध विषयों के संदर्भ में तारतम वाणी की प्रासंगिकता

यदि तारतम वाणी और बीतक साहित्य का गहन अध्ययन किया जाए, तो स्पष्ट होता है कि यह केवल धार्मिक या भक्तिपरक साहित्य नहीं है, बल्कि मानव जीवन, चेतना और समाज को समग्र रूप से समझने वाली बहुआयामी ज्ञानधारा है। आधुनिक विश्व जिन बहुविध विषयों (multiple disciplines) का अध्ययन कर रहा है—जैसे विकासात्मक मनोविज्ञान, गहन मनोविज्ञान, तंत्र सिद्धांत, समन्वित चिंतन, शिक्षा, नीतिशास्त्र, राजनीति, चिकित्सा, व्यवसाय, प्रौद्योगिकी और अभिभावकत्व—उन सभी से संबंधित गहरे संकेत तारतम वाणी में दिखाई देते हैं।

महामति प्राणनाथ जीवन को अलग-अलग खंडों में नहीं, बल्कि चेतना, समाज, व्यवहार और आध्यात्म के परस्पर जुड़े हुए तंत्र (interconnected system) के रूप में देखते हैं। इसीलिए उनका दृष्टिकोण आधुनिक interdisciplinary और integral thinking के अत्यंत निकट प्रतीत होता है।

C7.4 खोज: चेतना की जीवंत यात्रा

महामति प्राणनाथ की दृष्टि में धर्म जड़ मान्यता नहीं, बल्कि जीवंत खोज है। यह खोज केवल बाहरी तथ्यों की नहीं, बल्कि आत्मा के मूल स्वरूप की खोज है। वे साधक को केवल परंपरा दोहराने के लिए प्रेरित नहीं करते, बल्कि सत्य को अनुभव करने के लिए जागृत करते हैं।

"पहिले आप पहेचानो रे साधो, पहिले आप पहेचानो।
बिना आप चीन्हें पारब्रह्म को, कौन कहे मैं जानो।।"

यहाँ आत्म-पहचान आध्यात्मिक यात्रा का आधार बनती है। बिना आत्म-चेतना के धर्म केवल बाहरी संरचना बनकर रह जाता है। इसलिए तारतम मार्ग में "जागनी" अत्यंत केंद्रीय अवधारणा है—ऐसी जागृति जिसमें आत्मा अपने मूल प्रेम-संबंध को पुनः पहचानने लगती है।

दार्शनिक स्तर पर महामति प्राणनाथ एक त्रिस्तरीय सत्ता-दर्शन प्रस्तुत करते हैं—क्षर (नश्वर जगत), अक्षर (अनश्वर ब्रह्म-बुद्धि) और उत्तम पुरुष या अक्षरातीत परब्रह्म। वे स्पष्ट करते हैं कि न तो केवल मूर्त रूप अंतिम है, न ही केवल निराकार। परम सत्य इन दोनों के पार है—नूरी, चेतन और आनंदस्वरूप। इस प्रकार वे वैदिक अद्वैत, इस्लामी तौहीद और अन्य धार्मिक दृष्टियों के बीच एक गहरी संगति स्थापित करते हैं।

C7.5 विकास की यात्रा: चेतना का क्रमिक विस्तार और जागनी का समग्र मार्ग

मानव जीवन केवल जैविक या सामाजिक विकास की प्रक्रिया नहीं है; यह चेतना के क्रमिक विस्तार की भी यात्रा है। जैसे एक बालक धीरे-धीरे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और बौद्धिक रूप से विकसित होता है, वैसे ही मानव-चेतना भी विभिन्न चरणों से गुजरते हुए परिपक्व होती है। विकासात्मक मनोविज्ञान (Developmental Psychology) जिसे *Stages of Growth* कहता है, तारतम वाणी उसी प्रक्रिया को एक गहरी आध्यात्मिक यात्रा के रूप में देखती है—ऐसी यात्रा जिसमें साधक अहं-केंद्रित चेतना से उठकर समग्र, करुणामय और अंततः अद्वैत प्रेम-बोध तक पहुँचता है।

महामति प्राणनाथ स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य केवल एक बौद्धिक सत्ता नहीं है। उसमें अनेक प्रकार की क्षमताएँ निहित हैं—बौद्धिक, भावनात्मक, नैतिक, सौंदर्यबोधात्मक और आध्यात्मिक। साधना का उद्देश्य इन सभी आयामों को दबाना नहीं, बल्कि उन्हें प्रेम, विवेक और जागृति में समन्वित करना है। यही कारण है कि तारतम मार्ग केवल धार्मिक आचरण या कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं रहता, बल्कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व के रूपांतरण की बात करता है।

यह दृष्टि आधुनिक अवधारणाओं जैसे बहु बौद्धिकता (*Multiple Intelligences)* और न्यूरोप्लास्टिसिटी (*Neuroplasticity)* से भी आश्चर्यजनक रूप से मेल खाती है।

बुद्धिमत्ता केवल IQ या गणितीय क्षमता तक सीमित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग प्रकार की क्षमताएँ और प्रतिभाएँ होती हैं। कोई भाषा में कुशल होता है, कोई संगीत में, कोई तर्क में, कोई संबंधों को समझने में, तो कोई आत्मचिंतन या प्रकृति से जुड़ाव में। वाणी और बीतक में बहु बौद्धिकता के दर्शन होते हैं। इस के अनुसार हर व्यक्ति विभिन्न बुद्धिमत्ताओं का एक अनूठा संयोजन लेकर आता है। इसलिए वास्तविक शिक्षा और विकास का उद्देश्य केवल एक प्रकार की क्षमता को बढ़ाना नहीं, बल्कि व्यक्ति की विविध संभावनाओं को पहचानकर संतुलित रूप से विकसित करना है।

न्यूरोप्लास्टिसिटी का आधुनिक विज्ञान आज यह स्वीकार करता है कि मनुष्य का मस्तिष्क और मन स्थिर नहीं हैं; वे अनुभव, अभ्यास, संबंध, अर्थपूर्ण खोज और चेतन प्रयासों से निरंतर बदलते और विकसित होते रहते हैं, पुराने पैटर्न बदल सकते हैं। तारतम वाणी इसी जीवंत रूपांतरण को आध्यात्मिक भाषा में "जागनी" कहती है। यहाँ साधना का अर्थ केवल बाहरी पूजा नहीं, बल्कि चेतना को विस्मृति से स्मृति, भ्रम से विवेक और माया से प्रेम की ओर ले जाना है।

इसी कारण तारतम वाणी को केवल आध्यात्मिक ग्रंथ के रूप में सीमित नहीं किया जा सकता। चेतना-विकास, व्यक्तित्व-परिवर्तन, भावनात्मक परिपक्वता और आत्म-जागरूकता से जुड़े इसके विचार आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान (developmental psychology), गहन मनोविज्ञान (depth psychology) और चेतना अध्ययन (consciousness studies) से गहरा सामंजस्य रखते हैं।

गहन मनोविज्ञान मनुष्य के मन के केवल बाहरी विचारों या व्यवहार को नहीं, बल्कि उसके भीतर छिपी गहरी परतों को समझने का प्रयास करता है। यह पूछता है: हमारे डर, इच्छाएँ और प्रतिक्रियाएँ कहाँ से आती हैं? हम कभी-कभी अपने ही विरुद्ध क्यों व्यवहार करते हैं? भीतर छिपे दुख, अहंकार, आसक्ति, विरह या प्रेम हमारे जीवन को कैसे प्रभावित करते हैं? मनुष्य के भीतर परिवर्तन कैसे होता है? यह मनुष्य के "भीतर के संसार" की खोज है।

यद्यपि तारतम वाणी आधुनिक मनोविज्ञान की भाषा नहीं बोलती, पर वह मन, माया, अहंकार, विरह, भय, प्रेम, स्मृति, विस्मृति और आत्म-जागरण की जिन सूक्ष्म अवस्थाओं का वर्णन करती है, वे गहन मनोविज्ञान से बहुत निकट जुड़ती हैं।

उदाहरण के लिए:

1. माया और मन की उलझन, जिस में मनुष्य बाहरी संसार में इतना उलझ जाता है कि अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाता है। यह आधुनिक depth psychology के "unconscious conditioning" जैसा है।

2. आत्म-निरीक्षण और भीतर देखना: गहन मनोविज्ञान कहता है कि परिवर्तन भीतर को देखने से शुरू होता है। तारतम वाणी भी यही कहती है: पहले स्वयं को पहचानो। यह गहरा मनोवैज्ञानिक आह्वान है।

3. विरह, प्रेम और आंतरिक रूपांतरण: वाणी में "विरह" केवल भावुकता नहीं है; वह आत्मा की गहरी अधूरी अवस्था का अनुभव है। आधुनिक depth psychology भी मानती है कि भीतर की longing (गहरी तड़प) मनुष्य को रूपांतरित कर सकती है।

4. छाया (Shadow) और दोष-दर्शन: जब साधक अपने दोष, अहंकार और भ्रम को देखना शुरू करता है, तब वास्तविक परिवर्तन शुरू होता है। जैसे - "मैं देख तकसीर अपनी…में बहुत करी दुष्टाई"। यह inward awareness आधुनिक shadow-work जैसा है।

5. जागनी : मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक जागरण: तारतम वाणी की "जागनी" केवल धार्मिक उत्साह नहीं, बल्कि चेतना का गहरा inner awakening है—जहाँ मनुष्य धीरे-धीरे: भय से प्रेम की ओर, अहंकार से समर्पण की ओर, और विस्मृति से आत्म-स्मृति की ओर बढ़ता है।

आयाम	सरल अर्थ	तारतम दृष्टि	जीवन में अभिव्यक्ति
Waking Up	भीतर जागना	निजस्वरूप की पहचान	ध्यान, चितवनी, आत्म-जागृति
Growing Up	चेतना में परिपक्व होना	विवेक और समदृष्टि	विनम्रता, संतुलन, उत्तरदायित्व
Opening Up	हृदय और बुद्धि खोलना	प्रेम, नूर और संवेदनशीलता	करुणा, संवाद, कला और सहानुभूति
Cleaning Up	मन और अहंकार का शोधन	विकारों और भ्रम से मुक्ति	आत्मनिरीक्षण, साधना, सत्यनिष्ठा
Showing Up	प्रेम को जीवन में उतारना	सेवा और लोकमंगल	कर्म, सहयोग, साहस और समर्पण

महामति प्राणनाथ की दृष्टि में मनुष्य कोई स्थिर सत्ता नहीं, बल्कि विकसित होती चेतना है। प्रारंभिक अवस्था में चेतना "मैं" और "मेरा" तक सीमित रहती है। फिर वह परिवार, समाज, राष्ट्र और अंततः विश्वमानवता तथा परमात्मा की ओर विस्तृत होती

है। जागनी इस विकास को दिशा और गहराई प्रदान करती है। इसलिए तारतम दृष्टि में जागनी केवल धार्मिक उत्साह नहीं, बल्कि चेतना का बहुआयामी रूपांतरण है—जहाँ आत्मा खंडित पहचान से उठकर समग्र चेतना की ओर बढ़ती है।

आधुनिक समग्र (Integral) दृष्टि से इस प्रक्रिया को पाँच आयामों में समझा जा सकता है, जो तारतम मार्ग के साथ गहरा सामंजस्य रखते हैं—

इस प्रकार जागनी केवल ध्यान या आंतरिक अनुभूति की अवस्था नहीं है; यह जीवन की पूर्ण साधना है। यह मनुष्य को केवल "अच्छा धार्मिक" नहीं बनाती, बल्कि अधिक जाग्रत, संतुलित, करुणामय और समग्र मनुष्य बनाती है।

तारतम वाणी संकेत करती है कि वास्तविक विकास बाहरी उपलब्धियों से नहीं, बल्कि चेतना की परिपक्वता से मापा जाना चाहिए। यदि ज्ञान अहंकार बढ़ाए, शक्ति विभाजन बढ़ाए, या धर्म कट्टरता उत्पन्न करे, तो विकास अधूरा है। पर जब ज्ञान प्रेम में बदलने लगे, शक्ति सेवा में बदलने लगे और धर्म जागृति में बदलने लगे, तब चेतना का वास्तविक विस्तार आरंभ होता है। यही जागनी का सार है—आत्मा का अपने मूल प्रेम-संबंध की ओर क्रमशः जागना। जागनी केवल ध्यान की अवस्था नहीं, बल्कि जीवन की पूर्ण साधना है।

C7.6 सर्वधर्म समन्वय: विविधता में एकत्व और तारतम्य की समग्र दृष्टि

महामति प्राणनाथ की बहुआयामी प्रतिभा का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण आयाम उनका परम सत्य प्रकाशित तारतम्य-केंद्रित "सर्वधर्म समन्वय" है। वे केवल किसी एक धार्मिक परंपरा के व्याख्याकार नहीं थे, बल्कि विभिन्न धर्मों, शास्त्रों और आध्यात्मिक परंपराओं के अंतर्संबंधों को समझने वाले अद्वितीय चेतना-द्रष्टा थे। उन्होंने वेद, उपनिषद, गीता, भागवत, क़ुरआन, हदीस, तौरात, ज़बूर और बाइबिल जैसे अनेक धर्मग्रंथों के प्रमुख विषयों को तारतम ज्ञान के प्रकाश में देखा और उनका एक विशिष्ट समन्वित अर्थ प्रस्तुत किया। उनकी दृष्टि में विभिन्न धर्म अलग-अलग और परस्पर विरोधी अंतिम सत्य नहीं, बल्कि एक ही परम चेतना के विविध अभिव्यक्त रूप हैं, जिन्हें "तारतम्य" की श्रृंखला में जोड़ा जा सकता है।

इसीलिए वे ज्ञान को "जंजीर" और "मोतियों" के रूपक से समझाते हैं—

"जंजीरा मुसाफ की, मोतियों में पिरोइए जब।
जिनसें जीनस मिलाइए, पाइए मगज माएने तब।।"

यहाँ "मोतियों" का अर्थ विभिन्न धर्म, परंपराएँ, अनुभव और ज्ञान-प्रणालियाँ हैं, जबकि "जंजीर" उस समग्र चेतना का प्रतीक है जो इन सबको जोड़ती है। जब तक मोती अलग-अलग पड़े रहते हैं, वे आंशिक सौंदर्य रखते हैं; पर जब उन्हें एक सूत्र में

पिरोया जाता है, तब उनका वास्तविक अर्थ और सामंजस्य प्रकट होता है। यही "मगज माएने"—अर्थात् गहरा सार—है।

यह दृष्टि आधुनिक systems theory और integrative thinking से भी सामंजस्य रखती है, जहाँ किसी भी सत्य को अलग-थलग इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक बड़े परस्पर जुड़े तंत्र (interconnected whole) के रूप में देखा जाता है। तारतम वाणी में "तारतम्य" इसी समग्र संबंध-बोध का आध्यात्मिक रूप है।

महामति प्राणनाथ का उद्देश्य किसी धर्म को मिटाना या एकरूपता थोपना नहीं था। वे विविधता के विरोधी नहीं, बल्कि विभाजन के विरोधी थे। उनकी दृष्टि में धर्मों की बाहरी भाषाएँ, प्रतीक, विधियाँ और सांस्कृतिक रूप भिन्न हो सकते हैं, परंतु चेतना का मूल स्रोत एक ही है। इसीलिए वे उद्घोष करते हैं—

"एक खसम एक दुनियां, उड़ गई दूजी बात।।"

यहाँ "एक" का अर्थ संकीर्ण एकरूपता नहीं, बल्कि चेतना-आधारित एकत्व है। उनका परम सत्य प्रकाशित सर्वधर्म समन्वय केवल सहिष्णुता (tolerance) तक सीमित नहीं है; वह उससे आगे बढ़कर "चेतना की अंतर्धारा" को पहचानने का प्रयास है। सहिष्णुता में अभी भी "मैं और तुम" का सूक्ष्म भेद रह सकता है, पर तारतम दृष्टि में साधक धीरे-धीरे उस बिंदु तक पहुँचता है जहाँ विविधता विरोध नहीं, बल्कि एक ही सत्य की अनेक अभिव्यक्तियाँ बन जाती है।

महामति प्राणनाथ का यह समन्वय केवल धार्मिक नहीं, बल्कि गहरे स्तर पर बहुविषयी (interdisciplinary) भी है। वे धर्म, दर्शन, भाषा, इतिहास, मनोविज्ञान, समाज और आध्यात्मिक अनुभव को एक-दूसरे से जोड़ते हैं। वे यह संकेत करते हैं कि यदि मनुष्य केवल बाहरी शब्दों, प्रतीकों या सम्प्रदायिक पहचान पर अटक जाए, तो सत्य विभाजित दिखाई देगा; पर यदि वह "दिल दे" कर देखे, तो विभिन्न परंपराओं के भीतर एक ही नूर कार्य करता दिखाई देगा—

"जो देखेगा दिल दे, आयतां जंजीरां मिलाए।
माएने मगज मुसाफ के, होसी नूर रोसन ताए।।"

इस प्रकार महामति प्राणनाथ की दृष्टि आधुनिक वैश्विक युग के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक बन जाती है। वे केवल "सभी धर्म अच्छे हैं" इतना भर नहीं कहते, बल्कि यह सिखाते हैं कि विभिन्न ज्ञान-परंपराओं को किस प्रकार चेतना, प्रेम और विवेक के सूत्र में जोड़कर देखा जाए। यही उनकी बहुआयामी प्रतिभा का एक अनूठा आयाम है—विविधता को मिटाए बिना एकत्व का अनुभव कराना।

C7.7 समाज-दर्शन और समरसता

महामति प्राणनाथ समझते थे कि समाज की मूल समस्या बाहरी संरचनाओं से अधिक चेतना की अपरिपक्वता है। जब मनुष्य जाति, धर्म, पंथ और पहचान के सीमित दायरों में बँध जाता है, तब संघर्ष उत्पन्न होते हैं।

उन्होंने सुंदरसाथ समाज की स्थापना कर प्रेम, समानता और आत्मीयता का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किया। वहाँ विविध जातियों, भाषाओं और समुदायों से आए लोग एक आध्यात्मिक परिवार के रूप में जुड़े।

"छोड़ के बैर मिले सब प्यार सों।।"

उनके अनुसार समाज की वास्तविक नींव प्रेम है। प्रेम ही वह शक्ति है जो विभाजन और अहंकार को गलाती है। इसलिए सेवा उनके यहाँ केवल सामाजिक कार्य नहीं, बल्कि प्रेम की सक्रिय अभिव्यक्ति है। इसी कारण महामति प्राणनाथ का समाज-दर्शन केवल धार्मिक नहीं, बल्कि नैतिक (ethical) और सांस्कृतिक भी है। प्रेम, करुणा, संवाद, सेवा और संस्कार पर उनका बल आधुनिक ethics, value education और parenting studies के लिए भी महत्त्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है।

महामति प्राणनाथ का सामाजिक दृष्टिकोण अत्यंत प्रगतिशील था। उन्होंने जातिवाद, अस्पृश्यता और धार्मिक अहंकार का स्पष्ट विरोध किया। उनके अनुसार बाहरी पहचान नहीं, बल्कि हृदय की निर्मलता निर्णायक है—"तथाकथित चांडाल का हृदय निर्मल है, तो भगवान उसी के साथ खेलते हैं।" उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया और औरंगज़ेब जैसे शासक से भी धार्मिक सहिष्णुता की पैरवी की। यह उस युग में असाधारण साहस का कार्य था।

C7.8 सेवा: प्रेम की सक्रिय अभिव्यक्ति

तारतम दृष्टि में सेवा और पूजा अलग नहीं हैं। पूजा भीतर की भावना है; सेवा उसी भावना की बाहरी अभिव्यक्ति। यदि जीवन का प्रत्येक कर्म प्रेम, जागृति और समर्पण से किया जाए, तो वही सेवा साधना बन जाती है।

"बैठते उठते चलते, सुपन सोवत जागृत।
खाते पीते खेलते, सुख लीजे सब विध इत।।"

यहाँ जीवन का प्रत्येक क्षण साधना बन जाता है। इसलिए सेवा केवल मंदिर या अनुष्ठान तक सीमित नहीं; शिक्षा, संवाद, समाज-सहयोग, पर्यावरण-संरक्षण और पीड़ितों की सहायता भी सेवा के आधुनिक रूप हो सकते हैं।

C7.9 राज्यदर्शन और व्यवहारिक दृष्टि

महामति प्राणनाथ केवल आध्यात्मिक गुरु नहीं थे; वे व्यवहारिक जीवन के भी मार्गदर्शक थे। महाराजा छत्रसाल को उन्होंने आध्यात्मिक ही नहीं, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से भी दिशा दी। उनका राज्यदर्शन न्याय, समरसता और चेतना-आधारित नेतृत्व पर आधारित था।

वे धर्म को पलायन नहीं मानते थे। उनके अनुसार आध्यात्मिकता का उद्देश्य संसार से भागना नहीं, बल्कि उसे चेतना से प्रकाशित करना है।

C7.10 भाषाई बहुमुखी प्रतिभा और सांस्कृतिक सेतु

महामति प्राणनाथ की वाणी की एक बड़ी विशेषता उनकी भाषाई बहुमुखी प्रतिभा है। हिंदी, गुजराती, ब्रज, सिंधी, अरबी और फारसी जैसी भाषाओं में उनके उपदेश मिलते हैं। यह केवल भाषिक कौशल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवेदनशीलता का प्रमाण है। वे जानते थे कि सत्य तब तक जीवित नहीं होता, जब तक वह श्रोता की भाषा और संस्कृति में न उतरे। इस प्रकार तारतम वाणी एक बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक सेतु बन जाती है।

सीमित दृष्टि	**समग्र तारतम दृष्टि**
धर्म बनाम विज्ञान	दोनों का समन्वय
भक्ति बनाम ज्ञान	प्रेममय प्रज्ञा
आत्मा बनाम समाज	चेतना और लोकमंगल
विविधता बनाम एकता	विविधता में एकत्व
बाहरी सुधार	चेतना-विकास
केवल मान्यता	अनुभव और जागृति

C7.11 आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

आज का मनुष्य तकनीकी रूप से जुड़ा हुआ है, पर भीतर से विखंडित। सोशल मीडिया, ध्रुवीकरण, मानसिक तनाव और सूचना-अतिभार आधुनिक माया के नए रूप बन चुके हैं। महामति प्राणनाथ का संदेश आज इसलिए और प्रासंगिक हो जाता है क्योंकि वे स्मरण कराते हैं कि तकनीक उपयोगी साधन हो सकती है, पर चेतना का विकल्प नहीं।

आज जब तकनीक, व्यवसाय, चिकित्सा और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) मानव जीवन को तीव्र गति से प्रभावित कर रहे हैं, तब तारतम दृष्टि संतुलन, विवेक और मानवीय चेतना के महत्त्व को पुनः स्मरण कराती है। यह संकेत देती है कि बाहरी प्रगति तभी कल्याणकारी बनती है जब उसके साथ आंतरिक परिपक्वता, नैतिकता और करुणा का विकास भी जुड़ा हो।

"मन के हारे हारिये, मन के जीते जीत।।"

इसलिए वास्तविक समाधान केवल बाहरी नियंत्रण नहीं, बल्कि चेतना-विकास है—जागरूकता, आत्म-दर्शन, प्रेम और समग्र दृष्टि का विकास।

इस दृष्टि से तारतम वाणी केवल अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि प्रयोग का क्षेत्र भी बनती है। इंटीग्रल तारतम पाठ्यक्रम, माइंडफुलनेस + तारतम आधारित NLP टूलकिट, तथा सामाजिक सद्भाव को मापने के लिए नए सूचकांक—ये सभी आधुनिक समाज में इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग हो सकते हैं।

C7.12 निष्कर्ष

महामति प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव इस बात में निहित है कि उन्होंने जीवन के विभिन्न आयामों—आध्यात्म, दर्शन, समाज, राजनीति, शिक्षा, चेतना और प्रेम—को एक समग्र दृष्टि में जोड़ा। उनका संदेश किसी संकीर्ण सम्प्रदायवाद का नहीं, बल्कि चेतना के विस्तार का संदेश है।

वे हमें स्मरण कराते हैं कि धर्म का अंतिम उद्देश्य विभाजन नहीं, जागृति है; ज्ञान का अंतिम उद्देश्य अहंकार नहीं, प्रज्ञा है; और जीवन का अंतिम लक्ष्य केवल अस्तित्व नहीं, बल्कि प्रेममय चेतना में स्थापित होना है।

अतः महामति प्राणनाथ और तारतम वाणी आज भी मानवता को यही आमंत्रण देते हैं— खंडित दृष्टि से समग्रता की ओर, अहंकार से प्रेम की ओर, विभाजन से एकत्व की ओर, और विस्मृति से परम जागृति की ओर। तारतम दृष्टि में भी जागनी का अर्थ यही है—मनुष्य का धीरे-धीरे सीमित चेतना से उठकर व्यापक, जाग्रत और प्रेममय चेतना की ओर विकसित होना। इसलिए वास्तविक विकास केवल बाहरी उपलब्धियों में नहीं, बल्कि भीतर की परिपक्वता, विवेक, प्रेम और समग्र दृष्टि में निहित है।

इस दृष्टि से तारतम वाणी और बीतक साहित्य केवल भक्ति या सम्प्रदायिक अध्ययन के ग्रंथ नहीं रह जाते, बल्कि चेतना, मनोविज्ञान, समाज, शिक्षा, नैतिकता, नेतृत्व और मानवीय विकास के समग्र अध्ययन के महत्त्वपूर्ण स्रोत बन जाते हैं। महामति प्राणनाथ का बहुविषयी योगदान इसी में निहित है कि उन्होंने जीवन के विविध आयामों को प्रेम, विवेक और जागृति के सूत्र में जोड़ने का प्रयास किया।

*** ---***

समग्र संदर्भ ग्रंथावली एवं स्रोत सूची (भाग 1–5)

1. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री कुलजम स्वरूप - तारतम वाणी (मूल), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
2. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री कुलजम स्वरूप - तारतम वाणी विविध टीकाएं 1994-2025 : धर्मवीर जागनी रत्न जगदीश चंद्र, श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, एवं श्री कृष्णदास शर्मा, धर्मगुरु पन्ना एवं विद्वत मण्डल 1994, श्री निजानंद जागनी अभियान, श्री सुशांत महात्मा एवं नरेंद्र पटेल, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान; श्री राजन स्वामी, श्री प्राणनाथ ज्ञान केंद्र; श्री 5 नवतनपुरी धाम एवं श्री 5 पद्मावतीपुरी धाम, पन्ना
3. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री बीतक साहेब (मूल), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा, 1659-1692
4. महामति प्राणनाथ प्रणीत, श्री बीतक साहेब (टीकाकार, सुशांत महात्मा 2023, नरेंद्र पटेल 2007), श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान एवं श्री निजानंद आश्रम, रतनपुरी एवं वडोदरा
5. पटेल, नरेंद्र एवं रमेश, "दिव्य प्रेम पत्र" – श्री प्राणनाथ तारतम वाणी परिचय, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2023
6. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, वेद और स्वसम वेद, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
7. बाजपेयी, बुद्धिप्रकाश, गीता तारतम्य दर्शन, श्री प्राणनाथ वैश्विक चेतना अभियान, 2024
8. Bajpai Acharya Buddhi Prakash and Narendra Patel, Tartam Ka Tartam: The essence of the most esoteric spiritual wisdom 2024
9. कुंज बिहारी सिंह कुशवंशी, भाषा विज्ञान: लिपि, भाषा और वाणी 2023
10. पंडित व्रजवासी लाल दुबे, महामति प्राणनाथ: जीवन, दर्शन और साहित्य 2019
11. कुञ्ज बिहारी सिंह, एम.ए., धर्मभूषण – इतिहासकार एवं धर्मविद्। युगप्रवर्तक महाराजा छत्रसाल। प्रकाशक: संत शिरोमणि श्रीपाद श्री सदानंद जी महाराज, श्रीकृष्ण प्रणामी जनकल्याण समिति, रोहिणी, दिल्ली – 110085
12. आचार्य बुद्धिप्रकाश बाजपेयी, 1998, स्वामी श्री व्रजभूषण कृत वृतांत मुक्तावली की टीका, श्री कृष्ण प्रनामी जनकल्याण आश्रम ट्रस्ट, भिवानी
13. परमहंस श्री कृष्णप्रियाचार्य जी, श्री भद्रावतीपुरी धाम, श्री विसराई मुकुर संवत 2030
14. विमला मेहता। शौर्यपुंज छत्रसाल (2012)। प्रकाशक: श्री प्राणनाथ मिशन
15. रणजीत साहा, श्री प्राणनाथ बानी विमर्श 2023
16. जागनी पत्रिकाएं (विविध), श्री प्राणनाथ मिशन, दिल्ली
17. डॉ. बहादुर सिंह परमार – प्रभारी प्राचार्य, शासकीय नवीन महाविद्यालय, राजनगर, जिला छतरपुर (म.प्र.)। शोध-पत्र: छत्रसाल दर्पण
18. डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह, पीएच.डी. – देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय। संपादक: Contemporary Historical Documents and Chhatrasal (ऐतिहासिक प्रमाणावली एवं छत्रसाल)
19. भगवान दास गुप्ता। Life and Times of Maharaja Chhatrasal Bundela (1980)

20. पोगसन, डब्ल्यू. आर. History of the Bundelas
21. लाल कवि, संपादक: डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह, पीएच.डी., देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय। छत्रप्रकाश। प्रकाशक: श्रीपटल प्रकाशन, नई दिल्ली – 48
22. डॉ. शिव मंगल राम। स्वामी लालदास कृत महामति प्राणनाथ बीतक का मध्यकालीन भारतीय इतिहास को योगदान
23. रूपराज शर्मा, इन्दौर। बुन्देलकेशरी महाराजा छत्रसाल और उनका पन्ना राज्य
24. गुलशन राय भगत, प्रणामी दर्शन, युगपुरुष महाराजा छत्रसाल (1996)। प्रकाशक: श्रीकृष्ण प्रणामी सभा, दिल्ली – 6
25. साहित्य अकादमी / मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, भोपाल। साक्षात्कार, अंक 444 (दिसम्बर 2016) – महाराजा छत्रसाल।
26. स्मारिका: छत्रसाल दर्पण (विभिन्न वर्षों के अंक)
27. विलबर, केन, फ़ाइंडिंग रैडिकल होलनेस, शम्भला पब्लिकेशन्स, इंक., 2024
28. विलबर, केन, रीलिजन ऑफ टुमोरो, शम्भला पब्लिकेशन्स, इंक., 2017
29. AI applications, used to assist in editing, idea generation and in improving linguistic clarity. All interpretations and conclusions are solely the authors' responsibility.

Multi-media Products Available

Based on Mahamati Prannath Tartam Vani and Beetak

By Shri Prannath Global Consciousness Mission:

PRANNATH TV Serial on

YouTube: Prannath Multimedia

CHHATRASAL web series on

MX Player, Shemaroo, YouTube

NIJA-ANANDI Animation series on

YouTube Kids

Coming Soon:

MAHAMATI web series

।। सदा आनंद मंगल में रहिए ।।

विषय-सूची

आत्मनिवेदन

भूमिका

प्रथम भाग

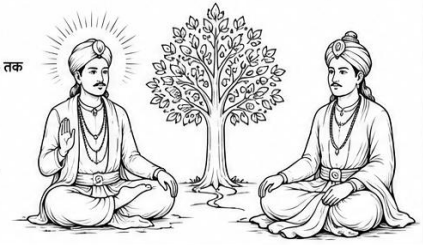

- अध्याय: 1 • श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन और भारतीय धर्म-परंपरा
- अध्याय: 2 • अवतार-परंपरा और धर्म-स्थापना की अखंड धारा: देवाापि-मरू से देवचन्द्र मिहिरराज तक
- अध्याय: 3 • श्री निजानन्द सतगुरू धणी श्री देवचन्द्रजी का जीवन-दर्शन
- अध्याय: 4 • महामति प्राणनाथ: जीवन आत्म-जागरण यात्रा
- अध्याय: 5 • महामति प्राणनाथ: शिक्षा, प्रशासन और संवाद-आधारित राज्यदर्शन
- अध्याय: 6 • महाराजा छत्रसाल बुंदेला का जीवन-दर्शन: स्वराज, संघर्ष और आध्यात्मिक मूल्य
- अध्याय: 7 • महामति प्राणनाथ की तारतम वाणी: संक्षिप्त परिचय
- अध्याय: 8 • बीतक परंपरा का संक्षिप्त परिचय

द्वितीय भाग

- अध्याय: 9 परमात्मा की अवधारणा: क्षर, अक्षर, अक्षरातीत स्वलीलाद्वैत
- अध्याय: 10 आत्मा की अवधारणा: चेतना की त्रिस्तरीय संरचना और गतियाँ
- अध्याय: 11 माया की अवधारणा: आध्यात्मिक यात्रा का केन्द्रीय रहस्य
- अध्याय: 12 परमधाम की अवधारणा
- अध्याय: 13 मोक्ष और मुक्ति का समग्र स्वरूप और मोक्षा प्राप्ति के साधन

तृतीय भाग

- अध्याय: 14 निजानंद - प्रणामी ज्ञान धारा की नैतिक अवधारणाएँ
- अध्याय: 15 महामति प्राणनाथ का समाजदर्शन: समरसता, चेतना और सार्वभौमिक मानवता की ओर
- अध्याय: 16 "सर्वधर्म समन्वय" से "सर्वजीवन समन्वय" की ओर

चतुर्थ भाग

- अध्याय: 17 निजानंद - प्रणामी सम्प्रदाय की धार्मिक अवधारणाएँ: भक्ति, सेवा, जागनी और तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म समन्वय का समग्र विवेचन
- अध्याय: 18 सुन्दरसाथ की अवधारणा: ब्रह्मसृष्टि जीवन, प्रेम, जागृति और धामभाव की संस्कृति

पंचम भाग: MCBU द्वारा आयोजित कुलपतियों के सम्मेलन (Vice Chancellors' Conclave- अगस्त 2025) में प्रस्तुत शोध-पत्र

शोध पत्र 1: शिक्षा का स्वरूप: जीवनपरक समन्वित दृष्टिकोण

शोध पत्र 2: खोज क्या है? श्रीमद् तारतम वाणी की खोज:

शोध पत्र 3: डिजिटल युग में मन की सवारी के लिए प्रभावी उपाय -तारतम ज्ञान, भौतिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान के आलोकमें

शोध पत्र 4: प्रकृति और परम: महामति प्राणनाथ की तारतम दृष्टि में समग्र चेतना की भूमिका

शोध पत्र 5: विभाजन से एकत्व की ओर: नस्लवाद, मानव चेतना का विकास और समग्रता की क्रांति

शोध पत्र 6: कर्तव्य, बलिदान और समर्पण — राष्ट्र जागरण के त्रिदीप: श्री निजानंद - प्रणामी दर्शन एवं इतिहास के समग्र दृष्टिकोण से महामति प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव

शोध पत्र 7: प्राणनाथ का बहुविषयी प्रभाव: आध्यात्म, समाज और दर्शन का समन्वित ताना-बाना

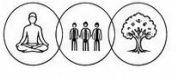

श्री निजानन्द - प्रणामी दर्शन और भारतीय धर्म-परंपरा

एक समन्वित दृष्टि – सत्य, प्रेम, एकता और आत्मज्ञान की अखंड यात्रा

1.1 भारतभूमि: चेतना, ज्ञान और जीवन-दृष्टि की भूमि

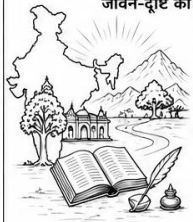

- यह भूमि ज्ञान, करुणा और चेतना के विकास की जीवंत प्रयोगशाला है।
- वेद, उपनिषद, दर्शन, योग, आयुर्वेद, खगोलशास्त्र, गणित आदि विद्याओं की भूमि।
- इतिहास केवल घटनाओं का क्रम नहीं, मानव चेतना के उत्कर्ष की कथा है।
- मनुष्य को केवल जीवित रहने का नहीं, सार्थक रूप से जीने का बोध कराने वाली चेतनात्मक भूमि।

1.2 धर्म की भारतीय अवधारणा: आत्म-जागरण और सामाजिक उत्तरदायित्व

- धर्म केवल आस्था या कर्मकांड नहीं, मानवता का मूल स्वभाव है – सत्य, प्रेम, एकता और आत्मज्ञान।
- बुद्ध और महावीर ने करुणा, अहिंसा और आत्म-जागरण को जीवन का केंद्र बनाया।
- आध्यात्मिक साधना और सामाजिक उत्तरदायित्व एक-दूसरे के पूरक हैं।
- व्यक्ति की आंतरिक चेतना के साथ समाज के नैतिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की दिशा।

1.3 महामति प्राणनाथ का समन्वयकारी दर्शन

- धर्म सत्ता, पहचान या कर्मकांड का उपकरण बन गया है।
- धर्म को भय, विभाजन और बाह्य आडंबर से मुक्त कर मानवता, विवेक और समरसता से जोड़ते हैं।
- सत्य, प्रेम, एकता और करुणा पर आधारित समन्वित दृष्टि।

1.4 भारतीय ग्रंथ-परंपरा और भारतभूमि की चेतनात्मक महिमा

स्कन्द पुराण	→ कर्म और मोक्ष की पुण्यभूमि
महाभारत	→ तीनों लोकों में श्रेष्ठ
विष्णु पुराण	→ धर्म और तप की अद्वितीय भूमि
पद्म पुराण	→ धर्म, तीर्थ और तप की महान भूमि
भागवत पुराण	→ देवता भी भारत में जन्म की आकांक्षा रखते हैं

महामति प्राणनाथ जी ने भारत को पृथ्वी का "सबसे उत्तम खंड" कहा – आत्मिक शुद्धि और ब्रह्मज्ञान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त भूमि।

1.5 तारतम ज्ञान और भारतभूमि की आध्यात्मिक भूमिका

- तारतम ज्ञान – मनुष्य को भ्रम से जगाकर शुद्ध, प्रेममयी और अखंड चेतना में प्रतिष्ठित करना।
- भारतभूमि "निज निरमल" की भूमि – जहाँ परब्रह्म की ब्रह्म-लीला मानवता के कल्याण हेतु प्रकट होती है।
- करुणा, विवेक और आध्यात्मिक चेतना से मानव बुद्धि निष्कलंक बनने में सक्षम होती है।

1.6 भारतीय ज्ञान-परंपरा और आधुनिक विद्वानों की दृष्टि

- पश्चिमी विद्वानों ने भारतीय दर्शन को मानव चेतना की सर्वोच्च उपलब्धि माना।
- तारतम वाणी – भारतीय ज्ञान-परंपरा के शिखर पर स्थित समन्वयकारी दृष्टि।
- विविध धर्मों और दर्शनों के सत्यांशों को एक व्यापक चेतनात्मक ढाँचे में संयोजित करती है।

1.7 सत्रहवीं शताब्दी का संकट और महामति प्राणनाथ का अवतरण

- ऐसे समय में प्रेम, एकता और चेतना के मार्ग के दृष्टा का अवतरण।
- वेद, उपनिषद, पुराण, भागवत, गीता, कुरान आदि का सार आत्मसात।
- "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "खसम एक सबन का" – जीवन जीने की पद्धति।
- साधना और सामाजिक उत्तरदायित्व – एक ही मार्ग के दो आयाम।

1.8 धर्मों की भीतरी एकता और समकालीन प्रासंगिकता

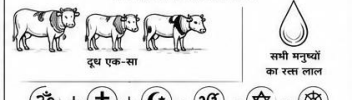

ॐ + ✝ + ☪ - ☬ - ✡ - ☸

- सभी धर्मों का सार – एक ही परमात्मा की अनुभूति।
- तारतम ज्ञान – विभिन्न अनुभूतियों को जोड़ने वाला समन्वय-सूत्र।
- निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचन्द्र जी को प्राप्त बीज-रूप ज्ञान को महामति प्राणनाथ ने "तारतम वाणी" के रूप में विकसित किया।
- साधना – देह के भीतर सत्य, प्रेम और करुणा के अवतरण की प्रक्रिया।
- कर्तव्य, त्याग और समर्पण – प्रत्यक्ष आचरण।

अवतार–परंपरा की अखंड धारा

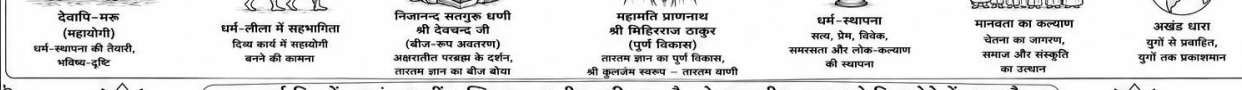

धर्म नियमों का संग्रह नहीं, बल्कि जाग्रत जीवन की कला है, जो आज भी मानवता को दिशा देने में सक्षम है।

सत्य | प्रेम | एकता | आत्मज्ञान | करुणा | समन्वय | अखंड धारा

अवतार–परंपरा और धर्म–स्थापना की अखंड धारा: देवापि–मरू से देवचन्द्र–मिहिरराज तक

2.1 भारतीय इतिहास–दृष्टि: चेतना का प्रवाह, घटनाओं का नहीं

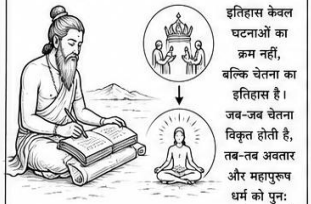

इतिहास केवल घटनाओं का क्रम नहीं, बल्कि चेतना का इतिहास है। जब-जब चेतना विकृत होती है, तब-तब अवतार और महापुरूष धर्म को पुनः स्थापित करते हैं।

2.2 श्रीमद्भागवत का संकेत: देवापि और मरू

- देवापि (चंद्रवंशीय) और मरू (सूर्यवंशीय) महायोगी हिमालय में समाधिस्थ हैं।
- कलियुग के उत्तरार्ध में धर्म की पुनर्स्थापना हेतु दिव्य चेतना के अवतरण का ज्ञान रखते हैं।
- यह भविष्यवाणी नहीं, चेतना की तैयारी है।

2.3 धर्म-लीला में सहभागिता: महायोगियों की भूमिका

- देवापि और मरू केवल दर्शन नहीं करना चाहते, वे धर्म-स्थापना की दिव्य लीला में सहभागी होना चाहते हैं।
- धर्म-स्थापना सामूहिक चेतनात्मक प्रक्रिया है।
- दिव्य कृपा और मानवीय साधना मिलकर कार्य करती है।

2.4 बीतक साहित्य और अवतार–परंपरा की निरंतरता

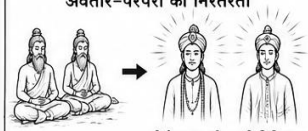

- वही देवापि और मरू कालांतर में श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज (प्राणनाथ) के रूप में प्रकट हुए।
- दिव्यता समय-समय पर मानव रूप में विभिन्न स्तरों पर अभिव्यक्त होती है।

2.5 निजानन्द सतगुरु श्री देवचन्द्र जी: बीज–रूप अवतरण

- अक्षरातीत परब्रह्म के दिव्य दर्शन प्राप्त हुए।
- तारतम ब्रह्मज्ञान का बीज मानवता के लिए प्रकट हुआ।
- उनका कार्य उस भूमि की तैयारी था, जिसमें चेतना का बीज बोया गया।

2.6 महामति प्राणनाथ: बीज का पूर्ण विकास

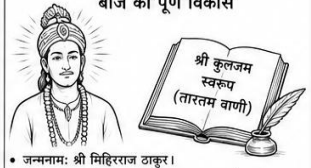

- जन्मनाम: श्री मिहिरराज ठाकुर।
- सतगुरु कृपा से हृदय धाम में परब्रह्म का आवेश हुआ।
- बीज-रूप ज्ञान का पूर्ण विकास कर समाज में प्रतिष्ठित किया।
- दर्शन, करूणा, विवेक और समन्वय का अर्द्वतीय संगम।
- तारतम वाणी – चेतनात्मक अवतरण का दार्शनिक प्रकाश।

2.7 धर्म-स्थापना का तात्पर्य: सत्ता नहीं, चेतना

- धर्म पंथ की विजय नहीं, चेतना का जागरण है।
- बुद्धि को भ्रम से मुक्त करना, आत्मा को सत्य से जोड़ना, समाज में समरसता लाना – यही धर्म है।
- जब धर्म सत्ता का साधन बनता है, तब पतन आरंभ होता है।

2.8 निष्कर्ष: अवतार–परंपरा एक सतत चेतना–यात्रा

- देवापि–मरू से देवचन्द्र–मिहिरराज तक धर्म–स्थापना की अखंड धारा प्रवाहित है।
- योग, करूणा, विवेक और लोक–मंगल युगों तक चलते रहते हैं।
- श्री निजानन्द्र – प्राणामी परंपरा इसी चेतना–धारा का प्रतिनिधित्व करती है।

अखंड धारा – धर्म-स्थापना का सार

धर्म नियमों का संग्रह नहीं, बल्कि जाग्रत जीवन की कला है, जो आज भी मानवता को दिशा देने में सक्षम है।

धर्म की स्थापना बाहर नहीं, भीतर से होती है – चेतना के जागरण से ही सत्य, प्रेम और समरसता का युग प्रारंभ होता है।

श्री निजानन्द सतगुरु धणी श्री देवचन्द्रजी का जीवन-दर्शन

जिज्ञासा से ब्रह्मज्ञान तक – प्रेम, साधना और समन्वित दृष्टि की दिव्य यात्रा

3.1 जन्म, बाल्यकाल और परब्रह्म-खोज की प्रारम्भिक साधना

- जन्म: 1581 ई. (वि. सं. 1638) उमरकोट (मारवाड़)
- माता कुंवरबाई, पिता मतु मेहता धर्मनिष्ठ वैष्णव, समृद्ध व्यापारी
- अंतर्मुखी, चिंतनशील, जिज्ञासु, दृढ़संकल्पी
- पिंगल श्याम मंदिर में प्रातः 3 से 6 बजे तक परिक्रमा, भजन, प्रसाद, चिंतन
- 4 वर्षों की साधना, पर आवेश्यान तृप्ति नहीं मिली

परिक्रमा, भजन और चिंतन से परब्रह्म की खोज का प्रारम्भ—पर अभी भी धाम-संबंध की प्यास शेष रही।

3.2 ब्रह्म-जिज्ञासा का उदय और सद्गुरु–सत्यज्ञान की खोज

- संतों-विद्वानों से पुछताछ, पर संतोष न मिला
- भुज में गुरू श्री हरिदासजी के सान्निध्य में रहे
- भवित से अंधिक सत्य-ज्ञान की आवश्यक्ता का बोध
- सदगुरु और सत्यज्ञान की खोज का संकल्प

सच्चे सदगुरु और सत्यज्ञान की **आवश्यकता** का बोध हुआ।

3.3 गृह-त्याग: प्रथम दर्शन

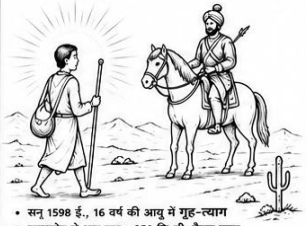

- सन् 1598 ई., 16 वर्ष की आयु में गृह-त्याग
- उमरकोट से भुज तक ~250 कि.मी. पैदल यात्रा
- पठान सिपाही रूप में प्रथम दिव्य दर्शन
- पहचान न सके, पर बोध हुआ— परमात्मा पल भर भी दूर नहीं

दिव्य स्वरूप की झलक से धाम-संम्बंध का गहरा बोध जागा।

3.4 ब्रह्मज्ञान की खोज: विविध साधना-पथों का अनुशीलन

मूर्ति-पूजा और भक्ति | हठयोग व दत्तात्रेय संम्प्रदाय-योग | अष्टांग योग की साधना | पुष्टि-मार्गीय भक्ति 1600–1606 | श्रीमद्भागवत कथा श्रवण 14 वर्ष 1607–1621

सन् 1621 – तारतम ज्ञान की प्राप्ति
शुद्ध प्रेम – निजानन्द योग की सिद्धि

समन्वित दृष्टि: भारतीय और अब्राह्मिक परंपराओं का अध्ययन कर सत्य के अनेक आयामों का बोध।

3.5 मूर्ति-पूजा से ब्रह्मज्ञान की ओर

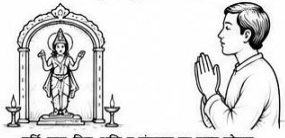

- मूर्ति-पूजा चित-शुद्धि व संस्कार का प्रथम सोपान
- मूल लक्ष्य: आत्मा-परमात्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान
- बाह्य कर्मकांड से आगे बढ़कर शुद्ध ब्रह्मज्ञान की खोज
- रूप-काल से परे परमेश्वर के निरपेक्ष साक्षात्कार को ही अंतिम लक्ष्य माना

भक्ति साधना का आधार है, पर अंतिम लक्ष्य नहीं; ब्रह्मज्ञान ही जीवन का परम **प्रयोजन** है।

3.6 सन्यासी परंपराएँ और प्रत्यक्ष ब्रह्मबोध

- दीक्षा, नाम-स्मरण, ध्यान, दत्तात्रेय परंपरा का अनुसरण
- केवल विधि व प्रतीक से प्रत्यक्ष ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं
- हृदयस्स ज्योति का अनुभव, पर मूल प्रश्न शेष
- ब्रह्म-माया संबंध, सत्य-असत्य द्वंद्व की व्याख्याएँ संतोषजनक नहीं

प्रत्यक्ष ब्रह्मबोध के विना **मुक्ति** अधूरी— खोज जारी रही।

3.7 अष्टांग योग से आगे की खोज

- अष्टांग योग के सभी अंगों का अभ्यास
- कैवल्य-मुक्ति, ज्योति-दर्शन, आत्मसाक्षात्कार का अनुभव
- प्रश्न: यदि मुक्ति ही अंतिम लक्ष्य है तो सृष्टि व प्रेम का प्रयोजन क्या?
- कैवल्य शांति देता है, पर पूर्ण तृप्ति नहीं
- सम्बंध और प्रेम की खोज— **भक्ति** के पूर्ण अविव्यक्ति मार्ग की तलाश

कैवल्य से आगे बढ़कर प्रेम और **भक्ति** की पूर्णता की खोज।

3.8 सिद्धियों: साधना का उपफल, लक्ष्य नहीं

- सिद्धियाँ साधना के उपफल हैं, लक्ष्य नहीं
- ये अहंकार या आकर्ष्ण बढ़ा सकती हैं
- लक्ष्य: प्रेम, **भक्ति, धाम-संबंध** और परम सत्य की प्राति
- सिद्धि से नहीं, सिद्धि भाव से सिद्धि होती है।

देवचन्द्रजी की यात्रा का सार

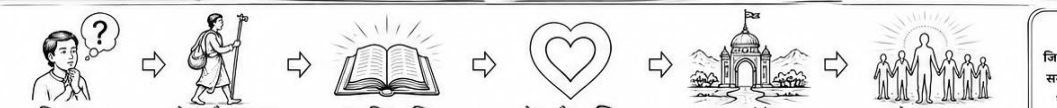

मुख्य बोध

जिज्ञासा से प्रारम्भ हुई यात्रा समन्वित दृष्टि, **भक्ति** और धाम-संबंध से होकर **अखंड** प्रेम-धाम में पूर्ण होती है।

जीवन का परम लक्ष्य – धाम-संम्बंध की प्राप्ति, प्रेम की पराकाष्ठा और अखंड आनंद की अनुभूति।
यही श्री देवचन्द्रजी की साधना, यही उनका संदेश, यही हमारा पथ।

महामति प्राणनाथ: जीवन आत्म-जागरण यात्रा

भाग - 1

ॐ

एक बालक की सत्य-खोज से सतगुरू-कृपा तक – आत्म-जागरण की अमर यात्रा

4.1 प्रस्तावना: जीवन से दर्शन की ओर

- प्रत्येक उच्चतर अवस्था तक पहुँचने के लिए सीमित सोच, जड़ विश्वास और अहंकार के मरण से होकर गुजरना पड़ता है।
- धर्म केवल ग्रंथों में नहीं, जीवन में उतरकर समाज, राज्य और मानव-चेतना को दिशा देता है।
- सच्चा धर्म – प्रेम, विवेक और करूणा का मार्ग है।
- परब्रह्म की आज्ञा और आवेश से अवतरित श्री कुलजम स्वरूप – तारतम वाणी (18,758 चौपाइयाँ) विश्व का अनूठा महाग्रंथ है।
- उद्देश्य – मनुष्य के भीतरी संसार में सुख और शीतलता की स्थापना द्वारा विश्व में सुख-शांति।

4.2 बाल्यकाल और आध्यात्मिक संस्कार

- जन्म-नाम: मिहिरराज ठक्कर (मेहराज ठाकुर)
- जन्म: 7 अक्टूबर 1618 ई. (विक्रम संवत 1675) जामनगर (हल्लार देश), गुजरात
- पिता: श्री केशव राय ठाकुर (जामनगर राज्य के दीवान)
- माता: धनबाई (धर्मनिष्ठ वैष्णव)
- पाँच पुत्रों में मँझले
- स्वभाव: अंतर्मुखी, जिज्ञासु, गंभीर और आत्म-तत्व की खोज में प्रवृत्त बालक।

सच्चा धर्म बाहरी पहचान नहीं, भीतर की जागृति है।
यही संस्कार आगे चलकर उनके जीवन-दर्शन की नींव बने।

4.3 निजानन्द सतगुरू की ओर आकर्षण

पद्माजी ने सतगुरु श्री देवचन्द्र जी की लीलाएँ सुनाई।

गोवर्धन ठाकुर सतगुरू के दर्शन को गए।

सत्य-खोज की तीव्र तड़प ने बालक मिहिरराज के हृदय में सतगुरू-दर्शन की तीव्र आकांक्षा जगा दी।

4.4 सतगुरु-मिलन: आत्म-जागरण का निर्णायक क्षण – तारतम दीक्षा

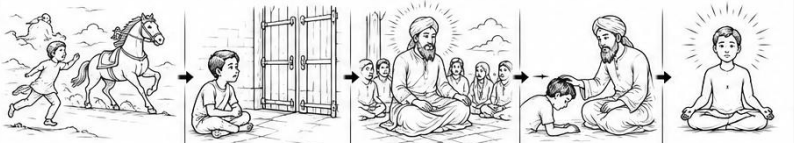

1630 ई. (वि.सं. 1687), आयु मात्र 12 वर्ष 2 माह 4 दिन – मिहिरराज का अचल विश्वास: "सतगुरू मेरे शरणागत की सहायता अवश्य करेंगे।"

श्राता ने रोका, पर बालक घोड़े के पीछे दौड़ते हुए सत्संग स्थल पहुँचे और बंद द्वार पर बैठकर करूण रूदन किया।

बाल-हृदय की पुकार सतगुरू श्री देवचन्द्रजी तक पहुँची। करूणा से उन्होंने मिहिरराज को भीतर बुलवाया।

सतगुरू ने मस्तक स्पर्श कर 'इंद्रावती' की पहचान कराई और तारतम ज्ञान की दीक्षा प्रदान की।

इन दीक्षा के बाद ब्रह्मचिंता, सेवा, साधना और अर्पण को निश्चयी करने का व्यवहार और लोक-कल्याणकारी है। – यहाँ सामने सिलन का जन्म होता है।

यह दिव्य साक्षात्कार जीवन की दिशा और उद्देश्य को निशित्त करने वाला निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ।

4.5 सेवा, संघर्ष और आस्था की परीक्षा: विदेश-यात्रा से कारावास तक

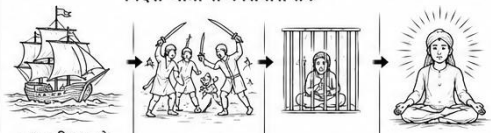

सतगुरु की आज्ञा से विदेश-यात्राएँ – संदेश का प्रसार, सेवा और सत्य-स्थापना

विरोध, षड्यंत्र और अत्याचारों का साहसपूर्वक सामना

कारावास और कष्ट की स्थितियाँ

अटूट आस्था, धैर्य, करूणा और दिव्य साधना में स्थिरता

इन परीक्षाओं ने उनके व्यक्तित्व को और अधिक तेजस्वी, विराट और लोक-कल्याणकारी बनाया।

इस भाग के मुख्य संदेश

जिज्ञासा से जागरण
सत्य की प्यास ही आत्म-जागरण की पहली सीढ़ी है।

सतगुरू-कृपा सर्वोपरि
निष्कपट पुकार पर गुरू-कृपा आत्मा को परमधाम से जोड़ देती है।

तारतम ज्ञान का प्रकाश
ज्ञान, सेवा और साधना से जीवन का लक्ष्य और दिशा स्पष्ट होती है।

हर कष्ट बना तप
संघर्ष, कष्ट और कारावास भी महापुरुष के निर्माण के साधन बनते हैं।

धर्म का सार – प्रेम और एकता
सभी मानवता का परमात्मा एक है और सभी धर्मों के मुल में एक ही सत्य विद्यमान है।

हर आंतरिक मरण के बाद एक अधिक परिपक्व, संवेदनशील और जागरूक मानव का जन्म होता है। यही सच्चा विकास है।

श्री रास ग्रंथ: प्रेम-रस दर्शन

1

प्रेम प्राय: भावनात्मक आकर्षण, संबंध या अनुभव तक सीमित समझा जाता है। पर भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में प्रेम जीवन का अंतिम सत्य माना गया है—ऐसा प्रेम जो न स्वार्थ से जन्म लेता है, न भय से समाप्त होता है। श्री रास ग्रंथ इसी सत्य को उद्घटित करता है। यह ग्रंथ हमें बताता है कि प्रेम केवल मनोभाव नहीं, बल्कि आत्मा और परब्रह्म के बीच का शाश्वत संबंध है।

2

संस्कृत सूत्र कहता है— "रसाणां समूह: रास:" अर्थात, रसों का निरंतर बहाव ही रास है। यहाँ रास किसी नृत्य-उत्सव या सांस्कृतिक आयोजन का नाम नहीं है। रास वह दिव्य चेतन अवस्था है, जहाँ आत्मा और परब्रह्म के बीच शुद्ध, नि:स्वार्थ और पूर्ण प्रेम का अनुभव होता है। परब्रह्म स्वयं रस-राज हैं—आनंद-रस की मूर्ति। परब्रह्म और आत्मा का जीवंत प्रेम, आज भी हर जाग्रत आत्मा के लिए उपलब्ध है। जैसे संगीत में स्वर, ताल और लय मिलकर रस उत्पन्न करते हैं, वैसे ही रासलीला आत्मा को निजधाम के आनंद के चरम का एक हल्का सा अनुभव कराती है।

3

जब ब्रजमंडल की गोपिकाओं के मन में 11 साल की प्रेम लीला के पश्चात थोड़ा सा द्वैत (मैं पने) का भाव आ गया, तब परब्रह्म उन को और सारी मानवता को यह स्मरण कराने के लिए रासलीला का प्रकाश करते हैं कि जीवन का मूल सत्य प्रेम है। परमधाम स्वयं तो प्रेम-रस से परिपूर्ण है, पर माया-जगत में रहने वाली आत्माएँ उस दिव्य प्रेम को भूल चुकी थीं। इसलिए परब्रह्म ने श्रीकृष्ण के रूप में वृन्दावन में रासलीला प्रगट की, ताकि आत्माएँ यह समझ सकें कि—प्रेम देह का विषय नहीं है, वासलक और परब्रह्म का संबंध है, और यह प्रेम परमधाम में सदा विद्यमान रहता है। दिव्य योगमाया में रास मण्डल रच कर परब्रह्म ने परमधाम की लीलाओं की झलक दिखाई। रासलीला की गोपियाँ कोई साधारण स्त्रियां नहीं थीं, बल्कि अर्ध जाग्रत ब्रह्मात्माएँ थीं, जो उस प्रेम-सत्य को अनुभव कर रही थीं। महामति को इस लीला के साक्षात दर्शन ही नहीं हुए, उन्होंने स्वयं अपने आप को इस में खेलते हुए देखा और श्री राज जी के आवेश बल से हमारे लिए प्रगट भी किया।

4

परमधाम में परब्रह्म का एकमात्र "कार्य" यही है—आत्माओं को नए-नए प्रेमपूर्ण आनंद देना। जैसे माता-पिता बच्चों की खुशी में ही आनंद पाते हैं, वैसे ही परब्रह्म की प्रसन्नता आत्माओं के आनंद में है। परमधाम में आनंद के दो स्तर हैं—

एकात्मिक मिलन का आनंद
आत्मा और परब्रह्म के बीच का निजी प्रेम

और सामूहिक लीला का आनंद
अनेक आत्माओं के साथ प्रेमपूर्ण खेल और रस।

ठीक उसी दो प्रकार से रासलीला भी हुई। एक कृष्ण हजारों गोपी रूप आत्माओं के साथ खेले और बाद में एक एक गोपी एक कान्हा की पूर्ण, निजी और एकात्मिक आनंद लीला हुई, जिसे महारास भी कहा गया।

इस सत्य को वाणी कहती है— "प्रति सखी प्रति श्याम" अर्थात, हर आत्मा के लिए परब्रह्म स्वयं उपस्थित थे।

5

शास्त्र कहते हैं, यह लीला ब्रह्माजी की एक रात्रि के समान काल में घटित हुई। इसे साधारण बुद्धि से समझना कठिन है। हम इसे केवल प्रतीकों से समझ सकते है—जैसे सागर की एक बूंद देखकर पूरे सागर की गहराई का अनुमान लगाया जाता है।

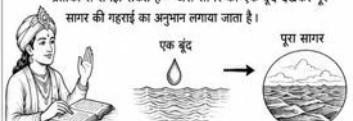

रास ग्रंथ में समझाया है कि ज्ञान-रस और प्रेम-रस में अंतर होता है। माया-जगत और अक्षर ब्रह्म के लोकों में ज्ञान-रस का विस्तार होता है—जानना, समझना, विवेचना करना। पर परमधाम में चेतना प्रेम-रस में डूबी रहती है। वहाँ आत्माएँ ज्ञान इकट्ठा नहीं करतीं, बल्कि प्रेम में जीती हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ज्ञान अंतिम लक्ष्य नहीं, बल्कि प्रेम की ओर ले जाने वाला साधन है।

6

विरह से प्रेम की गहराई बढ़ती है। श्री प्राणनाथ जी के जीवन में विरह एक केंद्रीय अनुभव है। श्यामाजी के श्रृंगार-दर्शन के बाद उनके भीतर गहरा विरह जागा—"दुखं ते विरहा उपजे, विरहा से प्रेम इशक:" फिर श्री राज जी एवं श्री सुन्दरसाथ ब्रह्मात्माओं के श्रृंगार दर्शन भी किए। इससे स्पष्ट होता है कि—विरह प्रेम को कमजोर नहीं करता, बल्कि प्रेम को और गहरा, परिपक्व और शुद्ध बनाता है।

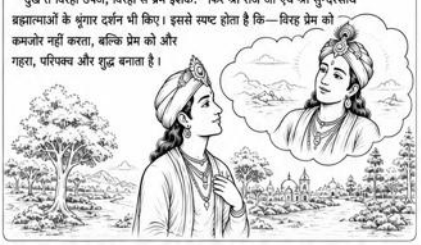

7

श्री रास ग्रंथ अनन्य प्रेम-भक्ति का ग्रंथ है। यह आत्मा को सिखाता है कि—

परब्रह्म को कैसे पहचाना जाए

सेवा और समर्पण का वास्तविक अर्थ क्या है

माया क्या है और उससे कैसे मुक्त हुआ जाए

संसार में रहते हुए भी प्रेम में कैसे जाग्रत रहा जाए

इसी कारण इसे परब्रह्म अक्षरातीत के दिव्य स्वरूप का "चरण अंग" कहा गया है—अर्थात, आत्म-जागृति के मार्ग का प्रथम और आधारभूत चरण।

8

यह अत्यंत महत्वपूर्ण बिंदु है कि— यहाँ वर्णित रासलीला न इस भौतिक ब्रह्माण्ड में हुई कोई साधारण ऐतिहासिक घटना है, न ही यह परमधाम में हुई है। यह लीला हुई अक्षर ब्रह्म के आनंद पाद क्षेत्र में, योगमाया द्वारा निर्मित नित्य वृन्दावन में। यह मण्डल माया से परे है, पर परमधाम की सत्ता-शक्ति से जुड़ा हुआ है। अत: रासलीला को सांसारिक नहीं, आध्यात्मिक चेतना से समझना चाहिए। इस में परब्रह्म का स्वरूप श्रीकृष्ण के रूप में, आनंद-स्वरूपा शक्ति श्रीश्यामा का स्वरूप राधिका के रूप में, और ब्रह्मात्माएँ गोपियों के रूप में प्रकट हुई। आज वही आत्माएँ जागनी-लीला में इस संसार में सुन्दरसाथ बनकर आई हैं, जहाँ परब्रह्म स्वयं निजानंद सतगुरु और महामति के माध्यम से आत्म-जागरण का कार्य कर रहे हैं।

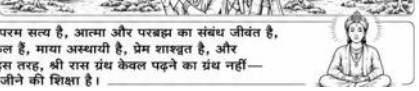

श्री रास ग्रंथ हमें सिखाता है कि—प्रेम ही परम सत्य है, आत्मा और परब्रह्म का संबंध जीवंत है, सेवा और समर्पण प्रेम का स्वाभाविक फल हैं, माया अस्थायी है, प्रेम शाश्वत है, और आत्म-जागृति केवल प्रेम से ही संभव है। इस तरह, श्री रास ग्रंथ केवल पढ़ने का ग्रंथ नहीं— यह प्रेम में जीने की शिक्षा है।

प्रकाश ग्रंथ: आत्म-जागृति का दीप

1 अज्ञान कोई अँधेरा स्थान नहीं है, वह एक विस्मृति है। आत्मा ने जब स्वयं को भूल लिया, तभी संसार का शोर सत्य बन बैठा। इसी विस्मृति के युगों पुराने अरण्य में प्रकाश ग्रंथ वह दीप है जो बाहर नहीं, भीतर जलाया जाता है। यह ग्रंथ जानकारी नहीं देता, वह स्मरण कराता है। स्मरण–कि तू देह नहीं है, न ही मन की चंचल लहर, न बुद्धि की सीमित दृष्टि। तू नूरी आत्मा है – चेतन, अविनाशी आनंद स्वरूप – जिसका मूल नाता अक्षरातीत परमधाम से है।

युगों से आत्मा ने कर्मों के वस्त्र पहन लिए, गुण-अवगुणों को ही अपना स्वरूप मान लिया। इसी भूल से जन्म और मरण की अंतहीन कथा चली। प्रकाश उस मूल भ्रांति का मौन विच्छेदन है – कोई शोर नहीं, केवल जागरण।

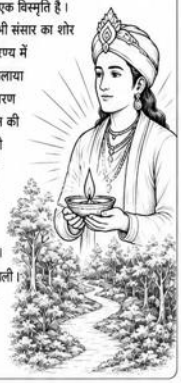

2 इस जागरण में स्पष्ट होता है – शरीर साधन है, स्वामी नहीं; इंद्रियाँ द्वार हैं, गंतव्य नहीं; मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार सब औज़ार हैं – जिनका कार्य सेवा है, शासन नहीं।

इन सबके पार आत्मा स्थित है – शांत, उज्ज्वल और स्वतंत्र।

जैसे दीप जलते ही अँधेरा स्वयं हट जाता है, वैसे ही आत्म-प्रकाश होते ही माया का बंधन ढीला पड़ने लगता है। यह प्रक्रिया बौद्धिक नहीं, जीवनगत है – सोच बदलती है, भाव पवित्र होते हैं, और दिशा घर की ओर मुड़ जाती है।

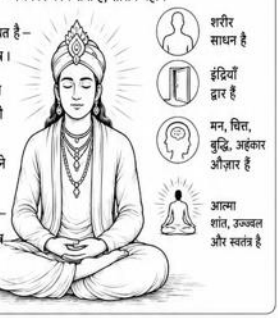

3 इस प्रकाश में तीन भाव सहज प्रकट होते हैं – कृतज्ञता, विरह और प्रेम-सेवा।

कृतज्ञता
उस कृपा के प्रति जिसने भूली हुई पहचान लौटाई।

विरह
उस घर की स्मृति से उपजता है जहाँ आत्मा की साँसें आज भी बसी है।

प्रेम-सेवा
विरह की अग्नि में शुद्ध होकर बहती धारा है, जहाँ आत्मा अपने अंग, गुण और इंद्रियाँ निजधनी को अर्पित कर देती है।

4 श्री मिहिरराज में विराजमान इंद्रावती–जागनी-लीला की चेतना हैं। वे आत्मा को अकेला नहीं जगातीं। कभी मन को टोकती हैं, कभी इंद्रियों को समझाती हैं, कभी जीव को अपने साथ चलने को कहती हैं।

यहाँ जागरण एकाकी नहीं, समन्वित है – पूरा अंतःकरण एक दिशा में जागता है।

प्रकाश ग्रंथ सुंदरसाथ को दोहरा दायित्व सौंपता है – पहले स्वयं जागो, फिर दूसरों के लिए दीप बनो।

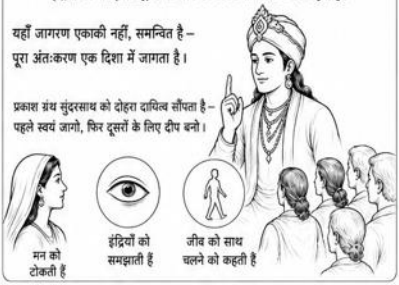

5 यह संसार-त्याग नहीं सिखाता; यह संसार में रहते हुए माया से अछूता रहना सिखाता है। मार्कण्ड ऋषि की भाँति बैठे-बैठे माया को पहचान लेना ही इसकी साधना है।

यहाँ प्रेम-सेवा भी प्रतीक में ढलती है –

इनसे काता गया सूत परमधाम में पश्चाताप से मुक्त करता है।

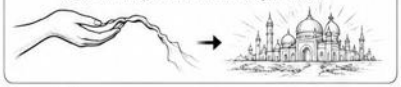

6 महामति लक्ष्य को अस्पष्ट नहीं छोड़ते। गोलोक या लीला नहीं, अब ध्येय है – अक्षरातीत परमधाम के प्रियतम के चरणों में होना। जहाँ आत्माएँ अपने निजधनी के संग अखंड प्रेमानंद में लीन रहती हैं।

वे कहते हैं: वेदों का सार भागवत, भागवत का सार रास, रास का सार तारतम–और तारतम का सार जागनी-विचार है।

जो इस विचार को जीवन में उतार लेता है, वह जन्म-मरण के भ्रम से मुक्त होकर अपने मूल घर लौट आता है।

अतः प्रकाश ग्रंथ कोई ग्रंथ मात्र नहीं–यह आत्मा के हाथ में दिया गया वह दीप है

जो अँधेरे को गिनाता नहीं, प्रकाश की दिशा दिखाता है।

खटरूती ग्रन्थ : विरह की ऋतुओं में जागती आत्मा

1 छः ऋतुएँ, छः पत्र – एक ही पुकार

हर ऋतु में एक पत्र – एक ही मूल बात: "मुझे तुम याद हो।"

ऋतुएँ बदलती है, पर विरह का भाव नहीं बदलता – प्रेम बनता है, मिलन की राह खुलती है।

2 खटरूती ग्रन्थ – आत्मा की बटूऋती कथा

ऋतुएँ केवल मौसम नहीं, आत्मा की अवस्थाएँ हैं।

हर ऋतु आत्मा के भीतर प्रियतम की याद को ओर गहरा करती है।

3 आत्मा के लिए विरह – शोधन, न कि केवल दुःख

खटरूती में विरह रोने के लिए नहीं, निखरने के लिए है।

① सतगुरु-विरह

श्री मिहिरराज जी अपने सतगुरु श्री देवचन्द्र जी से बिछुड़ते हैं।

यह विरह गुरु-दर्शन की प्यास है।

② धनी-विरह

प्रबोधपुरी में नजरबंदी के समय आत्मा अपने अक्षरातीत प्रियतम के साक्षात् दर्शन को तड़पती है।

यह विरह धनी-दर्शन की प्यास है।

दोनों ही विरह आत्मा को भीतर से धो डालते हैं।

4 ऋतुओं की अग्नि में आत्मा का शोधन

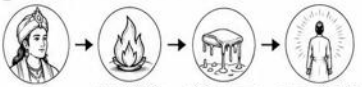

5 विरह से भीगी पुकार प्रियतम को द्रवित करती है

इन्द्रावती की विरहिणी आत्मा बारहमासी प्रसंग में श्री देवचन्द्र जी को ही धामधनी मानकर विरह करती है।

यहाँ दो धाराएँ साथ बहती हैं –

- आत्मा का परब्रह्म से विरह
- इन्द्रावती का निजानन्द-स्वामी से विरह

यह विरह अकेला नहीं, समग्र जागरण का प्रवाह है।

6 कलश का आश्वासन – जो इन्द्रावती को मिला, वह सबको मिल सकता है।

विरह व्यर्थ नहीं जाता।
विरह की चरम अवस्था में आत्मा उठती है प्रश्न –

हे धनी! जब आप स्वयं सामने हैं, तो प्रतिबिंब क्यों दिखाया जा रहा है? जब हाथ में स्वर्ण-कंगन हो, तो दर्पण में उसे देखने की क्या ज़रूरत?

आत्मा अब संकेतो से आगे, साक्षात् सत्य चाहती है।

7 पहचान की सिद्धि – 'अब मैंने आपको पहचान लिया'

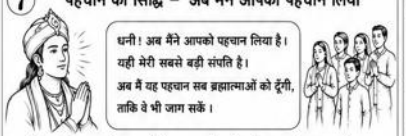

विरह से जन्मा प्रेम – जो केवल स्वयं को नहीं, सबको जगाता है।

8 विरह – रोने नहीं, पहचान दिलाने आता है

विरह की ऋतुएँ – आत्मा को पूर्णता की ओर ले जाती हैं।

9 विरह से मिलन का मार्ग

विरह गहराता है, प्रेम बनता है, मिलन की राह खुलती है।

10 खटरूती ग्रन्थ का सार

खटरूती – विरह की ऋतुओं में जागती आत्मा की अमर वाणी।

कलश ग्रन्थ: आत्म-जागृति की पूर्णता

1 मंदिर तब पूर्ण जब शिखर पर कलश

कलश ग्रन्थ समस्त शास्त्रों, दर्शनों और साधनाओं की यात्रा को आत्म-जागृति की पूर्णता तक पहुँचाता है।

2 आत्मा की भीतरी अवस्था – विरह से पहचान

चेतावनी: बिना सोचे-समझे दूसरों की नकल करना "चींटी-चाल" है, जो आत्मा को भ्रम में डाल देती है।

कलश ग्रन्थ आत्मा को कलश की तरह उज्ज्वल, स्वच्छ और पूर्ण बनाने का आह्वान करता है।

3 कर्म बाँधता है, प्रेम मुक्त करता है

परमात्मा तक पहुँचने का मार्ग – प्रेम, विरह और आत्मीय रहनी से खुलता है।

कलश ग्रन्थ सही प्रेम, आचरण, स्मरण और सहजता को श्रेष्ठ ठहराता है।

4 तारतम्य-केंद्रित सर्वधर्म और सर्वजीवन समन्वय

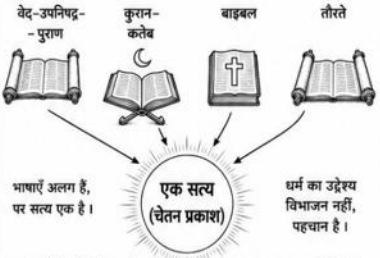

यह "नवीन तौरेत" – कर्मकांड से आगे बढ़कर सत्य का नया अर्थ देता है।

5 धर्म की संरचनात्मक विकृतियाँ

जब धर्म केवल बाह्य रूप, शक्ति और नियंत्रण बन जाता है, तो वह आत्मा से कट जाता है।

धर्म का काम मनुष्य को बाँधना नहीं, जाग्रत करना है।

6 कलश ग्रन्थ का सार – एकीकृत दृष्टि

I (Inner Awakening) आत्मा को भीतर से जगाता है।

IT (Inner Transformation) जीवन-आचरण को शुद्ध करता है।

WE (We – Harmony) धर्मों के बीच समन्वय रचता है।

ITS (Inner True Structure) धार्मिक संरचनाओं को सत्य की ओर मोड़ता है।

विरह से प्रेम से कृपा से पहचान – यही पूर्ण दृष्टि है, यही न्याय है, यही मंगल है।

7 विरह से प्रेम से कृपा से पहचान

यह आंतरिक यात्रा ही आत्म-जागृति की पूर्णता है।

8 आत्मा की स्वतंत्रता – चुनाव तुम्हारा

आत्मा स्वतंत्र है – वह चाहे तो माया में उलझे, और चाहे तो विवेक से परमधाम का मार्ग पाए।

9 मृत्यु अंत नहीं, यात्रा का मोड़

मृत्यु समाप्ति नहीं, यात्रा का मोड़ है।

10 भीतर जलता है कलश-दीप

जो इस द्वीप के आलोक में चलता है, वही शक्ति से मुक्त होकर परमात्मा के साक्षात्कार और आत्मिक पूर्णता को प्राप्त करता है।

कलश ग्रन्थ – जहाँ विरह से प्रेम, प्रेम से कृपा, कृपा से आत्म-जागृति और पूर्णता का कलश स्थापित होता है।

जागनी
आत्मा की विस्मृति से परम प्रेम की स्मृति तक
जागनी क्या है?
जागनी आत्मा की चेतना को जगाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया है। यह जीव को माया की नींद से जगाकर उसके वास्तविक स्वरूप, निजस्वरूप, धामभावी और अक्षरातीत प्रेम से जोड़ती हैं।
अब जाग देखो सुख जागनी, ए सुख सोहतिन जोग।
तीन लीला चौथी पर बीती, इन चारों को नामें भोग।।
— चचरास द्वितीय 23/1
जागनी का सार
निजस्वरूप की पहचान
धामभावी का स्मरण
आवेश की शुद्धि
तात्काल ज्ञान का प्रकाश
प्रेम, सेवा और समर्पण
महामत कहे सतमागिर्यां, आओ निज बतना।
विचार करो हित-मित के, जगमें जड़े मतना।।
— किरन्तन 80/15
पियु जगाई मुझे एकनी, मैं जगाके रोये जुगा।
ए जिने झूठो दुख की, सो कर बेकै कई झूठा।।
— करतन द्वितीय 23/44-45
जागो... पहचानो... प्रेम करो... सेवा करो...
जागनी के पाँच आयाम
Towards Greatness की सम्पूर्ण साधना
1. WAKING UP
जागो
• मैं कौन हूँ?
• निजस्वरूप की पहचान
• माया की नींद से जागना
• धामभावी का स्मरण
पहिले आप पहचानो रे साथी,
पहिले आप पहचानो।
बिन आप पहिले पहचान न हो,
कौन करे हूँ जागनी।।
— किरन्तन 1/1
2. GROWING UP
परिपक्व बनो
• सतत सोच और विचार
• सत्संगति और अभ्यास
• परिवेश चेतना, श्रेष्ठ चरित्र
• कर्मों में सावधानी
सोच सोहतिये ना खोई,
जोड़ो कर के चलो यार।
फिर ओझो भवसी कोई,
पर-पर करो विचार।।
— चचरास 11/8
3. OPENING UP
खुलो
• बुद्धि, प्रेम और अन्तर्दृष्टि खोलना
• छल, संवेगि, संदेहर्ष त्यरेना
• निज-दृष्टि और हृय विस्तार
• स्वभाविक चेतना का विकास
एक निज सुख अवतरी,
खुले रहे सवल्ल।।
— चचरास द्वितीय 23/91
4. CLEANING UP
शुद्ध होओ
• विचार, आवेश और भ्रम छोड़ना
• मत की गुनि और स्वार्थ त्यागना
• क्षमा, करुणा और विनम्रता
• प्रेम में स्थिरता
अब हम में मत भ्रमहीं, सब भ्रम तो है तैं।
साहजो है तैं उक गई,
तब सब भ्रम दूरसहैं।।
— चचरास द्वितीय 23/8
5. SHOWING UP
प्रकट होओ
• प्रेम और सेवा में उतरना
• साधना, समर्पण और उत्तरदायित्व
• सोभाषित और मानवता
• जगत में प्रकाश बनना
तब तित थे तब निकसे, जगत को हित करे रे।
बेत जस छितो, टलत पीड़ गई उको सोहे।।
— किरंतन 58/18
जागनी = प्रेम + ज्ञान + आवेश + साधना + समर्पण + सेवा
जागो, पहचानो, प्रेम करो और जगत को प्रेममय बनाओ।

सनंध ग्रन्थ: सत्य का प्रमाण-दीप

कल्पना कीजिए—एक सभा में अनेक स्वर गूँज रहे हैं। हर स्वर स्वयं को सत्य कह रहा है। तर्क टकराते हैं, विश्वास भिड़ते हैं, पर निर्णय नहीं हो पाता। तभी एक शांत, गंभीर वाणी उठती है— "मुझे विश्वास नहीं, प्रमाण चाहिए।" क्षण भर में शोर थम जाता है। जहाँ प्रमाण प्रकट होता है, वहाँ सत्य को बोलने के लिए ऊँची आवाज़ की आवश्यकता नहीं रहती। सनंध ग्रन्थ वही स्थान है— जहाँ सत्य तर्क से नहीं, प्रमाण के प्रकाश से उद्घाटित होता है। यह ग्रन्थ मानने को नहीं कहता, यह जाँचने का साहस देता है। यह डराकर नहीं बाँधता, समझाकर मुक्त करता है। यह अंधी आस्था का ग्रन्थ नहीं, बल्कि जाग्रत विवेक का दीप है। यह मनुष्य से कहता है—आँख बंद मत करो, अंतर्दृष्टि जगाओ।

यह ग्रन्थ महामति प्राणनाथ जी के तारतम ज्ञान का प्रमाणिक स्तंभ बनकर खड़ा होता है। औरंगजेब तक पहुँची इसकी वाणी का संदेश स्पष्ट था— समस्या धर्म में नहीं, धर्म को संकीर्ण बना देने वाली दृष्टि में है। जब शास्त्र केवल बाह्य अर्थों में पकड़े जाते हैं, तो वही धर्म करुणा खो देता है और भय, कठोरता तथा हिंसा का रूप ले लेता है।

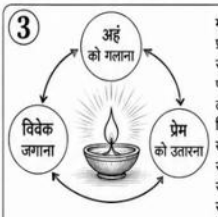

महामति स्पष्ट कहते हैं— धर्म का प्रयोजन मनुष्य को डराना नहीं, संवारना है। यदि धर्म के नाम पर घृणा फैले, अत्याचार बढ़े, तो वह धर्म नहीं— धर्म का विकृत प्रतिबिंब है। इसलिए सनंध ग्रन्थ का लक्ष्य है—अंधविश्वास से मुक्ति, कर्मकांड जड़ता से स्वतंत्रता, कट्टरता से ऊपर उठकर सभी धर्मों के हृदय में धड़कती एकता की पहचान।

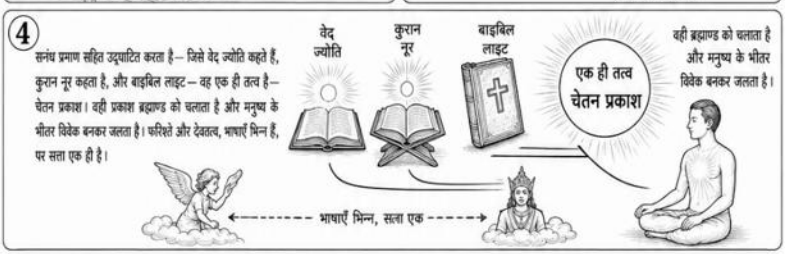

सनंध प्रमाण सहित उद्घाटित करता है— जिसे वेद ज्योति कहते हैं, कुरान नूर कहता है, और बाइबिल लाइट— वह एक ही तत्व है— चेतन प्रकाश। वही प्रकाश ब्रह्माण्ड को चलाता है और मनुष्य के भीतर विवेक बनकर जलता है। फरिश्ते और देवतत्व, भाषाएँ भिन्न हैं, पर सत्ता एक ही है।

वही ब्रह्माण्ड को चलाता है और मनुष्य के भीतर विवेक बनकर जलता है।

5 सनंध ग्रन्थ की एक गहरी चेतावनी है— जब कोई व्यक्ति या विचार एक ही दृष्टिकोण को पूर्ण सत्य मान ले और शेष आयामों को नकार दे, तो वही सोच खतरनाक एकांगीवाद बन जाती है।

महामति का उत्तर सीधा है—चारों आयामों का समन्वय। यही पूर्ण दृष्टि है, यही न्याय है, यही मंगल।

6 सनंध ग्रन्थ हमें यह बोध कराता है— सत्य किसी एक ग्रन्थ की संपत्ति नहीं, वह प्रमाण से प्रकाशित होने वाला अनंत प्रकाश है। जो इस दीप के आलोक में चलता है, वही अंधे अनुकरण से मुक्त होकर अपने वास्तविक लक्ष्य— परमात्मा के साक्षात्कार और आत्मिक पूर्णता की ओर अग्रसर होता है।
आत्मा स्वतंत्र है— वह चाहे तो माया में उलझे, और चाहे तो विवेक से परमधाम का मार्ग पाए। मृत्यु अंत नहीं, यात्रा का मोड़ है।

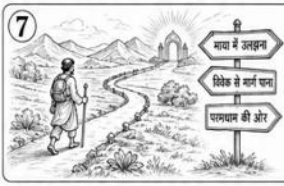

इस मार्ग पर दुख शत्रु नहीं, शिक्षक बन जाता है। आत्मा चलती रहती है— सीखती, जागती, और लौटती है।
इस तरह, सनंध ग्रन्थ सिर्फ पढ़ा नहीं जाता— वह भीतर जलता है।

सनंध ग्रन्थ – प्रमाण का दीप, विवेक का मार्ग, प्रेम की परम दिशा।

किरन्तन ग्रन्थ

(जागरण की वाणी और जीवन-निर्माण का समन्वित मार्ग)

1 जागरण की घंटी

किरन्तन केवल सुनाता नहीं, जगाता है।

2 "मैं कौन हूँ?"

आत्म-पहचान ही जागरण का प्रथम चरण है।

3 सुख और दुःख – दोनों गुरु

जागृति के बिना सुख बाँधता है,
जागृति के साथ दुःख भी सीढ़ी बन जाता है।

4 आत्म-साक्षी का दीप

आत्म-साक्षी भीतर का दीप है।

5 ज्ञान का पुल

कुछ लोग किनारे बैठकर बहस करते हैं,
पर जो पार जाना चाहता है, उसे नदी में उतरकर पुल बनाना पड़ता है।

6 शब्द और अर्थ

शब्द में मत अटकिए, अर्थ को जीइए।

7 समाज-जागरण

धर्म का उद्देश्य विभाजन नहीं,
चेतना का उत्थान है।

8 सतगुरु – कुशल नाविक

शरीर नौका है, जीव नाविक है,
सतगुरु मार्गदर्शक है।

9 जीवन-निर्माण का समन्वय

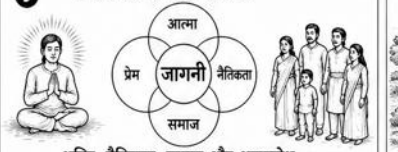

भक्ति, नैतिकता, समाज और आत्मबोध –
एक ही जीवन-धारा।

10 किरन्तन का संदेश

भीतर जागो → सत्य पहचानो → प्रेम में स्थिर हो → परमधाम की ओर बढ़ो

किरन्तन — जो सुनने वाले को श्रोता नहीं, साधक बना दे।

खुलासा ग्रन्थ (तारतम ज्ञान की रोशनी में वेद-कतेब के गूढ़ रहस्यों का समन्वित उद्घाटन)

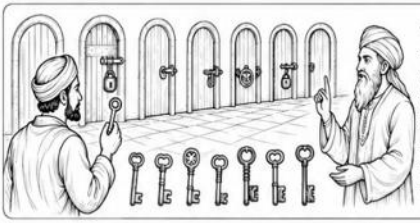

मान लीजिए एक भवन में अनेक कक्ष हैं। हर कक्ष का ताला अलग है। कोई व्यक्ति एक ही चाबी लेकर सभी तालों को खोलना चाहता है—कहीं वह चाबी बड़ी है, कहीं छोटी; कहीं घूमती है, कहीं अटक जाती है। तब विवाद होता है—"यह ताला गलत है" या "यह चाबी झूठी है।" पर जब कोई समझदार व्यक्ति आता है और कहता है—"ताले अलग हैं, इसलिए चाबियाँ भी अलग होंगी"—तभी भवन खुलने लगता है। खुलासा ग्रन्थ वही समझ है। यह ताले नहीं तोड़ता, न चाबियाँ बदलता है—यह यह पहचान कराता है कि किस ताले के लिए कौन-सी चाबी है।

खुलासा उर्दू शब्द है—जिसका अर्थ है स्पष्टीकरण या भीतरी अर्थ का उद्घाटन। इस ग्रन्थ का पहला कार्य मनुष्य की भीतरी दृष्टि को शुद्ध करना है। महामति स्पष्ट करते हैं कि धर्मों का झगड़ा परमात्मा की अनेकता का प्रमाण नहीं, बल्कि मानव-बुद्धि की सीमाओं, अहं और अज्ञान का परिणाम है। यदि सब आत्माएँ एक ही परमेश्वर से उत्पन्न हैं, तो यह कैसे संभव है कि परमात्मा किसी को सत्य दे और किसी को असत्य? इसी प्रश्न से खुलासा ग्रन्थ मनुष्य को झकझोरता है और कहता है—गलती सत्य में नहीं, हमारी समझने की विधि में है। यही कारण है कि केवल वेद-कतेब पढ़ लेने से "पहचान" नहीं होती। पहचान के लिए कुंजी चाहिए—भीतरी अर्थ की। जब यह कुंजी मिलती है, तब मनुष्य के भीतर से "मैं सही–तुम गलत" का अहं ढहने लगता है।

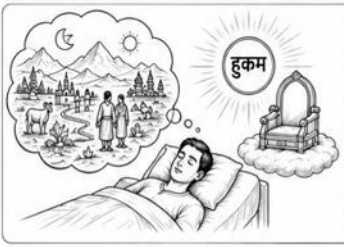

खुलासा ग्रन्थ केवल भावनात्मक समन्वय नहीं सिखाता; वह तारतम्य-केंद्रित तर्कपूर्ण स्पष्टता भी देता है। महामति बताते हैं कि संसार स्वप्न-सदृश दृश्य-लीला है—अस्थायी, परिवर्तनशील। इसलिए परमात्मा अपने मूल स्वरूप से इस स्वप्न-जगत में सीधे नहीं आते, पर एक ऐसा कार्यकारी तत्व अवश्य प्रकट होता है, जो इस दृश्य-जगत में काम कर सके और धाम से भी जुड़ा रहे। इसी तत्व को महामति "हुकम" कहते हैं—परमात्मा की इच्छा-शक्ति, आदेश-शक्ति, संचालक विवेक। जैसे स्वप्न में दृश्य बदलते रहते हैं, पर स्वप्न-दृष्टा सत्य रहता है, वैसे ही सृष्टि के दृश्य बदलते हैं, पर हुकम-तत्व स्थिर रहता है। यह समझ साधक के व्यवहार को भी संतुलित करती है—वह दृश्य में उलझता नहीं, दृष्टा को पहचानने लगता है।

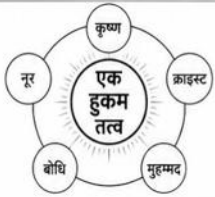

इस ग्रन्थ का सबसे महत्वपूर्ण योगदान धर्मों के बीच संवाद है—विवाद नहीं। यह वेद-पक्ष और कतेब-पक्ष को आमने-सामने खड़ा नहीं करता, बल्कि उनकी प्रतीकात्मक भाषाओं के पीछे छिपे एकत्व-सूत्र को उजागर करता है। महामति दिखाते हैं कि कृष्ण, क्राइस्ट, मुहम्मद जैसे नाम अनेक संदर्भों में एक ही हुकम-तत्व के भाषाई संकेत हो सकते हैं—कहीं "बर्ड", कहीं "नूर", कहीं "बोधि", कहीं "कृष्ण-तत्व"। यह महापुरुषों को छोटा करना नहीं, बल्कि यह समझना है कि उनके पीछे प्रेरक-स्रोत एक ही है। जब यह दृष्टि खुलती है, तब जाति, भेष, भाषा और परंपरा की दीवारें ढहने लगती हैं, और धर्म "पहचान" नहीं, प्रेम का सेतु बन जाता है।

खुलासा ग्रन्थ "हुकम" के कार्य-रूप को तीन स्तरों में स्पष्ट करता है— बशरी, मलकी और हकीकत। बशरी स्तर पर धर्म समाज को नियम और मर्यादा देता है। मलकी स्तर साधक को ऊर्ध्व ज्ञान और धाम-सुख की ओर उठाता है। और हकीकत स्तर परमधाम और परमात्म-तत्व की पूर्ण सच्चाई को उद्घाटित करता है। इसी क्रम में "म्याराज" या "धाम-दर्शन" का संकेत आता है— धाम का दर्शन उसी को संभव है, जिसका धाम से वास्तविक सम्बंध हो। इस प्रकार हुकम-तत्व एक मध्यस्थ संरचना बन जाता है — जो संसार और धाम, दृश्य और सत्य, मनुष्य और परमात्मा को जोड़ता है।

यह एक कुंजी-ग्रन्थ है, जो धर्मों को मिटाता नहीं, बल्कि उनके भीतर छिपे सत्य को खोलता है। सिखाता है कि सत्य एक है, भाषाएँ अनेक हैं। और इस समझ का फल यह है कि पूर्वाग्रह ढहें, झगड़े शिथिल हों, और आत्मा अनन्य प्रेम-उपासना द्वारा सत्य–प्रेम-आनन्द के धाम की ओर अग्रसर हो। यही खुलासा ग्रन्थ का संदेश है—विवाद नहीं, विवेक; खंड नहीं, तारतम्य-केंद्रित समन्वय; और पहचान नहीं, जागरण।

खुलासा – जहाँ भीतर के ताले खुलें, वहीं सत्य का प्रकाश प्रकट हो।

खिलवत ग्रन्थ (प्रेम, भुलवनी और जागनी का रहस्य)

भीतरी लौ की बात

मान लीजिए एक दीपक जल रहा है। जब तक उसकी भीतरी लौ शांत है, तब तक वह आसपास सब कुछ प्रकाशित करती है। पर यदि हवा तेज हो, तेज हो जाए, तो लौ काँपने लगती है — प्रकाश भी डगमगाने लगता है। खिलवत ग्रन्थ इसी भीतरी लौ की बात करता है — जहाँ आत्मा और परमात्मा के बीच ऐसा अंतरंग मिलन होता है कि मिलन होता है फिर बाहर की हवा (भीतर के प्रकाश को हिला नहीं पाती)। यही खिलवत है।

खिलवत सिर्फ बाहरी एकांत नहीं,

बल्कि आत्मा और अक्षरातीत परब्रह्म के बीच सबसे गहन, प्रेमपूर्ण और दिव्य अंतरंग मिलन है। जहाँ आत्मा अनुभव करती है कि परमात्मा दूर नहीं, बल्कि हृदय के धाम में है। प्रेम की तरंग जब आत्मा को स्पर्श करती है, तब आत्मा खिलवत में प्रवेश करती है — जहाँ "मैं" और "तू" नहीं रहते, केवल प्रेम का रस और उसका आत्मावद रहता है।

"खिलवत" शब्द का अर्थ

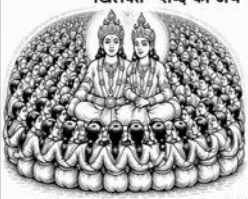

"खिलवत" शब्द अरबी खल्वत से निकला है, जिसका सामान्य अर्थ एकांत है। तारतम वाणी में खिलवत सिर्फ बाहरी (शारीरिक) एकांत नहीं, बल्कि आत्मा और अक्षरातीत परब्रह्म के बीच का सबसे गहन, प्रेमपूर्ण और दिव्य अंतरंग मिलन है।

ब्रह्मात्माएं युगल स्वरूप श्री राज श्यामाजी के चरणों में दाड़िम की कलियों की तरह सट कर, एक दूसरे से गले में बाईयाँ डालकर बैठी है।

तारतम वाणी का मूल उद्देश्य

"प्रेम और ब्रह्म एक हैं!" यदि परमात्मा रस है — "रसो वै सः" — तो आत्मा उस रस की प्यासी है। परमात्मा पूर्णता है, आत्मा चाह की कोमल अपूर्णता। और इसी पूर्णता-अपूर्णता के बीच प्रेम की लीला चलती है — कभी मिलन में, कभी विरह में। यही विरह प्रेम का शत्रु नहीं, उसकी गहराई का साधन है।

भुलवनी और विरह – प्रेम की तैयारी

जब आत्माएं प्रेम के इस रहस्य को भूल जाती है, तब स्वभाव अपने प्रेम को प्रकट करने का संकल्प करते हैं। पर प्रेम बिना विरह के परिवर्धित नहीं होता — जैसे संगीत बिना आलाप के नहीं निकलता। इसलिए भुलवनी और विरह उत्पन्न होते है। यह दर्द नहीं, प्रेम की तैयारी है। जैसे जल से बाहर मछली तड़पती है, जैसे ही आत्मा विरह में तड़पती है। और जब वह प्रेम–जल में लौटती है, तो उसका आनंद पहले से कहीं अधिक गहन होता है। दुःख-लीला यहीं गूंजती है— अर्थ, जुदय और प्रेम का गलाना।

यह संसार स्वप्न–सदृश है

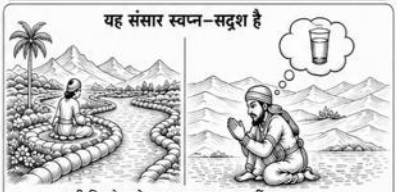

नदी किनारे रहने वाला जल का मूल्य नहीं जानता, पर रेगिस्तान में रहने वाला एक बूंद की कीमत समझता है। सपने का जल प्यास नहीं बुझाता — तभी असली जल की पहचान होती है। इसी प्रकार संसार की नकल देखकर ही आत्मा परमधाम की सच्ची माधुर्य को पहचानती है।

अक्षर ब्रह्म और अक्षरातीत परब्रह्म – लीला का अंतर

अक्षर ब्रह्म की लीला (बाल–लीला (बालवृधि)

जैसे बालक रेत में घर बनाता है। सृष्टि रचता है, पर प्रेम की गहराई अभी नहीं।

अक्षरातीत परब्रह्म की लीला प्रेम – माधुर्य की पराकाष्ठा

जहाँ मिलन, विरह, चाह और आनंद सब चरम पर पहुँचते है। यही माधुर्य की पराकाष्ठा है।

प्रेम–शक्ति का अद्‌भुत समन्वय

अक्षर ब्रह्म को अक्षरातीत की प्रेमलीला का दर्शन मिले, और परमात्मा की कलांश–आत्माओं को अक्षर ब्रह्म की सृष्टि लीला का अनुभव। पर प्रेमलीला का तेज इतना प्रबल है कि उसे सीधी नहीं दिखाया जा सकता। इसलिए यह स्वप्न के माध्यम से प्रकट होती है — जैसे सूर्यग्रहण दर्शन में देखा जाता है।

अनंत प्रेम का अंतरंग संवाद शेष रहता है।

सृष्टि – भुलवनी से विरह, विरह से मिलन की यात्रा

छोटा स्वप्न (रात) और बड़ा स्वप्न (सृष्टि) यही होता है। आत्मा देखने वाली है, परमात्मा दिखाने वाले। देश–काल–कारण से वीत स्वप्न (रात) और बंधन से मुक्त स्वप्न (सृष्टि) ढका होता है। जागनी तब होती जब देखने की रुचि पूरी पूरी होती।

खिलवत ग्रन्थ का अंतिम फल – खिलवत की सिद्धि

आत्मा निम्न "मैं" को गलाकर हृदय में धामी की सच्ची "मैं" प्रतिष्ठित करे। तब — प्रेम, रुचि और आत्मरूप एकरस हो जाते है। कहनी–करनी–रहनी में भेद नहीं रहता। जीवन स्वयं प्रेम–सेवा का धर्म बन जाता है। और आत्मा का हृदय शुद्ध परमधाम बन जाता है। यही खिलवत की सिद्धि है — जहाँ आत्मा और परमात्मा के बीच कोई दूरी नहीं रहती, केवल अनंत प्रेम का अंतरंग संवाद शेष रहता है।

खिलवत – जहाँ दूरी नहीं, केवल प्रेम का अंतरंग संवाद शेष रहता है।

परिक्रमा ग्रन्थ: परमधाम के 25 आयामों की प्रेम-यात्रा

यह यात्रा पैरों से नहीं, चित और चेतना से होती है

एक बालक की परिक्रमा

मां ने उसे गोद में उठाकर पूरे मंदिर की परिक्रमा कर दीं।

वह कुछ नहीं जानता था, पर उसके भीतर शांति और अपनापन बस गया।

परिक्रमा ग्रन्थ साधक को प्रेमपूर्वक गोद में उठाकर परमधाम की परिक्रमा करा देता है।

परिक्रमा ग्रन्थ क्या करता है?

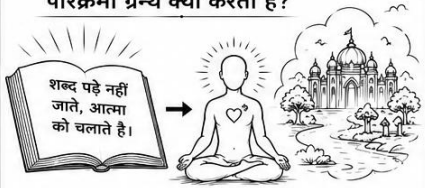

यह केवल वर्णन नहीं करता, बल्कि चेतना को क्रमशः परमधाम के अनुरूप ढालता है।

केंद्रीय संदेश: परमधाम को जानो नहीं, परमधाम में जीना सीखो।

25 प्रेम-आयाम

ये भौगोलिक स्थल नहीं, प्रेम की 25 अवस्थाएँ हैं।

आत्मा का भाव परिपव्व होता है, गहराता है और "वापसी" का अडिग निश्चय बन जाता है।

यह यात्रा देखने की नहीं, हो जाने की यात्रा है।

बहुआयामी आत्मा, बहुआयामी यात्रा

आत्मा को पूर्ण प्रेम-बोध तक पहुंचाने के लिए परमधाम की यह बहुआयामी यात्रा आवश्यक है।

परमधाम: नित्य प्रेम और नित्य लीला की चेतन भूमि

- समय बहता नहीं, क्षय नहीं होता।
- जड़ता का प्रवेश नहीं, जीवन खिलता है।
- हर क्षण नई लीला, नया रस, नया उल्लास।

ग्रन्थ का संकेत

निराकार में शांति संभव

नित्य आनंद केवल नित्य, विदग्धन साकार स्वरूप में

परमधाम परब्रह्म के नूर से रचा है। वहां तर्क नहीं, तारत्व ज्ञान, अनन्य श्रद्धा और प्रेम-लक्षणा भक्ति से अनुभव होता है।

कालातीत अनुभव

तीनों एक ही क्षण में प्रकाशित होते हैं। चितवनि (प्रेमपूर्वक देखना) से प्रेम अंकुरित होता है और मोह हीला पड़ता है।

25 पक्ष – 25 क्रीड़ा-स्थल

रंगमहल, कुंज-निकुंज, यमुना, चौगान, माणिक-पहाड़, आठ सागर आदि –

ये प्रेम के क्रीड़ा-स्थल हैं, जहां सेवा, स्नेह, एकदिली और आनंद-विहार से आत्मा के भीतर धाम की हकीकत उतरती है।

स्वलीला–अद्वैत का रहस्य

धाम में श्रीराज ही भोक्ता हैं और वही भोग्य। उसी चिदघन प्रकाश में विविध रूप, रंग और रस स्फुरित होते हैं, और आत्माएँ नित्य-नवीन आनंद पाती रहती हैं।

परिक्रमा ग्रन्थ आत्मा को तीन अमूल्य उपहार देता है

① लक्ष्य (परमधाम का जीवंत लक्ष्य) → ② आधार (चितवनि का स्थिर आधार) → ③ रस (प्रेम की गहराई)

अंतिम संदेश

यह ग्रन्थ आत्मा को 25 प्रेम-आयामों की परिक्रमा कराकर उसके भीतर धाम की ऐसी स्मृति जगा देता है कि वह परमधाम को केवल माने नहीं, अनुभव करे – और उसी प्रेम में लौटने को आतुर हो जाए।

भीतर की यात्रा से ही बाहरी मुक्ति संभव है।

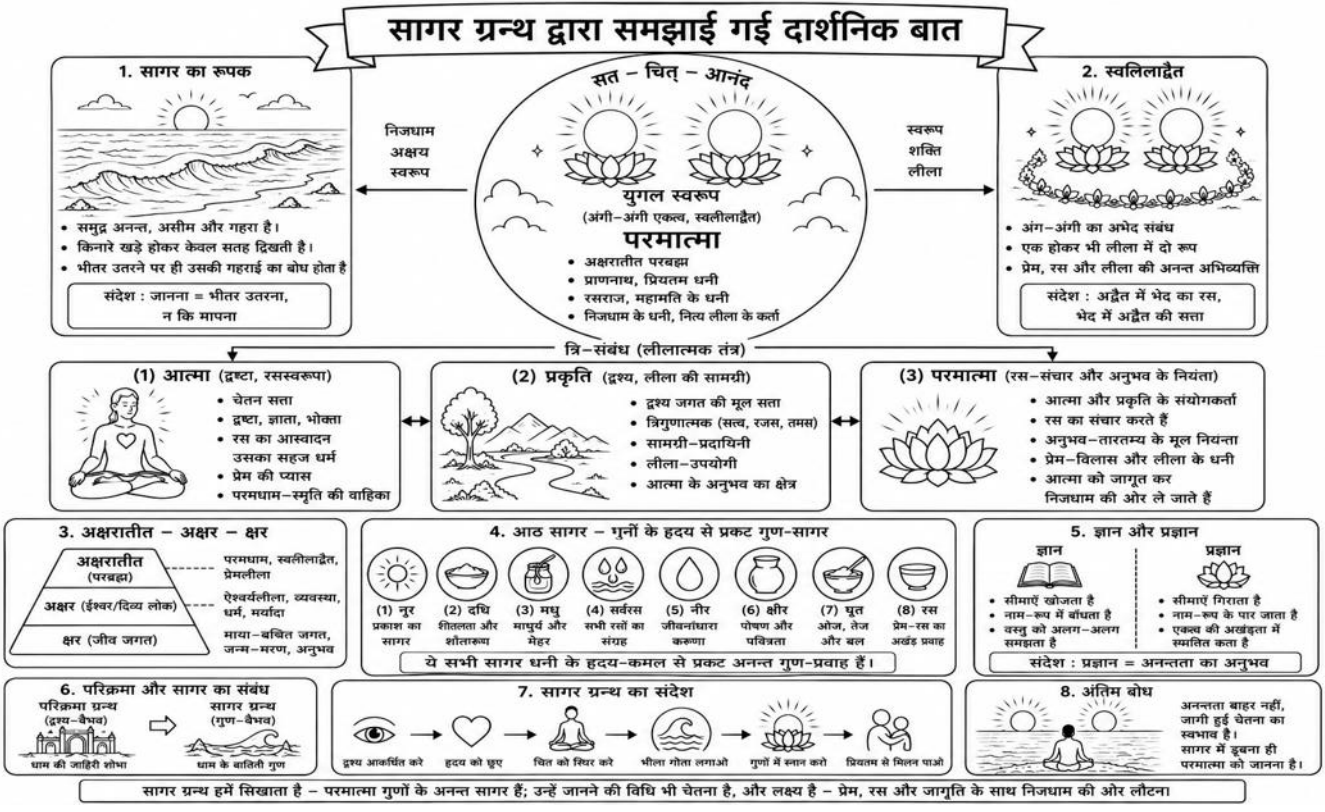
सागर ग्रन्थ द्वारा समझाई गई दार्शनिक बात
1. सागर का रूपक
• समुद्र अनन्त, असीम और गहरा है।
• किनारे खड़े होकर केवल सतह दिखती है।
• भीतर उतरने पर ही उसकी गहराई का बोध होता है
संदेश : जानना = भीतर उतरना, न कि मापना
सत – चित् – आनंद
निजधाम अक्षय स्वरूप
स्वरूप शक्ति लीला
युगल स्वरूप
(अंगी–अंगी एकत्व, स्वलीलाद्वैत)
परमात्मा
• अक्षरातीत परब्रह्म
• प्राणनाथ, प्रियतम धनी
• रसराज, महामति के धनी
• निजधाम के धनी, नित्य लीला के कर्ता
2. स्वलिलाद्वैत
• अंग–अंगी का अभेद संबंध
• एक होकर भी लीला में दो रूप
• प्रेम, रस और लीला की अनन्त अभिव्यक्ति
संदेश : अद्वैत में भेद का रस, भेद में अद्वैत की सत्ता
त्रि–संबंध (लीलात्मक तंत्र)
(1) आत्मा (द्रष्टा, रससस्वरूपा)
• चेतन सत्ता
• द्रष्टा, ज्ञाता, भोक्ता
• रस का आस्वादन उसका सहज धर्म
• प्रेम की प्यास
• परमधाम–स्मृति की वाहिका
(2) प्रकृति (दृश्य, लीला की सामग्री)
• दृश्य जगत की मूल सत्ता
• त्रिगुणात्मक (सत्व, रजस, तमस)
• सामग्री–प्रदायिनी
• लीला–उपयोगी
• आत्मा के अनुभव का क्षेत्र
(3) परमात्मा (रस–संचार और अनुभव के नियंता)
• आत्मा और प्रकृति के संयोगकर्ता
• रस का संचार करते हैं
• अनुभव–तारतम्य के मूल नियन्ता
• प्रेम–विलास और लीला के धनी
• आत्मा को जागृत कर निजधाम की ओर ले जाते हैं
3. अक्षरातीत – अक्षर – क्षर
अक्षरातीत (परब्रह्म) – परमधाम, स्वलीलाद्वैत, प्रेमलीला
अक्षर (ईश्वर/दिव्य लोक) – ऐश्वर्यलीला, व्यवस्था, धर्म, मर्यादा
क्षर (जीव जगत) – माया–बद्धित जगत, जन्म–मरण, अनुभव
4. आठ सागर – गुनों के हृदय से प्रकट गुण-सागर
(1) नूर प्रकाश का सागर
(2) दधि शीतलता और शौलारूप
(3) मधु माधुर्य और मेहर
(4) सर्वरस सभी रसों का संग्रह
(5) नीर जीवनाधारा करुणा
(6) क्षीर पोषण और पवित्रता
(7) घृत ओज, तेज और बल
(8) रस प्रेम–रस का अखंड प्रवाह
ये सभी सागर धनी के हृदय-कमल से प्रकट अनन्त गुण-प्रवाह हैं।
5. ज्ञान और प्रज्ञान
ज्ञान
• सीमाएँ खोजता है
• नाम–रूप में बाँधता है
• वस्तु को अलग–अलग समझता है
प्रज्ञान
• सीमाएँ गिराता है
• नाम–रूप के पार जाता है
• एकत्व की अखंडता में स्थापित करता है
संदेश : प्रज्ञान = अनन्तता का अनुभव
6. परिक्रमा और सागर का संबंध
परिक्रमा ग्रन्थ (दृश्य–वैभव)
धाम की जाहिरी शोभा
सागर ग्रन्थ (गुण–वैभव)
धाम के बातिनी गुण
7. सागर ग्रन्थ का संदेश
दृश्य आकर्षित करे
हृदय को छूए
चित को स्थिर करे
भीना गोता लगाओ
गुणों में स्नान करो
प्रियतम से मिलन पाओ
8. अंतिम बोध
अनन्तता बाहर नहीं, जागी हुई चेतना का स्वभाव है।
सागर में डूबना ही परमात्मा को जानना है।
सागर ग्रन्थ हमें सिखाता है – परमात्मा गुणों के अनन्त सागर हैं; उन्हें जानने की विधि भी चेतना है, और लक्ष्य है – प्रेम, रस और जागृति के साथ निजधाम की ओर लौटना।

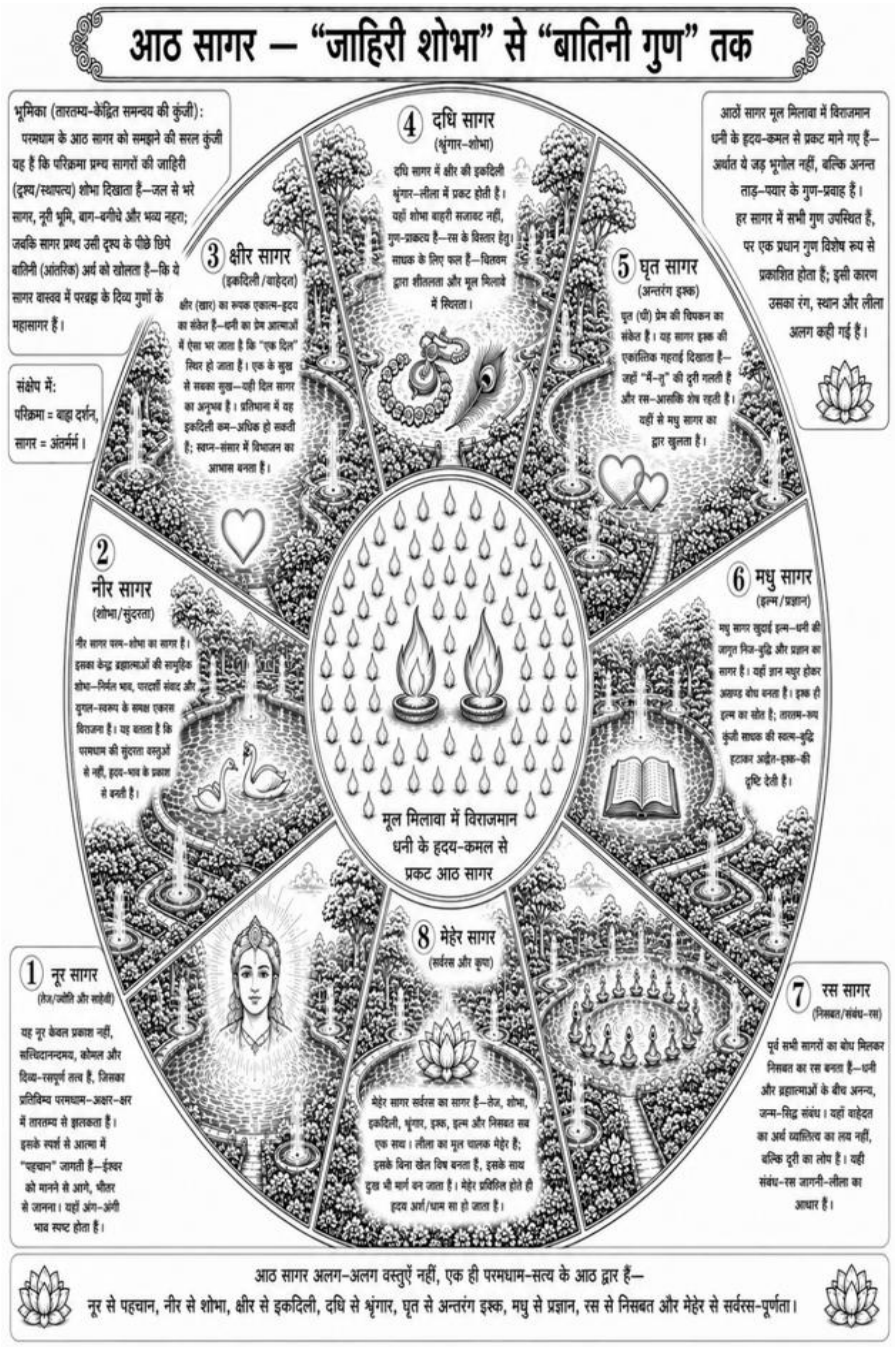
आठ सागर – "जाहिरी शोभा" से "बातिनी गुण" तक
भूमिका (तारतम्य-केंद्रित समन्वय की कुंजी):
परमधाम के आठ सागर को समझने की सरल कुंजी यह है कि परिक्रमा प्रथ्य सागरों की जाहिरी (दृश्य/स्थापत्य) शोभा दिखाता है—जल से भरे सागर, नूरी भूमि, बाग-बगीचे और भव्य महल; जबकि सागर प्रथ्य उसी दृश्य के पीछे छिपे बातिनी (आंतरिक) अर्थ को खोलता है—कि ये सागर वास्तव में परब्रह्म के दिव्य गुणों के महासागर हैं।
संक्षेप में:
परिक्रमा = बाह्य दर्शन,
सागर = अंतर्मर्म।
4 दधि सागर
(श्रृंगार–शोभा)
दधि सागर में क्षीर की इकदिली श्रृंगार–लीला में प्रकट होती है। यहाँ शोभा बाहरी सजावट नहीं, गुण-प्राकट्य है—रस के विस्तार हेतु। साधक के लिए फल है—चित्तम द्वारा शीतलता और मूल मिलावे में स्थिरता।
3 क्षीर सागर
(इकदिली/बाहेदत)
क्षीर (खार) का रूपक एकात्म-हृदय का संकेत है—धनी का प्रेम आत्माओं में ऐसा भा जाता है कि "एक दिल" स्थिर हो जाता है। एक के सुख से सबका सुख—यही दिल सागर का अनुभव है। प्रतिभान में यह इकदिली कम–अधिक हो सकती है; स्वप्न-संसार में विभाजन का आधार बनता है।
5 घृत सागर
(अन्तरंग इश्क)
घृत (घी) प्रेम की घिपकन का संकेत है। यह सागर इश्क की एकांतिक गहराई दिखाता है—जहाँ "मैं–तू" की दूरी गलती है और रस–आसक्ति शेष रहती है। यहीं से मधु सागर का द्वार खुलता है।
आठों सागर मूल मिलावा में विराजमान धनी के हृदय-कमल से प्रकट माने गए हैं—अर्थात ये जड़ भूगोल नहीं, बल्कि अनन्त ताड़–प्यार के गुण-प्रवाह हैं। हर सागर में सभी गुण उपस्थित हैं, पर एक प्रधान गुण विशेष रूप से प्रकाशित होता है; इसी कारण उसका रंग, स्थान और लीला अलग कही गई है।
2
नीर सागर
(शोभा/सुंदरता)
नीर सागर परम-शोभा का सागर है। इसका केन्द्र ब्रह्मात्माओं की सामूहिक शोभा–निर्मल भाव, पारदर्शी संबंध और पूर्ण-स्वरूप के समग्र एकरस विराजमान है। यह बताता है कि परमधाम की सुंदरता वस्तुओं से नहीं, हृदय-भाव के प्रकाश से बनती है।
6 मधु सागर
(इल्म/प्रज्ञान)
मधु सागर खुदाई इल्म–धनी की जागृत निज-बुद्धि और प्रज्ञान का सागर है। यहाँ ज्ञान मधुर होकर आसक्ति बोध बनता है। इश्क ही इल्म का स्रोत है; तारतम-रूप कुंजी साधक की स्वल्प-बुद्धि हटाकर अद्वैत-इश्क-की दृष्टि देती है।
मूल मिलावा में विराजमान
धनी के हृदय-कमल से
प्रकट आठ सागर
1 नूर सागर
(तेज/ज्योति और साहेबी)
यह नूर केवल प्रकाश नहीं, सच्चिदानन्दमय, कोमल और दिव्य-स्वरूपी तत्व है, जिसका प्रतिबिम्ब परमधाम–अक्षर–धर में तारतम्य से झलकता है। इसके स्पर्श से आत्मा में "पहचान" जागती है—ईश्वर को मानने से आगे, भीतर से जानना। यहाँ अंग–अंगी भाव स्पष्ट होता है।
8 मेहेर सागर
(सर्वस्व और कृपा)
मेहेर सागर सर्वस्व का सागर है—तेज, शोभा, इकदिली, श्रृंगार, इश्क, इल्म और निसबत सब एक साथ। लीला का मूल चालक मेहेर है; इसके बिना खेल विष बनता है, इसके साथ दुख भी मार्ग बन जाता है। मेहेर प्रतिफलित होते ही हृदय अर्श/धाम सा हो जाता है।
7 रस सागर
(निसबत/संबंध-रस)
पूर्व सभी सागरों का बोध मिलकर निसबत का रस बनता है—धनी और ब्रह्मात्माओं के बीच अनन्य, जन्म-सिद्ध संबंध। यहाँ वाहेदत का अर्थ व्यक्तित्व का लय नहीं, बल्कि दूरी का लोप है। यही संबंध-रस जागनी-लीला का आधार है।
आठ सागर अलग-अलग वस्तुएँ नहीं, एक ही परमधाम-सत्य के आठ द्वार हैं—
नूर से पहचान, नीर से शोभा, क्षीर से इकदिली, दधि से श्रृंगार, घृत से अन्तरंग इश्क, मधु से प्रज्ञान, रस से निसबत और मेहेर से सर्वस्व-पूर्णता।

सिनगार ग्रन्थ: "परमात्मा ही जीवन का श्रेष्ठतम श्रृंगार"

जीवन की बाहरी सजावट बहुत हो सकती है, पर जब तक परमात्मा का प्रकाश भीतर न उतरे, श्रृंगार अधूरा ही रहता है।

एक घर की कहानी

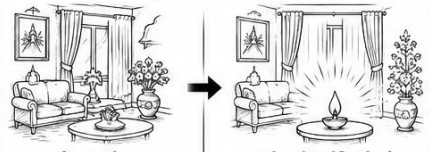

बाहरी सजावट है, पर भीतर खालीपन है।

जब दीपक से आलोकित होता है, तो घर की आत्मा ही चमक उठती है।

सिनगार ग्रन्थ कहता है – जीवन का सच्चा, पूर्ण और स्थायी श्रृंगार परमात्मा हैं।

जीवन की सच्चाई

ये सब स्वार्दि क्षणिक और अधूरे हैं, आत्मा को तृप्त नहीं कर पाते।

पूर्ण श्रृंगार केवल परमात्मा में है।

रस को ऊर्ध करना – दमन नहीं, रूपांतरण

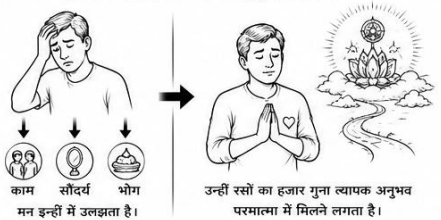

मन इन्हीं में उलझता है।

उन्हीं रसों का हजार गुना व्यापक अनुभव परमात्मा में मिलने लगता है।

मन उपदेश से नहीं, रस से बदलता है

केवल कहना पर्याप्त नहीं कि परमात्मा आनंदमय हैं।

आनंद को अनुभव बनाना पड़ता है। रास-लीला और परमधाम की लीलाएँ रूपांतरण का माध्यम हैं।

सौंदर्य की विभिन्न अभिव्यक्ति

बिजलीघर की अपार ऊर्जा अलग-अलग बल्बों में अलग प्रकाश बनती है।

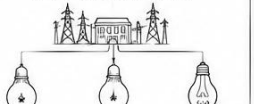

संसार की सारी सुंदरता, उसी परम शोभा-सागर की झलक है।

रसराज – आनंद का महासागर

परब्रह्म रसराज हैं – जहाँ सभी रस, सभी आनंद, सभी सौंदर्य घनीभूत होकर एक हो जाते हैं। जिसने रसराज को पा लिया, उसने सारे श्रृंगार पा लिए।

चितवनि की विधि

मानव-देह के रूपकों से परमधाम की चितवनि

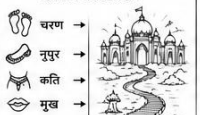

श्यामा-श्याम परम ज्योति हैं – प्रकाश का प्रकाश और वह भी परम चैतन्य। रूपक केवल एक सेतु हैं अनंत हृदय में उतरने के लिए।

भाव → महाभाव → महारास

संसार में जानना और होना अलग रहते हैं, पर परमधाम में – जानना ही हो जाना है।

'जानत तुमहि तुमही हो जाई'।

यहां प्रेम और ज्ञान एक ही रस बन जाते हैं।

परमधाम के 25 प्रेम-आयाम (कुछ उदहरण)

ये 25 पक्ष भौगोलिक स्थल नहीं, प्रेम की 25 अवस्थाएँ हैं, जहां सेवा, स्नेह, एकदिली और आनंद-विहार से आत्मा परिपक्व होती है।

सिनगार ग्रन्थ के तीन अमूल्य उपहार

सार संदेश

परमात्मा को हृदय में विराजमान करो, संसार त्याज्य नहीं लगेगा – बस छोटा पड़ जाएगा। बूंद नहीं, सागर चाहो। क्षणिक नहीं, शाश्वत चाहो। रूप नहीं, स्वरूप में विश्राम पाओ।

जीवन सजावट नहीं, दिव्य शोभा बन जाता है।

बाहरी श्रृंगार क्षणिक है, भीतरी श्रृंगार शाश्वत है – परमात्मा ही जीवन का श्रेष्ठतम श्रृंगार है।

सिन्धी ग्रंथ (विरह से जागरण तक की यात्रा)

विरह की अग्नि से शुद्ध होकर आत्मा जागती है, और अंततः निजधाम का आनंद मूल स्वरूप – श्री राजजी से ही प्राप्त होता है।

1. कथा का आंतरिक संकेत

संकेत : इन्द्रावती आत्मा परमात्मा की शक्ति और प्रेम को धारण कर ब्रह्मात्माओं को जागृत करती है, पर पूर्ण मिलन और परमधाम का आनंद केवल श्री राजजी से ही मिलता है।

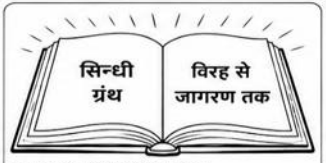

- कुलजम स्वरूप की अंतिम अंतर्धारा
- 600 चौपाइयाँ, 16 प्रकरण
- विरह की अग्नि से आत्मा शुद्ध होती है
- शब्द केवल कहते नहीं, अनुभव बन जाते हैं

2. साधक की पीड़ा – दो रूप

(क) स्वप्न-टूटन की पीड़ा

न संसार रहा, न धाम मिला – भीतर रिक्तता, बाहर धूल। बीच आकाश में लटका हुआ अनुभव।

(ख) झलक-खो जाने की पीड़ा

परमधाम की झलक मिलती है, पर टिकती नहीं – बिजली चमककर अंधेरे में खो जाए।

यह अधूरी तृप्ति विरह को और तीव्र बनाती है।
इस मनोदशा को "घटक्रतु" रूप में अनुभव किया जाता है।

3. विचार और प्रेम का रहस्य

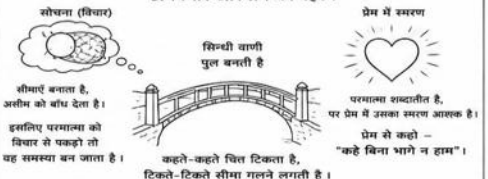

4. जुड़ाव का बोध

हम केवल संसार से नहीं, उस दिखाने वाले से भी जुड़े हैं।

जब यह अनुभव गहराता है, तब 'मैं' और 'तुम' मिलकर 'हम' बन जाते हैं।

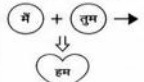

संसार का सुख प्रतिबिंब है, स्रोत नहीं।
स्रोत की पहचान से आँख प्रतिबिंब में नहीं अटकती।

5. साधना के चरण – सूफ़ी और भारतीय दृष्टि

भारतीय समन्वय : कर्म → उपासना → ज्ञान → विज्ञान (स्थायी बोध)

6. प्रेम-लीला और गोपनीयता

यमुना-क्रीड़ा, कुंज-विहार, बाल-किशोर लीलाएँ – यह मनोरंजन नहीं, भाव-दीक्षा है।

प्रेम की मर्यादा – गोपनीयता
"जिन पाया तिन माहें छिपाया"
जो पाया, उसे भीतर संभालो।
विनम्रता और आंतरिक स्मरण प्रेम की रक्षा करते हैं।

7. दृष्टि परिवर्तन – साक्षी भाव

भीतर कोई प्रोजेक्टर निरंतर चल रहा है।

- खेल दिखाने वाले को पहचानो
- अहं पीछे हटता है, साक्षी-भाव जागता है।
- रुचि से बंधन है, रुचि से मुक्ति है।
- मंज़िल – हुकम – इलम – इश्क (लीला का बोध)

8. ग्रंथ का संदेश

विरह दर्द नहीं, प्रेम की आग है जो अहं की जड़ता को गलाती है।

यह साधक को टूटे स्वप्नों से उठाता है, खोती झलकों की तड़प देता है, दृश्य से हटाकर दर्शक को दिखाता है, और निजधाम की ओर ले जाता है।

संसार छोड़ना नहीं सिखाता, संसार को देखने की नई दृष्टि देता है, जिससे आत्मा स्वयं अपने घर की ओर लौटने लगती है।

सिन्धी ग्रंथ आत्मा की अनकही तड़प को वाणी देता है – विरह से जागरण तक की यात्रा कराते हुए, हमें परम प्रेम, पहचान और निजधाम के आनंद की ओर अनिवार्य रूप से अग्रसर करता है। – जागो

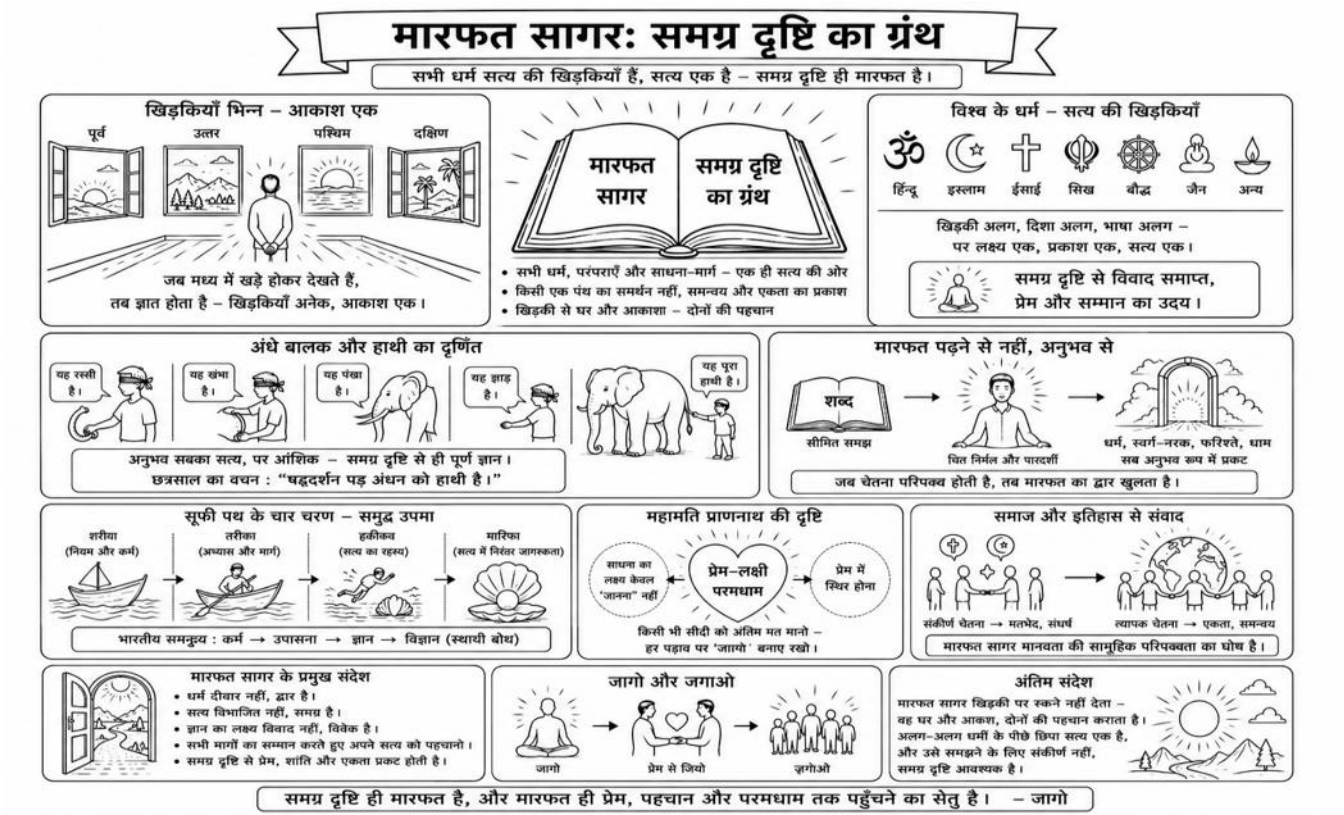
मारफत सागर: समग्र दृष्टि का ग्रंथ
सभी धर्म सत्य की खिड़कियाँ हैं, सत्य एक है – समग्र दृष्टि ही मारफत है।
खिड़कियाँ भिन्न – आकाश एक
पूर्व
उत्तर
पश्चिम
दक्षिण
जब मध्य में खड़े होकर देखते हैं,
तब ज्ञात होता है – खिड़कियाँ अनेक, आकाश एक।
मारफत सागर
समग्र दृष्टि का ग्रंथ
• सभी धर्म, परंपराएँ और साधना-मार्ग – एक ही सत्य की ओर
• किसी एक पंथ का समर्थन नहीं, समन्वय और एकता का प्रकाश
• खिड़की से घर और आकाशा – दोनों की पहचान
विश्व के धर्म – सत्य की खिड़कियाँ
हिंदू
इस्लाम
ईसाई
सिख
बौद्ध
जैन
अन्य
खिड़की अलग, दिशा अलग, भाषा अलग –
पर लक्ष्य एक, प्रकाश एक, सत्य एक।
समग्र दृष्टि से विवाद समाप्त,
प्रेम और सम्मान का उदय।
अंधे बालक और हाथी का दृणिंत
यह रस्सी है।
यह खंभा है।
यह पंखा है।
यह झाड़ है।
यह पूरा हाथी है।
अनुभव सबका सत्य, पर आंशिक – समग्र दृष्टि से ही पूर्ण ज्ञान।
छत्रसाल का वचन : "षड्दर्शन पड़ अंधन को हाथी है।"
मारफत पढ़ने से नहीं, अनुभव से
शब्द
सीमित समझ
चित निर्मल और पारदर्शी
धर्म, स्वर्ग-नरक, फरिश्ते, धाम
सब अनुभव रूप में प्रकट
जब चेतना परिपक्व होती है, तब मारफत का द्वार खुलता है।
सूफी पथ के चार चरण – समुद्र उपमा
शरीया
(नियम और कर्म)
तरीका
(अध्यास और मार्ग)
हकीकत
(सत्य का रहस्य)
मारिफा
(सत्य में निरंतर जागरूकता)
भारतीय समन्वय : कर्म → उपासना → ज्ञान → विज्ञान (स्थायी बोध)
महामति प्राणनाथ की दृष्टि
साधना का लक्ष्य केवल 'जानना" नहीं
प्रेम-लक्षी परमधाम
प्रेम में स्थिर होना
किसी भी सीदी को अंतिम मत मानो –
हर पड़ाव पर 'जाग्यो' बनाए रखो।
समाज और इतिहास से संवाद
संकीर्ण चेतना → मतभेद, संघर्ष
त्यापक चेतना → एकता, समन्वय
मारफत सागर मानवता की सामूहिक परिपक्वता का घोष है।
मारफत सागर के प्रमुख संदेश
• धर्म दीवार नहीं, द्वार है।
• सत्य विभाजित नहीं, समग्र है।
• ज्ञान का लक्ष्य विवाद नहीं, विवेक है।
• सभी मार्गों का सम्मान करते हुए अपने सत्य को पहचानो।
• समग्र दृष्टि से प्रेम, शांति और एकता प्रकट होती है।
जागो और जगाओ
जागो
प्रेम से जियो
ज़गोओ
अंतिम संदेश
मारफत सागर खिड़की पर रुकने नहीं देता –
वह घर और आकाश, दोनों की पहचान कराता है।
अलग-अलग धर्मों के पीछे छिपा सत्य एक है,
और उसे समझने के लिए संकीर्ण नहीं,
समग्र दृष्टि आवश्यक है।
समग्र दृष्टि ही मारफत है, और मारफत ही प्रेम, पहचान और परमधाम तक पहुँचने का सेतु है। – जागो

क़यामतनामा (छोटा और बड़ा) – जागरण का ग्रंथ

क़यामत = बाहर की नहीं, चेतना के जागने की घाड़ी जहाँ माया का स्वप्न स्वतः समाप्त हो जाता है।

स्वप्न से जागरण का रूपक

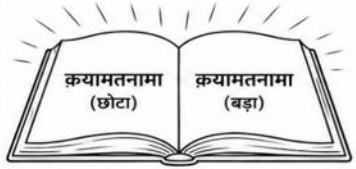

क़यामतनामा का संदेश
अहं का अंत → चेतना का उदय → आत्मा की घर-वापसी

क़यामत का वास्तविक अर्थ

कुरान, हदीस और अन्य इबाहमी परंपराओं की कथाओं के भीतर छिपे गूढ़ अर्थ को क़यामतनामा उदघाटित करता है और आत्मा-परमात्मा के मिलन की दिशा स्पष्ट करता है।

1. छोटी क़यामत (क़यामत-सुगरा) – व्यक्तिगत जागरण

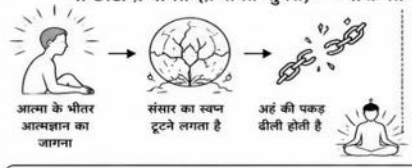

बीज-वृक्ष रूपक

इसी अनुभव को वाणी "जीते-जी मरना" कहती है— अर्थात अहं का लय।
प्रत्येक आत्मा अपनी मूल पहचान की ओर बढ़ती है— कोई वैकुण्ठ की ओर, कोई अक्षरधाम की ओर।

2. बड़ी क़यामत (क़यामत-कुबरा) – सामूहिक जागरण

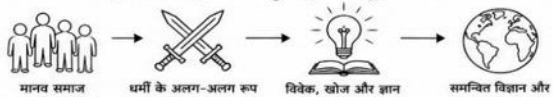

परमात्मा की लीला — कभी विभाजन, कभी समन्वय द्वारा परम सत्य की प्रकाशना।

सत्रहवीं शताब्दी से आरंभ हुआ वैज्ञानिक और बौद्धिक पुनर्जागरण इसी बड़ी क़यामत का संकेत है— खंडित सत्यों को जोड़कर समग्र दृष्टि का विकास करना।

क़यामत का लक्ष्य

छोटी और बड़ी— दोनों का लक्ष्य एक ही है: मूल स्वरूप में जागरण।

छोटी: आत्मा को भीतर से मुक्त करती है।
बड़ी: मानव बुद्धि को समग्र बनाती है।

सृष्टि का भेद

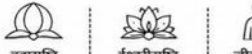

ब्रह्मात्माओं की वास्तविक पूँजी

कहनी, करनी और रहनी—तीनों का एक होना अनिवार्य।

अंतिम संदेश

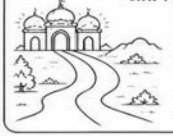

क़यामत डराने नहीं आई, जगाने आई है।
जो जागते हैं, उनके लिए संसार का स्वप्न अपने आप टूट जाता है और निजधाम की स्मृति स्थिर हो जाती है।

क़यामतनामा सिखाता है कि सच्ची क़यामत बाहर नहीं, भीतर घटती है— जहाँ अहं का अंत, चेतना का उदय और आत्मा की घर-वापसी एक ही क्षण में घटित हो जाती है।

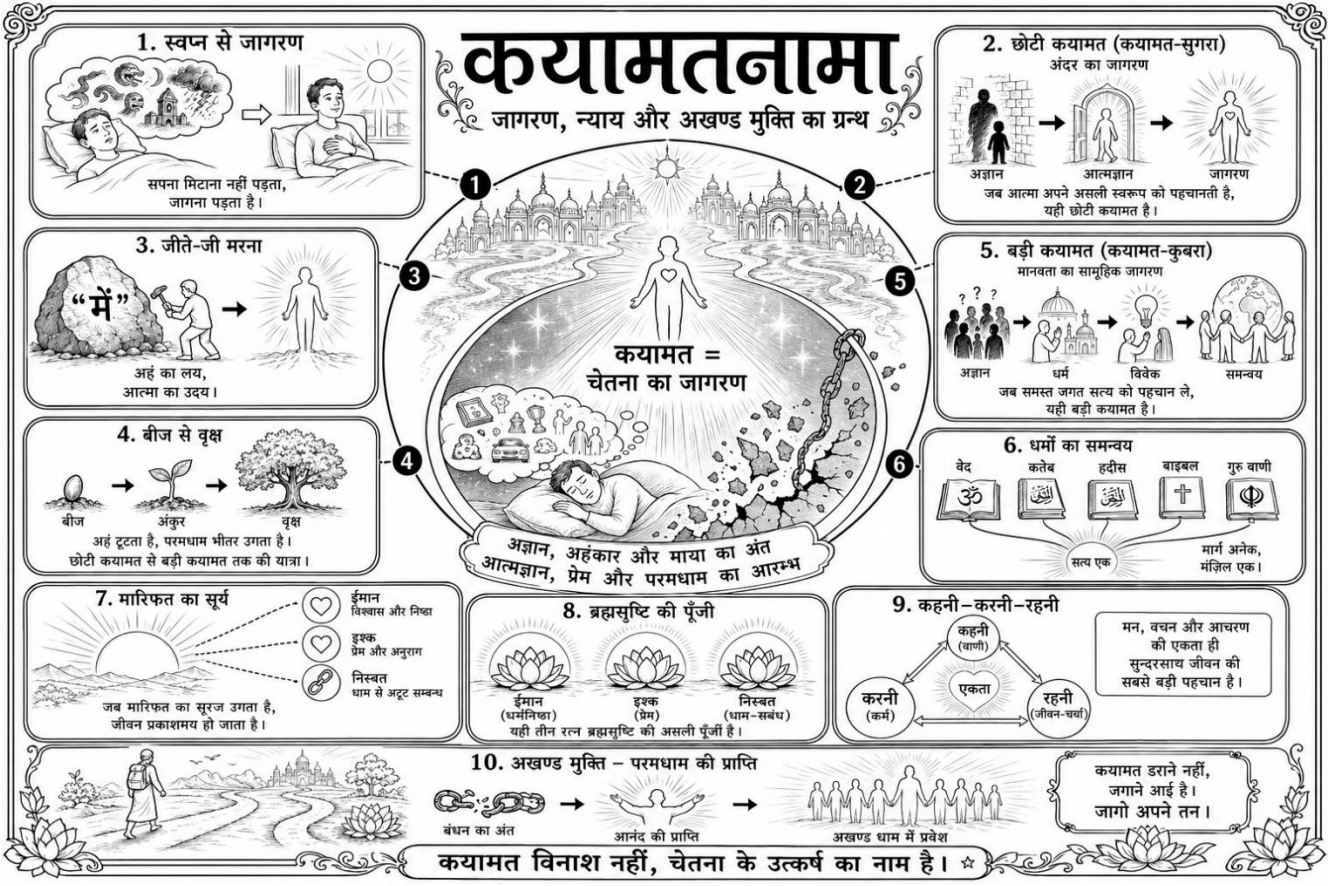
कयामतनामा
जागरण, न्याय और अखण्ड मुक्ति का ग्रन्थ
1. स्वप्न से जागरण
सपना मिटाना नहीं पड़ता,
जागना पड़ता है।
2. छोटी कयामत (कयामत-सुगरा)
अंदर का जागरण
अज्ञान
आत्मज्ञान
जागरण
जब आत्मा अपने असली स्वरूप को पहचानती है,
यही छोटी कयामत है।
3. जीते-जी मरना
"में"
अहं का लय,
आत्मा का उदय।
कयामत =
चेतना का जागरण
5. बड़ी कयामत (कयामत-कुबरा)
मानवता का सामूहिक जागरण
अज्ञान
धर्म
विवेक
समन्वय
जब समस्त जगत सत्य को पहचान ले,
यही बड़ी कयामत है।
4. बीज से वृक्ष
बीज
अंकुर
वृक्ष
अहं टूटता है, परमधाम भीतर उगता है।
छोटी कयामत से बड़ी कयामत तक की यात्रा।
अज्ञान, अहंकार और माया का अंत
आत्मज्ञान, प्रेम और परमधाम का आरम्भ
6. धर्मों का समन्वय
वेद
कतेब
हदीस
बाइबल
गुरु वाणी
सत्य एक
मार्ग अनेक,
मंज़िल एक।
7. मारिफत का सूर्य
ईमान
विश्वास और निष्ठा
इश्क
प्रेम और अनुराग
निस्बत
धाम से अटूट सम्बन्ध
जब मारिफत का सूरज उगता है,
जीवन प्रकाशमय हो जाता है।
8. ब्रह्मसृष्टि की पूँजी
ईमान
(धर्मनिष्ठा)
इश्क
(प्रेम)
निस्बत
(धाम-सबंध)
यही तीन रत्न ब्रह्मसृष्टि की असली पूँजी है।
9. कहनी–करनी–रहनी
कहनी
(वाणी)
करनी
(कर्म)
रहनी
(जीवन-चर्या)
एकता
मन, वचन और आचरण
की एकता ही
सुन्दरसाथ जीवन की
सबसे बड़ी पहचान है।
10. अखण्ड मुक्ति – परमधाम की प्राप्ति
बंधन का अंत
आनंद की प्राप्ति
अखण्ड धाम में प्रवेश
कयामत डराने नहीं,
जगाने आई है।
जागो अपने तन।
कयामत विनाश नहीं, चेतना के उत्कर्ष का नाम है। ☆

सुन्दरसाथ की अवधारणा

ब्रह्मसृष्टि जीवन, प्रेम, जागृति और धामभाव की संस्कृति

1. सुन्दरसाथ क्या है?

कोई बाहरी पदवी नहीं, बल्कि चेतना की अवस्था, हृदय-भाव, जीवन-पद्धति और परमधाम-संबंध की जागृत अनुभूति है।

- सुंहस्साथ
- साथ
- साथ जी
- ब्रह्मसृष्टि
- परमहंस
- धामी
- मोमिन
- रूह
- पर-आत्म
- परात्म

यह यात्रा अपने मूल वतन अखण्ड परमधाम, परमप्रिय धामधनी और अखण्ड प्रेम-लीला की ओर जागने की है।

सुन्दरसाथ संस्कृति का सार

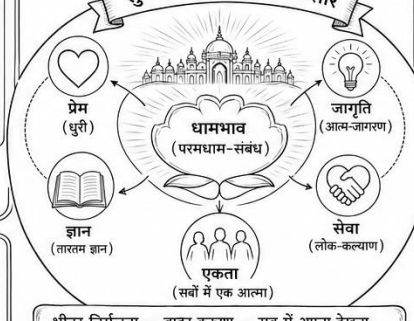

भीतर निर्मलता – बाहर करूणा – सब में अपना देखना
यही है सुन्दरसाथ जीवन।

2. जागनी के मूल प्रश्न

यही प्रश्न आत्मा को उसके मूल संबंध की स्मृति दिलाते हैं।
उद्देश्य – "सुख शीतल करूँ संसार" (स्वयं जागना और संसार को शीतल बनाना)

3. "सुन्दर" और "साथ" का तात्विक अर्थ

सुन्दर

परम सौन्दर्य – अक्षरातीत परब्रह्म श्री राजजी का स्वरूप, प्रेम, आनंद और विदमन चेतना।
जो उस दिव्य सौन्दर्य को भीतर उतारे – वही "सुन्दर" है।

"साथ"

साथी बदल सकता है, पर "साथ" सार्वकालिक हृदय-अवस्था है।
आत्मीयता, मैत्री, एकत्व और प्रेम का भाव।

" प्रणाम करूँ सब साथ को, जो कोई देश सिदेश।
राह बाट में जो मिले, ताको कहो संदेश ।। "

4. ब्रह्मसृष्टि और सुन्दरसाथ

ब्रह्म सृष्टि कही वेद ने, ब्रह्म जैसी तदोगत।
तौल न उनको कोई, जाकी ब्रह्म सों निसबत ।।

जीवसृष्टि (दोहरापन)	ब्रह्मसृष्टि (एकरूपता)
माहें मैले बाहेंर उजले	सोई करें धनी सो जाहेंर
अंदर कुछ और बाहर कुछ और	जैसी होए दिल माहें वैसी होए बाहर जाहेंर

मन, वचन और आचरण की एकता – यही सुन्दरसाथ की पहचान।

5. इस संसार में आने का उद्देश्य

1. प्रेम की पवित्रता सिद्ध करना (प्रेमानंद-विलासी परमात्मा के प्रति)
2. ऐश्वर्य और लीला की पहचान करना (परमात्मा के ऐश्वर्य और लीला को जानना)

साथ कों घरों ले जाना सही, कोई माया में ना सके रही।
खेंचे सबों को ए बानी, फिरसी घरों धनी पेहेचानी ।।

6. प्रेम – सुन्दरसाथ संस्कृति की धुरी

प्रेम के द्वारा
- द्वेते मिटता है
- वैर मिटता है
- ईर्ष्या गलती है
- भय मिटता है
- अहंकार गलता है

प्रेम
मुक्ति, जागृति और परमधाम का प्रवेश-द्वार

वाणी कहती है –
- प्रेम खोल देवे सब द्वार...
- प्रेमी करी अलख की लख...
- या को प्रेमे सहज स्वाभाव...

प्रेम = चेतना का विज्ञान
जो जीव को धामभाव की ओर मोड़ देता है।

धनी सबों का एक • पारब्रह्म तो पूरन एक है • छोड़ के बैर मिले सब प्यार सों • तुम प्रेम सेवा से पाओगे पार

7. धामी और धाम का संबंध

धाम और धामी परस्पर अभिन्न चेतना के रूप हैं।

8. सुन्दरसाथ का जीवन – कैसी हो हमारी जीवन-पद्धति?

"अंतिम संदेश

स्वयं जागो,
दूसरों को जगाओ,
सबको साथ लेकर
परमधाम की ओर चलो।
यही है सुन्दरसाथ
संस्कृति का पथ।

सुन्दरसाथ वह है – जो परमधाम से जुड़कर, प्रेम में जीकर, सेवा कर, सब में एक को देखता है।

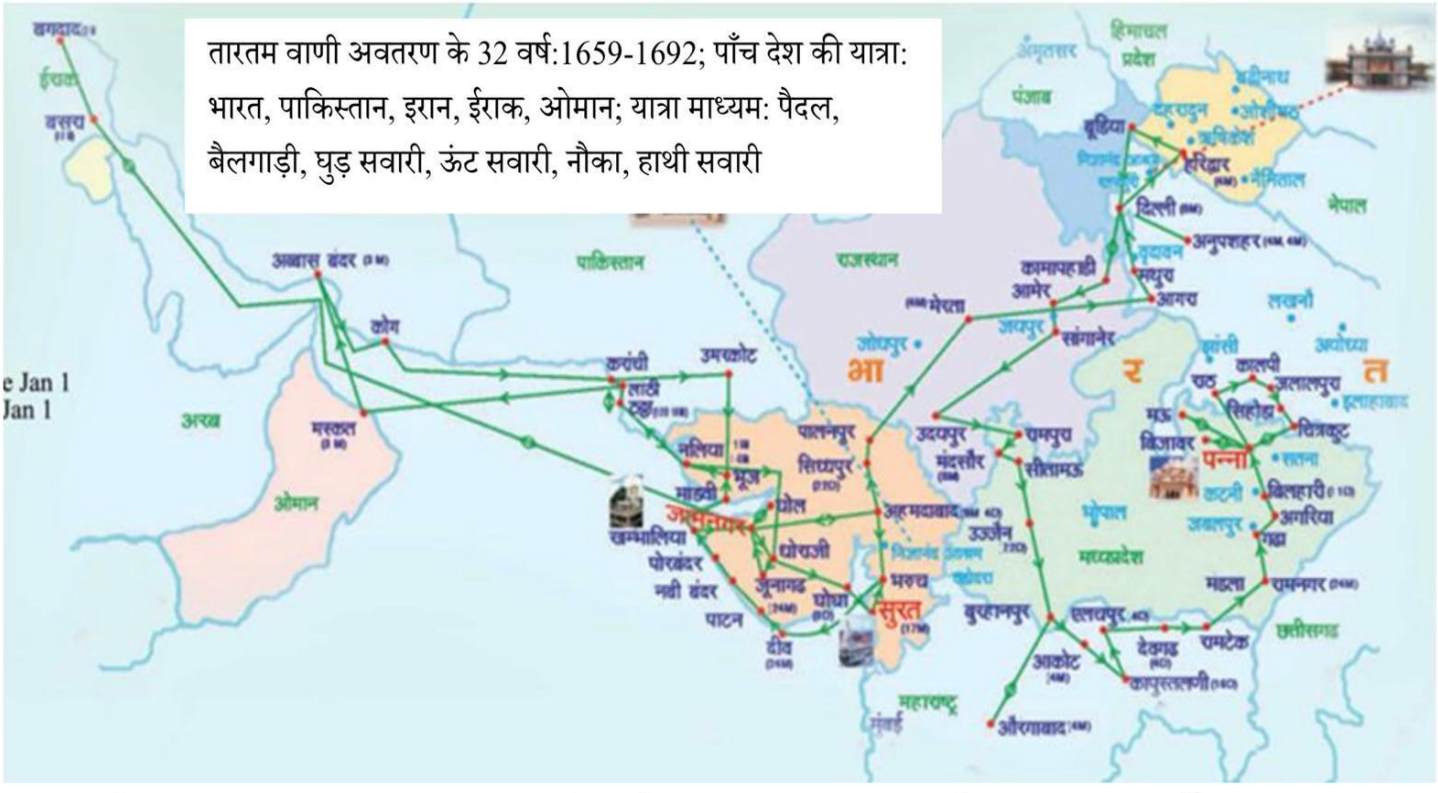

महामति प्राणनाथ जी की जागनी यात्रा एक दिव्य चेतना-प्रवाह था। सन 1655 से 1692 तक 37 वर्षों की यह विराट यात्रा लगभग 70 प्रमुख सत्संग स्थलों और 200 से अधिक पड़ावों से होकर गुज़री। इस महायात्रा में हजारों सुन्दरसाथ सहभागी हुए, और अंततः लगभग 5000 सुन्दरसाथ अनुयाईओं के साथ पन्ना में दिव्य जागनी का केंद्र स्थापित हुआ।

परब्रह्म का विलास लीला क्षेत्र
❖ अक्षर की विकास प्रक्रिया से परे
❖ आनंदलीला रस्म का प्रवाह
एक पूर्णता से दूसरी पूर्णता की ओर बढ़ता है ।
अक्षरातीत परब्रह्म
परात्पर परब्रह्म
स्वलीला-अद्वैत
सत् – चित् – आनंद – अनंत – अद्वैत
(परात्पर परब्रह्म)
अक्षर ब्रह्म की त्रिपाद अमृत:
दो शक्तियाँ
अक्षर ब्रह्म
सत स्वरूप, केवल ब्रह्म, सर्वलिक ब्रह्म
अक्षर ब्रह्म का विकास लीला क्षेत्र: एक सापेक्ष पूर्णता से दूसरी सापेक्ष पूर्णता की ओर
अंतरंगा शक्ति (योगमाया)
अविद्या पाद
(पूर्ण ब्रह्म)
अव्याकृत ब्रह्म
अक्षर स्वरूप
क्षर पुरुष
महाकारण – मोह सागर – महाविष्णु
महासमष्टि – महत अहंकार का प्रथम
विचार स्वरूप – महतत्व – आदि इच्छा
बहिरंगा शक्ति (महामाया)
नारायण की आत्मा ब्रह्मांडीय इच्छा, प्रकाश और शब्द के रूप में
कारण समुद्र – नारायण – द्वितीय विचार स्वरूप
हिरण्य गर्भ: ॥ एको अहं बहुस्यामू ॥
नारायण की आत्मा कॉस्मिक कृष्ण, कॉस्मिक क्राइस्ट, कॉस्मिक मुहम्मद के रूप में
ब्रह्मांड का प्रक्षेपण प्रारंभ
सात शून्य
सृष्टि सर्जन
नारायण का अहूम – ईश्वर के रूप में
नियाकाग : चैतन और जड़
परा – विराट पुरुष एवं अव्यर – मावितो
ज्योति स्वरूप का विशाल क्षेत्र
निरंजन–गायत्री– ॐकार – परा शक्ति (गीता)
सर्वव्यापी आत्मा
क्षर सृष्टि में विकास का प्रवाह: एक सापेक्ष पूर्णता से दूसरी सापेक्ष पूर्णता की ओर
अष्ट आवरण
हमारे सूर्य मंडल के चौदह लोक
(चेतना के विविध आयाम, विविध प्रकार के जीवों के निवास स्थान)
चौदहवाँ लोक : सत लोक, त्रियुग धाम – ब्रह्मा, विष्णु, महेश
तप लोक : तपस्वी जनों का लोक
जन लोक : जन लोक – निराकार संतों को प्राप्त लोक
महरलोक : महरलोक – धर्मराज का दिव्य न्यायालय
स्वर्ग लोक : इंद्र, वरुण, देवता गण (प्राकृत प्रवग्य में महलोक में,
हर चार अरब वर्ष के बाद ब्रह्माजी कारण शरीर में स्थित हो जाते हैं)
भुवर– पितृलोक–अंतरलोक – आकाशिक तन
बर्दी (कुग्ल) – पुर्गटरी (बाईबल)
समर लोक – जहाँ ऊँचे वे लोकों में जाने से पूर्व अस्थायी इच्छाएँ पूरी होती हैं ।
आठवाँ लोक : पृथ्वी लोक : हमारी पृथ्वी का तल – स्थूल शरीर
सात पाताल लोक : पृथ्वी के भीतर
(हर लोक की अपनी एक विशिष्ट फ्रीकवेंसी होती हैं ।
जीव को उसकी अपनी फ्रीकवेंसी की तरंगों के अनुसार वह लोक दिया जाता है)
वानस्पतर्क लोक : मूणर्शील जीवों का
गर्भलोक समूह – श्रेष्ठ प्राणी नारायण – विराट की आत्मा
जो नारायण तक की सृष्टि के आधार है, एवं
३२१ ट्रिलियन वर्ष के बाद प्रत्यावर्तित
सत्- चित्-
आनंद - अनंत-अद्वैत
सुप्रेम प्रणाम जी
यह विराट चार्ट आवरण बुद्धिकामा ज्ञानयोगी के मार्गदर्शन में उनकी 'विराट कॉस्मिक' अमूलि पुस्तका के आधार पर तैयार किया गया है ।
संक्षिप्त क्षर–अक्षर–अक्षरातीत विराट पट दर्शन: श्री प्राणनाथ तारतम वाणी एवं वेद–कतेब–शास्त्र आधारित

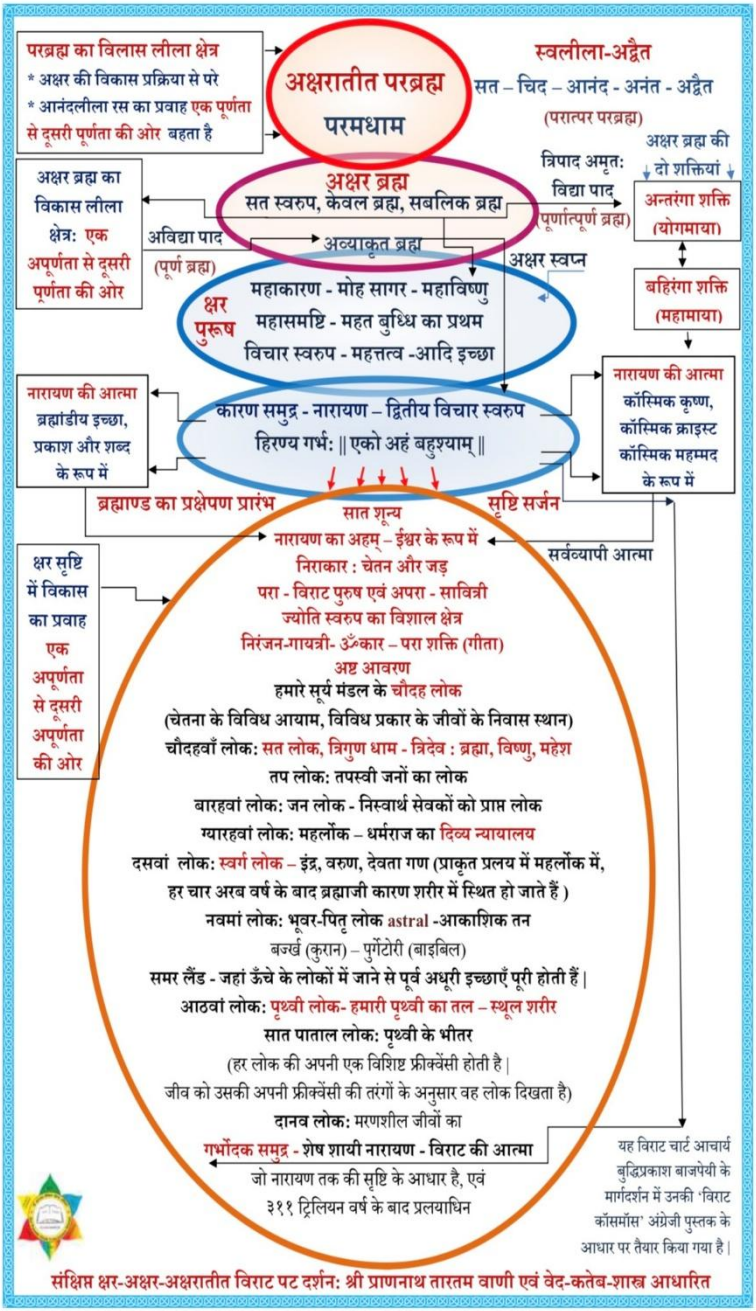
परब्रह्म का विलास लीला क्षेत्र
* अक्षर की विकास प्रक्रिया से परे
* आनंदलीला रस का प्रवाह एक पूर्णता से दूसरी पूर्णता की ओर बहता है
अक्षरातीत परब्रह्म
परमधाम
स्वलीला-अद्वैत
सत – चिद – आनंद - अनंत - अद्वैत
(परात्पर परब्रह्म)
अक्षर ब्रह्म की दो शक्तियां
त्रिपाद अमृत: विद्या पाद
(पूर्णात्पूर्ण ब्रह्म)
अक्षर ब्रह्म
सत स्वरुप, केवल ब्रह्म, सबलिक ब्रह्म
अक्षर ब्रह्म का विकास लीला क्षेत्र: एक अपूर्णता से दूसरी पूर्णता की ओर
अविद्या पाद
(पूर्ण ब्रह्म)
अव्याकृत ब्रह्म
अन्तरंगा शक्ति (योगमाया)
अक्षर स्वप्न
बहिरंगा शक्ति (महामाया)
क्षर पुरूष
महाकारण - मोह सागर - महाविष्णु
महासमष्टि - महत बुध्धि का प्रथम
विचार स्वरुप - महत्तत्व -आदि इच्छा
नारायण की आत्मा ब्रह्मांडीय इच्छा, प्रकाश और शब्द के रूप में
कारण समुद्र - नारायण – द्वितीय विचार स्वरुप
हिरण्य गर्भ: ॥ एको अहं बहुश्याम् ॥
नारायण की आत्मा कॉस्मिक कृष्ण, कॉस्मिक क्राइस्ट कॉस्मिक महम्मद के रूप में
ब्रह्माण्ड का प्रक्षेपण प्रारंभ
सृष्टि सर्जन
सात शून्य
नारायण का अहम् – ईश्वर के रूप में
सर्वव्यापी आत्मा
क्षर सृष्टि में विकास का प्रवाह एक अपूर्णता से दूसरी अपूर्णता की ओर
निराकार : चेतन और जड़
परा - विराट पुरुष एवं अपरा - सावित्री
ज्योति स्वरुप का विशाल क्षेत्र
निरंजन-गायत्री- ॐकार – परा शक्ति (गीता)
अष्ट आवरण
हमारे सूर्य मंडल के चौदह लोक
(चेतना के विविध आयाम, विविध प्रकार के जीवों के निवास स्थान)
चौदहवाँ लोक: सत लोक, त्रिगुण धाम - त्रिदेव : ब्रह्मा, विष्णु, महेश
तप लोक: तपस्वी जनों का लोक
बारहवां लोक: जन लोक - निस्वार्थ सेवकों को प्राप्त लोक
ग्यारहवां लोक: महर्लोक – धर्मराज का दिव्य न्यायालय
दसवां लोक: स्वर्ग लोक – इंद्र, वरुण, देवता गण (प्राकृत प्रलय में महर्लोक में, हर चार अरब वर्ष के बाद ब्रह्माजी कारण शरीर में स्थित हो जाते हैं)
नवमां लोक: भूवर-पितृ लोक astral -आकाशिक तन
बर्ज़ख़ (कुरान) – पुर्गेटोरी (बाइबिल)
समर लैंड - जहां ऊँचे के लोकों में जाने से पूर्व अधूरी इच्छाएँ पूरी होती हैं |
आठवां लोक: पृथ्वी लोक- हमारी पृथ्वी का तल – स्थूल शरीर
सात पाताल लोक: पृथ्वी के भीतर
(हर लोक की अपनी एक विशिष्ट फ्रीक्वेंसी होती है |
जीव को उसकी अपनी फ्रीक्वेंसी की तरंगों के अनुसार वह लोक दिखता है)
दानव लोक: मरणशील जीवों का
गर्भोदक समुद्र - शेष शायी नारायण - विराट की आत्मा
जो नारायण तक की सृष्टि के आधार है, एवं
३११ ट्रिलियन वर्ष के बाद प्रलयाधिन
यह विराट चार्ट आचार्य बुद्धिप्रकाश बाजपेयी के मार्गदर्शन में उनकी 'विराट कॉसमॉस' अंग्रेजी पुस्तक के आधार पर तैयार किया गया है |
संक्षिप्त क्षर-अक्षर-अक्षरातीत विराट पट दर्शन: श्री प्राणनाथ तारतम वाणी एवं वेद-कतेब-शास्त्र आधारित

सूता होए सो जागियो, जाग्या सो बैठा होए।
बैठा ठाढ़ा होईयो, ठाढ़ा पाँऊ भरे आगे सोए।।
यों तैयारी कीजियो, आगूं करनी है दौड़।
सब अंग इस्क लेय के, निकसो ब्रह्मांड फोड़।।
-महामति प्राणनाथ

क्या धर्म केवल परंपरा है, या चेतना की एक जीवित यात्रा?
क्या आध्यात्म केवल पूजा तक सीमित है, या वह जीवन, समाज, शिक्षा और मानवता के भविष्य को दिशा देने वाली शक्ति है?

यह पुस्तक श्री निजानंद-प्रणामी दर्शन की उस समग्र दृष्टि को प्रस्तुत करती है, जहाँ इतिहास और दर्शन, आत्मा और समाज, विज्ञान और अध्यात्म, तथा व्यक्ति और विश्व-एक व्यापक चेतना में एक-दूसरे से जुड़ते हैं।

क्षर-अक्षर-अक्षरातीत के गहन रहस्य से लेकर चेतना की त्रिस्तरीय संरचना, परमधाम, मोक्ष, नैतिक जीवन, तारतम्य-केन्द्रित सर्वधर्म समन्वय और आधुनिक युग की चुनौतियों तक-यह कृति केवल अध्ययन नहीं, बल्कि आत्म-जागरण और समग्र दृष्टि की यात्रा है।

यह पुस्तक शोधार्थियों, अध्यापकों, विद्यार्थियों, चिंतकों तथा उन सभी जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी है जो केवल जानकारी नहीं, बल्कि जीवन-बोध और अखण्ड दृष्टि की खोज में हैं।

विविधता से एकत्व की ओर, ज्ञान से प्रेम की ओर,
और चेतना से अखण्डता की ओर-यही इस पुस्तक की मूल यात्रा है।

ज्ञान जो जोड़ता है • दर्शन जो जगाता है
• चेतना जो मुक्त करती है

समग्र चेतना • एकत्व मानवता • शाश्वत सत्य

श्री निजानंद-प्रणामी दर्शन

सम्पादक : श्री मधुभाई पटेल
श्री नरेन्द्र भाई पटेल, डॉ. उपमन्यु शास्त्री

Distributors :
Nikhil Publishers & Distributors
Hall No. 2, 1st Floor, Bhawna Multiplex,
Kargil Chauraha, Agra- 282007 (U.P.) India
E-mail : nikhilbooks.786@gmail.com

ISBN : 978-93-7026-089-4

₹1100.00 $ 20

9458009531-38 | www.nikhilbooks.com | Nikhil Publishers Agra